आशा प्रसाद

स्वामी विवेकानन्द

एक जीवनी

सिंधु पब्लिकेशंस
नयी दिल्ली, बम्बई

आमुख

उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्ध के भारतीय नवजागरण के अग्रणी नेताओं में स्वामी विवेकानन्द का स्थान अन्यतम है. इतिहासकार एक मत से बीसवीं सदी के शुरू में राष्ट्रीय आन्दोलन में आये नये मोड़ में स्वामीजी के कार्यों और संदेश का बड़ा योगदान मानते हैं. बंगाल के बंटवारे (१६०५) के बाद आयी क्रांतिकारी आन्दोलन की आंधी के समय बंगाल के क्रातिकारियों के पास गीता के अलावा विवेकानन्द के भाषणों की भी पुस्तकें पायी जाती थीं. जवाहरलाल नेहरू की 'भारत की कहानी' में कई जगह विवेकानन्द के बारे में उनके भाव प्रकट होते हैं. सुभाषचन्द्र बसु किशोरावस्था से ही स्वामीजी की रचनाओं के गहन अध्येता थे. गांधी युग के प्राय: सभी शीर्षस्थ नेता विवेकानन्द के सन्देश से प्रेरणा प्राप्त करते रहे. उनके निधन के ७० साल बाद आज के भारतवर्ष के लिए भी विवेकानन्द के विचारों का महत्व कम नहीं हुआ है, युवकों के लिए उनका जीवन आज भी उतना ही प्रेरणाप्रद है.

विवेकानन्द द्वारा भारत की गरिमा को पुन: जगाने का प्रयास मात्र राजनैतिक दासत्व की समाप्ति के लिए नहीं था. दासत्व की जो हीन भावना हमारे संस्कार में घुल-मिल गयी है उससे भी त्राण पाने का मार्ग उन्होंने बताया. विवेकानन्द बड़े स्वप्नद्रष्टा थे. उन्होंने एक नये समाज की कल्पना की थी; ऐसा समाज जिसमें धर्म या जाति के आधार पर मनुष्य-मनुष्य में कोई भेद नहीं रहे. उन्होंने वेदांत के सिद्धांतों को इसी रूप में रखा. अध्यात्मवाद बनाम भौतिकवाद के विवाद में पड़े बिना भी यह कहा जा सकता है कि समता के सिद्धांत को जो आधार विवेकानन्द ने दिया, उससे सबल बौद्धिक आधार शायद ही ढूँढ़ा जा सके.

उनके लिए समता का सिद्धांत कोई मात्र बौद्धिक विश्वास ही नहीं, उनके हर प्रयास का प्रेरक था. वे ऐसे किसी भी प्रयास में भाग नहीं लेते थे जिससे दीन-दुखियों की दशा में सुधार न हो. अपने अनुयायियों से उन्होंने बार-बार कहा कि हमारा राष्ट्र तो झोपड़ियों में निवास करता है, जब गरीबों की स्थिति में सुधार होगा तभी राष्ट्र की अवस्था में सुधार संभव है.

उनकी दृष्टि में इस सुधार का मार्ग था शिक्षा का प्रचार. वे चाहते थे कि उनके अनुयायी गाँव-गाँव फैल जायें और गरीबों को शिक्षित करें. एक शिक्षित व्यक्ति अपने सुखपूर्ण जीवन का मार्ग अपने आप ढूँढ़ लेगा. अभी हाल में प्रसिद्ध अर्थशास्त्री गुनार मिर्डल ने भी भारतीय गरीबी को दूर करने के लिए सबसे अधिक शिक्षा पर ही बल दिया है.

विवेकानन्द का सबसे शक्तिशाली संदेश तो उनका जीवन था. चालीसवाँ जन्म दिवस देखने के पूर्व ही संसार छोड़ जाने वाले उस युवा संन्यासी ने इतने अल्पकाल में पूरे राष्ट्र में एक नयी जान फूंक दी और एक ऐसा सामाजिक दर्शन प्रतिपादित किया, जो आज भी सार्थक हैं.

विवेकानन्द को युवकों से बड़ी आशाएँ थीं. आज के युवकों के लिए ही इस ओजस्वी संन्यासी का यह जीवन-वृत्त मैंने उनके समकालीन समाज एवं ऐतिहासिक पृष्ठभूमि के संदर्भ में उपस्थित करने का प्रयत्न किया है. मेरा यह भी प्रयास रहा है कि इसमें विवेकानन्द के सामाजिक दर्शन एवं उनके मानवीय रूप पर पूरा प्रकाश पड़े.

यह पुस्तक मेरे पति, विमल जी की सतत प्रेरणाओं का परिणाम है. वे इतिहासकार हैं. इतिहास की दृष्टि से इस पुस्तक में कहीं कोई बात असंगत व असंबद्ध न हो, इसलिए उन्होंने इसकी पूरी पांडुलिपि पढ़ डाली और यत्र-तत्र अपनी आलोचना एवं सुझाव दिये. इस पुस्तक के प्रकाशन में सहयोग के लिए मैं श्री कमलेश की कृतज्ञ हूँ.

कहने की आवश्यकता नहीं कि यदि इस पुस्तक में कहीं त्रुटियाँ या भूलें रह गयी हों तो उनके लिए मैं ही उत्तरदायी हूँ.

—आशा प्रसाद

क्रम सूची

१.

दक्षिणेश्वर का पुजारी

कलकत्ते से चार मील दूर, गगा के पूर्वी तट पर, दक्षिणेश्वर में महादेवी काली का एक भव्य मंदिर मंदिर के प्रांगण में पद्मासन लगाये एक युवा पुजारी. कद साधारण, रंग गेहुंआ, उन्नत ललाट के नीचे दो अर्धनिमीलित लम्बे काले नेत्र. स्नेहसिक्त, शांत और अपूर्व तेज से आलोकित इन अधढंकी आंखों की मंद-तीक्ष्ण दृष्टि मानों लोगों के वाह्य और अंतर्जगत दोनों को सहज रूप से देख रही है. अधखुले भारी होठों में श्वेत दांतों की झलक के साथ शिशु-सुलभ सरल मृदु मुस्कान, श्मश्रुपूर्ण मुखमंडल पर एक अलौकिक आभा. मानवता के प्रति अथाह प्रेम सागर को हृदय में छिपाये हुए उस वैरागी की ओर आंखें वरवस खिच जाती हैं.

इस वैरागी की कहानी कामरपुकुर से आरम्भ होती है. कामरपुकुर बंगाल का एक त्रिकोणाकार सुन्दर सा गांव है. प्रकृति की रमणीय छटा वहां के खजूर के वृक्षों, सरोवरों और धान के लहलहाते खेतों में बिखरी पड़ी है. खुदीराम चट्टोपाध्याय नामक एक अत्यंत दरिद्र, किन्तु धर्मपरायण ब्राह्मण वहाँ के पुराने निवासी थे. साठ वर्ष की उम्र में एक बार विष्णुभक्त वृद्ध खुदीराम अपने पूर्वजों के पिण्डदान के लिए गया गये. वहां वे एक माह ठहरे. उन्होंने विष्णु (गदाधर) के मंदिर में स्वर्गीय पुरखों को नैवेद्य अर्पित किया. उन्हें उस दिन अपूर्व सुख मिला. उन्हें ऐसा आभास हुआ कि उनका नैवेद्य पूर्वजों ने श्रद्धापूर्वक स्वीकार कर लिया और वे उन्हें आर्शीवाद दे रहे हैं.

उस रात उन्होंने भगवान विष्णु को स्वप्न में देखा. 'मैं इस संसार को पाप से मुक्त करने के लिए बार-बार जन्म लेता हूँ, इस बार तुम्हारी कुटी में जन्म लूंगा और तुम्हें अपना पिता बनाऊँगा.' विष्णु की यह वाणी उन्हें सुनायी पड़ा या स्वयं अपने मन का भ्रम-जात स्वर. कौन जाने ! किन्तु खुदीराम किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो गये. जब उन्होंने अपना होश संभाला तो कहा, 'नहीं, मेरे भगवन्, आप की इस कृपा के योग्य मैं नही हूँ. मेरी योग्यता से अधिक आप ने मुझ पर कृपा दिखायी. मैं बहुत गरीब हूँ, आप की सेवा के ख्याल से.'

उसी रात कामरपुकुर में उनकी धर्मपत्नी चन्द्रमणि मंदिर में शिव की पूजा करते हुए सहम गयी. प्रस्तर मूर्ति सजीव हो गयी. मूर्ति से एक प्रकाशपुंज निकला और चंद्रमणि के शरीर में प्रवेश कर गया. चन्द्रमणि उस तेज को संभाल नहीं पायी और मूर्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़ी.

उस दिन चट्टोपाध्याय दम्पति के यहां अचानक शंख वज उठा. वह शुभ दिन था सन् १८३६ की १८ फरवरी. शुभ नक्षत्र में चट्टोपाध्याय दम्पति को पुत्ररत्न प्राप्त हुआ था. गया के अभूतपूर्व अनुभव की याद में खुदीराम ने पुत्र का नाम गदाधर रखा. दिन महीने में और महीने साल में लिपटते चले गये. वालक गदाधर अब पांच वर्ष के हो चुके. स्वस्थ शरीर में जैसा इनका स्वरूप मनोहर था वैसा ही स्वभाव भी. मुस्कराता चेहरा, अंग-अंग में वालोचित चपलता. उम्र से अधिक तीव्र बुद्धि लोगों को आश्चर्यचकित कर देती थी. पिता ने उन्हें कामरपुकुर के स्कूल में डाल दिया. वहां उनके सरल स्वभाव ने सभी छात्रों और शिक्षकों को मुग्ध कर लिया. बड़ी आसानी से इन्होंने पढ़ना लिखना सीखा. किन्तु सिर्फ गणित जैसे विषय से उन्हें प्रारंभ से ही अरुचि थी. यहां तक कि गणित के मूल तत्वों को भी वे सीखना नहीं चाहते थे.

गदाधर का व्यक्तित्व वचपन से ही और वच्चों से भिन्न था. पूर्व अनुभव के कारण पिता खुदीराम काल के कुहरे में छिपे हुए पुत्र के महान् भविष्य को देखते थे. अनेक देवी देवताओं के श्लोक, राष्ट्रीय एवं धार्मिक कहानियां एक वार सुन कर ही गदाधर को सदा के लिए याद हो जाती थीं. उन दिनों कथावाचक पुजारी गांवों में घूम घूमकर लोगों को धार्मिक एवं पौराणिक कथाएं सुनाया करते थे. गदाधर ऐसे अवसरों पर ध्यानमग्न होकर कथाएं सुनते. पुजारी के वोलने या अन्य क्रिया-कलाप की शैली को निहारते. फिर पीछे खेल में विना किसी समारोह या चवूतरे के, उक्त कथावाचक की शैली में बैठ कर उन्हीं के समान कथा कहते. स्वभाव से ही नटखट वालक कभी-कभी विल्कुल शांत एवं गम्भीर मुद्रा में प्राकृतिक छटा निहारते. इसमें उनका मन इतना रम जाता कि वह अपनी सुधवुध खो वैठते. वचपन में भला किसी को क्या पता था कि इस कमनीय शरीर के अन्दर कितनी गहराई, कितना चिंतन छिपा है !

सन् १८४२ में जब वे ६ साल के थे तब पहली वार उनकी इस दैवी देन का आभास लोगों को हुआ. उन्हीं के शब्दों में—'एक वार मैं धान के खेत की संकरी पगडंडी पर घूम रहा था. मुंह में लाई चवाते हुए मैंने आकाश की ओर अपनी आँखें उठायीं. देखा एक अत्यन्त श्यामवर्ण के वादल ने सम्पूर्ण आकाश को क्षण भर में ढक लिया. अचानक वादलों की ओट से हिम-श्वेत वगुलों की पंक्ति मेरे सर के ऊपर से उड़ते हुए न जाने कहां निकल गयी. इन दोनों में इतना रंगभेद था कि उसके अनुपम सौंदर्य में मेरी आत्मा लिप्त होकर मुझसे वहुत दूर

चली गयी. मैंने अपनी चेतना खो दी और भूमि पर गिर पड़ा. लाई बिखर गयी. किसी ने मुझे गोद में उठा कर घर पहुँचाया. उस दिन असीम आनन्द और भावाधिक्य के कारण मैं फूला न समाया. यह पहला अवसर था जब मैं हर्षोन्माद के बन्धन में पड़ा.' इस प्रकार के दैवी हर्षोन्माद की छाप से उनका जीवन निरंतर पूर्ण होता गया.

जब गदाधर सात साल के हुए, उनके पिता चल बसे. चट्टोपाध्याय परिवार पर एक बहुत बड़ी विपत्ति टूट पड़ी. चन्द्रमणि, जिनके लिए पति खुदीराम पृथ्वी पर साक्षात् देवता थे, अब विक्षिप्त सी रहने लगी. सांसारिक खुशियों से अलग, रात-दिन पूजा अर्चना में वे लीन रहने लगीं. उनके ज्येष्ठ पुत्र रामकुमार के कन्धों पर वृद्धा माँ की देखरेख, छोटे भाइयों की पढ़ाई तथा गृहस्थी की समस्याओं का उत्तरदायित्व आ पड़ा. गदाधर पिता से बहुत हिले-मिले रहते थे. पिता की आँखें बन्द होने पर गदाधर में बड़ा परिवर्तन दिखाई पड़ने लगा. इनके स्वभाव की सहज गम्भीरता, अब चिंतन में परिवर्तित होने लगी. आम के बगीचे में, या श्मशान में अकेले घंटों ध्यान-मग्न घूमना, मिट्टी के छोटे-छोटे देवी-देवताओं की मूर्तियां बनाना तथा श्लोक पाठ करना, इनकी मुख्य दिनचर्या थी. इसके अतिरिक्त ये अब दुखी माँ को अपनी उपस्थिति से खुश रखने का प्रयत्न करते. कुछ समय बाद इनका यज्ञोपवीत संस्कार हुआ और तब से कुलदेवता रघुवीर की पूजा का काम इन्हें सौंपा गया. यह पूजा ये बहुत उत्साह और भक्ति से करते. रघुवीर की मूर्ति में उन्हें पिता का रूप दिखाई देता.

बंगाल की भूमि चैतन्य, चंडीदास और विद्यापति की चरणरज से पावन है. कृष्ण प्रेम की भावुकता में इन्होंने जो मधुर और सरस गीत गाये, उसके माधुर्य ने बंगाल के वायुमण्डल को चिरकाल के लिए सुवासित कर दिया. गदाधर का जीवन इसी बंगाल की भूमि पर बीता. उनके भावुक हृदय के अनुरूप वातावरण मिला, फिर वे संगीत की मधुरिमा से मदोन्मत्त क्यों न होते ! गदाधर का प्रेमी हृदय एक कलाकार की भावुकता से परिप्लावित था. कला का सौंदर्य चाहे प्रकृति में हो या मानव स्वभाव में, मधुर संगीत में हो या मूक भावनाओं में, उन्हें अपनी ओर आकृष्ट किये बिना नहीं रहता. कलापूर्ण सौंदर्य में उन्हें ईश्वर का रूप दिखाई देता.

एक बार शिवरात्रि का त्योहार कामरपुकुर में बड़ी धूमधाम से मनाया जा रहा था. रात्रि में भगवान शिव के जीवन पर आधारित एक नाटक होने वाला था. अचानक ठीक मौके पर नाटक का मुख्य अभिनेता (जिसे शिव बनना था) अस्वस्थ हो गया. अब शिव का अभिनय कौन करे ? लोगों को चिन्ता हुई. किसी ने गदाधर के विषय में सुझाव दिया. कुछ लोग गदाधर के घर गये. शिवरात्रि का व्रत किये हुए गदाधर उस समय शिव की पूजा में लीन थे. पूजा छोड़ कर वे अभिनय के लिए तैयार नहीं हुए. पर लोगों ने उन्हें बार-बार समझाया कि ऐसी घड़ी में उन्हें मदद करनी ही है. भगवान शिव का अभिनय शिव की पूजा ही है. वे अभिनय के साथ-साथ शिव की कल्पना में अपने को मग्न रखकर शिव से तादात्म्य स्थापित कर

सकते हैं. इन बातों का प्रभाव उन पर पड़ा और वे अभिनय के लिए तैयार हो गये. नाटक के चबूतरे पर उन्होंने गम्भीर मुद्रा में संयत कदम बढ़ाये. दर्शक उन्हें देखते ही रह गये. भस्म विभूषित शरीर पर रुद्राक्ष की माला, सिर पर जटा, ललाट पर चन्द्रमा, कानों में कुण्डल, कमर में मृगछाल. कामदेव की शोभा उस छवि के सामने मलिन थी. देखते ही देखते गदाधर शिव के ध्यान में खो गये. लगता था कि शिव के वेष में वे स्वयं शिव में विलीन हो गये. उनके सामने से चबूतरे के अन्य कलाकार, दर्शक, सारा संसार न जाने कहां लुप्त हो गया, वे भाव-विभोर होकर पृथ्वी पर गिर पड़े. उनकी बन्द आंखों से अनवरत हर्ष के आंसू प्रवाहित हो रहे थे. लोगों ने समझा यह उनकी अंतिम घड़ी है. चेतनता लौटाने की कोशिश हुई. किन्तु व्यर्थ. नाटक का कार्यक्रम रुक गया. गदाधर को घर पहुँचाया गया. दूसरे दिन प्रातः-काल उनकी चेतना लौटी. वे बहुत ही प्रसन्न और संतुष्ट दीख रहे थे. इसके बाद से ऐसे अवसरों पर अक्सर उन पर इस प्रकार का हर्षोन्माद छा जाता.

बालक गदाधर के अन्दर छिपी हुई महान् आत्मा को कामरपुकुर के कुछ लोग पहचान गये थे. श्रीनिवास नामक एक तथाकथित निम्न जाति का व्यक्ति गदाधर को बहुत प्यार करता था. एक दिन जब वह भगवान की पूजा के लिए माला बना रहा था, तभी गदाधर वहां घूमते हुए पहुँचे. श्रीनिवास बाजार से कपड़े में छिपा कर मिठाई ले आया. एकान्त मैदान में बहुत दूर पर एक पेड़ के नीचे वह गदाधर को बुला ले गया. गदाधर वृक्ष के नीचे बैठाये गये. इधर-उधर देख कर, सहमते हुए उसने गदाधर की पूजा की, माला पहनायी और पोटली की मिठाई खाने को दी. श्रीनिवास समझता था कि गदाधर ईश्वर के अवतार हैं, भविष्य के महामानव योगी हैं.

गदाधर अब किशोरावस्था की देहरी पर थे. उनका हृदय, नारी-हृदय था और शरीर कमनीय. हर उम्र की स्त्रियां उनकी ओर सहज रूप से आकृष्ट होतीं थीं. गदाधर की सरलता, भगवत्-भक्ति की पवित्रता तथा उन्मुक्त हृदय पर महिलाएँ मुग्ध थीं. उनसे उन्हें किसी भी प्रकार की झिझक नहीं मालूम होती. किशोर गदाधर में उन्हें कुछ अपनी सी चीज दिखाई देती. प्रायः दोपहर में गृह कार्य से मुक्त होकर वे चन्द्रमणि के आंगन में इकट्ठी होतीं और गदाधर से भगवत्-चर्चा सुनतीं.

गदाधर का गांव के स्कूल की पढ़ाई में जी नहीं रमता. प्रायः वे अन्य बच्चों की टोली बना कर गोपी-कृष्ण लीला का अभिनय करते. स्वयं कृष्णप्रेम में बेसुध राधा का अभिनय करते करते हर्षोन्माद में खो जाते. इनके बड़े भाई रामकुमार अब कलकत्ते में एक स्कूल चला रहे थे. उन्होंने गदाधर को कलकत्ते बुला कर आधुनिक शिक्षा देने का विचार किया. एक शुभ दिन को कामरपुकुर से गदाधर की विदा की बेला आ गयी. सत्रह वर्ष के अतीत की बहुत सी भावुक घड़ियां गदाधर के मानस-पटल पर एक के बाद एक उभरने लगीं. कामरपुकुर से वियोग की कल्पना

से हृदय द्रवित होने लगा. किन्तु कलकत्ते का भविष्य उन्हें पुकार रहा था. वे कब रुकने वाले थे.

कलकत्ते में रामकुमार ने उन्हें अपने स्कूल में ले लिया. इस स्कूल में ही उन्हें आधुनिकता का आभास मिला. किन्तु स्कूल की आधुनिक शिक्षा, उनके हृदय की पिपासा को शांत नहीं कर सकी. जीवन की गहराई में उन्हें कुछ दूसरी ज्योति दिखाई पड़ी. उसमें उन्होंने जीवन का एक ही लक्ष्य देखा, वह था भगवत्-भक्ति. एक दिन उन्होंने रामकुमार से कहा—'भैया, सिर्फ रोटी अर्जित करने वाली इस शिक्षा को लेकर मैं क्या करूँगा ? मैं तो वह ज्ञान चाहता हूँ जिससे हृदय सदा के लिए आलोकित हो जाये.' रामकुमार ने गदाधर को समझाने की बहुत कोशिश की. किन्तु वे सफल नहीं हो सके.

इसी समय वैश्य जाति की एक सम्पन्न विधवा महिला रानी रासमणि, ने दक्षिणेश्वर में काली मन्दिर की स्थापना की. इस मन्दिर में ऊंच-नीच के भेद-भाव से रहित प्रत्येक जाति और प्रत्येक धर्मावलम्वी की पहुँच थी. इस मन्दिर के निर्माण से जाति के नाम पर सामाजिक यातनाओं से पीड़ित जनता को संतोष और आनंद मिला. लेकिन उस समय के भारत में देवी कितनी भी पूजनीय क्यों न हों, यदि वे एक तथाकथित निम्न जाति के मन्दिर में निवास करें, तो फिर उनके लिए ब्राह्मण सेवक का मिलना कठिन था. और सेवक यदि जातिश्रेष्ठ ब्राह्मण न हुआ तो फिर पुजारी कैसे ? रामकुमार ने बहुत अंतर्द्वन्द्व के बाद इस मन्दिर के प्रथम पुजारी का आसन स्वीकार किया. उनके सामने पारिवारिक दरिद्रता की विवशता थी. किन्तु अल्पकाल में ही उनकी मृत्यु हो गयी. अब गदाधर को अपने भाई का रिक्तस्थान ग्रहण करना पड़ा.

इस प्रकार युवावस्था के प्रांगण में पग बढ़ाते हुए गदाधर, जो आगे चल कर श्री रामकृष्ण परमहंस के नाम से प्रसिद्ध हुए, दक्षिणेश्वर की देवी 'माँ काली' की आराधना में लीन हो गये. वे माँ काली के सेवक थे. काली माँ की प्रस्तर मूर्ति की सेवा और आराधना उषा काल से रात्रि तक वे इतनी तन्मयता और लगन से करते हुए भूल जाते कि यह मूर्ति, मूर्ति है, इसमें जीवन नहीं. वे उसमें जीवन ढूंढ़ते. कई रातें देवी के चिंतन में बैठे हुए बीत जातीं. किन्तु माँ काली से साक्षात्कार नहीं हुआ. संध्या समय गोधूलि की वेला में गंगा के तट पर वे भाव-विह्वल होकर चिल्लाया करते, 'आज दूसरा दिन भी व्यर्थ ही में नष्ट हो गया. माँ, मैंने तुझे नहीं देखा. इस छोटे जीवन का दूसरा दिन भी निकल गया पर मुझे सत्य का दर्शन नहीं हुआ. माँ, यदि तुम सत्य हो, यदि तुम कहीं भी हो, तो फिर मैं तुम्हें देख क्यों नहीं पाता ?'

एक बार इनकी वेदना असह्य हो उठी. भगवत् दर्शन के बिना इस जीवन का क्या मोल ? हतोत्साह होकर उन्होंने अपने निष्प्रयोजन जीवन का अंत करने

को सोचा. मां काली के मन्दिर में लटकती हुई तलवार पर इनकी नजर पड़ी. 'तलवार ! बस तुम्हीं इस जीवन का अन्त करने में सहायक हो सकती हो.' हृदय में यह विचार कौंधते ही 'मैंने एक उन्मत्त व्यक्ति के समान दौड़ कर तलवार पकड़ ली. तुरन्त ही एक अत्यन्त प्रखर एवं उज्वल प्रकाश-पुंज मेरे चारों ओर फैल गया. मैं उसमें डूबने सा लगा. मेरा पूर्व परिवेश, मां काली का मन्दिर, द्वार, खिड़की आदि सब कुछ, उस आलोक की लहर में खो गया. मैंने अपनी चेतना खो दी और गिर पड़ा. इसके बाद दिन और रात कैसे गुजरे, मुझे पता नहीं. मेरे सामने देवी मां उपस्थित थीं—मेरे चारों ओर खुशी का सागर उमड़ पड़ा था. बस इसी का मुझे ज्ञान था.'

इसके बाद रामकृष्ण भगवान के मद में मस्त रहने लगे. समय-समय पर उन्हें देवी मां काली से साक्षात्कार होता. उनकी आराधना और चिंतन बराबर बढ़ता ही गया. इस प्रकार देवी से तादात्म्य और हर्षोन्माद की स्थिति भी पराकाष्ठा पर पहुंच गयी. मन्दिर में पूजा करते समय पाषाण मूर्ति के स्थान पर मां काली मुस्कराती हुई और आशीष देती हुई खड़ी हो जातीं. पूजा करते हुए वे अपने हाथों पर भी मां काली की श्वास वायु की उष्णता अनुभव करते. मन्दिर के ऊपर जाते नूपुर की मधुर ध्वनि सुनाई पड़ती. अब उनमें और मां देवी में कोई अन्तर नहीं रह गया था. मां के चिन्तन में वे इतने रत रहने लगे कि उनकी नजर में हर स्त्री मातृ-तुल्य हो गयी. 'यहां तक कि स्वप्न में भी मैंने किसी स्त्री को मां के अतिरिक्त और किसी नजर से नहीं देखा.'

मां काली के प्रथम साक्षात्कार का इतना गहरा प्रभाव रामकृष्ण के शरीर पर पड़ा कि शरीर अस्वस्थ रहने लगा. अपनी मां और संबंधियों के आग्रह पर वे जलवायु परिवर्तन के विचार से कामरपुकुर गये. माता ने पुत्र को देखा. गदाधर का सहज प्रसन्नता से दमकता हुआ चेहरा जाने कहां लुप्त हो गया था. गांव के प्राकृतिक दृश्यों, मित्रों के संसर्ग में, या वृद्ध माँ के मिलन में उन्हें अब कोई दिलचस्पी नहीं थी. उनका शरीर दुर्बल और मुखमण्डल उदास एवं प्रगाढ़ चिन्तन में रत था. समय-समय पर वे आन्तरिक पीड़ा से कराहने लगते, आंखों से अविरल अश्रुधारा बहने लगती और वे मां···मां···चिल्लाने लगते.

चन्द्रमणि पुत्र के इस रूप से परिचित नहीं थीं. कलकत्ते के प्रवास में उनका लाड़ला बेटा कहीं खो गया था और उनके सामने यह कोई दूसरा ही गदाधर उपस्थित था. पुत्र की दशा देखकर चन्द्रमणि का मन विचलित होने लगा. गदाधर की इस नयी बीमारी का कोई कारण नजर नहीं आता. उन्होंने इसके उपचार के लिए जोग-जाप, पूजा-पाठ, डाक्टर-वैद्य कुछ भी उठा नहीं रखा. किन्तु रामकृष्ण पर इनका कोई प्रभाव नहीं पड़ा. वे प्रायः श्मशान के एकान्त में बैठ कर दिन-दिन भर चिन्तन किया करते.

सांसारिकता की ओर आकर्षित करने के लिए लोगों ने उन्हें विवाह के

बंधन में बांधना चाहा. मां काली की इच्छा समझ कर रामकृष्ण ने इस पुनीत कार्य के लिए खुशी से अपनी सम्मति दे दी. किन्तु ऐसे विरागी व्यक्ति के लिए कोई भी अपनी बेटी देने को तैयार नहीं होता था. परिवार के लोग वधू ढूंढ़ते-ढूंढ़ते निराश हो गये. अंत में एक दिन रामकृष्ण ने अर्धचेतनावस्था में कहा, 'यहां वहां कोशिश करना व्यर्थ है. तुम लोग 'जयरामवटी' नामक गांव में जाओ, वहां रामचन्द्र मुखोपाध्याय के घर में मेरे लिए वधू सुरक्षित है."

उस गांव के उक्त व्यक्ति के पास एक आदमी को भेजा गया. रामकृष्ण की वाणी सत्य सिद्ध हुई. रामचन्द्र मुखोपाध्याय को वास्तव में पांच वर्ष की कन्या थी और उन्होंने शीघ्र ही विवाह का प्रस्ताव स्वीकार कर लिया. लड़की की अल्प आयु के कारण चन्द्रमणि को इस सम्बंध से कुछ हिचकिचाहट मालूम हुई. किन्तु कोई दूसरा रास्ता नहीं था. अतः उन्होंने यही शादी पक्की कर ली. शुभ मुहूर्त में रामकृष्ण का शारदा देवी से पाणिग्रहण हो गया. शादी के करीब डेढ़ साल बाद वे फिर दक्षिणेश्वर लौट आये.

दक्षिणेश्वर लौट कर अपनी मां, पत्नी तथा अन्य सम्बंधियों को भूल कर वे पूर्ववत् काली मां की आराधना-उपासना में व्यस्त हो गये. सत्य की खोज में दिन, सप्ताह और महीने बीतने लगे. एक दिन रामकृष्ण ने देखा, मन्दिर में एक तपस्विनी महिला उपस्थित हुई, वल्कल वस्त्र, सघन लम्बे खुले केश, अवस्था प्रौढ़, लावण्यमय मुखमण्डल पर ज्ञान की गरिमा. उनके हाथ में एक छोटी-सी पोटली थी. जान पड़ा, उसमें एक दो कपड़े और कुछ पुस्तकें थी. रामकृष्ण की आंखें आश्चर्यचकित थीं. आगन्तुका ने रामकृष्ण को देखा. देखते ही वे भावविह्वल होकर रो पड़ीं. 'मेरे वत्स, तुम यहां हो. कितने दिनों से मैं तुझे ढूंढ़ रही थी. आह ! अब मैंने तुम्हें पाया है.' आंसुओं से गीली आवाज उनके होठों से बह गयी.

वह एक बंगाली ब्राह्मण परिवार की विष्णुभक्त महिला थीं. धर्म और दर्शन का उन्हें गहरा अध्ययन था. उन्हें लोग भैरवी ब्राह्मणी के नाम से जानते थे. रामकृष्ण के पास आते ही उन्होंने रामकृष्ण की स्थिति पहचान ली. उन्हें लगा कि भगवान ने अपना अमर संदेश रामकृष्ण तक पहुँचाने के लिए ही उन्हें यहां तक भेजा है. रामकृष्ण को देखते ही उनके हृदय में वात्सल्य की धारा उमड़ आयी. उन्होंने शीघ्र ही रामकृष्ण से मां-बेटे का पावन सम्बंध स्थापित कर लिया. रामकृष्ण एक बालक की सहज सरलता और भोलेपन से उस भैरवी ब्राह्मणी के सम्मुख अपनी आराधना की सारी कठिनाइयां और जिज्ञासाएं रखते गये. भैरवी ब्राह्मणी ने रामकृष्ण के प्रेम और भक्ति को धीरे-धीरे दार्शनिक ज्ञान का आधार दिया. इसके साथ ही उन्होंने रामकृष्ण को तांत्रिक साधना का भी मार्ग दिखाया.

रामकृष्ण प्रेम और भक्ति के ही रंग में रंगे रहे. भैरवी ब्राह्मणी को वे मां और गुरु के रूप में देखते थे. भैरवी ब्राह्मणी का सारा ज्ञान भी उन्होंने प्रेम

मार्ग से ही सीखा. प्रेम मार्ग का सबसे पहला पग है किसी एक देवता को अपनी आराधना और चिंतन का केन्द्र बनाना. रामकृष्ण मां काली को इस रूप में पहले ही अपना चुके थे. अतः वे बहुत दिनों तक उन्हीं के प्रेम और भक्ति में लीन रहे. धीरे-धीरे उनकी साधना ने इतना बल पकड़ा कि वे मां काली के सजीव शरीर को देख सकते थे, स्पर्श कर सकते थे, और उनसे वार्तालाप कर सकते थे. पीछे इन्हें ज्ञान आया कि संसार की हर चीज में भगवान के हर रूप का निवास है. सिर्फ उन्हें देखने के लिए प्रेम की आंखें चाहिए. इस प्रकार बाद में रामकृष्ण को देवताओं के सभी रूप मा काली से ही आविर्भूत होते दिखाई देने लगे. साथ ही साथ उनकी आंखों के सामने भगवान के अनेक स्वरूप उपस्थित रहने लगे. भगवान के इन विभिन्न रूपों के दर्शन के लिए वे विभिन्न प्रकार की प्रेमपूर्ण भावनाओं में डूबते रहे. अब भगवान से उनके कई प्रकार के सम्बंध स्थापित हो गये; जैसे स्वामी-सेवक का, माँ-बेटे का, प्रेमी-प्रेमिका का, और मित्र-मित्र का. उनका जीवन मां काली के अतिरिक्त भगवान की अन्य आकृतियों से भी परिपूर्ण हो गया. उसमें भौतिकता का लेशमात्र भी स्थान नहीं था. उनकी इस प्रेम और भक्तिमार्गी आराधना तथा तांत्रिक साधना की चर्चा दूर-दूर तक होने लगी.

अभी भैरवी ब्राह्मणी की शिक्षा-दीक्षा चल ही रही थी कि एक दिन एक निर्वसन भ्रमणशील योगी दक्षिणेश्वर पहुंचा. लम्बे वज्रतुल्य शरीर में मानो फौलाद का रक्त, देदीप्यमान स्वरूप, दारुण एवं दृढ़ प्रकृतिक जान पड़ता था. इस लौह देह के साथ व्याधि का कभी कोई सम्बंध नहीं रहा होगा. इन्हें लोग तोतापुरी कहते थे. इन्होंने नागा जाति के किसी योगी से दीक्षा ली थी. बहुत कम उम्र में ही भ्रमण-जीवन आरम्भ करने के पहले वे पंजाब में सात सौ भिक्षुओं के मठ के प्रधान थे. इस मठ के सभी साधक, चतुर कुम्भकार के समान अपने शरीर और आत्मा को योगाग्नि में जला कर इतना कठोर बना लेते थे कि उस पर सांसारिक उष्ण-शीत या सुख-दुख का कोई असर नहीं पड़ता था. ऐसे मठ के नेता तोतापुरी ने वेदांत के आधार पर सत्य के प्रत्यक्षीकरण में सिद्धि प्राप्त कर ली थी. अद्वैत दर्शन के अनुसार परमब्रह्म ही चिर सत्य है. योग के द्वारा आत्मा परम ब्रह्म में अंतर्भूत हो सकती है. किन्तु माया ? यह असत्य और अस्थायी है. इसका आधार मान कर चिर सत्य परमेश्वर तक पहुंचा जा सकता है, इस पर उन्हें स्वप्न में भी विश्वास नहीं था.

दक्षिणेश्वर में काली मंदिर की ओर जाते हुए तोतापुरी ने देखा, मंदिर की सीढ़ी पर बैठा हुआ एक युवक पुजारी किसी अलौकिक कल्पना में खोया हुआ था. तोतापुरी उसे देखते ही चौंक पड़े. ऐसी दीप्ति! दीप्ति नहीं, एक चुम्बक जो बर-बस उन्हें खींच रहा था. तोतापुरी के पग अनायास रामकृष्ण की ओर बढ़ गये. वे सदा भ्रमणशील थे. कहीं भी तीन दिनों से अधिक नहीं ठहरते थे. किन्तु प्रेम और भक्तिरस में डूबी हुई रामकृष्ण की पारलौकिक प्रतिमा को देख कर वे दक्षिणेश्वर

शीघ्र नहीं छोड़ सके. रामकृष्ण के साथ बात ही बात में उनके ग्यारह माह बीत गये.

रामकृष्ण के साकार देव की उपासना का माध्यम था प्रेम, और तोतापुरी के निराकार ब्रह्म की साधना का मार्ग था योग. नितान्त विपरीत पथ पर दो अलौकिक ज्योति पुंज. किन्तु दोनों के एक लक्ष्य. शनैः शनैः दोनों पथ संकुचित होते गये. साधना के क्षेत्र में प्रतिकूल विचार वाले दोनों संत पास आ गये. दोनों ने अपने-अपने ज्ञान से एक दूसरे को प्रभावित किया. निराकार ब्रह्म के चमत्कार से अनभिज्ञ रामकृष्ण ऐसी कल्पना नहीं कर पा रहे थे कि बिना सगुण का सहारा लिए भगवान से तादात्म्य स्थापित हो सकता है. तोतापुरी ने कहा—'मेरे पुत्र, सत्य का बहुत लम्बा रास्ता तुमने पार कर लिया है. यदि तुम्हारी इच्छा हो तो इसके बाद का मार्ग मैं वेदान्त के द्वारा बताऊँ.' रामकृष्ण ने कोई उत्तर नहीं दिया. वे मां काली के सामने एक भोले बालक के समान खड़े होकर इस प्रकार की आराधना के लिए आज्ञा मांगने लगे. आज्ञा मिलने पर उन्होंने तोतापुरी से अत्यंत विश्वास और विनम्रता-पूर्वक अद्वैत वेदान्त की दीक्षा ली. दीक्षा संस्कार के प्रथम चरण में इन्हें अपनी इन्द्रियों को वश में करना, किसी भी देवी-देवता की पूजा-अर्चना के बाह्याडम्बर से मुक्ति पाना तथा अपने अहं को भी भूल जाना था. इन सब पर तो इन्होंने तुरंत ही विजय प्राप्त कर ली. किन्तु जब ये तोतापुरी की निर्देशित मुद्रा में आसन लगा कर ध्यानमग्न होते तो बराबर उनकी बन्द आंखों के सामने मां काली का रूप उभर आता. हतोत्साह होकर उन्होंने तोतापुरी से कहा कि यह सब व्यर्थ है. वे अपनी आत्मा को प्रतिबन्धरहित स्थिति से ऊपर उठा ब्रह्म में आत्मसात नहीं कर सकते.

ऐसा सुनते ही तोतापुरी ने रामकृष्ण की ओर आग्नेय दृष्टि से देखते हुए तीक्ष्ण वाणी में कहा—'क्या ? यह तुमने कहा ? तुम ऐसा नहीं कह सकते ? तुम्हें अवश्य करना है.' ऐसा कह कर उन्होंने शीशे का एक टुकड़ा रामकृष्ण की आँखों के सामने रखा और उसके एक बिन्दु पर ध्यान केन्द्रित करने को कहा. रामकृष्ण के शब्दों में— तब मैं अपनी सम्पूर्ण शक्ति से ध्यान लगाने लगा. जैसे ही देवी मां की भव्य आकृति प्रस्तुत हुई, मैंने अपनी तलवार के समान अपने विवेक का प्रयोग किया. मैंने उसे दो टुकड़ों में खंडित कर दिया. अंतिम व्यवधान टूट गया···मैं समाधि में खो गया.' समाधि सीमा पर पहुंच गयी. आत्मा परम ब्रह्म में आत्मसात हो गयी. चारों ओर शून्य ही शून्य—न देव न पुजारी, न उपास्य न उपासक. इस निर्विकल्प समाधि की ऐसी स्थिति है जिसकी अभिव्यक्ति के न भाव है न भाषा. इस स्थिति तक पहुंचने में तोतापुरी ने अपने जीवन के चालीस कठिन वर्ष व्यतीत किये. किन्तु रामकृष्ण ने एक ही दिन में इस समाधि की कठिनाइयों पर विजय प्राप्त कर परब्रह्म में अपने को आत्मसात कर लिया. इसके बाद से रामकृष्ण अनुभव करने लगे कि देवी काली ही परम सत्य, परब्रह्म है. वे व्यष्टि भी हैं, समष्टि भी हैं. वे एक और अनेक से परे शून्य हैं. एक दिन देवी मां को उन्होंने कहते हुए सुना—'मैं जगत-

माता हूँ. मैं वेदान्त का परब्रह्म हूं. मैं उपनिषद की आत्मा हूं. यह मैं ही ब्रह्म हूँ जिसने संसार में भिन्नता का निर्माण किया है. मेरे पास भक्ति के द्वारा, ज्ञान के द्वारा और कर्म के द्वारा आया जा सकता है. तुम यदि पूर्णता प्राप्त करना चाहते हो तो मेरे पास आओ. जिन लोगों ने समाधि में पूर्णता प्राप्त की है वह भी मेरी इच्छा से.'

वेदान्त के ज्ञान से परिपूर्ण एवं तीक्ष्ण बुद्धिसम्पन्न तोतापुरी के मन में यह बात नहीं जम रही थी कि ईश्वर तक प्रेममार्ग से भी पहुंचा जा सकता है. रामकृष्ण की पूजा-अर्चना तथा भक्तिपूर्ण नृत्यों को वे उपहास की दृष्टि से देखते थे. भावपूर्ण स्थिति में करतल ध्वनि के साथ भगवान का नाम जपते हुए रामकृष्ण को देखकर वे व्यंग्यात्मक मुस्कान के साथ कहते—'क्या तुम भीख मांग रहे हो ?' परन्तु और उपेक्षा करने पर भी रामकृष्ण के श्लोकों के सुरीले स्वर और मधुरनाद ने तोतापुरी को मुग्ध कर लिया. तोतापुरी की आंखों में स्नेह के आंसू उमड़ पड़े. रामकृष्ण बालोचित सरलता और निश्छल उन्मुक्त हंसी के साथ बोले—'देखिए, देखिए, आप भी माया की अदम्य शक्ति से पराजित हो रहे हैं.' तोतापुरी के पास कोई उत्तर न था. उनके हृदय में माया अपना प्रभाव जमा रही थी. उन्होंने अनुभव किया कि माया (शक्ति) और ब्रह्म सब एक हैं. जीवन के हर क्षेत्र में उन्हें माया का प्रभाव दिखाई देने लगा. उन्होंने अपने शिष्य, जो अब गुरु भी थे, से विदा मांगी और पुनः भ्रमण का मार्ग अपनाया.

इस प्रकार रामकृष्ण तोतापुरी के समागम से ज्ञान के क्षेत्र में भी पूर्णता प्राप्त कर गये. एक-अनेक, निराकार-साकार सब कुछ स्पष्ट हो गया. उन्होने संसार की हर वस्तु में ईश्वर का एक ही रूप देखा. उन्होंने प्रत्येक रूप की सराहना की. उन्हें यह भास हुआ कि सभी धर्मों के लक्ष्य एक हैं, किन्तु मार्ग अलग-अलग. अब वे धर्म के भीतर प्रवेश कर, उसमें से प्रत्येक के अपेक्षित मार्ग का अनुसरण कर उसके विशिष्ट देव को देखना चाहते थे.

इस क्षेत्र में इस्लाम उनका पहला मार्ग था. काली मन्दिर से होकर कितने ही मुसलमान फकीर रोज ही आया-जाया करते थे. अन्य जातियों के साथ-साथ मुसलमान मुसाफिरों के लिए भी रानी रासमणि ने मन्दिर के निचले भाग में ठहरने की जगह बनवा छोड़ी थी. एक दिन रामकृष्ण ने जमीन पर लेटे हुए, भगवान के भजन में लीन एक मुसलमान को देखा. उसका मुखमण्डल तृप्ति-जनित हर्ष से आलोकित था, मानो भगवान से साक्षात्कार का आनन्द वह ले रहा हो. उसका नाम गोविन्द राय था. रामकृष्ण ने उससे इस्लाम धर्म की दीक्षा ली. काली के पुजारी रामकृष्ण बहुत दिनों तक अपनी देवी मां को पूर्णतः भूल गये. उन्होंने कभी मां काली की पूजा-अर्चना नहीं की और न उनके मस्तिष्क में कभी मां काली की स्मृति ही जागी. वे मन्दिर के बाहर, मुसलमानी लिबास पहन कर अल्लाह मियां का नाम जपने

लगे. हिन्दू शास्त्रानुसार वर्जित भोजन गो-मांस को भी मुसलमानी खाने में स्वीकार करने के लिए वे तैयार थे; इसे देख कर उनके शिष्यगण तथा अन्य शुभेच्छु बहुत ही घबरा गये और ऐसा करने से उन्हें रोका. परन्तु रामकृष्ण पर इसका कोई असर नहीं पड़ा. लाचार होकर उन लोगों ने गुप्त रीति से एक मुसलमान के निरीक्षण में ब्राह्मण के द्वारा रामकृष्ण का भोजन बनवाना आरम्भ किया. इस प्रकार उन लोगों ने रामकृष्ण के भोजन की अशुद्धि से बचाया. किन्तु रामकृष्ण ने बहुत ही सुगमता से अपने तन-मन को इस्लाम के हवाले कर दिया. इस नैसर्गिक यात्रा में एक दिन उनके सामने सफेद श्मश्रुपूर्ण गम्भीर आकृति का एक दीप्तिमान स्वरूप उपस्थित हुआ. उन्हे जान पड़ा जैसे वे उसके समीर बढ़ते गये और पास पहुंच कर उसी में अंतर्निहित हो गये. इस नैसर्गिक अनुभव के बाद वे हर्षातिरेक से विभोर हो गये. उन्हें भगवान का साक्षात्कार हुआ था, मुसलमानों के अल्लाह का, जिसमें परब्रह्म के सारे गुण विद्यमान थे.

इस घटना के करीब आठ साल बाद सन् १८७४ में रामकृष्ण ने ईसाई धर्म की साधना की. कलकत्ता के एक हिन्दू सज्जन ने उन्हें दक्षिणेश्वर में ही बाइबिल पढ़ कर सुनायी. पहली बार रामकृष्ण ने ईसा मसीह के विषय में जाना ईसा मसीह की जीवनगाथा के रस में इनका मन-प्राण डूब गया. एक दिन वे किसी कार्यवश एक समृद्धिशाली व्यक्ति के सुसज्जित कमरे में बैठे थे. सामने की दीवार पर कुमारी मेरी और शिशु मसीह का चित्र लगा हुआ था. रामकृष्ण की तृषित दृष्टि उस पर पड़ते ही वह चित्र मानो सजीव हो उठा. रामकृष्ण को लगा, जैसे ईसा मसीह की पावन आकृति उनके पास आकर उनके अन्तस में समा गयी. रामकृष्ण की नस-नस में ईसा का तेज व्याप्त हो गया. इसका प्रभाव इस्लाम के अनुभव से भी अधिक गहरा था.

इस अनुपम तेज ने रामकृष्ण की आत्मा को आच्छादित कर लिया. जीवन के अन्य बन्धन टूटने लगे. हिन्दू धर्म के विचार जाने कहां लुप्त हो गये. रामकृष्ण का हृदय भय से कम्पित हो उठा. वे विकल हो कर चीत्कार उठे—'मां काली, तुम यह क्या कर रही हो ? मेरी सहायता करो.' किन्तु व्यर्थ. रामकृष्ण की इस नवीन अनुभूति ने उनके जीवन के पूर्वानुभवों को छिपा लिया था. अब वहां ईसा-मसीह के अतिरिक्त किसी और का स्थान नहीं था. बहुत दिनों तक काली मन्दिर में जाने की उनकी इच्छा नहीं हुई. वे बराबर ईसाई धर्म और ईसा मसीह के ही विचार में मग्न रहे. एक दिन दक्षिणेश्वर के वृक्ष-वाटिका में जब वे टहल रहे थे, तभी देखा: बड़ी-बड़ी आंखों वाला, गौर वर्ण का बहुत ही सुन्दर व्यक्ति शान्त मुद्रा में उनकी ओर बढ़ा आ रहा है. रामकृष्ण भी उस अजनबी की ओर आकृष्ट होने लगे. तभी उनके अन्तस् में यह आवाज ध्वनित हुई: 'ईसा मसीह को देखो, जिन्होंने संसार को पाप से मुक्त करने के लिए अपने हृदय का रक्त बहाया, जिन्होंने मानवता के प्रेम के

लिए अनेक कष्ट सहे. यह वही सिद्ध योगी भगवान से नितान्त एकाकार हो गया है. ये ईसा मसीह हैं—प्रेम के अवतार······' फिर ईसा मसीह ने दक्षिणेश्वर के पुजारी को हृदय से लगा लिया और उन्हीं की काया में छिप गये. रामकृष्ण पर पहले की तरह एक हर्षोन्माद छा गया. इस बार फिर उन्होंने परब्रह्म का साक्षात्कार किया. उन्हें विश्वास हो गया कि ईसा मसीह भी ईश्वर के अवतार थे. भगवान बुद्ध और श्रीकृष्ण की शृंखला में ईसा मसीह भी आवद्ध हो गये.

रामकृष्ण ने अपने अनुयायियों से एक वार कहा—'मैंने हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, सभी धर्मों का अनुसरण किया. मैंने हिन्दुओं के अनेक सम्प्रदायों के विभिन्न मार्गों से भी अन्दर जाकर देखा. मैंने पाया कि वह एक ही ईश्वर है जिसकी ओर सभी अपने-अपने कदम भिन्न-भिन्न मार्गों पर बढ़ाये जा रहे हैं······जब भी मेरी दृष्टि पड़ती है, मैं देखता हूँ कि धर्म के नाम पर हिन्दू, मुसलमान, ब्रह्मसमाज या वैष्णव तथा और सभी झगड़े मोल ले लेते हैं, मगर वे यह नहीं समझते कि जो कृष्ण कहलाता है, वही शिव भी है, वही पुरातन शक्ति है, ईसा मसीह और अल्लाह भी वही है. हजारों नामों का वही एक राम है. सरोवर के अनेक घाट हैं. एक से हिन्दू कलश में पानी निकालते हैं और उसे 'जल' कहते हैं. दूसरे से मुसलमान चमड़े के थैले में पानी निकालते हैं और उसे 'पानी' कहते हैं, तीसरे से ईसाई, और इसे वे 'वाटर' कहते हैं. क्या हम लोग सोच सकते हैं कि 'वाटर' या 'पानी' जल नहीं है ? कैसा हास्यास्पद! अनेक नामों के भीतर एक ही तत्व, और सभी उसी तत्व को ढूंढ़ रहे हैं. प्रत्येक मानव को अपना अपेक्षित मार्ग अनुसरण कर देना चाहिए. यदि वह व्यग्रता और सच्चाई से परमेश्वर को समझना चाहेगा, तभी उसे शान्ति मिलेगी. उसे अवश्य ही परमेश्वर का साक्षात्कार होगा.'

इन विभिन्न धर्मों और सम्प्रदायों में भगवान की एक ही अलौकिक छवि, एक ही अदम्य शक्ति को निहार कर रामकृष्ण के तृषित हृदय को कुछ शान्ति मिली. किन्तु कठिन प्रयोगों और अभ्यासों के कारण उनका शरीर गिरने लगा. आश्वस्त होने के लिए उन्हें विश्राम की आवश्यकता हुई. फिर छह सात महीने के लिए वे अपनी जन्मभूमि कामरपुकुर चले गये.

हृदय से साधु, मस्तिष्क से योगी रामकृष्ण अब कामरपुकुर में व्यवहार से निरे बालक बन गये. उनके वैरागी होने की खबर से सीधे-सादे ग्रामवासियों के हृदय क्षुब्ध थे. परन्तु जब रामकृष्ण में उन्होंने पुनः अपने गदाधर को देखा तो फूले नहीं समाये. रामकृष्ण की पत्नी शारदा देवी अब अपनी पन्द्रहवीं वर्षगांठ की तैयारी कर रही थीं. रामकृष्ण को कामरपुकुर आया हुआ जान कर उनके मैके वालों ने उन्हें वहाँ भेज दिया. शारदा देवी का सरल-स्वच्छ हृदय अपनी अवस्था से अधिक परिपक्व था. पति को देखते ही उनके महान् उद्देश्य को समझते देर नहीं लगी. इस अद्भुत उद्देश्य की प्राप्ति के लिए उन्हें आधार-स्तम्भ बनना है, इसके लिए भी वे

दृढ़निश्चयी थीं. दाम्पत्य प्रेम की वासनाओं से परे, पति-प्यार का अनुपम रूप उनके प्राणों को शीतल करने लगा. किन्तु विवाहित होने के नाते रामकृष्ण यह अच्छी तरह समझते थे कि उनकी पत्नी का उन पर पूर्ण अधिकार है. वह जैसा चाहें, वैसा उन्हें बना सकती हैं. उनके मन में एक झिझक थी. वे झिझक से शीघ्र मुक्ति पाना चाहते थे. इसलिए पत्नी के सम्मुख उन्होंने अपने हृदय को एक दिन स्पष्ट रूप से खोल कर रख दिया. उनकी वाणी में कातरता थी, 'काली माँ ने मुझे बताया है कि वे प्रत्येक स्त्री में विद्यमान हैं. इसलिए मैं प्रत्येक स्त्री को माता के रूप में देखता हूँ. तुम्हारे प्रति भी मेरे यही विचार हैं. किन्तु तुम्हारे साथ मेरा पाणिग्रहण हुआ है, अतः यदि तुम मुझे संसार में खींचना चाहो, तो मैं प्रस्तुत हूं.'

शारदा देवी को इन बातों से आश्चर्य नहीं हुआ. पति ने जिस आशा से अपना हृदय उनके सामने खोला था, यह सब वे पहले ही समझ चुकी थीं. पति के इस *विश्वासपूर्ण व्यवहार ने पत्नी के हृदय को जीत लिया. वे पति की चिर संगिनी हैं.* उन्हें अपने हर त्याग और तपस्या की ज्योति से पति के अभिलषित मार्ग को प्रकाशपूर्ण बनाना है इन्हीं भावनाओं में खोई हुई किशोरी पत्नी ने बड़े ही मधुर किन्तु आत्मविश्वासपूर्ण स्वर मे उत्तर दिया—'नहीं मैं तुम्हें संसार में क्यों खींचने चली?···मैं तो तुम्हारे चरणों के समीप रह कर तुम्हारी सेवा करना चाहती हूँ. तुमसे सीखना चाहती हूँ.'

शारदा देवी के इस उत्तर से रामकृष्ण को अत्यन्त हर्ष और संतोष हुआ. रामकृष्ण की दृष्टि में पति-पत्नी के प्रेम की नींव शारीरिक संबंध पर आधारित नहीं थी. वैवाहिक प्रेम की सार्थकता तो दो आत्माओं के मिलन से थी. इस प्रेम में न मिलन की उत्तेजना थी, न विरह का उच्छ्वास. यहां तो पूर्ण प्रशान्त आनन्द था. ऐसा आनन्द तो बस भगवत्दर्शन से ही संभव था. अब रामकृष्ण और शारदा देवी दोनों ही प्रेम के इस शाश्वत् रूप को समझ गये थे. जब तक रामकृष्ण इस बार कामरपुकुर रहे, तब तक बड़ी लगन शारदा देवी को गृह-प्रबन्ध, पढ़ाई-लिखाई तथा धार्मिक ज्ञान की शिक्षा देते रहे. सन् १८६७ के अन्त में वे दक्षिणेश्वर लौट आये.

रामकृष्ण ने नये वर्ष के आरम्भ में तीर्थ-यात्रा आरम्भ की. इनके साथ माथुर बाबू भी थे. माथुर बाबू रानी रासमणि के दामाद होने के नाते काली मन्दिर के संचालक थे. रामकृष्ण से इनका बहुत प्रेम भाव था तथा ये मित्र तुल्य भी थे. शिवधाम, वाराणसी, गंगा-यमुना का संगम प्रयाग, गोपी-कृष्ण के नृत्य-संगीत से मुखरित वृन्दावन में रामकृष्ण का मन बहुत रमा. लेकिन इस यात्रा का सबसे प्रभावोत्पादक अनुभव बिहार के देवघर नामक शहर में हुआ. वहां के भूखे-नंगे संथाल निवासी मृत्यु का मुंह देख रहे थे. महामारी का प्रकोप था. रामकृष्ण ने माथुर बाबू से कहा कि वे इन दुर्भाग्य के मारे लोगों के भोजन का प्रबन्ध करें.

परन्तु माथुर वावू ने इस पर ध्यान नहीं दिया. उन्होंने साफ कह दिया कि सारी दुनिया की विपत्ति दूर करने का सामर्थ्य उनमें नहीं है. रामकृष्ण बहुत दुखी हुए और उन भूखे प्राणियों के बीच बैठ कर रोने लगे. उन्होंने करुण स्वर में कहा कि अब वे इस स्थान को नहीं छोड़ेंगे. इन क्षुधा-पीड़ित भाइयों के भाग्य के साथ उनके भाग्य का भी निर्णय भगवान करेंगे. अन्त में माथुर वावू को झुकना पड़ा. रामकृष्ण पहले से ही यह मानते थे कि संसार की हर चीज में भगवान का निवास है. अब उन्हें इस पर विश्वास हो गया कि दीन-दुखियों की सेवा भगवान की सबसे बड़ी पूजा है.

उधर शारदा देवी अपने पीहर में अभावों के दिन काट रही थीं. अतः कष्ट और असुविधाएँ उनकी संगिनी थीं. फिर भी अत्यन्त विनीत और चिन्तनशील हृदय में सम्पूर्ण जीवमात्र के लिए निःस्वार्थ सेवा की भावना लिये वे दया की मूर्ति बन गयीं थीं. मां काली के प्रेम में उन्मत्त रामकृष्ण की कठिन तपस्या की बात जयरामवटी में अत्यन्त विकृत रूप में फैली हुई थी. शारदा देवी के अनेक संबंधी या गांव के लोग अक्सर रामकृष्ण की वैरागी प्रकृति एवं उनके पागलपन-पूर्ण व्यवहार की चर्चा करते. शारदा देवी के कानों में भी यह बात पहुंच गयी थी. किन्तु उन्हें पति पर अटूट भरोसा था. उन्होंने दक्षिणेश्वर जाकर पति की सेवा करने की इच्छा प्रकट की.

शारदा देवी के पिता को जब यह बात मालूम हुई तो उन्होंने बेटी को दक्षिणेश्वर पहुंचाने का प्रबन्ध करना आरम्भ कर दिया. उन दिनों जयरामवटी से दक्षिणेश्वर पहुंचने के लिये रेलगाड़ी की सुविधा नहीं थी. भले घर की स्त्रियों के लिए पालकी की सवारी थी. गरीबी के कारण शारदा देवी के लिए पालकी की सवारी ठीक नहीं हो सकी. अतः वे पिता के साथ पैदल ही दक्षिणेश्वर चल पड़ीं. आधा रास्ता पार करने पर उनकी तबीयत खराब हो गयी. ज्वर की हालत में यात्रा रोकनी पड़ी. वे लोग एक सराय में रुक गये. रात्रि में ज्वर की अचेतन अवस्था में शारदा देवी ने एक स्वप्न देखा : श्याम वर्ण की एक युवती उनके पास आकर बैठ गयी. उसने उनके शरीर को अपने कोमल एवं शीतल हाथों से स्पर्श किया और उसकी सारी ज्वाला समेट ली. शारदा ने पूछा—'तुम कहां से आयी हो ?' उत्तर मिला—'दक्षिणेश्वर से'. 'दक्षिणेश्वर से ?' शारदा देवी ने आश्चर्य से कहा—'मैं भी उनसे मिलने, उनकी सेवा करने दक्षिणेश्वर जाना चाहती हूं. मगर इस ज्वर ने सब कुछ बर्बाद कर दिया.' इस पर उस युवती ने कहा—'तुम स्वस्थ होकर दक्षिणेश्वर जाओगी और उनसे मिलोगी. मैंने तुम्हारे लिए उन्हें वहां रख छोड़ा है.' प्रातः काल होने पर शारदा देवी ने पाया कि उनका ज्वर उतर चुका था. पिता ने इस बार पालकी की सवारी ठीक कर दी और वे इस प्रकार पति के द्वार पर दक्षिणेश्वर पहुंची.

फागुन मास की रात्रि का प्रथम प्रहर. अगरू-धूम से सुवासित वसंती हवा.

शान्त और स्वच्छ वातावरण. पालकी मंदिर के पास रख दी गयी. आहट पा कर मन्दिर के बाहरी कक्ष से एक भिक्षु पालकी के पास आता है और शारदा देवी के पिता से दो-चार शब्द-विनिमय के बाद फिर कक्ष के अन्दर चला जाता है. शारदा देवी की आंखों में पति-दर्शन की आकुल उत्कण्ठा है, किन्तु हृदय में आशंका की एक हल्की कालिमा छायी हुई है. पता नहीं विरागी पति उन्हें अपनी सेवा के लिए स्वीकार करें या नहीं. तभी वे देखती हैं, मन्दिर के सहन से जीने के द्वारा उतरती हुई दो मानव आकृतियां. एक के हाथ में दीपक है, दीपक के आलोक में वे दूसरे व्यक्ति को पहचान लेती हैं. ये उनके पति हैं. हां, वही सरल-शान्त मुद्रा. कटि से बंधी हुई घुटने तक ऊंची धोती, जिसका आधा भाग ऊपर की ओर जाकर कन्धे से लटकता हुआ उनके वक्षस्थल को ढक रहा है. पति डोली के पास आते हैं. श्वसुर का अभिवादन कर पत्नी की ओर देखते हैं. किन्तु यह क्या ?

उनकी शारदा पहचान में नहीं आ रही, जैसे तुषारापात से कुंभलाया हुआ गुलाब का नूतन फूल. ज्वर की भीषणता ने शारदा देवी को कृशगात बना दिया था. मुखमंडल रक्त-विहीन. आंखों में पीड़ा और प्रसन्नता की धूप-छांह. थकान भरे शरीर पर धूल-धूसरित परिधान. रामकृष्ण की आंखों में करुणा उमड़ आयी. उन्होंने दुखी होकर कहा—'आह, तुमने आने में बहुत देर कर दी.' रामकृष्ण ने पत्नी को सहारा देकर पालकी से उतारा और अपने कमरे में रखा और उनकी परिचर्या स्वयं करते रहे. इस प्रकार कुछ ही दिनों में उनकी शारदा पूर्ण स्वस्थ हो गयी. इसके बाद रामकृष्ण ने उन्हें अपनी मां के कमरे में रहने का स्थान नियत कर दिया. शारदा देवी के पिता दक्षिणेश्वर तीन-चार दिन रुके रहे. जब उन्हें इसका पूर्ण विश्वास हो गया कि रामकृष्ण की निष्ठा पूर्ववत् है और उनकी पुत्री शारदा पति के साथ सुखी और प्रसन्न है तो वे जयरामवटी लौट आये. रामकृष्ण ने अब पत्नी को धार्मिक शिक्षा देनी शुरू कर दी.

एक बार रामकृष्ण के हृदय में एक विचित्र प्रकार की इच्छा जागृत हुई—षोड़शी की पूजा की इच्छा. सन् १८७२ में मई का महीना और पूनम की रात. काली पूजा की एक बहुत ही शुभ घड़ी. रामकृष्ण अपने कक्ष में सुन्दर वेदी की रचना कर रहे हैं. उनके हाव-भाव, क्रिया-कलाप मानो सब कुछ भक्ति-भाव लिप्त हैं. एक शिष्य उनकी सहायता कर रहा है. पूजा का प्राथमिक प्रबंध पूर्ण हुआ. उन्होंने शिष्य को आज्ञा दी कि वह शारदा देवी को बुला लाये. शारदा देवी रामकृष्ण के पास आयीं. शारदा देवी को वे स्वरचित वेदी पर बैठने का संकेत करते हैं. शारदा देवी विस्मित थी. उन्होंने प्रश्न भरी दृष्टि से पति की ओर देखा. किन्तु पति मानो शरीर से ही इस लोक में थे, मस्तिष्क कहीं दूर देव-लोक में विचरण कर रहा था. उनकी अधखुली आंखों से भक्ति-रस छलका पड़ता था. वे मानो पत्नी को नहीं साक्षात् काली मां को देख रहे थे. शारदा देवी पति के मनोभाव समझ गयीं और

श्रद्धापूर्ण आग्रह के कारण वेदी पर बैठ गयीं. आसन पर बैठते ही शारदा देवी पर भी भक्ति के जादू का रंग फिरने लगा. पहले तो वह पूजा की विधियों को शान्त मुद्रा से देखती रहीं फिर वे भी समाविस्थ हो गयीं. रामकृष्ण पूजा-अर्चना में लगे रहे. उनकी आंखों के समक्ष यह उनकी पत्नी शारदा नहीं थी. ये तो साक्षात् मां काली थीं. एक पुजारी की सहायता से उन्होंने मां शारदा का नख-शिख शृंगार किया और फिर अनेक मन्त्रोच्चारण के बाद काली मां के ध्यान में मग्न होकर भौतिक चेतना से परे हो गये. इस समय आराध्य और आराधक दोनों ही इस संसार से बहुत ऊपर उठ कर चरम सत्य का, भगवान के अनादि और अनन्त रूप का दर्शन कर रहे थे. दूसरे दिन बड़ी कठिनाई के बाद रामकृष्ण की चेतना लौटी.

एक दिन शारदा देवी ने रामकृष्ण की चरण-सेवा करते हुए सहज ढंग से पूछा—'अच्छा यह तो बताइए कि आप मुझे किस दृष्टि से देखते हैं ?' शीघ्र ही उत्तर मिला—'एक माता, जो मन्दिर में पूजी जाती है, जिन्होंने उस शरीर को जन्म दिया है···मैंने बार बार तुम्हें काली मां का प्रत्यक्ष प्रतीक माना है." पति के इस उत्तर तथा उनके दिन-प्रतिदिन के व्यवहार ने मां शारदा के हृदय को भी वैराग्यपूर्ण बना डाला. फिर भी पत्नी के साथ के ये दिन रामकृष्ण के लिए अग्नि-परीक्षा के दिन थे. जिस साधना में कामिनी की बाधा नहीं, वह तो सहज है—किन्तु प्रतिपल पास रहने वाली युवती पत्नी के साथ तपश्चर्या में खरा उतरना कठिन ही नहीं, अत्यन्त आश्चर्यजनक भी है. रामकृष्ण अक्सर पत्नी की प्रशंसा में कहा करते थे—'विवाह के बाद मैं बड़ी उद्विग्नता से देवी काली से प्रार्थना किया करता कि वे शारदा देवी के हृदय से शारीरिक आनन्द की भावना का मूल नष्ट कर दें. इस अवधि के उनके सम्पर्क से यह मैं समझ गया कि मेरी प्रार्थना सुन ली गयी.' इससे यह स्पष्ट है कि पति-पत्नी दोनों ही अध्यात्म के एक रंग में रंग चुके थे. इस बार करीब डेढ़ साल तक दक्षिणेश्वर रह कर मां शारदा कामरपुकुर लौट गयीं.

उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में भारतीय धार्मिक जीवन में काफी उथल-पुथल मची हुई थी. यहाँ के शिक्षित लोगों पर राजा राममोहन राय (१७७२-१८३२) द्वारा स्थापित ब्रह्म समाज तथा स्वामी दयानन्द सरस्वती (१८) द्वारा प्रचलित आर्य समाज का बोलबाला था. ब्रह्म समाजी लोग हिन्दू धार्मिक ग्रथों के ज्ञान के साथ पाश्चात्य शिक्षा के पक्षपाती थे, ये लोग एकेश्वरवाद तथा भगवान के निर्गुण रूप में विश्वास करते थे. मूर्तिपूजा से इनका कट्टर विरोध था, इन पर ईसाई धर्म का भी पूरा प्रभाव था. पाश्चात्य पद्धति के अनुसार ये अपने समाज का सुधार करना चाहते थे. वे समझ चुके थे कि अंग्रेजी शासन की जड़ देश में जम चुकी है, अत: पश्चिम के सम्बन्ध से लाभ उठा कर अपने देश की स्थिति में सुधार लाया जा सकता है. इधर आर्य समाज के संस्थापक दयानन्द सरस्वती अंग्रेजी शिक्षा और सभ्यता के नितान्त विरोधी थे. वेद-वेदान्तों के घोर अध्ययन के

बाद उन्होंने भी यही निष्कर्ष निकाला कि ईश्वर एक है और वह भी निराकार. अत: उनकी उपासना के लिए मूर्ति पूजा व्यर्थ है. वे वेदों के आधार पर प्राचीन हिन्दू संस्कृति को पुनर्जागृत करना चाहते थे. उन्होंने हिन्दुओं के कर्मवाद, गोमाता की पवित्रता और रक्षा तथा प्राचीन काल की चार मुख्य जातियों के वर्गीकरण को स्वीकार किया. इसके साथ-साथ समाज की अन्य कुरीतियों के खिलाफ उन्होंने भी आवाज उठायी.

किन्तु रामकृष्ण का धार्मिक क्षेत्र इनकी तुलना में बड़ा ही व्यापक था. यहां सभी धर्मों का समन्वय था. चाहे हिन्दू धर्म हो, ब्रह्म समाज हो या आर्यसमाज; चाहे इस्लाम धर्म हो या ईसाई धर्म. यहाँ एकेश्वरवाद भी था और अनेकेश्वरवाद भी. यहाँ राम, रहीम और ईसामसीह सब एक ही तत्व के भिन्न-भिन्न रूप थे. इन सब तक पहुंचने का मार्ग था शुद्ध प्रेम और भक्ति. तत्कालीन बंगाल का समाज चाहे वह शिक्षित था या अशिक्षित, बराबर रामकृष्ण के द्वार पर श्रद्धा से सर झुकाता रहा. साधारण नागरिक, योगी-मुनि या साधु-संत के अतिरिक्त अंग्रेजी विचारधारा से प्रभावित विद्वान, वेद-वेदान्तों का मंथन कर डालने वाले दार्शनिक, ख्यातिप्राप्त समाज सुधारक और साहित्यकार तथा रूढ़िवाद के विरुद्ध नारे लगाने वाले जागरूक विद्यार्थी भी रामकृष्ण के पास विचार-विनिमय के लिए आया करते थे. ब्रह्म समाज के प्रमुख नेता केशवचन्द्र सेन, सुविख्यात उपन्यासकार बंकिमचन्द्र चटर्जी, लोकप्रिय नाटककार गिरीशचन्द्र घोष सभी उनकी महानता के सामने नत-मस्तक हुए. रामकृष्ण, गांव के मन्दिर का एक साधारण पुजारी, जो अंग्रेजी विचार-धारा से बिलकुल ही अछूता रहा, उसकी ओर युग की विद्वत्मंडली कैसे, किस आकर्षण की डोर में बंधी-खिंची चली आयी? हमारे सामने यह एक महत्वपूर्ण प्रश्न है.

तत्कालीन उच्च शिक्षा-प्राप्त लोगों ने सांस्कृतिक दृष्टि से रामकृष्ण में राष्ट्रीय जागरण का प्रतीक देखा. योग की साधना के साथ, भक्ति की आराधना, सर्वधर्म समन्वय के साथ नर-नारायण की पूजा. एक ब्राह्मण परिवार में जन्म लेकर तथा रूढ़िवाद के पालने में झूलते हुए उन्होंने होश संभाला, फिर भी छुआछूत जैसे दृढ़ रिवाज के वे बराबर विरोधी रहे. दूसरी बात यह है कि विद्वत्समाज ने रामकृष्ण की रहस्यात्मक प्रतिमा को अंग्रेजी सभ्यता की श्रेष्ठता के विरुद्ध एक विद्रोह की प्रतिमा के रूप में देखा. उन लोगों ने यह अच्छी तरह समझा कि स्वयं वे अनजाने एक ऐसी दिशा की ओर मुड़ गये थे जो कि उनके लिए, उनके भारत देश के लिए कभी भी हितकर नहीं होगी. पाश्चात्य सभ्यता में अपने को डुबो कर वे अपना रूप, अपना अस्तित्व और अपनी भारतीयता को खो रहे थे. केशव-चन्द्र सेन या गिरीशचन्द्र घोष जैसे विद्वानों के सम्पर्क ने रामकृष्ण को तत्कालीन शिक्षित समाज की विचारधारा से अवगत कराया. विचार गोष्ठी में ये लोग उन्हें

युग की नयी-नयी बातें बताते. रामकृष्ण को अपनी अज्ञानता पर तनिक भी लज्जा नहीं आती. वे बड़ी प्रसन्नता से नये विचारों का स्वागत करते. इस प्रकार उनके कुछ विचार अब नये रूप में संवर गये थे. उनकी प्रकृति की विनम्रता, हृदय की विशालता तथा गुणग्राहिता की कला ने शिक्षित समाज के हृदय को उद्वेलित करने वाली समस्याओं को समझा और उनके प्रति संवेदना प्रकट की. उनके व्यक्तित्व के इस दीप्तिमान रूप ने सभी विरोधी पक्षों को निरस्त्र बना दिया तथा उपयुक्त परामर्श देकर उनका पथ प्रदर्शित किया. रामकृष्ण ने शिक्षित वर्ग के हृदय और मस्तिष्क को जीत लिया, क्योंकि उनकी आस्थाओं की नींव बहुत कमजोर थी. जिस समाज में उनका जन्म हुआ और जिसमें वे फूले-फले तथा शिक्षा के द्वारा जिन विचारों को उन्होंने अपनाया, दोनों में महान् अन्तर था. उनकी समस्याओं को हल करने के लिए वे एक ऐसी शक्ति चाहते थे, जो नूतन और पुरातन, उभय पक्षों के विशिष्ट विचारों का प्रतिरूप हो. यह सब उन्होंने रामकृष्ण में पाया.

रामकृष्ण के उपदेशों का मुख्य आधार यह था कि हिन्दू लोग परम्परागत रीति से ईश्वर की पूजा-अर्चना कर उसका साक्षात्कार कर सकते हैं. ईसाई धर्मावलम्बी इसे थोथा अन्धविश्वास समझते थे. उस युग में पनपते हुए राष्ट्रीय जागरण के लिए रामकृष्ण का यह पूर्णरूपेण भारतीय विचार एक मजबूत अस्त्र बना. लोगों ने समझा कि वे पश्चिम के लोगों के सामने सर ऊंचा रखकर खड़े हो सकते थे और कह सकते थे कि धार्मिक क्षेत्र में उन्हें पश्चिम की आवश्यकता नहीं है.

इस प्रकार धीरे धीरे रामकृष्ण शिक्षित-अशिक्षित, सभी प्रकार के लोगों के हृदय में समा गये. उनकी शिष्य मण्डली में कलकत्ता विश्वविद्यालय का एक छात्र भी था. उसका नाम था नरेन्द्रनाथ. पहली बार जब वह अपने मित्रों के साथ रामकृष्ण के दर्शनार्थ दक्षिणेश्वर आया, तभी रामकृष्ण की पैनी दृष्टि ने पहचान लिया कि यह व्यक्ति औरों से नितान्त भिन्न है—इतने दिनों से इसी व्यक्ति की उन्हें तलाश थी—यही उनके सदेश को संसार के कोने-कोने में फैलायेगा और वास्तव में यही हुआ भी. रामकृष्ण जैसे योगी को इतने सशक्त रूप से आकर्षित करने वाला यह विद्यार्थी नरेन्द्रनाथ भविष्य में स्वामी विवेकानन्द के नाम से जगत-विख्यात हुआ. रामकृष्ण के जीवन में नरेन्द्रनाथ के प्रवेश से भारत का एक नया इतिहास आरम्भ होता है.

२

युवा नरेन्द्र —सत्य की खोज में

उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में कलकत्ते का एक दत्त परिवार अपनी सुसंस्कृत कुलीनता के कारण प्रसिद्ध था. इस परिवार के मुख्य कर्णधार श्री दुर्गाचरण दत्त एक पुत्र के जन्म के बाद सिद्धार्थ के पथ पर चल पड़े थे. पिता के सन्यास लेने के पश्चात पुत्र विश्वनाथ दत्त अपनी माता की छत्र-छाया में पलते रहे. ये आगे चल कर कलकत्ता हाईकोर्ट के मुख्तार बने. इन्होंने काफी धन अर्जित किया. परिवार को ठाठ-बाट से रखा. बराबर 'शाहखर्च' की उपाधि पायी. इनके द्वार से कोई भी दीन कभी निराश नहीं लौटा. संगीत से इन्हें बहुत प्रेम था. इनके धार्मिक विचार हिन्दू धर्म की रूढ़िवादिता की सीमा के बन्धन को स्वीकार नहीं करते थे. बाइबिल के अध्ययन से इन्हें ईसाई धर्म का पूर्ण ज्ञान था. तत्कालीन शिक्षित समाज की विचारधारा से वे परिचित थे. उनकी धर्मपत्नी भुवनेश्वरी देवी सरल-हृदया और धर्मपरायणा थीं. अपनी सूझबूझ, कार्यकुशलता और धैर्यशीलता के कारण वे सबकी प्रिय थी.

बहुत दिनों तक भुवनेश्वरी देवी की गोद में कोई पुत्र नहीं था. उन्हें पुत्र प्राप्त करने की उत्कट अभिलाषा थी. वे शिव-भक्त थीं. शिव की आराधना करते समय वे बराबर इसी वरदान के लिए अपना आंचल फैलातीं. उनके हृदय में अक्सर यह भाव उमड़ता कि वाराणसी जाकर विश्वेश्वर के मन्दिर में अर्घ्य अर्पित करें. किन्तु उन दिनों यातायात की असुविधा के कारण कलकत्ते से बनारस जाना, विशेषकर स्त्रियों के लिए सहज नहीं था. अतः उन्होंने किसी सम्बन्धी को जो काशीवास करती थीं, लिखा कि उनकी ओर से वे विश्वनाथ को अर्घ्य दें और पुत्र का वरदान मांगें. उक्त महिला ने भुवनेश्वरी देवी के इस आग्रह को सहर्ष स्वीकार किया. जब काशी में विश्वनाथ को अर्घ्य अर्पित कर दिया गया, तब भुवनेश्वरी देवी को पूर्ण विश्वास हो गया कि उनकी आराधना सुन ली गयी और अवसर आने पर उसका फल प्राप्त होगा. एक दिन वे पूरे दिन शिव-आराधना में रत रहीं. रात में उन्होंने एक स्वप्न देखा कि जगत्पति शिव एक शिशु का रूप धारण कर उनकी गोद की शोभा बढ़ा रहे हैं. जब उनकी नींद खुली तो स्वप्न पर विश्वास ही नहीं

हो रहा था. फिर भी उनका अंतर्मन हर्षित था और वे पुन: शिव-पूजा करने लगीं. उनके अन्तर से एक ध्वनि सुनाई पड़ी : उनका स्वप्न अवश्य ही सत्य का रूप धारण करेगा. कुछ दिन के बाद सोमवार १२ जनवरी, १८६३ के उषाकाल में उन्होंने गोद भरी—एक अत्यन्त ही सुकुमार नन्हा-सा बालक. भुवनेश्वरी देवी के स्वप्न ने वास्तविकता का रूप धारण किया. उस दिन मकर संक्रान्ति थी—हिन्दुओं का शुभ पर्व. असंख्य नर-नारी प्रात:काल गंगास्नान के बाद भगवान शिव की उपासना में व्यस्त थे. मानो उनके अवचेतन मन इस शिशु रूप शिव का आह्वान कर रहे थे. माता ने नवजात शिशु को शिव का प्रसाद समझ कर वीरेश्वर नामकरण किया. पीछे चलकर वीरेश्वर का नाम नरेन्द्रनाथ पड़ा. किन्तु मां उन्हें 'नीलू' (वीरेश्वर का छोटा संस्करण) नाम से ही संबोधित करतीं.

नरेन्द्र बचपन में बहुत ही नटखट थे. उनके नटखटपन से सभी हार मान जाते थे. उन पर तरह-तरह के अनुशासन के प्रयोग किये गये, किन्तु व्यर्थ. अंत में भुवनेश्वरी देवी ने एक अनोखा तरीका अपनाया. जब कभी ये खीझ उत्पन्न करने वाली शरारत करते तो माता आंगन में खड़ा कर शिव-शिव का उच्चारण करते हुए उन पर ठंढा पानी उंडेल देतीं और कहतीं कि यदि वे अपनी आदत नहीं सुधारेंगे, तब वे न शिव के प्यारे बन सकेंगे न शिव उन्हें कैलास पर्वत पर ही कभी बुलायेंगे. इसके बाद कुछ समय के लिए वे बिल्कुल शान्त और स्थिर हो जाते. कभी कभी मां उनकी शरारत से ऊब कर कह उठतीं—'मैंने शिव से एक पुत्र मांगा और उन्होंने अपना दानव भेज दिया.'

बालक नरेन्द्र के हृदय में साधुओं के प्रति एक विशेष प्रकार की आसक्ति थी. उनके द्वार पर जब भी कोई साधु उपस्थित होता, वे फूले न समाते और कुछ न कुछ अवश्य उसे दे देते. एक दिन वे बाहर खड़े थे. उसी समय एक साधु आया. नरेन्द्र एक नयी धोती पहने हुए थे. उन्होंने तुरन्त ही उसे खोल कर साधु को भेंट कर दी. साधु ने उसे अपने सर पर बांध लिया और आगे बढ़ गया. पूछने पर नरेन्द्र ने कहा—'साधु ने भिक्षा मांगी, अत: मैंने उसे अपना कपड़ा दे दिया.' अब जब भी कोई साधु-संत द्वार पर आता, नरेन्द्र को कमरे में बन्द कर दिया जाता. परन्तु इससे क्या हुआ ? कमरे की एक-एक चीज वे खिड़की से बाहर उस साधु को भेंटस्वरूप फेंकते जाते. कैसी शरारत है यह ? लोगों की नाक में दम था. नरेन्द्र की बड़ी बहनें उनके चुलबुलेपन से परेशान हो जातीं. जब वे उन्हें पकड़ कर सजा देने के लिए उनका पीछा करतीं तो वे किसी खुले नाले में जा छिपते और उन्हें चिढ़ाते हुए कहते कि अब वे उन्हें यहां नहीं छू सकतीं. बचपन के एक नटखटपन का चिह्न नरेन्द्र के शरीर पर मृत्युपर्यन्त बना रहा. एक बार मित्रों के साथ लड़ते हुए वे बरामदे से नीचे गिर गये. एक बड़े पत्थर से सर टकरा कर फूट गया. इसका निशान उनके प्रशस्त शुभ ललाट पर दाहिने नेत्र के ऊपर बराबर बना रहा.

नरेन्द्र को पशु-पक्षियों से विशेष मोह था. घर की गाय और बछड़े के साथ वे अक्सर खेलते रहते. मैना, तोता, कबूतर, मोर आदि के अतिरिक्त बकरियां, बंदर और घोड़े उनके पालतू थे. नौकरों या साइसों से वे मैत्री भाव से व्यवहार करते थे. उनको जो भी प्यार दरसाता, वे तुरन्त उसके अधीन हो जाते थे.

कहा जाता है कि माता की गोद बच्चों की प्रथम पाठशाला है. नरेन्द्र की प्रारम्भिक शिक्षा इसी पाठशाला में हुई. माता भुवनेश्वरी देवी उन्हें भाव सहित रामायण-महाभारत की कहानियां सुनाया करती थीं. उन्होंने ही सर्वप्रथम बंगला और अंग्रेजी के अक्षर-ज्ञान कराये. रामायण की कथा का प्रभाव बालक नरेन्द्र पर विशेष रूप से पड़ा. जहां कहीं रामायण पाठ होता, उसे सुने बिना इन्हें चैन नहीं मिलता. हनुमान के प्रसंग में उनका मन विशेष रूप से रम जाता. एक बार उन्होंने सुना कि लंका में केले के बाग में हनुमान बैठ कर केले खाया करते थे. कथा समाप्त होने पर नरेन्द्र एक केले के बगीचे में रात तक बैठे रहे, केले खाते हुए हनुमान की झलक देखने के लिए. एक दिन नरेन्द्र सीताराम की मूर्ति खरीद लाये. प्रायः प्रति दिन उसकी पूजा करते-करते ध्यानमग्न हो जाते. एक बार अपने एक मित्र के साथ ये मूर्ति लेकर सबसे ऊपर की मन्जिल के एकान्त कमरे में चले गये. दोनों मित्रों ने कमरे को भीतर से अच्छी तरह बन्द कर लिया. फूल-पत्र से सीताराम की मूर्ति सजायी गयी और फिर दोनों मित्र ध्यानावस्थित हो गये. उधर नरेन्द्र की खोज शुरू हुई. बाहर-भीतर, बाग-बगीचा सभी जगह ढूंढ़ा गया, किन्तु नरेन्द्र का पता नहीं चला. अंत में ढूंढ़ते-ढूंढ़ते लोग ऊपर के छत पर गये और वहां के कमरे को अन्दर से बन्द पाया. किवाड़ खुलवाने के बहुत प्रयत्न किये गये. मगर अन्दर से कोई ध्वनि नहीं सुनाई पड़ी. अन्त में लोगों ने दरवाजा तोड़ दिया. भीतर जाने पर उन्होंने देखा, दोनों मित्र पुष्प-पत्रों से सुसज्जित सीताराम की मूर्ति के सामने ध्यानावस्थित हैं.

इस प्रकार एकाग्रचित्त होकर ध्यानमग्न हो जाना नरेन्द्र का सबसे प्रिय खेल था. वे अक्सर इस प्रकार ध्यानमग्न होने का खेल अपने मित्रों के साथ खेला करते. अन्य बच्चों के लिए तो यह निरा खेल ही था, किन्तु नरेन्द्र का हृदय इससे आध्यात्मिक भावना के प्रकाश से आलोकित हो जाता. एक बार मैदान में नरेन्द्र अन्य बच्चों के साथ इसी खेल में व्यस्त थे. सभी अपनी आँखें मूंदे और ध्यान लगाये थे. इसी समय एक मोटा लम्बा गेहुँवन नाग बच्चों के सामने रेंगता हुआ आने लगा. उन बच्चों ने, जो आँखें बन्द कर ध्यानावस्थित नहीं हो पा रहे थे, इस विषैले सर्प को देखा और भाग खड़े हुए. दूर से उन्होंने नरेन्द्र को आवाज दी और नाग से उन्हें सचेत किया. किन्तु नरेन्द्र पर इसका कोई प्रभाव नहीं पड़ा. वे पूर्ववत् ध्यानावस्थित रहे. लोगों ने देखा, वह नाग नरेन्द्र की ओर बढ़ता ही गया, बढ़ता ही गया, फिर नरेन्द्र के समीप क्षण भर रुक कर लौट पड़ा. इस घटना से लोगों को बहुत आश्चर्य हुआ. माता-पिता ने पूछा कि इतनी आवाज देने पर भी वह क्यों नहीं भाग कर आया. नरेन्द्र का उत्तर

था—'मैंने सर्प या किसी चीज के विषय में कुछ नहीं जाना. ध्यानमग्न होकर मुझे विचित्र प्रकार के आनन्द का अनुभव हो रहा था.' इस प्रकार ध्यान लगाने का खेल, चाहे वह सीताराम की प्रतिमा के सम्मुख या और कहीं, बराबर चलता रहा. सीताराम की मूर्ति नरेन्द्र को जान से भी प्यारी थी. एक बार कोई व्यक्ति किसी के सामने विवाह के विरुद्ध तर्क कर रहा था. वैवाहिक जीवन की कठिनाइयों और बाधाओं के अंधकारपूर्ण चित्र उपस्थित किये जा रहे थे. नरेन्द्र ने यह सब सुना. उनके हृदय में बार-बार यह प्रश्न मुखरित होता रहा: 'यदि विवाह इतना बुरा है तो फिर भगवान राम ने विवाह क्यों किया ?" नरेन्द्र के बालहृदय को गहरी ठेस लगी थी : उनका कोमल हृदय कम्पित हो गया. सीताराम की प्रतिमा जो इतनी अभिलषित थी, उसे उन्होंने उठा कर फेंक दिया. उसके स्थान पर वे शंकर की मूर्ति खरीद लाये.

रात्रि में जब नरेन्द्र शयन के लिए बिस्तर पर जाते, तब आँखें बन्द करते ही अपनी धनुषाकार भौंहों के बीच एक विचित्र प्रकार का प्रकाश उन्हें दिखाई पड़ता. उस अनुपम ज्योति के रंग बराबर परिवर्तित होते और कुछ देर के बाद धीरे-धीरे वह वृहत रूप धारण कर लेती. अंत में नरेन्द्र को ऐसा अनुभव होता, जैसे उनका सम्पूर्ण शरीर उस ज्योति में नहा गया है. ऐसी अनुभूति उन्हें नित्य ही हुआ करती. सोते समय चाहे दिन हो या रात, जैसे ही उनकी पलकें झपकतीं, उनके मस्तिष्क की यह प्रक्रिया आरंभ हो जाती. इसे बिल्कुल प्राकृतिक समझते हुए, उन्होंने बचपन में इसकी चर्चा किसी से नहीं की. बहुत दिन बाद अपने एक सहपाठी से बातें करते हुए नरेन्द्र ने इसका प्रसंग उठाया—'क्या तुम रात में सोते समय अपनी भौंहों के बीच एक प्रकाश देखते हो ?' मित्र के नकारात्मक उत्तर पर नरेन्द्र ने कहा—'मैं तो देखता हूँ. तुम भी सोच कर देखना. बिस्तर पर जाते ही तुरन्त सो मत जाना. कुछ देर सचेत रहना. फिर तुम अवश्य देखोगे.' कुछ वर्षों के बाद नरेन्द्र से उनके गुरु ने भी यह प्रश्न पूछा था—'नरेन, मेरे पुत्र, क्या तुम सोते समय एक प्रकाश देखते हो ?' लोगों का अनुमान था कि यह सब नरेन्द्र के पूर्व जन्म से सम्बंधित है. नरेन्द्र के जीवन के पिछले अध्याय में शनैः शनैः यह प्रक्रिया कम हो गयी, किन्तु सर्वदा के लिए मिटी नहीं.

छह साल की अवस्था में उन्हें प्रारम्भिक शिक्षा के लिए पाठशाला भेजा गया. पाठशाला में तो विभिन्न वर्गों के विद्यार्थी स्थान पाते हैं. नरेन्द्र ने शीघ्र ही सभी से अपनत्व स्थापित कर दिया. कई बुरे बच्चों की संगति से इन्होंने कुछ दुर्व्यवहार और अपशब्द भी सीख लिये. इनके इस क्रिया-कलाप से माता-पिता सचेत हो गये और उन्हें इस पाठशाला से हटा लिया. अब नरेन्द्र को घर पर ही पढ़ाने के लिए एक शिक्षक का प्रबन्ध किया गया. नरेन्द्र के साथ कुछ और बच्चे भी उस शिक्षक से पढ़ने आने लगे. नरेन्द्र की बुद्धि बड़ी प्रखर थी. जब अन्य बच्चे अक्षरज्ञान ही कर रहे थे, नरेन्द्र ने लिखना-पढ़ना सीख लिया. उनकी स्मरणशक्ति विलक्षण थी.

शिक्षक के मुंह से जो भी शब्द निकलते, वे उनके मस्तिष्क में अमिट रूप से अंकित हो जाते. किसी भी पुस्तक को एक बार पढ़ना उनके लिए पर्याप्त था. वे पुस्तक की सारी बातों की आवृत्ति पुनः कर सकते थे. सात वर्ष की उम्र में ही उन्होंने मुग्धबोध नामक संस्कृत व्याकरण तथा रामायण और महाभारत के अनेक उद्धरण याद कर लिये. एक बार उनके घर पर रामायण गाते हुए कुछ साधु भिक्षाटन के लिये आये. नरेन्द्र ने उनके गाये हुए रामायण के दोहों और चौपाइयों में अनेक अशुद्धियां निकालीं. लोग यह देख कर विस्मित रह गये.

नरेन्द्र में बचपन से ही एक नेता के सारे गुण विद्यमान थे. उनके अनेक मित्र थे. उनके साथ वे अनेक प्रकार के खेल खेलते थे. उनका एक प्रिय खेल था राजा और राज दरबार का. बरामदे की सबसे ऊपर वाली सीढ़ी राजसिंहासन बन जाती और उस पर वे स्वयं विराजमान हो जाते. उनकी समकक्षता में बैठने का अधिकार किसी को नहीं प्राप्त था. राजगद्दी पर बैठे वे अपनी महारानी, अमात्य, कोषाध्यक्ष, सेनाध्यक्ष तथा अन्य कर्मचारियों का चुनाव और नियुक्ति करते और उनके पद के अनुसार अपने नीचे की सीढ़ियों पर उनके बैठने का स्थान निर्धारित करते. इस राजदरबार में उनका तर्कसंगत न्याय शाही प्रतिष्ठा के साथ होता था. इस खेल के द्वारा काल के आवरण में छिपे नरेन्द्र के गौरवशाली भविष्य की नींव पड़ रही थी. उन्हें देश का कर्णधार जो होना था.

नरेन्द्र के पिता से मिलने उनके घर अनेक जाति के लोग आया करते थे. हर एक जाति के लिए अलग-अलग हुक्के रहते थे. यहां तक कि मुसलमानों के लिए भी इसका समुचित प्रबंध था. नरेन्द्र को यह भिन्न-भिन्न हुक्के वाली बात समझ में नहीं आयी. आखिर इसमें क्या रहस्य है ? एक जाति के लोग दूसरी जाति के साथ खा-पी क्यों नहीं सकते, एक दूसरे से हुक्के क्यों नहीं बदल सकते ? यदि मैं इस नियम के विरुद्ध आचरण करूं तो इससे क्या हो जायेगा ? ये सारे प्रश्न नरेन्द्र के हृदय को कुरेदते रहते. अंत में उन्होंने निश्चय किया कि वे अपना अलग रास्ता अपनायेंगे. एक दिन उन्होंने बारी-बारी से सभी हुक्कों से, यहां तक कि मुसलमानों के लिए रखे गये हुक्के से भी एक-एक फूंक लगायी. कैसा आश्चर्य ! कुछ भी तो नहीं हुआ. बाद में इस घटना का वर्णन करते हुए उन्होंने कहा—'मैं नहीं समझ सकता कि इससे क्या फर्क पड़ता है.'

सन् १८७० में जब नरेन्द्र सात साल के थे तब पंडित ईश्वरचन्द्र विद्यासागर की संस्था में पढ़ने आये. यहां आते ही संस्था के सभी शिक्षक उनकी अलौकिक प्रतिभा से अवगत हो गये. किन्तु नरेन्द्र अभी भी इतने चंचल थे कि कभी अपनी पुस्तकों के साथ नहीं बैठते थे. खेल का उन्हें बड़ा आकर्षण था. जब वे खेल में तल्लीन होते तो सब कुछ भूल जाते. गोली खेलने में, दौड़ने-कूदने में या पंजा लड़ाने में वे बड़े कुशल थे. खेलने की गाड़ी या अन्य यंत्रचालित खिलौने उन्हें बहुत पसन्द

थे. स्कूल में मध्याह्न की छुट्टी होते ही खेल के मैदान में भागने वाले बच्चों में वे सर्वप्रथम होते थे. खेल के बीच जब बच्चों की लड़ाई शुरू हो जाती तब ये उस समय न्यायकर्त्ता बन जाते. अपनी जान पर खेल कर दुर्बल दल के बच्चों की रक्षा करना मानो उनका स्वभाव था. इस युद्ध और बचाव में कुश्ती का ज्ञान काफी सहायक होता था. कक्षा में शिक्षक के पढ़ाते समय भी इनकी चंचल प्रकृति के कारण आस पास के अन्य बच्चे पढ़ाई में ध्यान नहीं लगा पाते थे. कक्षा में ही दूसरे बच्चों को खेलकूद की बात या रामायण-महाभारत की कहानी सुनाया करते. कभी किसी बात पर बहस छिड़ने पर अपनी तर्कशीलता के कारण वे बराबर विजयी हो जाते.

एक बार जब कक्षा में शिक्षक पढ़ा रहे थे, नरेन्द्र ने खेलकूद की बातों में आसपास के बच्चों को उलझा लिया. शिक्षक क्रुद्ध हो गये. उन्होंने नरेन्द्र तथा साथ के बच्चों से तुरंत के पढ़ाये हुए विषय पर प्रश्न पूछे. सभी बच्चे मौन थे. परन्तु नरेन्द्र ने खड़े होकर सभी प्रश्नों के सही उत्तर दिये. नरेन्द्र की स्मरणशक्ति सचमुच अजीब थी. बातें करते हुए वे भी शिक्षक के द्वारा पढ़ायी जाती हुई चीज को याद रख सकते थे. शिक्षक ने पुन: जानना चाहा कि आखिर बातें कौन कर रहा था. बच्चों ने नरेन्द्र की ओर उंगली उठायी, किन्तु शिक्षक को उन पर विश्वास नहीं हुआ. उन्होंने उन सभी बच्चों को खड़े रहने की सजा दी जो बातों में तल्लीन थे. सभी बच्चे खड़े हुए, साथ ही साथ नरेन्द्र भी. शिक्षक ने कहा—'तुम्हें नहीं खड़ा होना है.' मगर नरेन्द्र ने उत्तर दिया—'मुझे अवश्य खड़ा होना चाहिए, क्योंकि मैं भी बातें कर रहा था.' और वे खड़े रहे.

इन्हीं दिनों शिक्षकों ने नरेन्द्र को बताया कि उन्हें अंग्रेजी भी पढ़नी है. नरेन्द्र इसके लिए तैयार नहीं थे. अंग्रेजी तो विदेशी भाषा है. भला उसे उन्हें क्यों पढ़ना चाहिए. शिक्षकों के द्वारा बाधित होने पर वे रोते हुए अपने माता-पिता के पास पहुंचे. उनके बहुत समझाने पर अंग्रेजी पढ़ने के लिए तैयार हुए. अंग्रेजी आरंभ करने के बाद उनके माता-पिता या शिक्षकगण चकित रह गये. कुछ ही महीनों में उन्होंने अंग्रेजी भाषा में काफी उन्नति कर ली.

नरेन्द्र अन्याय के विरोध में बराबर आगे रहते थे. उनके स्कूल में एक क्रूर प्रकृति के शिक्षक थे. एक दिन किसी लड़के की शरारत पर उन्होंने उसे भयंकर सजा दी. असहाय विद्यार्थी आंसू बहाये जा रहा था और शिक्षक महाशय उसे बुरी तरह पीटे जा रहे थे. नरेन्द्र ने यह दृश्य देखा तो देखते ही रह गये. घबराहट और रोष के कारण उनका सारा शरीर कांप रहा था. साथ ही धैर्य खो बैठने के पागलपन में वे ठठाकर हंसने लगे. उस शिक्षक ने जब नरेन्द्र को हंसते हुए पाया तो मानो आग में घी पड़ गया. उनकी क्रोधाग्नि और प्रज्वलित हो उठी. उन्होंने नरेन्द्र का कान खींच कर निर्दयता से पीटना शुरू किया. नरेन्द्र रोते गये चिल्लाते गये, लेकिन उससे कोई लाभ नहीं हुआ. उनके कान इस तरह खींचे गये कि उनसे रक्त प्रवाहित होने

लगा. किन्तु शिक्षक को दया नहीं आयी. नरेन्द्र क्रोधावेग के झटके से शिक्षक से अलग हट गये और कहा—'मेरे कान मत खींचिए. आप मुझे मारने वाले कौन होते हैं ? देखिए मुझे फिर कभी मत स्पर्श कीजिए.' भाग्यवश इसी समय ईश्वरचन्द्र विद्यासागर वहां पहुंच गये. नरेन्द्र ने रोते हुए उन्हें सारी कहानी कह सुनायी. विद्यासागर ने उन्हें अपने कार्यालय में ले जाकर बहुत समझाया. घर पर जब नरेन्द्र की मां ने यह सब देखा-सुना तो उन्हें स्कूल जाने से मना कर दिया. किन्तु कान का घाव हरा रहते हुए भी नरेन्द्र ने स्कूल जाना नहीं छोड़ा. इस घटना के बाद से उस स्कूल से शारीरिक सजा की प्रथा सदा के लिए उठा दी गयी.

नरेन्द्र पर किसी प्रकार के भय या अंधविश्वास का कोई असर नहीं पड़ता था, वे अपनी तार्किक बुद्धि से हर भय या हर अंधविश्वास के मूल में घुस कर यह देखना चाहते थे कि आखिर सत्य और असत्य में क्या भेद है. नरेन्द्र के घर के पास ही एक बड़ा सा वृक्ष था. वह मनमोहक पुष्पों से लदा था. नरेन्द्र को उस पर चढ़ने का बेहद शौक था. वे अक्सर उस पर चढ़ा करते, सिर्फ फूल तोड़ने के लिए ही नहीं, बल्कि कुछ दूसरे ही अद्भुत खेल के लिए. फूल तोड़ना तो बहाना मात्र था. वास्तव में उनके शरीर की अतिरिक्त शक्ति उन्हें कभी शांत बैठने नहीं देती. वे पेड़ पर चढ़ते और पेड़ की डाली में अपने पैरों को फंसा कर उल्टा लटक जाते और उसी स्थिति में झूला झूलते. उन्हें इस रूप में (सर और हाथ नीचे की ओर लटका कर) झूलना बहुत पसन्द था.

लेकिन बरामदे पर बैठे हुए उनके वृद्ध बाबा को इस प्रकार का खेल बिल्कुल पसन्द नहीं था. बालक नरेन्द्र का इस खेल से ध्यान हटाने के विचार से उन्होंने नरेन्द्र से कहा कि उस वृक्ष पर ब्रह्म दैत्य रहता है. जो भी उस वृक्ष पर चढता है वह ब्रह्म दैत्य उसका गला दबा देता है. अतः नरेन्द्र को उस पर कभी नहीं चढ़ना चाहिए. नरेन्द्र ने बाबा की बात बहुत ही विनम्रता से सुनी, लेकिन इसका उन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा. बाबा की अनुपस्थिति में वे उस पेड़ पर चढ कर अपना झूलने का खेल आरम्भ कर देते. उनके अन्य सभी मित्र बाबा की बात सुन कर भाग गये और नरेन्द्र को उस पेड़ पर चढ़ने से मना कर दिया. परन्तु नरेन्द्र ने हंस कर जवाब दिया—'तुम कितने गधे हो. यदि बाबा की बात सत्य होती तो मेरा गला कितने पहले ही दबोच दिया गया होता.' यही नरेन्द्र जब आगे चल कर स्वामी विवेकानन्द के रूप में विख्यात हुए तो देश-विदेश के असंख्य श्रोताओं और दर्शकों के सम्मुख वे अक्सर कहा करते—'किसी बात पर यह सोच कर मत विश्वास कर लो कि तुमने इसे पुस्तक में पढ़ा है. किसी बात पर इसलिए विश्वास मत करो कि किसी ने ऐसा कहा है. तुम स्वयं सत्य की खोज करो.'

नरेन्द्र को जीवन की एकरसता से चिढ़ थी. उन्होंने बच्चों की एक नाटक मण्डली बनायी. अक्सर उनके मकान के एक बड़े कमरे में नाटक खेले जाते. नाटक

खेलते समय शोरगुल होना स्वाभाविक है. नरेन्द्र के चाचा को यह सब अच्छा न लगा. उन्होंने नाटक के कमरे में जाकर नाटक खेलने के चबूतरे तथा अन्य आवश्यक वस्तुएं छिन्न-भिन्न कर दीं और वहां शोरगुल मचाने की मनाही कर दी. इसके बाद नरेन्द्र के निर्देशन में उनकी मित्र-मण्डली ने घर के आंगन में एक व्यायामशाला की स्थापना की. वहां वे लोग व्यायाम या मनमानी उछल-कूद करते. नरेन्द्र के चाचा के काम में इससे भी विघ्न पड़ने लगा. अतः कुछ दिनों बाद उन्होंने इस व्यायामशाला की चीजों को भी तहस-नहस कर दिया. इसके बाद भी नरेन्द्र का उत्साह कम नहीं हुआ. पड़ोस के मित्र के घर उनकी व्यायामशाला खुल गयी. वहां उन्होंने और कई प्रकार के खेलों में भी कुशलता प्राप्त की—जैसे लाठी चलाना, नाव खेना, मल्ल-युद्ध, बाहु-युद्ध आदि. इसी के फलस्वरूप एक खेल की प्रतियोगिता में उन्हें प्रथम पुरस्कार प्राप्त हुआ.

एक बार नरेन्द्र तथा उनके मित्रों ने एक मैदान में बहुत भारी झूला लगाने की योजना बनायी. उसके लिए सामान इकट्ठे किये गये. नरेन्द्र तथा मित्रगण इस कार्य में जुट गये. तभी एक अंग्रेज नाविक उधर टहलता हुआ आ पहुंचा और बच्चों को झूला लगाने में रत देखकर स्वयं भी मदद करने लगा. किन्तु भाग्य ने साथ नहीं दिया. झूले का ढांचा खड़ा करते समय वह नाविक बुरी तरह घायल हो कर गिर पड़ा. लोगों ने देखा वह बेहोश था. उन दिनों यहां अंग्रेजों का बोलबाला था. अंग्रेजों से भारतीय लोग बहुत ही भयभीत रहते थे. नरेन्द्र तथा उनके एक दो मित्रों को छोड़ कर सभी लोग इस घटनास्थल से एक दो तीन हो गये. लोगों को डर था कि नाविक की मृत्यु हो गयी है. परन्तु ऐसी विकट घड़ी में नरेन्द्र ने परिस्थिति संभाली. वे बड़े ही प्रत्युत्पन्नमति थे. उन्होंने तुरन्त अपनी धोती फाड़ कर चोट लगे अंग पर पट्टी बांध दी और नाविक को होश में लाने के लिए उसके मुंह और सर पर पानी के छींटे देने लगे और पंखा झलने लगे. थोड़ी देर में नाविक की मूर्छा दूर हुई. फिर उन्होंने उसे पास के पाठशालागृह में ले जाकर सुलाया. रोगी को डाक्टर से दिखाया गया. नरेन्द्र ने उस नाविक की सेवा एक सप्ताह तक की, तब वह पूर्णतः स्वस्थ हुआ. उसके स्वस्थ होने पर नरेन्द्र ने उसे एक बटुआ (पर्स) उपहार में दिया, जिसमें नरेन्द्र के द्वारा अपने मित्रों से जमा की हुई रकम थी.

नरेन्द्र अपने परिवार तथा पड़ोस सबके प्रिय थे. नरेन्द्र के प्रेम और मित्रता के सभी अधिकारी थे—चाहे वे ऊंची जाति के हों या नीची जाति के, चाहे दरिद्र हों या संपत्तिशाली. किसी से किसी प्रकार का भेदभाव नहीं था. किसी की विपत्ति में ये सेवा करने वालों में सर्वप्रथम रहते थे. महिला समाज में भी ये सबके प्रिय थे. अवस्था के अनुसार सभी महिलाओं से मौसी और बहन का संबंध बनाये हुए थे.

पाठशाला में नरेन्द्र की विशेष अभिरुचि थी. वे मित्रों में चंदा इकट्ठा करते, चंदे के अधिक भाग की पूर्ति अपनी जेब से करते, फिर मित्रों सहित भोजन बनाने

में जुट जाते. खेल-खेल में खाना वहुत ही चटपटा और स्वादिष्ट बन जाता. इसके बाद सब मिल कर बड़े चाव से अपने बनाये हुए भोजन का स्वाद लेते.

नरेन्द्र हर खेल में अपने मित्रों के नेता बने रहते. वे अक्सर मित्र-मंडली को कलकत्ते के दर्शनीय स्थान दिखाने ले जाते थे. कभी अजायबघर, कभी चिड़ियाघर, कभी कोई प्रसिद्ध उद्यान, कभी गंगा का तट. एक बार जब वे मित्रों के साथ इसी प्रकार की सैर के बाद नाव से घर लौट रहे थे तो उनका एक मित्र अचानक बहुत अस्वस्थ हो गया. नाविक इससे बहुत क्रुद्ध हुआ और उसने उन बच्चों से नाव साफ करने को कहा. मगर बच्चों ने इन्कार कर दिया. जब नाव तट पर लगी, तो नाविक ने किसी भी बच्चे को नाव से उतरने नहीं दिया और उन्हें बुरी तरह जली-कटी सुनाने लगा. आंख बचा कर नरेन्द्र नाव से कूद कर किनारे पहुँच गये. गंगा के तट पर उस समय दो अंग्रेज सैनिक टहल रहे थे. उनसे नरेन्द्र ने अपनी टूटी-फूटी अंग्रेजी में सारी बातें कह सुनायी और मित्रों को बचाने के लिए सहायता मांगी. सैनिकों ने बालक नरेन्द्र की सारी बातें बहुत ही प्यार से सुनी और नरेन्द्र के साथ घटनास्थल पर पहुंचे. नरेन्द्र के साथ अंग्रेज सैनिकों को देखते ही नाविक सहम गया और उनके रोब भरे शब्दों को सुनने के पहले ही उसने सभी बच्चों को नाव से उतार दिया. नरेन्द्र के साहस से वे सैनिक बहुत ही प्रसन्न थे. उन्होंने नरेन्द्र को एक नाटक देखने के लिए आमंत्रित किया. नरेन्द्र ने इसके लिए उन्हें धन्यवाद दिया और वहां जाने में असमर्थता प्रकट की.

इसी प्रकार की एक और घटना उल्लेखनीय है. नरेन्द्र करीब ग्यारह साल के थे. उस समय ब्रिटेन के स्वर्गीय सम्राट एडवर्ड सप्तम वेल्स के राजकुमार के रूप में भारत पधारे थे. कलकत्ते के बन्दरगाह पर उनका जहाज आ कर लगा था. बहुत लोग उस जहाज को देखने जाया करते थे. इसके लिए एक मुख्य अधिकारी से प्रवेशपत्र लेना आवश्यक था. उक्त अंग्रेज अधिकारी के पास प्रार्थनापत्र के साथ जाते समय द्वारपाल ने नरेन्द्र को बच्चा समझकर रोक दिया. नरेन्द्र हतोत्साह नहीं हुए, उन्होंने बड़े ध्यान से देखा कि प्रार्थनापत्र के साथ लोग बीच की सीढ़ी से ऊपर अंग्रेज अधिकारी के कमरे में जा रहे हैं. नरेन्द्र ने उस भवन के चारों ओर घूम कर उस कमरे में पहुंचने की युक्ति निकाली. भवन के पीछे एक पतली सी सीढ़ी थी. नरेन्द्र उसी सीढ़ी से ऊपर चढ़ गये. अंत में उन्होंने अपने को अधिकारी के कमरे में पाया. वे बड़े प्रसन्न हुए और लोगों की पंक्ति में पीछे खड़े हो गये. जब उनकी बारी आयी तो उनका आवेदन पत्र रख लिया गया और प्रवेशपत्र दे दिया गया. लौटते समय वे मुख्यद्वार से ही सब लोगों के साथ लौटे. द्वारपाल ने इन्हें बाहर निकलते पहचान लिया. आश्चर्य में उसके मुख से निकल पड़ा—'अरे तुम अंदर कैसे चले गये.' नरेन्द्र ने हंसते हुए उत्तर दिया—'मैं एक जादूगर हूँ.'

जैसे-जैसे दिन बीतते गये, नरेन्द्र के जीवन में बाल-क्रीड़ा का स्थान न्यून

होता गया. ग्यारह-बारह साल के बाद उनका मन पुस्तकों, पत्रिकाओं और दैनिक समाचारपत्रों में रमने लगा. इन चीजों को पढ़ कर वे अपने मित्रों के सामने अपनी मौलिक आलोचना पेश करते थे.

नरेन्द्र को संगीत में अभिरुचि पैतृक संपत्ति के रूप में मिली थी. उनके पिता को संगीत से विशेष अनुराग था. एक बार अपने मित्र का एक गीत सुन कर नरेन्द्र ने संगीत के प्रति अपने विचार प्रकट किये—'सिर्फ राग और ताल से ही संगीत का जन्म नहीं होता. इससे एक भाव की अभिव्यक्ति होती है. क्या सिर्फ स्वर के उतार-चढ़ाव से ही गाये हुए गीत की प्रशंसा होती है ? गीत का अंतर्निहित भाव गायक के हृदय की भावना को जगाता है. नपे-तुले शब्दों के साथ स्वर और ताल पर पूरा ध्यान देना चाहिए. गीत, जिसका भीतरी भाव गायक के हृदय से प्रस्फुटित नहीं होता, वह संगीत नहीं है.'

सन् १८७७ में जब नरेन्द्र चौदह साल के थे, उनके पिता की नियुक्ति रायपुर, मध्य प्रदेश में हो गयी. कुछ दिनों के बाद पिता ने नरेन्द्र के संरक्षण में परिवार को रायपुर बुलाया. उन दिनों कलकत्ते से रायपुर तक रेलगाड़ी का मार्ग नहीं बना था. नागपुर के बाद बैलगाड़ी की सवारी ठीक की गयी. कहीं निर्जन पथ, कहीं घना जंगल. मौसम सुहावना था प्रकृति अपने आंचल से अनुपम सौन्दर्यराशि बिखेर रही थी. विस्तृत नभ के नीचे नरेन्द्र के लिए यह बैलगाड़ी की यात्रा अत्यन्त ही दिलचस्प रही. बैलगाड़ी पर बैठे-बैठे नरेन्द्र को किसी प्रकार की थकान या ऊब महसूस नहीं होती. वे तो प्राकृतिक छटा देखते-देखते इतने तन्मय हो जाते कि अपनी सुध-बुध तक खो बैठते. इन्हें प्रकृति की शोभा निहारने में अलौकिक आनन्द प्राप्त होता था. एक बार वे लोग एक अत्यन्त रमणीय स्थान से होकर जा रहे थे. मार्ग के दोनों तरफ विंध्य पर्वत-माला, ऊंचे-ऊंचे, लम्बे वृक्षों की शाखाओं में लिपटी कोमल पुष्पित लताएं. नरेन्द्र के हृदय का कोना-कोना मानो इस छवि से परिपूर्ण हो गया. वे बैलगाड़ी में आंखें मूंद कर लेट गये. प्रकृति का जो अनुपम सौन्दर्य नेत्र-मार्ग से हृदय में उतर आया था, उसी में वे इतना खोये रहे कि बहुत देर तक उन्हें कुछ भी भौतिक ज्ञान नहीं था. एक विशेष प्रकार की ईश्वरीय ज्योति में वे डूबने से लगे. उनकी इच्छा होती कि वे सदा इसी अवस्था में पड़े रहते. जब उनकी तन्द्रा विलीन हुई, काफी दूर का रास्ता समाप्त हो चुका था.

जब नरेन्द्र रायपुर अपने पिता के पास पहुँचे, तो उनकी पढ़ाई के क्रम में एक बाधा आ खड़ी हुई. रायपुर में उन दिनों कोई स्कूल नहीं था. अतः नरेन्द्र का अधिक समय अपने पिता के साहचर्य में बीतने लगा. पिता वार्तालाप करते. नरेन्द्र को इस प्रकार के वार्तालाप एवं वाद-विवाद में विशेष रुचि थी. पिता ने पुत्र के मस्तिष्क को अच्छी तरह देखा-परखा और उसे अवश्यकता अनुसार बौद्धिक आहार देकर परिपुष्ट बनाया. विश्वनाथ दत्त का विश्वास था कि शिक्षा का मुख्य उद्देश्य

विचारशक्ति को सवल वनाना है. नरेन्द्र का मस्तिष्क वरावर ही विभिन्न विषयों के स्वतंत्र चिन्तन और मनन से क्रियाशील रहा. विश्वनाथ दत्त के घर अक्सर विद्वान लोगों की जमवट वनी रहती. नरेन्द्र वड़ी तन्मयता से उनके वाद-विवाद सुनते और उसमें भाग लेते. कुछ ही दिनों में वहां के लोग नरेन्द्र के मेधावी मस्तिष्क से पूर्णतः परिचित हो गये. अगर कभी किसी के द्वारा इन्हें वौद्धिक मान्यता नहीं मिलती तो इनका अहं इन्हें कभी शान्त नहीं रहने देता. ऐसे अवसरों पर ये वहुत ही उत्तेजित हो जाते और तरह-तरह के तर्क के द्वारा अपनी वात सही सिद्ध करने का प्रयत्न करते. इन्हें शान्त करने के विचार से लोग अन्त में उनसे क्षमा मांगा करते. नरेन्द्र का व्यक्तित्व ही कुछ इस प्रकार का था कि सभी को उनके सामने झुकना पड़ता. यहाँ रायपुर में उन्होंने अपने मित्रों का चुनाव वड़ी सावधानी के करना शुरू किया. तीक्ष्ण वुद्धि के लड़के, जिनसे नरेन्द्र वाद-विवाद कर सकते थे, वे ही इनके अभिन्न मित्र वने. साधारण या मन्द वुद्धि के वालक जो वरावर इनका नायकत्व स्वीकार करते और इनके पीछे-पीछे चलते, उनकी मित्रता में इन्हें कोई रस नहीं मिलता था.

नरेन्द्र को वचपन से ही पूर्व जन्म के सिद्धान्त पर विश्वास था. अक्सर अपने मित्रों से वे इस विषय पर चर्चा छेड़ देते. वचपन में जव वे किसी खास नयी वस्तु को देखते या किसी विशेष व्यक्ति से मिलते तो उन्हें ऐसा भास होता जैसे वे इनसे पूर्व परिचित हैं. वे इसके लिए अपने मस्तिष्क को कुरेदते कि जिससे पता चले कि उन्होंने इस वस्तु को या इस व्यक्ति को सर्वप्रथम कहां देखा है. किन्तु इसका कोई परिणाम नहीं निकलता. उनके स्मरण के सभी प्रयत्न विफल हो जाते. वाद में उन्होंने इस विषय पर इस प्रकार कहा था—'एक वार किसी विशेष स्थान पर मैं अपने मित्रों के साथ वातें कर रहा था. अचानक कुछ ऐसी चर्चा छिड़ गयी कि मेरे मस्तिष्क में एक स्मृति कौंध गयी. मुझे ऐसा लगा कि अतीत में कभी इस जगह, इसी मकान में, इन्हीं लोगों के साथ इसी प्रकार की चर्चा छिड़ी हुई थी. पीछे मैंने विचार किया कि यह सब पूर्व जन्म के सिद्धान्त के कारण होता है. मगर पुनः मैंने सोचा कि इस विषय पर कोई भी निष्कर्ष तर्कसंगत नहीं है. अव मैं विश्वास करता हूं कि अपने इस जन्म के पहले मुझे किसी न किसी प्रकार से उन चीजों की और उन लोगों की झलक अवश्य मिली है—जिनसे मुझे इस जन्म में संवंध है. इस प्रकार की याद अक्सर मुझे जीवन पर्यन्त आती रही है.'

रायपुर में यद्यपि नरेन्द्र किसी स्कूल में पढ़ने नहीं गये—फिर भी उनका वौद्धिक विकास निरन्तर होता रहा. उनका जीवन कभी भी नीरस नही वना. करीब दो साल वाद सन् १८७६ में विश्वनाथ दत्त अपने परिवार के साथ कलकत्ता लौट आये. नरेन्द्रको पुनः स्कूल में डाल दिया गया. स्कूल के अधिकारियों ने इसका कोई विरोध नहीं किया क्योंकि वे नरेन्द्र की मानसिक क्षमता से परिचित थे. एक साल के वाद ही नरेन्द्र को प्रवेशिका परीक्षा देनी थी अतः उन्हें तीन साल की पढ़ाई एक

साल में पूरी करनी थी. नरेन्द्र बड़ी लगन से अपने काम में लीन हो गये. कक्षा की पढ़ाई उनकी ज्ञान पिपासा को शान्त करने में असफल रही. वे कक्षा की पढ़ाई के अतिरिक्त अंग्रेजी और बंगला साहित्य तथा भारतीय इतिहास की अनेक प्रामाणिक पुस्तकें पढ़ने में व्यस्त रहे. फलस्वरूप श्रेणी के अध्ययनक्रम में कुछ बाधाएं उपस्थित हो गयीं. परीक्षा के लिए निर्धारित पुस्तकों पर वे पूरा ध्यान नहीं दे सके. इस विषय पर उन्होंने कहा है—'प्रवेशिका परीक्षा के ठीक दो दिन पहले मुझे मालूम हुआ कि मुझे ज्यामिति का बहुत ही अल्प ज्ञान है. तब मैंने सारी रात जग कर इस विषय का अध्ययन करना शुरू किया. इस प्रकार चौबीस घंटों में मैंने ज्यामिति की चार पुस्तकों पर अपना अधिकार जमा लिया.' इस प्रकार उन्होंने प्रवेशिका परीक्षा दे डाली. और इसमें प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण हुए. इस साल इस स्कूल से प्रथम श्रेणी में सिर्फ नरेन्द्र का ही नाम था. पिता फूले नहीं समाये. उन्होंने पुरस्कारस्वरूप नरेन्द्र को कलाई की घड़ी खरीद दी.

इस एक साल के स्कूल जीवन में विभिन्न विषयों पर अनेक पुस्तकों को पढ़ते-पढ़ते नरेन्द्र ने अध्ययन का सहज तरीका ढूंढ़ निकाला था. वे लेखक के विचार को बिना उसकी किताब की प्रत्येक पंक्ति पढ़े ही आसानी से समझ जाते थे. किताबें पढ़ते-पढ़ते उनके मस्तिष्क को एक विचित्र क्षमता प्राप्त हो गयी थी कि किसी उद्धरण की प्रथम और अंतिम पंक्ति पढ़ कर वे सम्पूर्ण अनुच्छेद का अर्थ समझ जाते थे. पीछे जाकर तो उनके मस्तिष्क की ग्राह्य शक्ति का इतना विकास हुआ कि प्रथम और अंतिम पंक्ति पढ़ कर सम्पूर्ण पृष्ठ की बात समझने लगे. अपनी इस अनोखी मानसिक शक्ति के विषय में उन्होंने कहा—'जब कहीं लेखक वाद-विवाद के द्वारा अपनी बात के स्पष्टीकरण के लिए चार-पाँच पृष्ठ या इससे भी अधिक पृष्ठ ले लेता, वहां मैं कुछ पंक्तियों को पढ़कर ही उनके तर्क के झुकाव को समझ लेता.' इस प्रकार नरेन्द्र को पुस्तकों के पढ़ने और समझने में बहुत ही कम समय लगता. चित्त की एकाग्रता के द्वारा ही उन्होंने अपने मस्तिष्क की ऐसी विलक्षण शक्ति का विकास किया था. इसी कारण अपने छोटे से जीवन में उन्होंने इतना प्रचुर पांडित्य प्राप्त कर लिया कि जिसे देख कर बड़े-बड़े वयोवृद्ध विद्वान चकित रह गये.

नरेन्द्र के स्कूल का जीवन अब समाप्त हो गया था. उनका चुहल भरा चपल बालपन अब युवा की गम्भीरता में परिणत हो रहा था. उनके चौड़े वक्ष और मांसल भुजाओं में यौवन की स्फूर्ति लहरा रही थी. स्कूल के बाद नरेन्द्र एक साल तक प्रेसिडेन्सी कालेज में पढ़ते रहे, फिर स्काटिश पादरियों के द्वारा स्थापित स्काटिश चर्च कालेज में पढ़ने चले गये. प्रवेशिका परीक्षा के समय इन्हें एक साल के अन्दर तीन साल की पढ़ाई पूरी करने के लिए कठिन परिश्रम करना पड़ा था. इसने इनके स्वास्थ्य को हिला दिया. ये अस्वस्थ रहने लगे. अतः जलवायु परिवर्तन के लिए इन्हें गया जाना पड़ा. वहां कुछ माह तक स्वास्थ्य लाभ करने के

पश्चात् वे फिर कालेज की प्रथम परीक्षा के समय कलकत्ता लौट आये और परीक्षा दे डाली. इस बार इनको द्वितीय स्थान मिला.

नरेन्द्र कभी भी पाठ्य पुस्तकों के बंधन में नहीं बंधे. उनका मानस ज्ञान-क्षेत्र में स्वच्छन्द विचरण करता. कालेज के इन प्रथम दो वर्षों की अवधि में उन्होंने पश्चिमी तर्क शास्त्र की प्रमाणिक पुस्तकों का घोर अध्ययन किया. इसी तरह कालेज के अंतिम दो वर्षों में पश्चिमी दर्शन शास्त्र और विभिन्न यूरोपीय राष्ट्रों के प्राचीन एवं अर्वाचीन इतिहास का मनन-चिंतन किया. इन्हें अपनी तीव्र स्मरण शक्ति पर पूर्ण विश्वास था, इसलिए पाठ्य पुस्तकों की पढ़ाई वे परीक्षा के निकट के दिनों के लिए रख छोड़ते थे.

स्नातक परीक्षा को जब सिर्फ एक माह शेष रह गया तब नरेन्द्र को अपनी पाठ्य पुस्तकों की याद आयी. उन्हें ध्यान आया कि उन्होंने 'ग्रीन' द्वारा लिखित यूरोप का इतिहास, जो उनके वर्ग के लिए निर्देशित था, उसका अध्ययन अभी तक नहीं किया है. दुर्भाग्यवश वह पुस्तक भी उनके पास नहीं थी. बाद में जब उन्हें वह पुस्तक मिली तब उन्होंने प्रण कर लिया कि जब तक वे इसका पूर्ण ज्ञान नहीं प्राप्त कर लेंगे, तब तक अपने कमरे से बाहर नहीं जायेंगे. तीन दिनों में उन्होंने उस पुस्तक पर अच्छी तरह अधिकार जमा लिया. इस प्रकार उन्होंने परीक्षा के पूर्व चाय-कॉफी पी-पीकर, रात-रात भर जाग कर पढ़ा.

आखिर स्नातक की अंतिम परीक्षा का दिन आया. किन्तु नरेन्द्र की मनः-स्थिति आज अचानक अजीब सी हो गयी थी. कालेज की परीक्षाओं की निरर्थकता उनके मन को कचोटने लगी. भला इन परीक्षाओं का जीवन से क्या लगाव है ? इन का क्या महत्त्व है ? क्या इन्हीं का अनुसरण जीवन का एकमात्र लक्ष्य है ? नरेन्द्र के हृदय में अन्तर्द्वन्द्व का तूफान चल रहा था—परीक्षा दें या न दें. कुछ देर के पश्चात् तूफान शांत हुआ और हृदय से एक प्रतिध्वनि आयी—'नहीं'. जिस ज्ञान से जीवन का सत्य उद्भासित नहीं होता, वह ज्ञान नहीं है. जीवन का सत्य तो ईश्वर के प्रेम से आलोकित होता है.' नरेन्द्र अपने छात्रावास के एक सहपाठी के कमरे के द्वार पर खड़े थे. उनकी मंत्रमुग्ध दृष्टि, अपने परिवेश से परे किसी अदृश्य को देखने में तन्मय थी. हृदय वीणा के तार पर भगवत्-महिमा का राग झंकृत हो उठा. वे सर्व-शक्तिमान् ईश्वर के सर्वव्यापी विराट रूप पर आधारित एक भजन गाने लगे. इस भजन के बोल उनके हृदय से प्रस्फुटित हो रहे थे. अतः गीत के स्वर अत्यन्त ही भावभीने थे. वे इतने भाव विभोर थे कि उन्हें न परिस्थिति का ज्ञान था. न समय का. इस प्रकार गाते-गाते ९ बज गये. उनके सहपाठी उनकी इस बदली हुई मनः स्थिति से शंकित हो गये. बहुत सोच विचार कर उन्होंने नरेन्द्र को परीक्षा प्रारम्भ होने के समय की याद दिलायी. किन्तु व्यर्थ. नरेन्द्र ने उस पर एक क्षण भी ध्यान नहीं दिया. उस दिन उनके मित्र उन्हें परीक्षा भवन में किसी भी तरह लिवा जाने

में सफल नहीं हो सके. परन्तु दूसरे दिन उनके मित्रों ने उन्हें विवश कर परीक्षा भवन में बैठा दिया. किसी तरह नरेन्द्र ने उस दिन प्रश्नोत्तर लिखे. स्नातक की परीक्षा इस प्रकार अनिच्छापूर्वक नरेन्द्र ने पूरी की. फिर भी परीक्षाफल में वे उत्तीर्ण घोषित हुए.

नरेन्द्र के कालेज के प्राध्यापकगण उनके प्रतिभाशाली व्यक्तित्व से प्रभावित थे. ये प्राध्यापक चाहे हिन्दुस्तानी हों या अंग्रेज, सभी को नरेन्द्र के अद्वितीय मस्तिष्क की झलक मिल चुकी थी. कालेज के प्राचार्य हेस्टी के शब्दों में—'नरेन्द्र वास्तव में प्रतिभाशाली है. मैंने दूर-दूर तक भ्रमण किया है किन्तु मुझे इस लड़के के समान कहीं भी प्रतिभा दिखाई नहीं पड़ी, यहां तक कि जर्मनी विश्वविद्यालय के दर्शन शास्त्र के विद्यार्थियों में भी नहीं. वह अवश्य ही अपने जीवन को अमर बनायेगा." नरेन्द्र जीवन की हर एक बात को, हर एक व्यवहार को तर्क की कसौटी पर कसने के बाद ही उस पर विश्वास करते थे. अध्ययन के समय अन्य मित्रों के साथ यदि किसी गहन विषय पर तर्क आरम्भ हो जाता तो फिर मनोरंजन के समय भी उसी विषय पर बहस चलती रहती. उनके अंग-अंग में अदम्य स्फूर्ति की लहरें लहराया करतीं. जान पड़ता जैसे उनकी शक्ति का ह्रास कभी होता ही नहीं. इसी प्रकार उनके वार्तालाप के भी असंख्य विषय होते. नरेन्द्र के एक मित्र के शब्दों में नरेन्द्र का निरूपण—'नरेन्द्र की बातों को सुनना आनन्दप्रद था. उसकी आवाज में संगीत की मधुरिमा थी. उसकी बातों का आनन्द लेने के लिए हम लोग किसी भी विषय पर वाद-विवाद आरम्भ कर देते. उसके विचार जितने मौलिक होते उतने ही मनोरंजक भी. वह नेपोलियन का प्रशंसक था. और लोगों को विश्वास दिलाने की कोशिश की कि किसी महान् उद्देश्य के अनुयायी को निःसंकोच आज्ञापालक होना चाहिए जैसा मार्शल ने सम्राट के प्रति किया.'

अपने शक्तिशाली मस्तिष्क के साथ-साथ नरेन्द्र ने भावुक हृदय भी पाया था. उनके हृदय में अपने मित्रों के प्रति अगाध स्नेह था. वे तन मन धन से उनकी मदद करने के लिए सदैव तैयार रहते थे. एक बार स्नातक वर्ग की अंतिम परीक्षा के समय उनके किसी सहपाठी के पास परीक्षा-शुल्क के रुपये नहीं थे. वह मित्र बहुत ही दीनावस्था में था. नरेन्द्र को जब यह सब मालूम हुआ तो वे उसे मदद करने का मार्ग ढूंढ़ने लगे. अंत में पता चला कि कालेज के अधीक्षक की इच्छा से यह शुल्क क्षमा हो जायेगा और सहपाठी इस प्रकार परीक्षा में उत्तीर्ण हो सकेगा. अतः सहपाठी की ओर से आवेदन पत्र देकर नरेन्द्र ने अधीक्षक से फीस माफ कर देने का आग्रह किया. किन्तु व्यर्थ. इसका कोई परिणाम नहीं निकला. परन्तु नरेन्द्र हार मानने वाले व्यक्ति नहीं थे. एक दिन जब वह अधीक्षक टहलने के लिए बाहर निकला, तब मार्ग में नरेन्द्र उनसे मिले और किसी भी तरह उन्हें समझा कर सह-पाठी के लिए निःशुल्क परीक्षा भवन में बैठने की अनुमति मांग ली.

सच्चाई एवं पवित्रता से उनका जीवन प्रारंभ से ही ओत-प्रोत था. ये अनमोल गुण नरेन्द्र को अपनी मां की ओर से विरासत में मिले थे. उनकी मां अपने कर्त्तव्य के प्रति सदा जागरूक रहीं. कर्त्तव्य के प्रति ऐसी अटूट भक्ति हृदय की पवित्रता के बिना असम्भव है. हृदय की पवित्रता का बल असीम है. इसका सहारा लेकर मानव ईश्वर तक पहुंच सकता है—अज्ञान के आवरण में लिपटी हुई आत्मा को अनावृत कर सकता है. भविष्य में नरेन्द्र ने अनुभव किया कि बिना इस पवित्रता के उनके आध्यात्मिक जीवन में कोई उन्नति नही हो पाती. उनकी दृष्टि में पवित्रता बुराई के प्रति निष्क्रिय अवरोध नहीं, अपितु एक ओजपूर्ण आध्यात्मिक शक्ति है.

विश्वविद्यालय जीवन के उत्तरार्द्ध में नरेन्द्र के पिता ने नरेन्द्र के विवाह का प्रश्न उठाया. नरेन्द्र को अपना जामाता बनाने के लिए अनेक पिता इच्छुक थे. कन्या वालों की ओर से नरेन्द्र को विदेश जाकर ऊंची शिक्षा प्राप्त करने के लिए पर्याप्त पैसे मिलने की भी उम्मीद थी. इनके पिता दहेज के प्रलोभन से और भी आकर्षित हुए. किन्तु नरेन्द्र को जब इसकी जानकारी हुई, उनकी आत्मा विद्रोह कर उठी. वे दुखी होकर कहते—'तुम लोग मुझे किधर खींच रहे हो ? विवाह करके मेरा सब कुछ समाप्त हो जायेगा.' नरेन्द्र को बचपन से ही विवाह का बंधन अप्रिय था. इन दिनों वे समाज-सेवा का स्वप्न देख रहे थे. फिर भी इस विषय पर अधिक वाद-विवाद कर माता-पिता के हृदय को कष्ट पहुंचाना भी उन्हें अच्छा नहीं लगता था. गहराई में उतरने पर नरेन्द्र अनुभव करते कि विवाह के प्रश्न को लेकर उनके मस्तिष्क के किसी कोने में थोड़ी सी हलचल थी—थोड़ा द्वन्द्व था.

जब वे शयन कक्ष में सोने जाते तब दो तरह के दृश्य उनके मानस-पट पर बारी-बारी से उभरते और विलीन हो जाते. पहला दृश्य सांसारिकता का होता; वैभव के बीच सुख और विलास का जीवन—सुन्दर सुशील पत्नी और परिवार, प्रतिष्ठा, यश और कीर्ति. दूसरा दृश्य आध्यात्मिकता का था—एक परिव्राजक, जिसने विश्व की सारी वासनाओं पर विजय प्राप्त कर, परब्रह्म परमात्मा की अनुभूति प्राप्त की है, जीवन के सत्य को समझा है, जो वन में या पर्वतों की तराई में नीलाम्बर के नीचे अपने जीवन की सारी रातें बिताता है और जिसने जीवित रहने के लिए आहार का उत्तरदायित्व भी नियति पर छोड़ रखा है.

नरेन्द्र इन दोनों दृश्यों के चतुर चित्रकार थे. वे शांत क्षणों में इन्हें सामने रख कर इनमें मनचाहा रंग भरते. दोनों चित्रों का अपना-अपना अलग आकर्षण था. दोनों ही चित्रों की भूमिका में नरेन्द्र अद्वितीय दिखाई देते. पर न जाने क्यों नरेन्द्र जितना ही सोचते, जितना ही भाव की गहराई में उतरते, दूसरे चित्र की भूमिका—संन्यासी की भूमिका उन्हें अधिक रुचिकर प्रतीत होती. सांसारिक व्यक्ति का चित्र मानसपट पर से धीरे-धीरे धूमिल होता हुआ लुप्त हो जाता.

संयोगवश ऐसा हुआ कि जब जब नरेन्द्र के विवाह की बात चली, तब तब परिवार में किसी न किसी प्रकार की कठिनाइयां उभरती रहीं और विवाह की चर्चा स्थगित होती गयी. नरेन्द्र को इससे बड़ी राहत मिली.

विश्वविद्यालय का जीवन समाप्त करते-करते नरेन्द्र के जीवन का आध्यात्मिक पथ खुल चला था. प्रकृति की ओट में छिपी हुई वास्तविकता को देखने के लिए मानो इनकी आँखें बेचैन थीं—सत्य की खोज के लिए इनका हृदय व्याकुल था. संसार का क्षणिक आनन्द इन्हें अपनी ओर आकर्षित नहीं कर सका. वाह्य रूप से सर्वसाधारण के समान जीवन व्यतीत करते हुए भी इनके अन्तर्मन का उद्देश्य कुछ और था जो इन्हें बार-बार उंगली दिखाता रहता कि तुम और लोगों से भिन्न हो, तुम्हारा जीवन-मार्ग भिन्न है. उन्हें पूर्ण विश्वास था कि कठिन साधना के द्वारा वे साध्य को निस्संदेह प्राप्त कर लेंगे. शुरू में उनका ध्यान ब्रह्म समाज की ओर गया. ब्रह्म समाज में दर्शन पर चर्चा होती. उपनिषदों के द्वारा परब्रह्म परमात्मा के निराकार रूप को समझाया जाता, उनके अस्तित्व का आभास दिलाया जाता. हृदय और मस्तिष्क की पवित्रता के लिए प्रार्थनाएँ होतीं. सभी लोगों के हृदय तृप्त होते. मगर नरेन्द्र के हृदय की प्यास नहीं बुझती. वे तृषित के तृषित ही रह जाते. उनके हृदय में यह बात उठती—संसार की कोई भी शक्ति यदि ब्रह्म के रूप को नहीं दिखा सकती तो सब व्यर्थ है. यह सारा दर्शन, यह सारा वेदान्त, यह सारी प्रार्थनाएँ, यह सारी पूजा-अर्चना—किसी का कोई मोल नहीं है. परमात्मा जिसने सारे संसार की रचना की है, चाहे वह अरूप ही क्यों न हो, यदि वह कहीं है, तो हृदय की पुनीत भक्ति के द्वारा उसे निश्चय ही देखा जा सकता है. भगवान भक्त की विह्वल प्रार्थना अवश्य ही सुनेंगे. धीरे-धीरे नरेन्द्र के हृदय में यह बात जड़ पकड़ती गयी कि बिना परब्रह्म के प्रत्यक्षीकरण की अनुभूति के जीवन निरर्थक है.

उन दिनों ब्रह्म समाज के नेताओं में महर्षि देवेन्द्र नाथ ठाकुर की बहुत ख्याति फैली हुई थी. जीवन के पिछले अध्याय में वे गंगा के एक नौका गृह में एकान्तवास करते थे. नरेन्द्र उनसे पहले एक बार अपने मित्र के साथ मिल चुके थे. इस बार विश्वविद्यालय के अन्तिम दिनों में जब नरेन्द्र का हृदय सत्य दर्शन के लिए आकुल रहने लगा तब उन्होंने एक बार फिर महर्षि से मिलने का निश्चय किया.

नरेन्द्र महर्षि की नौका पर पहुंचते हैं. उनके हृदय में सत्य दर्शन की क्षुधाग्नि धधक रही थी. असमय में उपस्थित, भावावेग से अधीर नरेन्द्र को देख कर महर्षि चौंक पड़ते हैं. महर्षि के सम्मुख नरेन्द्र अपने को वश में नहीं रख सके. सामना होते ही नरेन्द्र के आवेग-कम्पित होंठों से यह प्रश्न फूट निकला—'महाशय, क्या आपने ईश्वर को देखा है?' महर्षि की दो शान्त आँखें इस युवक के मुख पर जम गयीं. उन्हें कोई उपयुक्त उत्तर नहीं सूझा, उन्होंने बस इतना ही कहा, 'वत्स, तुम्हें योगी की आंखें प्राप्त हैं.' उत्तर के तुषारापात से नरेन्द्र का मुख मुरझा गया. वे वहां

से उदास लौट आये, किन्तु उनका जिज्ञासु हृदय कब मानने वाला था. महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर ने ईश्वर को नहीं देखा तो क्या. वे दूसरे आध्यात्मिक महापुरुषों के पास जायेंगे और चरम सत्य का दर्शन करेंगे. क्या ऐसा भी संभव है कि इन विभिन्न सम्प्रदायों के देवस्वरूप महामान्य लोगों ने भी ईश्वर को नहीं देखा होगा ? नहीं, ऐसा कभी नहीं हो सकता.

नरेन्द्र के हृदय में इस प्रकार के अनेक भाव उठते. वे अनेक सम्प्रदायों के आध्यात्मिक महापुरुषों से मिले. परन्तु उनके सत्य-दर्शन की पिपासा ज्यों की त्यों बनी रही. एक दिन अतीत की एक घटना उनकी आंखों के सामने सजीव हो उठी. उस दिन कालेज में अंग्रेजी के अध्यापक अनुपस्थित थे. इसलिए संस्था के प्राचार्य, प्रोफेसर विलियम हेस्टी, जो स्वयं अंग्रेजी के बहुत प्रख्यात विद्वान् थे, नरेन्द्र की कक्षा में अंग्रेजी साहित्य पर वक्तव्य देने आये. महाकवि वर्डस्वर्थ की एक कविता 'एक्सकर्जन' की व्याख्या करते हुए उन्होंने बताया कि कवि तन्मयता से प्राकृतिक सौंदर्य को हृदयंगम करते-करते कैसे अपनी सुध-बुध खो देता है और अलौकिक आनन्द प्राप्त करने लगता है. यह बात विद्यार्थियों की समझ के परे थी. प्राचार्य ने पुनः इस पर प्रकाश डाला—'पवित्र मन से किसी वस्तु विशेष का चिन्तन करने से इस प्रकार की अनुभूति होती है, यद्यपि इन दिनों इस तरह के व्यक्ति दुर्लभ ही होते हैं. मैंने सिर्फ एक व्यक्ति को देखा है जिन्होंने मानस का यह परम आनन्द प्राप्त किया है, और वे हैं दक्षिणेश्वर के श्री रामकृष्ण परमहंस. यदि तुम लोग वहां जाकर स्वयं उन्हें देखो तो समझ सकोगे.'

अब नरेन्द्र को याद आया. कुछ माह पूर्व सुरेन्द्रनाथ मित्र के यहाँ बैठक थी. वहाँ श्री रामकृष्ण भी आमन्त्रित थे. नरेन्द्र ने उस अवसर पर एक भजन गाया था और रामकृष्ण ने इसे बहुत तन्मयता से सुना था. उन्होंने गद्गद् कंठ से नरेन्द्र के गीत की सराहना की थी और उन्हें दक्षिणेश्वर आने के लिए आमंत्रित किया था. प्रोफेसर की बात सुन कर नरेन्द्र ने सोचा, 'मुझे दक्षिणेश्वर जाकर श्री रामकृष्ण से अवश्य ही मिलना चाहिए. कौन जाने इससे मेरे मन को शान्ति मिल जाये. उन्होंने श्री सुरेन्द्रनाथ मित्र के साथ दक्षिणेश्वर जाने का निश्चय कर लिया. इस यात्रा के साथ ही नरेन्द्र के जीवन में एक नये अध्याय का प्रादुर्भाव हुआ.

3

गुरु से साक्षात्कार

दक्षिणेश्वर का काली मन्दिर—इसके सभाकक्ष का मुख्य द्वार खुला हुआ है. द्वार पर आते ही श्री रामकृष्ण पर दृष्टि पड़ती है. बीच कमरे में चटाई पर बैठे हुए वे अपने शिष्यों के साथ विचार-विनिमय कर रहे हैं. इसी समय कुछ लोगों के पद-चाप की आहट हुई. पश्चिम द्वार से कुछ विद्यार्थियों ने कमरे में प्रवेश किया. इसमें कलकत्ता विश्वविद्यालय का एक स्नातक भी था. रामकृष्ण उसे देखते ही पहचान गए. इस विद्यार्थी को उन्होंने पहली बार एक सभा में देखा था. और इसके गीत सुने थे. वे उसकी ओर निर्निमेष दृष्टि से देखते रहे. हां, वही रूप: साधारण कद, गौर वर्ण का हृष्ट-पुष्ट शरीर, भोले-भाले मुखमण्डल पर शतदल के समान प्रस्फुटित दो सौम्य नयन. अपने वस्त्र और शरीर से बिलकुल लापरवाह सा, जैसे बाह्य संसार से उसका कोई संबंध नहीं, आंखें कुछ खोई-खोई सी, मानो बहिर्जगत् से अधिक अंतर्जगत् के विचारों में उलझी हुई हों. इसके साथ आये हुए मित्र सांसारिक आमोद-प्रमोद के प्रति झुकाव वाले साधारण नवयुवक मालूम पड़ते थे. रामकृष्ण को आश्चर्य होता है—भला कलकत्ते जैसे नगर के भौतिकवादी परिवेश से यह अलौकिक व्यक्तित्व कैसे निकल आया. किन्तु उनकी सूक्ष्म दृष्टि से यह बात छिपी नहीं रही कि यही वह व्यक्ति है जिसके लिए उनकी आत्मा विकल है. यही उनका निकटतम शिष्य बनेगा और उनकी वाणी को अमर करेगा. सामने चटाई बिछी हुई थी. रामकृष्ण ने आगन्तुकों से बैठने को कहा, वह युवक अपने मित्रों के साथ रामकृष्ण के सामने बैठ गया, फिर रामकृष्ण ने उसे गीत गाने को कहा, युवक ने बड़े ही भावपूर्ण ढंग से दर्द भरे स्वर में कुछ भजन गाये. भजन सुनते-सुनते रामकृष्ण अत्यंत ही भाव-विभोर हो उठे, वे अपने को किसी प्रकार भी रोक नहीं पाये और धीरे-धीरे भाव की तन्मयता में इतने खो गये कि उन्हें बाह्यजगत् का कुछ भी ज्ञान नहीं रहा, वे एक प्रकार से अलौकिक आनन्द में डूब गये.

गीत समाप्त होते ही रामकृष्ण की तंद्रा टूटी. वे अचानक उठकर खड़े हो गये और युवक नरेन्द्र का हाथ पकड़कर उत्तर वाले बरामदे में ले गये और पीछे का द्वार बन्द कर दिया. उनके इस आकस्मिक व्यवहार का अर्थ नरेन्द्र नहीं समझ सके.

उन्होंने सोचा कि रामकृष्ण अब कुछ गुप्त उपदेश देंगे, किन्तु नहीं, हुआ ठीक इसका उल्टा. रामकृष्ण का व्यक्तित्व एक अज्ञान बालक के समान दिखाई देने लगा. उन्होंने नरेन्द्र का हाथ अपने हाथों में ले लिया, उनकी आँखों से अविरल अश्रुधारा प्रवाहित होने लगी, उन्होंने भरे कंठ से और बड़े ही प्यार से संबोधित किया, मानो नरेन्द्र से उनकी बहुत अधिक घनिष्टता हो—'नरेन्द्र, आह ! तुम बड़ी देर से आये, तुम मुझे इतने दिनों तक प्रतीक्षा में रखकर निष्ठुर कैसे हो गये ? साँसारिक लोगों की कलुषित बातें सुनते-सुनते मेरे कान लगभग पक गये हैं. आह ! जो मेरी आंतरिक अनुभूतियों को समझे और सराहना करे, उसके सामने मैं अपने मस्तिष्क को हल्का करने के लिए कैसे विकल हूँ.' ये सारी बातें सिसकियों में कहते गये. फिर वे कुछ शांत हुए और क्षण भर बाद नरेन्द्र के सामने करबद्ध खड़े हो कर कहने लगे—'भगवन्, तुम नारायण के अवतार, प्राचीन काल के संत महात्मा नर हो जिन्होंने मानवता के कष्ट दूर करने के लिए पृथ्वी पर जन्म लिया है.' भावावेश में वे बहुत देर तक इस प्रकार की बातें बोलते रहे.

नरेन्द्र की दृष्टि में रामकृष्ण एक आध्यात्मिक व्यक्ति थे. सम्पूर्ण इन्द्रियों पर विजय प्राप्त कर लेने वाले एक योगी थे. परन्तु आज नरेन्द्र के सामने रामकृष्ण का एक दूसरा रूप था—बिल्कुल भावुकता में उन्मत्त सा. नरेन्द्र उनके व्यवहार से अचम्भित थे—'यह कौन मनुष्य है जिससे मैं मिलने आया हूँ, यह अवश्य ही महापागल है, क्यों ? मैं तो केवल विश्वनाथ दत्त का पुत्र हूँ, फिर भी यह मुझे इस तरह सम्बोधित कर रहा है.' किन्तु नरेन्द्र ने रामकृष्ण से कुछ कहा नहीं, वे उनकी बातें सुनते रहे, कुछ देर बाद रामकृष्ण अपने कमरे में जल्दी से गये—मानों उन्हें कोई भूली हुई बात याद हो आयी हो. क्षण भर बाद जब वे कमरे से लौटे तो उनके हाथों में मक्खन और कुछ मिठाइयां थीं. वे नरेन्द्र के मुख में अपने हाथ से मिठाई डालने लगे. नरेन्द्र की इच्छा अनिच्छा पर उनका तनिक भी ध्यान नहीं था, वे इतने आग्रहपूर्ण ढंग से मिठाइयाँ खिला रहे थे कि नरेन्द्र यंत्रवत् खाते गये, बीच-बीच में नरेन्द्र व्यर्थ ही कहते रहे—'कृपया मुझे मिठाइयां दे दीजिए, मैं अपने मित्रों के साथ खाऊँगा.' किन्तु रामकृष्ण ने जैसे कुछ भी नहीं सुना, वे सरलता से कहते रहे—'उन्हें भी पीछे कुछ मिलेगा.' जब उनके हाथों की सारी चीजें समाप्त हो गयीं तो उन्होंने नरेन्द्र का हाथ पकड़कर कहा—'वचन दो कि तुम अकेले जल्दी ही मेरे पास आओगे.' उनके इस प्रेमपूर्ण आग्रह को नरेन्द्र ठुकरा नहीं सके. उन्हें हाँ कहना ही पड़ा.

इसके बाद रामकृष्ण नरेन्द्र को अपने साथ सभा कक्ष में ले आये. वहाँ नरेन्द्र के मित्रगण तथा अनेक व्यक्ति बैठे हुए थे. नरेन्द्र के साथ कमरे में प्रवेश करते ही रामकृष्ण ने प्रस्तुत लोगों से कहा—'देखो, विद्या की देवी, सरस्वती की विभा से नरेन्द्र कैसा दमक रहा है.' रामकृष्ण की बात सुनकर लोग सचमुच आश्चर्य से

नरेन्द्र की ओर देखने लगे. रामकृष्ण ने नरेन्द्र की ओर देखकर पुनः पूछा—'क्या तुम्हें निद्रा के पूर्व अपनी भौंहों के बीच एक प्रकाश दिखाई देता है?' 'हाँ, मान्यवर.' नरेन्द्र ने उत्तर दिया. रामकृष्ण ने फिर कहा—'आह, यह सत्य है. जन्म से ही ध्यान में रत ये ध्यान-सिद्ध है.'

रामकृष्ण के आसन ग्रहण करने के वाद नरेन्द्र भी वैठ गये. नरेन्द्र के हृदय में रामकृष्ण के प्रति द्वन्द्वात्मक भाव जागृत होते रहे. उनके वचन-व्यवहार और व्यक्तित्व कुछ इस प्रकार के थे कि नरेन्द्र निश्चित नहीं कर पा रहे थे कि आखिर वह मनुष्य क्या है. नरेन्द्र वहाँ वैठे-वैठे उन्हें देखते रहे. उनके मस्तिष्क में तरह-तरह के विचार चक्कर काट रहे थे. दूसरों के प्रति रामकृष्ण की वाणी, क्रिया-कलाप या व्यवहार में कुछ भी असाधारणता नहीं थी—सब कुछ उचित था. उनकी आध्यात्मिक वातें, ध्यानावस्थित रूप, उनके पूर्ण वैराग्य की घोषणा कर रहे थे. उनकी वाणी और जीवन में गहरा सम्बन्ध था. लगता था अपनी अथक साधना के द्वारा उन्होंने अपने और ईश्वर तक के वीच की दूरी मिटा डाली थी. लोगों की दृष्टि में वे मानव रूप ईश्वर के अवतार थे. नरेन्द्र समुदाय में वैठे हुए रामकृष्ण के व्यक्तित्व का मन ही मन विश्लेषण कर रहे थे. रामकृष्ण की भाषा जो वे सुन रहे थे, वह वहुत ही सरल थी—साधारण जन समुदाय के समझने लायक. सरल भाषा के द्वारा आध्यात्म के कठिन-गूढ़ विचार वे वड़े सहज रूप से स्पष्ट कर देते थे. इनमें वहाँ शिक्षक की योग्यता थी. नरेन्द्र ने सोचा वे ठीक जगह पर आये हुए हैं. उन्होंने यहाँ आकर कोई भूल नहीं की है. एक प्रश्न, जो नरेन्द्र के हृदय में जमकर वैठा था, अभी उनके हृदय को उद्विग्न वना रहा था. अवसर पाते ही उन्होंने पूछा—'महाशय, क्या आपने ईश्वर को देखा है?' रामकृष्ण ने तुरन्त सहज भाव से उत्तर दिया—'हाँ मैं उसे देखता हूँ, ठीक उसी तरह जैसे मैं अभी तुम्हें देख रहा हूँ. वलिक इससे तीव्र अनुभूति में ईश्वर को अनुभव किया जा सकता है. कोई उसे देख सकता है, उससे वातें कर सकता है, जैसे मैं अभी तुमसे वातें कर रहा हूँ. मगर इसकी गरज किसे है? लोग अपने धन-दौलत, वाल-वच्चों के लिए आँसुओं की मूसलाधार वृष्टि करते हैं, किन्तु भगवान के लिए ऐसा कौन करता है? यदि उनके लिए कोई सच्चाई से रोवे तो वे जरूर अपने को प्रकट करेंगे.' नरेन्द्र का सारा शरीर रोमांचित था. विस्मित आँखें रामकृष्ण पर जम सी गई थीं. हृदय न जाने किस वशीकरण मंत्र के प्रभाव से अपना सुधवुध खोकर झूम रहा था. इतने दिनों वाद आज प्रथम वार उन्हें वह व्यक्ति मिला जिसने यह कहने का साहस किया कि उसने ईश्वर को देखा है. नरेन्द्र को पूरा विश्वास था कि रामकृष्ण ने जो कुछ भी कहा वह एक साधारण उपदेशक के रूप में नहीं, वलिक निजी अनुभूतियों की गहराई के आधार पर. किन्तु नरेन्द्र के साथ रामकृष्ण ने जो व्यवहार किया था या वातें की थीं, वे अभी भी नरेन्द्र को अजीव सी लगती रहीं. अंत में उन्होंने निष्कर्ष

निकाला कि ये रामकृष्ण किसी सनक की बीमारी से ग्रस्त हैं. इसके साथ ही साथ वे रामकृष्ण के वैराग्य की महानता को स्वीकार करने से अपने को नहीं रोक सके. नरेन्द्र सोचते रहे कि रामकृष्ण एक उन्मत्त पुरुष हो सकते हैं, किन्तु भला कितने भाग्यवान लोगों को इनके समान ईश्वर के साक्षात्कार की अनुभूति प्राप्त होगी ? भावुक हृदय की दुर्बलताओं के कारण पागल होते हुए भी, यह मनुष्य सच्चा साधु है, पुनीतों में परम पुनीत. सिर्फ इसीलिए यह मानवता की सादर श्रद्धांजलि का अधिकारी है. इस प्रकार के परस्पर विरोधी विचारों के साथ नरेन्द्र रामकृष्ण के सामने नत मस्तक हुए और कलकत्ता लौटने की आज्ञा मांगी.

कलकत्ता लौटने के बाद नरेन्द्र पूर्ववत् अपनी पढ़ाई में व्यस्त रहने लगे. रामकृष्ण को दिया हुआ वचन वे करीब-करीब भूल से गये कि उन्हें जल्दी ही दक्षिणेश्वर जाना है. किन्तु अवचेतन मन उन्हें कब तक शान्त रहने देता. करीब एक महीने बाद एक दिन उनका मन दक्षिणेश्वर जाने के लिए व्यग्र हो उठा. वे पैदल ही दक्षिणेश्वर के मन्दिर की ओर चल पड़े. पहली बार वे गाड़ी से वहाँ गये थे. इस बार उन्हें गाड़ी का ध्यान नहीं आया. एक अदृश्य शक्ति उन्हें दक्षिणेश्वर की ओर बहुत तेजी से खींच रही थी. कलकत्ते से दक्षिणेश्वर की यात्रा काफी लम्बी है. वे चलते रहे और चलते रहे. अन्त में दक्षिणेश्वर पहुँचते-पहुँचते उनके अंग-प्रत्यंग थक कर टूट रहे थे. दक्षिणेश्वर के उद्यान से होते हुए उनके पाँव रामकृष्ण के कमरे की ओर बढ़ गये.

कमरे में रामकृष्ण एक छोटी सी चारपाई पर बैठे हुए थे. नरेन्द्र को देखते ही उनका मुखमंडल खुशी से खिल उठा. बड़े प्यार के साथ उन्होंने नरेन्द्र को बुलाया और चारपाई पर अपनी बगल में बैठाया. क्षण भर बाद वे भाव विभोर हो उठे. अपने आप से कुछ बोलते हुए वे धीरे से नरेन्द्र की ओर खिसक आये और एकाग्र दृष्टि से उनकी ओर देखने लगे. नरेन्द्र कुछ सहमे से हो गये शायद पिछली बार के समान आज रामकृष्ण फिर कोई अनोखा व्यवहार न कर बैठें. परन्तु उन्होंने नरेन्द्र से कुछ नहीं कहा. सिर्फ अपना दाहिना पाँव नरेन्द्र के शरीर पर टिका दिया. यह स्पर्श बड़ा ही अद्भुत था. इससे नरेन्द्र को सर्वथा नयी अनुभूति प्राप्त हुई. नरेन्द्र ने देखा कि कमरे की दीवारें तथा सभी वस्तुएँ वेगपूर्ण गति से घूमने लगीं और अंत में सभी शून्य में विलीन हो गयीं. उनके व्यक्तित्व और अहं के साथ सारा संसार रहस्यमय शून्य में समा गया. वे बहुत ही भयत्रस्त हो गये और सोचने लगे कि शायद मृत्यु उनके निकट है. मगर व्यक्तित्व का लोप हो जाने से इस तरह की बात की संभावना जाती रही. वे अपने को किसी प्रकार भी वश में नहीं कर सके. अतः चिल्लाकर बोले—'आप मुझे क्या कर रहे हैं ? मेरे माता-पिता घर पर हैं.' इस पर रामकृष्ण ठठाकर हँस पड़े और नरेन्द्र की छाती को थपथपाते हुए कहा—'ठीक है अब इसे छोड़ दो. सभी चीजें समय पर आ जायेंगी.' कितना आश्चर्य ! उनके ऐसा कहते ही नरेन्द्र के सारे अनोखे अनुभव अंतर्ध्यान हो गये. उनकी स्थिति पूर्ववत् हो

गयी. उनका अंतर्जगत् शांत था. वाह्यजगत् की सभी चीजें, कमरे वगैरह सबके सब पूर्ववत् स्थिर हो गये. यह सारी घटना क्षणभर के लिए थी. किन्तु इसने नरेन्द्र के मस्तिष्क में काफी दिनों तक उथल-पुथल मचाये रखा.

इस घटना ने नरेन्द्र को बहुत ही आश्चर्यान्वित किया था. किन्तु इसके साथ-साथ उनका हृदय अब बहुत ही विकल हो गया. रामकृष्ण उनके सामने एक रहस्य बने हुए थे. नरेन्द्र बराबर सोचते रहते—'आखिर इस मनुष्य में कौन सी ऐसी चीज है, कौन सा ऐसा जादू है जिसने मुझे वशीभूत कर लिया है. क्या यह मूर्छित करने वाला जादू है ? नहीं, इसका प्रभाव तो दुर्वल मस्तिष्क पर पड़ता है. मेरा मस्तिष्क दृढ़ है, स्थिर है. मुझ पर इसका असर नहीं पड़ सकता. तो फिर यह मनुष्य है क्या ? मैं तो इसे अब तक झक्की ही समझता रहा था. परन्तु इसमें कोई अद्भुत शक्ति अवश्य है जिसने मुझे परवश बना दिया था. मैं अपने आपको भूल बैठा था. क्या वे सचमुच भगवान के अवतार हैं ?' नरेन्द्र इस प्रकार के अनेक द्वन्द्वात्मक विचारों से पीड़ित रहे. उनकी बुद्धि युक्तिसंगत उत्तर देने में असमर्थ रही. उन्होंने दृढ़ संकल्प किया कि वे रामकृष्ण के प्रभाव में नहीं आयेंगे. नरेन्द्र यह सब सोच ही रहे थे कि रामकृष्ण ने अपना पहला रूप धारण किया. वे पुनः ममता की मूर्ति बन गये. नरेन्द्र से बड़ा ही स्नेहसिक्त व्यवहार करने लगे जैसे कोई लम्बी जुदाई के बाद अपने सम्बन्धी से मिल रहा हो या बहुत दिनों के बाद अपने पुराने निकटतम मित्र से मिल रहा हो. ऐसा लगता था कि नरेन्द्र की पूरी आवभगत या देखभाल के बाद भी उन्हें सन्तोष नहीं मिल रहा हो. इस प्रकार उनके अत्यंत प्यार भरे आचरण से नरेन्द्र उनकी ओर बरबस खिंचते चले गये. अन्त में जब दिन समाप्त हो चला तब नरेन्द्र ने कलकत्ता लौटने की आज्ञा मांगी. नरेन्द्र के इस प्रस्ताव से उनका खिला हुआ मुख मुरझा गया. वे हतोत्साह से हो गये. फिर कुछ सोचकर, नरेन्द्र को जल्दी आने के लिए वचनबद्ध करवाया और तब लौटने की अनुमति दी.

नरेन्द्र काफी रात बीतने पर कलकत्ता लौटे. इस बार उन्हें रामकृष्ण को दिये गये वचन की याद प्रायः आती रही वे बहुत दिनों तक अपने को वश में नहीं रख सके. रामकृष्ण से मिलने की इच्छा उन्हें सताने लगी. तीन-चार दिन कठिनाई से बीत पाये होंगे कि वे पुनः दक्षिणेश्वर की ओर चल पड़े. उन्हें ऐसा अनुभव होता जैसे वे स्वेच्छा के विरुद्ध अनायास उस योगी के वश में होते चले जा रहे हैं. सांस्कृतिक और आध्यात्मिक दृष्टि से रामकृष्ण प्राचीन भारत के प्रतीक थे. कठिन साधना और अटूट विश्वास के द्वारा उन्होंने ईश्वर का साक्षात्कार किया था. उनके निश्छल करुण-क्रन्दन और भावविह्वल चीत्कार को मां काली सहन नहीं कर सकी. अतः उन्हें रामकृष्ण के सामने प्रकट होना ही पड़ा. परन्तु आधुनिक शिक्षा की विचारधारा में पले हुए नरेन्द्र ईश्वर सम्बन्धी किसी भी बात को बिना तर्क की कसौटी पर कसे स्वीकार करने वालों में नहीं थे. उनके हृदय में अनेक संशयात्मक

विचारों का प्रलयंकारी तूफान उठा हुआ था. वे इस तूफान के थपेड़ों से व्याकुल थे. रामकृष्ण के सम्पर्क से उन्हें शांति मिलने लगी थी. लगता था कि उनके हृदय के सम्पूर्ण संशयात्मक विचारों का समाधान सिर्फ रामकृष्ण के ही पास है. साधना और वैराग्य, जीवन के ये दो महान लक्ष्य उन्हें आकृष्ट कर रहे थे. रामकृष्ण के बन्धन में वे अपनी आत्मा की मुक्ति का स्वप्न देखने लगे. धीरे-धीरे उनके हृदय में यह आस्था जड़ जमा रही थी कि जीवन में गुरु का भी कुछ महत्व है. रामकृष्ण से मिलने के पहले, वे कल्पना भी नहीं कर पा रहे थे कि रामकृष्ण जैसे व्यक्ति में इतनी आध्यात्मिक शक्ति अंतर्हित होगी और उनके दृढ़ मस्तिष्क पर उसका प्रभाव भी पड़ेगा. मगर रामकृष्ण से दो बार मिलने के बाद बात कुछ दूसरी हो गयी थी.

नरेन्द्र इस बार दृढ़ संकल्प होकर रामकृष्ण के पास आये थे कि फिर इस योगी के स्पर्श का अपने मस्तिष्क पर कोई प्रभाव नहीं पड़ने देंगे. नरेन्द्र को तीसरी बार अपने समीप देखकर रामकृष्ण फूले नहीं समाये. वे नरेन्द्र के साथ टहलते हुए पास की वाटिका में चले गये. वहाँ कुछ घूमने के बाद दोनों व्यक्ति एक चबूतरे पर बैठ गये. इसके बाद बातें करते-करते रामकृष्ण समाधिस्थ हो गये और इसी दशा में नरेन्द्र को हल्के से स्पर्श किया. इतने निश्चय और सावधानी के रहते हुए भी नरेन्द्र अपने को सँभाल नहीं सके. उन्हें अचानक असीम आनन्द का अनुभव होने लगा और फिर उनकी बाह्य चेतना जाती रही. उन्हें लगा जैसे वे महाशून्य में समा गये हों. कुछ देर बाद जब उनकी चेतना लौटी तो उन्होंने देखा कि रामकृष्ण उनके वक्षस्थल को थपथपा रहे हैं. इसके पहले क्या-क्या हुआ, नरेन्द्र को कुछ पता नहीं. नरेन्द्र जब मूर्छा की स्थिति में थे तब रामकृष्ण ने नरेन्द्र के विषय में अनेक बातें उन्हीं के मुख से सुन ली थीं.

रामकृष्ण जब अपने निर्विकल्प समाधि में होते थे तो उन्हें अलौकिक अनुभूति होती. पानी के बुलबुले के समान सारा संसार उनकी आँखों के सामने से विलीन होता नजर आता. भूत, वर्तमान और भविष्यत् तीनों काल उनके नेत्रों के सामने उपस्थित हो जाते. इस प्रकार वे जानते थे कि उनकी सहायता के लिए अनेक श्रद्धालु व्यक्ति जन्म लेंगे या ले चुके हैं. अपनी इस योग शक्ति से वे नरेन्द्र के पूर्व-जन्म के विषय में नरेन्द्र से मिलने के पहले ही जान गये थे. मूर्छा की हालत में नरेन्द्र ने अपने पूर्व जन्म के विषय में या वर्तमान के विषय में जो कुछ कहा, रामकृष्ण उससे भलीभाँति परिचित थे. बहुत दिन पहले रामकृष्ण को एक बार ऐसा आभास हुआ जैसे आकाश मार्ग से वाराणसी का कोई प्रकाशपुंज कलकत्ते की ओर बड़े वेग से तीर की तरह आया. तभी वे खुशी से चिल्ला पड़े थे—'ईश्वर ने मेरी प्रार्थना सुन ली. मेरा व्यक्ति किसी दिन मेरे पास अवश्य आएगा.' इस प्रकार रामकृष्ण को पूर्ण विश्वास था कि 'उनका व्यक्ति' नरेन्द्र के रूप में उनका सहायक बनकर आया हुआ है. यही व्यक्ति सदा-सदा के लिए उनका अपना है.

मूर्छा की स्थिति में रामकृष्ण ने जो कुछ भी नरेन्द्र से कहलवाया, उससे नरेन्द्र अनभिज्ञ थे. नरेन्द्र पूर्व जन्म में एक पूर्णता प्राप्त ध्यानसिद्ध योगी थे. रामकृष्ण ने सोचा कि नरेन्द्र को अपनी पूर्व महानता का ज्ञान इतना शीघ्र नहीं होने देना चाहिए. उनके सामने अभी प्रशस्त कर्मभूमि थी—भारतमाता को उनकी सेवा की जरूरत थी, दुनिया को उनके प्रकाश की आवश्यकता थी. अपने जीवन में जब वे एक कर्मयोगी का कर्तव्य निभा लेंगे, तब वे अपनी आंतरिक योग शक्ति को पहचान पायेंगे. इसलिए रामकृष्ण ने अपने संकल्प बल से नरेन्द्र के अवचेतन मन से उन बातों को अलग रखा.

नरेन्द्र प्रारम्भ से ही नास्तिक थे. धार्मिक ग्रंथ या शास्त्र की अनेक निषेधाज्ञाओं की वे खिल्ली उड़ाया करते थे, मस्तिष्क में उपजते हुए अनेक संदेहों और जिज्ञासाओं को धार्मिक ग्रंथों की मान्यताओं से ढंक कर समूल नष्ट कर देना उन्होंने नहीं सीखा था. उनकी तार्किक बुद्धि सदा सजग रहती थी, तर्क द्वारा छानबीन के बाद वे जिस निष्कर्ष पर पहुंचते, उसी पर उनकी विश्वासशिला आधारित होती. नरेन्द्र का रामकृष्ण की ओर आसानी से नहीं झुकना, उनकी अपनी आस्थाएँ तथा सत्य-दर्शन की तीव्र आकांक्षा इत्यादि अनेक बातों से रामकृष्ण अवगत थे, कुछ इन कारणों से भी रामकृष्ण नरेन्द्र की ओर आकर्षित थे.

नरेन्द्र के प्रति रामकृष्ण का स्नेह इतना प्रगाढ़ था कि जब कभी नरेन्द्र को दक्षिणेश्वर आने में देर होने लगती तो वे अत्यंत अधीर हो उठते. वे एक बालक की भाँति रोने लगते और माँ काली के सामने हाथ जोड़ कर प्रार्थना करने लगते कि वे नरेन्द्र को शीघ्र उनसे मिला दें. जब तक नरेन्द्र उनसे मिलने नहीं आते, तब तक उनकी बेचैनी बढ़ती जाती थी. नरेन्द्र या अन्य शिष्यगण रामकृष्ण की इस हालत को समझ नहीं पाते थे. नरेन्द्र अक्सर उन्हें मतिभ्रम रोग से पीड़ित समझते, किन्तु साथ ही अपने प्रति उनके अपार स्नेह को देखकर वे भाव विभोर हो जाते. यह रामकृष्ण का अदम्य प्यार ही था जो नरेन्द्र जैसे स्वच्छन्द मस्तिष्क वाले व्यक्ति पर भी अंकुश डाल रहा था. नरेन्द्र ने एक बार कहा था—'यह मेरे प्रति उनका प्यार ही मुझे उनके साथ बांध रहा है.' एक बार नरेन्द्र बहुत दिनों से दक्षिणेश्वर नहीं आये थे. रामकृष्ण बेचैन हो रहे थे. जब उनके दो शिष्य रामदयाल और बाबूराम मिलने आये तो रामकृष्ण ने उन लोगों से कहा—'नरेन बहुत दिनों से यहाँ नहीं आया है, मुझे उसे देखने की बड़ी आकांक्षा है. क्या तुम उससे जल्दी यहाँ आने को कह सकते हो ? भूलोगे तो नहीं ?' उन शिष्यों को उस दिन वहीं रहना था, उस रात करीब ग्यारह बजे तक सभी लोग अपने-अपने स्थान पर सोने गये. करीब आधी रात को रामकृष्ण अपना एक कपड़ा बगल में दबाये हुए रामदयाल के पास आये और बोले—'अरे क्या तुम सो गए ?' रामकृष्ण की आवाज सुनते ही 'नहीं गुरुदेव' कहते हुए रामदयाल उठ बैठे. 'इधर देखो, कृपया नरेन से जल्दी आने को

कहा, मुझे लगता है जैसे कोई मेरे हृदय को गीले तौलिए के समान निचोड़ रहा है.' रामकृष्ण ने अपनी बगल में दबाये हुए कपड़े को लेकर ऐंठते हुए कहा. रामदयाल रामकृष्ण के स्वभाव से परिचित थे. अतः उन्होंने नरेन्द्र को शीघ्र बुलवाने का आश्वासन देकर बहुत समझाया बुझाया. उस रात रामकृष्ण अत्यंत बेचैन रहे. रामकृष्ण के अन्य शिष्य जो वहाँ उपस्थित थे, उनके इस स्वभाव को देखकर बहुत चकित हुए.

एक दिन रामकृष्ण अपने कुछ शिष्यों के साथ बैठकर नरेन की प्रशंसा कर रहे थे. बातें करते ही करते वे उन्हें देखने की इच्छा से भाव-विह्वल हो उठे और अपने को वश में नहीं रख सके. वे पास के बरामदे में जाकर जोर से चिल्लाने लगे, 'हे देवी माँ, मैं उसे देखे बिना नहीं जी सकता.' कुछ क्षण बाद वे लौटकर कमरे में शिष्यों के पास आये और कहने लगे—'मैं इतना रोता रहा, किन्तु नरेन नहीं आया. मेरा हृदय ऐंठा जा रहा है, उसे नहीं देखने पर मुझे बेतरह कष्ट होता है, मगर उसे इसकी चिन्ता नहीं है.' वे व्यग्रता से बाहर चले गये और फिर शीघ्र अन्दर आकर कहने लगे—'एक वृद्ध मनुष्य एक बालक के लिये कष्ट झेल रहा है, बिलख रहा है, मेरे विषय में लोग क्या कहेंगे. तुम लोग मेरे अपने हो, अतः तुम लोगों के सामने मुझे स्वीकार करते हुये लज्जा का अनुभव नहीं होता. मगर दूसरे लोग भला क्या सोचेंगे, मैं अपने को वश में नहीं रख सकता.' बाद में जब नरेन्द्र दक्षिणेश्वर आये तो रामकृष्ण की खुशी की कोई सीमा नहीं रही.

एक बार इसी तरह जब भक्तगण दक्षिणेश्वर में गुरुदेव का जन्मदिन मना रहे थे और मध्याह्न तक उनके प्रिय शिष्य नरेन नहीं आये, तब उन्होंने बार-बार उन के विषय में पूछना आरम्भ किया. अन्त में जब नरेन्द्र वहाँ पहुँचे और उनके सामने नतमस्तक हुए, तब गुरुदेव आशीर्वचन कहते हुए उनके कन्धे की ओर झुके और वहीं तत्क्षण समाधिस्थ हो गये. बहुत देर बाद उनकी समाधि टूटी तो नरेन्द्र का कुशलक्षेम पूछा और प्यार से उन्हें अपने हाथों खिलाया-पिलाया. नरेन्द्र को देखकर रामकृष्ण इतने अधिक भाव-विभोर हो उठते कि तुरन्त ही समाधि में डूब जाते थे. एक बार नरेन्द्र बहुत दिनों के बाद दक्षिणेश्वर आये थे. अभी वे गंगा के घाट पर थे कि रामकृष्ण ने किसी से नरेन्द्र के आने के विषय में सुन लिया और वे स्वयं घाट पर चले गये. वहाँ नरेन्द्र को देखकर उन्हें जी में जी आया. नरेन्द्र के मुखमंडल को बड़े प्यार से स्पर्श कर उन्होंने वेद के अनेक शुचि मंत्रों का उच्चारण शुरू किया और वहीं समाधिस्थ हो गये. अपनी पांच साल की शिक्षा दीक्षा के समय में नरेन्द्र सप्ताह में एक या दो बार गुरुदेव से मिलने अवश्य आया करते थे. पिछले सालों की पारिवारिक उलझनों ने उन्हें दक्षिणेश्वर उतनी बार नहीं जाने दिया, जितनी बार वे जाना चाहते थे. उन दिनों रामकृष्ण ने यह सोचकर अपने को धैर्य बंधाया कि 'नरेन्द्र नहीं आता है, यह अच्छा हुआ क्योंकि उसे देखते ही मैं हृदय में विप्लव

अनुभव करने लगता हूँ. उसका यहाँ आना एक बड़ी घटना बन जाती है.'

रामकृष्ण नरेन्द्र को तथा कुछ चुने हुए शिष्यों को नित्यसिद्ध (जो जन्म-जात पूर्ण है) कहा करते थे, उनका विचार था कि ऐसे 'नित्यसिद्ध' स्वयं सिद्ध होते हैं, उन्हें शिक्षा-दीक्षा की आवश्यकता नहीं होती, गुरु के सम्पर्क से जो कुछ भी उनकी शिक्षा-दीक्षा होती है उससे उनकी नहीं वल्कि संसार की भलाई होती है.

रामकृष्ण अपने भक्तों या किसी के भी सम्मुख नरेन्द्र की प्रशंसा करने से हिचकते नहीं थे. आवश्यकता से अधिक प्रशंसा का प्रभाव कभी-कभी प्रतिकूल हो जाता है, प्रशंसित व्यक्ति घमंड के नशे में आ जाता है, परन्तु यह सब उक्तियाँ साधारण लोगों के लिए हैं. नरेन्द्र का मस्तिष्क इन सब संकीर्णताओं से परे है, यह रामकृष्ण अच्छी तरह जानते थे. एक वार रामकृष्ण ब्रह्म समाज के लोगों तथा उसके ख्याति प्राप्त नेता केशव चन्द्र सेन और विजय कृष्ण गोस्वामी के साथ वातें कर रहे थे. नरेन्द्र भी वहाँ थे. वातें करते-करते रामकृष्ण ने एक वार केशव चन्द्र और विजय कृष्ण को देखा और फिर इसके वाद नरेन्द्र को देखा. उनकी तीव्र दृष्टि जैसे काल के पर्दे को भेद कर उन लोगों के भविष्य की ओर देख रही थी. नरेन्द्र का उज्ज्वल भविष्य रामकृष्ण के मानस-पट पर उभर आया. उनकी दृष्टि नरेन्द्र के प्रति प्यार से वोझिल हो गयी. जव ब्रह्मसमाजियों के साथ की सभा समाप्त हुई, रामकृष्ण ने अपने शिष्यों से कहा—'यदि केशव के पास महानता का एक अंक है, जिसने उन्हें इतना विख्यात वना दिया, तो नरेन के पास ऐसे अट्ठारह अंक हैं. मैंने देखा कि केशव और विजय के अन्दर ज्ञान का प्रकाश दीपक के प्रकाश के समान हैं, किन्तु नरेन के अन्दर यह प्रज्वलित सूर्य के प्रकाश के समान है जो अज्ञानता और भ्रम के अन्तिम अवशेषों को नष्ट कर रहा है.' नरेन्द्र ने यह सब सुना, परन्तु उन पर इसका कोई प्रभाव नहीं पड़ा, उनकी जगह कोई और होता तो गर्व से फूला नहीं समाता.

केशव चन्द्र और विजय कृष्ण की तुलना में वे अपने को नगण्य मानते थे. उन्होंने रामकृष्ण से इसका विरोध किया—'महानुभाव, आप इस तरह की वातें क्यों करते हैं ? लोग आपको पागल समझेंगे, विश्वविख्यात केशव और संत विजय कृष्ण की तुलना मुझ जैसे तुच्छ युवक विद्यार्थी से कैसे कर रहे हैं ? कृपाकर ऐसा फिर नहीं कहें.' यह सुनकर रामकृष्ण मन ही मन प्रसन्न ही हुए और कहा—'मैं विवश हूँ. क्या तुम समझते हो वे मेरे शब्द थे ? देवी माँ ने मुझे कुछ चीजें दिखायी थीं, मैंने सिर्फ उन्हीं की पुनरावृत्ति की है, वे सत्य के सिवा और कुछ नहीं दिखातीं.'

नरेन्द्र को देवी के द्वारा भविष्यवाणी का प्रसंग प्रभावित नहीं कर सका, उन्होंने अपने संशय को वड़े खुले शब्दों में रामकृष्ण के सामने रखा—'कौन जाने यह देवी वाणी माँ के द्वारा मिली है या अपने मस्तिष्क की कल्पना है, यदि मैं आपकी जगह होता तो इसे स्वच्छ सरल कल्पना की उपज समझता, पश्चिमी विज्ञान और दर्शन ने यह प्रदर्शित कर दिया है कि हमारी इन्द्रियां अक्सर हमें धोखे में डाल

देती हैं और जहां वैयक्तिक झुकाव है वहाँ भ्रांति का संयोग और अधिक है, आप मुझे प्यार करते हैं और बराबर मुझे महान् देखना चाहते हैं, इसलिए इस प्रकार की कल्पना आपके मस्तिष्क में उपजे, यह बिल्कुल स्वाभाविक है.' नरेन्द्र की इस प्रकार की बातों से रामकृष्ण कभी-कभी विचलित हो जाते थे, किन्तु इस बार उनका मस्तिष्क आध्यात्मिकता के ऊंचे धरातल पर था. अतः उन्होंने नरेन्द्र की बात का कोई ख्याल नहीं किया. पीछे कभी नरेन्द्र ने फिर इसी प्रकार की बातें कीं तो रामकृष्ण देवी माँ के पास फैसले के लिए गये, माँ काली के द्वारा उन्हें सांत्वना मिली—'जैसे वह कहता है, उसकी तुम परवाह क्यों करते हो? कुछ दिनों बाद वह स्वयं ही सच्चाई के हर शब्द को स्वीकार करेगा, गुरु द्वारा बोले हुए प्रशंसा के शब्दों में जादू का चमत्कार होता है. यह एक वशीकरण मंत्र है जो न केवल व्यक्ति को ही वश में लाता है, वरन् व्यक्ति के आत्मविश्वास को भी परा-काष्ठा पर पहुँचा देता है. रामकृष्ण द्वारा नरेन्द्र की प्रशंसा का भी ऐसा परिणाम हुआ. इसने नरेन्द्र को काफी सहारा दिया और जीवन भर प्रेरणा देता रहा. विद्यार्थी नरेन्द्र जब स्वामी विवेकानन्द के रूप में सारे संसार को महासंदेश दे रहे थे, तब भी रामकृष्ण के अनमोल शब्द उनमें अक्षय साहस और शक्ति का संचार करते रहे. किन्तु प्रारम्भ में नरेन्द्र को इसका महत्व समझ में नहीं आता था.

नरेन्द्र कभी-कभी रामकृष्ण के अत्यधिक प्रेम प्रदर्शन से ऊब जाते थे. उन्हें यह सब बिल्कुल नहीं भाता था. एक बार उन्होंने कहा भी था—'अपने प्रति उनके अंधे प्रेम के लिए कटु शब्द प्रयोग करने में मैं कभी नहीं सहमा. मैं उन्हें यह करते हुए सचेत कर दिया करता था कि यदि वे बराबर मेरे विषय में सोचा करेंगे तो मेरे समान ही बन जायेंगे जैसे कि पौराणिक कथा के राजा भरत, जो अपने पाले हुए हिरण से इतने सम्बद्ध थे कि मृत्यु के समय भी वे उसे छोड़ किसी और का ध्यान करने में असमर्थ थे. फलस्वरूप दूसरे जन्म में वे हिरण हो गये।' वह बोले—'जो तुम कह रहे हो वह पूर्ण सत्य है. मेरा क्या बनना. मैं तो तुमसे अलग होना सहन नहीं कर सकता.' दुखी और हतोत्साह होकर वे काली मंदिर में चले गये. कुछ देर बाद वे मुस्कुराते हुए लौटे और बोले—'तुम दुष्ट हो. अब मैं तुम्हारी कुछ भी नहीं सुनूंगा. माँ कहती है कि मैं तुझ में ईश्वर का प्रदर्शन करती हूँ. इसीलिए तुम से मुझे प्यार है. जिस दिन मुझे कुछ ऐसा नहीं दीखेगा, मैं तुम्हें देखना सहन नहीं कर सकता.' इस प्रकार इस विषय पर नरेन्द्र ने जो कुछ भी जितनी बार कहा उसे रामकृष्ण ने एक बार ही अपने लघु किन्तु सशक्त वक्तव्य के द्वारा निरर्थक बना दिया. रामकृष्ण की दृष्टि में नरेन्द्र के प्रति प्रेम मानवीय संबंध या मानवीय भावनाओं से परे था.

एक बार बहुत दिनों से नरेन्द्र दक्षिणेश्वर नहीं आये थे. रामकृष्ण राह देखते-देखते अधीर हो गये. उन्होंने नरेन्द्र को बुलवाया किन्तु फिर भी नरेन्द्र किसी कारण-वश दक्षिणेश्वर नहीं आ सके. इस पर रामकृष्ण स्वयं ही भक्त के दर्शनार्थ कलकत्ता

चल पड़े. वे जानते थे कि नरेन्द्र ब्रह्मसमाज के कार्य में उलझे हुए हैं. ब्रह्मसमाज से इन्हें भी लगाव था. अक्सर उसकी सभाओं में ये भी जाया करते थे. अतः इस नाते ब्रह्मसमाज के अनेक प्रमुख नेताओं से भी परिचित थे. जब रामकृष्ण ब्रह्मसमाज के कार्यालय में पहुँचे तो वहाँ संध्या का कार्यक्रम चल रहा था. अर्धचेतनावस्था में रामकृष्ण के पग विद्यार्थी शिष्य की ओर अनायास बढ़ने लगे. वैसी दशा में नवागत को देखकर उपदेशक ने अपना उपदेश बंद कर दिया सभी लोग रामकृष्ण के चारों ओर घिरने लगे। चारों ओर से इकट्ठे होते हुए समाज के लोगों से वे बिल्कुल अछूते थे. उनका ध्यान दूसरी ओर था. उनकी विकल आँखें किसी को ढूंढ रही थीं. जब वे नरेन्द्र के सामने पहुँचे तो पूर्णरूप से उनकी बाह्यजगत् की चेतना जाती रही. इससे समाज के लोगों में खलबली मच गयी. कुछ लोगों को रामकृष्ण का वहाँ आना बुरा भी लगा. कारण ब्रह्मसमाज के महाप्रतिष्ठित नेता केशव चन्द्र और विजय कृष्ण रामकृष्ण के प्रभाव में अपनी विचारधारा कुछ कुछ बदल चुके थे. उन्हें भय था कि रामकृष्ण की उपस्थिति आज समाज के अन्य लोगों को भी प्रभावित करेगी. सभा की खलबली शान्त करने के लिए उन लोगों ने रोशनी बुझा दी. इससे वहाँ की समस्या शान्त नहीं हुई बल्कि उलझन और बढ़ गयी. लोग जल्दी-जल्दी अंधेरे में एक दूसरे को ठेलते-कुचलते द्वार से बाहर निकलने की कोशिश करने लगे. नरेन्द्र को रामकृष्ण के आने का कारण मालूम हो गया. वे रामकृष्ण के इस अनावश्यक कार्य से क्षुब्ध भी हुए. उन्होंने सोचा कि उनके प्रति रामकृष्ण के इस प्रकार के व्यवहार को देखकर सभा के और लोग जाने क्या सोचेंगे, क्या अर्थ निकालेंगे. फिर भी उन्हें रामकृष्ण पर दया आ गयी और वे जल्दी से उन्हें संभालने के लिए आगे बढ़े. सहारा देकर उन्हें भीड़ से बाहर लाये और इसके बाद उन्हें दक्षिणेश्वर पहुँचाया. रामकृष्ण को जब चेतना लौटी तब नरेन्द्र ने उनके इस व्यवहार के लिए उनकी बहुत भर्त्सना की. लेकिन रामकृष्ण पर इसका कोई प्रभाव नहीं पड़ा. हाँ, वे नरेन्द्र की प्रत्युत्पन्नमति पर मंत्रमुग्ध अवश्य हुए.

इस प्रकार की घटना एक बार फिर हुई. नरेन्द्र बहुत दिनों से दक्षिणेश्वर नहीं गये थे. कलकत्ते में वे अपने कमरे में बैठकर मित्रों से बातें कर रहे थे. तत्क्षण उन्हें सुनाई पड़ा जैसे उन्हें कोई पुकार रहा है. सभी व्यक्ति चौंककर खड़े हो गये. नरेन्द्र दौड़े, सीढ़ियों को पार करते हुए बाहर आये, देखा सामने गुरुदेव खड़े हैं. उनके चेहरे पर विषाद का बादल और आँखें आँसुओं से सजल थीं. उन्होंने बड़े ही कातर शब्दों में कहा—'नरेन, इतने दिनों से तुम मेरे पास आये क्यों नहीं ?' गुरु में शिष्य ने एक निर्दोष सरल बालक की छाया देखी. वे रामकृष्ण को कमरे में ले आये. रामकृष्ण अपने साथ कुछ मिठाइयाँ लाये थे. वे अपने हाथों से नरेन्द्र को मिठाइयाँ खिलाने लगे. उनका मुखमंडल दिव्यालोक से चमक उठा. अधखुले नेत्रों में प्रेम का सागर लहराने लगा—'तुम अपना कोई एक गीत सुनाओ.' नरेन्द्र ने अपना तानपूरा संभाला और देवी माँ का भजन आरम्भ किया. गीत सुनते-सुनते

रामकृष्ण ने अपनी सुधबुध खो दी. सांसारिक दुख-सुख से परे उनका मानस् एक दूसरी दुनिया में समा गया.

रामकृष्ण को पूर्ण विश्वास था कि नरेन्द्र के रूप में शिव उनके सामने उपस्थित हैं. नरेन्द्र के जन्म के समय जो उन्होंने अद्‌भुत स्वप्न देखा था वह उनकी इस आस्था को और भी बल देता रहा. नरेन्द्र से उनका संबंध गुरु और शिष्य का था, फिर भी यह शिष्य और शिष्यों से भिन्न था. प्राचीन काल में शिष्यों के द्वारा गुरु की सेवा अनिवार्य समझी जाती थी. गुरु सेवा से ही शिष्यों का जीवन पावन बनता था. उन दिनों गुरु की चरण सेवा करना, पंखा झलना, आदि काम शिष्यों के लिए बहुत ही साधारण था. नरेन्द्र अत्यन्त विनम्रता से गुरु-सेवा के लिए हाथ बढ़ाते, आग्रह करते, परन्तु रामकृष्ण के द्वारा वे तुरन्त रोक दिये जाते. 'शिव से सेवा ? कितना हास्यास्पद.' रामकृष्ण कहते—'नरेन्द्र औरों से भिन्न है.' इसका मार्ग भी भिन्न है. बहुत पहले नरेन्द्र से एक बार रामकृष्ण ने कहा था—'देखो तुझ में शिव हैं और मुझ में शक्ति. और ये दोनों ही एक हैं.' युवावस्था के प्रांगण में प्रवेश करते हुए नरेन्द्र तब इन गूढ़ शब्दों का अर्थ समझ सकने में असमर्थ थे.

प्रारम्भ से ही रामकृष्ण नरेन्द्र को 'नित्यसिद्ध' एवं 'ध्यानसिद्ध' समझ चुके थे. वे जानते थे कि नरेन्द्र के अंदर महा अग्निपुंज सदा से प्रज्वलित है और जो किसी प्रकार के विकार को, चाहे वह मानसिक हो या शारीरिक, क्षण भर में जला कर भस्म कर देगा. वे कभी भी माया के वशीभूत नहीं हो सकते. काली मंदिर में अक्सर मेवा-फल और मिठाइयाँ लोग उपहार स्वरूप ले आते थे. रामकृष्ण उन उपहारों को एक किनारे रखवा देते. जब उन्हें पूर्ण विश्वास हो जाता कि भेंट लाने वाला निर्मल चरित्र का है तथा निःस्वार्थ भाव से उन्हें अर्पित कर रहा है, तभी वे उन वस्तुओं को स्वीकार करते थे. अन्यथा सारी चीजें वर्जित हो जातीं.

किन्तु नरेन्द्र का किसी भी ऐसी वस्तु से निषेध नहीं था. वे जब दक्षिणेश्वर आते तो उन्हें इन वस्तुओं को खाना पड़ता, क्योंकि उन पर पवित्र या अपवित्र खाद्य पदार्थों का कोई प्रभाव नहीं पड़ने का था. जब कभी उन्हें दक्षिणेश्वर आने में विलम्ब होता तो गुरुदेव उनके लिए ये सामान कलकत्ता ही भिजवा देते. एक बार नरेन्द्र भोजनालय से खाना खाकर सीधे रामकृष्ण के पास आये और बातों ही बातों में कहा—'महानुभाव, आज मैंने निषिद्ध भोजन किया है.' यह सोचकर कि नरेन्द्र जो कुछ कह रहे हैं, वह अपनी उद्दंडता में नहीं कह रहे, रामकृष्ण ने बड़े ही शान्तस्वर में कहा—'इसका तुम पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा. यदि गाय या सुअर मांस खाने के बाद भी किसी का ध्यान पूर्णरूप में परमेश्वर पर केन्द्रित रहता है तो ये चीजें सात्विक भोजन से कम नहीं हैं. मगर सांसारिकता में डूबे हुए व्यक्ति के द्वारा खायी गयी सब्जियाँ भी गाय और सुअर के मांस से कम नहीं हैं. मेरे मन में तुम्हारे निषिद्ध भोजन से कोई फर्क नहीं पड़ता.' दूसरे शिष्यों की ओर संकेत करते

हुए उन्होंने फिर कहा—'किन्तु यदि इनमें से किसी ने भी ऐसा किया होता तो मैं उसका स्पर्श भी सहन नहीं कर सकता.' उस रूढ़िवादी युग में रामकृष्ण जैसे एक सीधे-सादे ब्राह्मण पुजारी के मुख से निकले हुए इतने साहसपूर्ण और उदार विचार को सुनकर नरेन्द्र हैरान रह गये. अपरिचित व्यक्तियों के चरित्र के संबंध में रामकृष्ण कैसे निर्णय करते यह बात भी नरेन्द्र की समझ में नहीं आती. वे सोचते—क्या यह ठीक है कि अनजाने व्यक्ति का चरित्र गुरुदेव के सामने उक्त व्यक्ति की आकृति से अभिव्यक्त हो जाता है? नरेन्द्र को पहले इस पर विश्वास नहीं हुआ. कई अवसरों पर उन्होंने उपहारदाता के चरित्र के विषय में पता लगाया और बराबर ही गुरुदेव के कथन को सही पाया. अचम्भित होकर वे कहने लगते—'यह कैसा आश्चर्यजनक व्यक्ति है. दूसरों के मस्तिष्क की बातें ये कैसे जान लेते हैं. इसकी पवित्रता समझ के परे है.'

नरेन्द्र ब्रह्मसमाज के मुख्य सदस्य थे. सिर्फ ब्रह्मसमाजी होने के नाते वे ईश्वर के साकार रूप को नहीं मानते थे, ऐसी बात नहीं थी. जो कोई भी बात या विचार उनके तर्क की कसौटी पर खरा नहीं उतरता, उसे उनका हृदय स्वीकार नहीं करता. वे दूसरों से भी ऐसी ही कामना करते थे. उनका एक ब्रह्मसमाजी मित्र राखाल जब रामकृष्ण के सम्पर्क में आया तो वह बहुत ही प्रभावित हुआ. माँ काली की मूर्ति देखकर वह भावविह्वल हो गया. प्रायः भक्तिभाव से वह देवी के सामने करबद्ध नतमस्तक हो जाता. राखाल का यह आचरण ब्रह्मसमाज के सिद्धान्त के विरुद्ध था. एक दिन नरेन्द्र ने उसे ऐसा करते देख लिया. इसके लिए उसे बहुत डाँटा. राखाल बहुत ही विनम्र प्रकृति का था. वह नरेन्द्र के साथ अपनी सगुण उपासना के सिद्धांत पर वाद-विवाद नहीं कर सका. अब वह लज्जावश नरेन्द्र से अलग-अलग रहने लगा.

रामकृष्ण ने एक बार नरेन्द्र को समझाया कि राखाल की आस्था मूर्तिपूजा में है, अतः नरेन्द्र को राखाल की उपासना का बाधक नहीं बनना चाहिए. उन्होंने यह भी कहा कि निर्गुण भगवान की उपासना प्रारम्भ में सबके लिए कठिन होती है. जो भगवान को जिस रूप में पूजना चाहता है उसे उसकी इच्छा पर छोड़ देना चाहिए. नरेन्द्र ने इसके बाद कभी भी राखाल के धार्मिक मामले में हस्तक्षेप नहीं किया. किन्तु नरेन्द्र में उन दिनों एक विचित्र प्रकार की हठधर्मिता थी. जो वे सोच रहे हैं या जिस पथ पर वे बढ़ रहे हैं वही ठीक है. इस प्रकार के विचार से वे जकड़े हुए थे. रामकृष्ण कभी-कभी नरमी से उन्हें झिड़क भी देते, किन्तु नरेन तर्क करने से नहीं मानते. रामकृष्ण ने एक बार क्षुब्ध होकर कहा—'यदि तुम्हें मेरी माँ पर आस्था नहीं है तो फिर तुम यहां क्यों आये ?' नरेन्द्र ने साहसपूर्ण स्वर में कहा—'क्या मैं यहां सिर्फ इसलिए आया हूँ कि मुझे "उन्हें" स्वीकार करना ही है ?' गुरु ने कहा—'ठीक है. भविष्य में तुम मेरी देवी माँ पर विश्वास ही नहीं करोगे अपितु उनके नाम पर आंसू बहाओगे.' फिर उन्होंने दूसरे शिष्यों की ओर

दृष्टि फेर कर कहा—'इस लड़के को भगवान के रूप पर विश्वास नहीं है और यह मेरी अलौकिक अनुभूतियों को मानसिक भ्रम कहा करता है, मगर पुनीत भावनाओं से भरा हुआ यह एक अच्छा लड़का है. यह किसी भी चीज में विश्वास नहीं करता जब तक उसका प्रत्यक्ष प्रमाण नहीं मिल जाये. इसने बहुत कुछ पढ़ा है और इसके अन्तस् में अपना ही विवेकपूर्ण विचार और निर्णय है.'

रामकृष्ण और नरेन्द्र के वाद-विवाद का एक प्रमुख विषय था, हिन्दू धार्मिक ग्रन्थों में राधा-कृष्ण लीला का प्रसंग. पहले तो नरेन्द्र को इसकी ऐतिहासिक प्रामाणिकता पर संदेह था. फिर राधा-कृष्ण के संबंध को वे अनुचित एवं अनैतिक समझते थे. रामकृष्ण ने उन्हें बहुत तरह से समझाने का प्रयत्न किया, किन्तु नरेन्द्र के विचार नहीं बदले. अंत में रामकृष्ण ने कहा—'मान लिया कि ऐतिहासिक रूप से राधा-कृष्ण का अस्तित्व नहीं है और उनकी कथा किसी भगवत्प्रेमी भक्त की कल्पना मात्र है. किन्तु जो सर्वोच्च है उसके प्रति राधा और गोपियों के मिलन की तीव्र भावानुभूति पर ही तुम क्यों न ध्यान दो. उसकी अभिव्यक्ति पर क्यों टिके रहो ? यह तुम्हारे लिए अधिक स्वाभाविक होगा. तुम उनकी आतुरता एवं व्यग्रता को देखो. उनकी कल्पना को, उनके स्वप्न को देवतुल्य समझो.'

धार्मिक विषयों पर नरेन्द्र का रामकृष्ण के साथ जितना भी वाद-विवाद होता उतना ही रामकृष्ण का हृदय प्रसन्नता से फूल उठता. वे जानते थे कि तर्क की कसौटी पर बिना किसी विषय को खरा उतारे, नरेन्द्र उसे स्वीकार करने वाला नहीं है. नरेन्द्र को विद्याध्ययन की कमी नहीं थी—कमी थी एक गुरु की जो उनकी जिज्ञासाओं को शांत करे, उनकी शंकाओं का उन्मूलन करे. रामकृष्ण की बात, विचार, उनकी सम्पूर्ण जीवन प्रणाली की न जाने कितनी चीजें नरेन्द्र के हृदय को कुरेदती रहतीं, उनके सामने प्रश्न बन कर खड़ी हो जातीं, और उन्हें उत्तेजित करने लगतीं. नरेन्द्र का बौद्धिक संघर्ष बढ़ता जाता. पर रामकृष्ण बड़ी ही शांति और सहज रूप से धीरे-धीरे उनकी समस्याओं का समाधान करते रहते.

इस प्रकार रामकृष्ण ने सर्वप्रथम उन्हें अद्वैत वेदान्त का रहस्य समझाना चाहा. इस विचार से वे अष्टावक्र संहिता तथा दूसरे अद्वैत दर्शन के कुछ अध्याय नरेन्द्र से पढ़वाने लगे. ब्रह्मसमाज के सिद्धान्तों से प्रभावित नरेन्द्र की आत्मा अद्वैत दर्शन पढ़ते-पढ़ते विद्रोह कर उठती. उन्हें इस दर्शन पर विश्वास नहीं होता. वे चिल्ला उठते—'यह सब ईश्वर निन्दा है क्योंकि इस दर्शन और नास्तिकता में कोई अंतर नहीं है. ससार में इससे बढ़ कर कोई पाप नहीं होगा कि हम स्वयं को निर्माणकर्ता ईश्वर के समान समझ बैठें. मैं भगवान हूं तुम भगवान हो, यह सब निर्मित वस्तुएं भगवान हैं, इससे बढ़ कर और कौन बकवास सम्भव है. जिन महात्माओं ने यह सब लिखा है वे अवश्य ही पागल होंगे.' रामकृष्ण नरेन्द्र के विद्रोहात्मक शब्दों को सुन कर बोले—'इन साधुओं के विचार को तुम स्वीकार नहीं करो, यह

ठीक है, किन्तु तुम उन्हें फटकार कैसे सकते हो या ईश्वर की अनन्तता को सीमावद्ध कैसे कर सकते हो ? सत्य रूपी भगवान की उपासना करो. उनके किसी भी रूप पर विश्वास करो जो वे तुम्हारे हृदय में दिखायें.' किन्तु नरेन्द्र रामकृष्ण की बातों में नहीं आये. वे उत्तेजना में रामकृष्ण के कमरे को छोड़ कर बाहर चले गये और कहने लगे—'यह पानी का जग भगवान है, यह प्याली भगवान है और हम लोग भी भगवान हैं– इससे बढ़ कर अत्युक्ति भला क्या होगी ?' उनका एक एक शब्द अविश्वास, व्यंग्य और क्रोध में सना हुआ था. रामकृष्ण जो अपने कक्ष में अर्द्धचेतनावस्था में थे, नरेन्द्र की व्यंग्यात्मक हंसी सुन कर, एक बच्चे के समान अपनी आधी धोती जिससे पहले वक्षस्थल ढंका हुआ था, उसे बगल में दबाये हुए बाहर आये और नरेन्द्र को स्पर्श कर कहा—'हां, तुम किस चीज के विषय में बातें कर रहे थे ?'

इतना कहते कहते वे पुनः समाधि में डूब गये. उनके इस स्पर्श का परिणाम नरेन्द्र पर क्या पड़ा यह उन्हीं के शब्दों में—'उस दिन गुरुदेव के जादू भरे स्पर्श ने शीघ्र ही मेरे मस्तिष्क को आश्चर्यजनक रूप से परिवर्तित कर दिया. मैं यह जान कर सचमुच हत्प्रभ हो गया कि सारे संसार में ईश्वर के सिवा कुछ और नहीं है. मैंने बहुत ही स्पष्ट रूप में यह देखा किन्तु चुप रहा कि पता नहीं यह विचार स्थायी है या नहीं. मगर इस प्रकार का आभास एक दिन में ही समाप्त नहीं हुआ. मैं घर आ गया किन्तु वहां भी सभी चीजें जो मैंने देखीं वे ब्रह्मवत् दिखायी पड़ीं. मैं भोजन करने बैठा, परन्तु हर एक चीज—भोजन, थाल, जिस व्यक्ति ने खाना परोसा और मैं, स्वयं ब्रह्म के सिवा और कुछ नहीं थे. मैं एक दो ग्रास खाकर चुपचाप बैठ गया. अपनी मां के शब्दों से मैं चौंका. उन्होंने कहा—'चुपचाप क्यों बैठे हो—खाना खत्म करो.' और मैं फिर खाने लगा. परन्तु हर समय खाते हुए या लेटे हुए या कालेज जाते हुए मैं अपने को अस्वाभाविक निद्रा की स्थिति में पाता रहा. सड़क पर टहलते हुए मैंने मोटरगाड़ियों को चलते हुए पाया, लेकिन उनके मार्ग से हट जाने की मेरी इच्छा नहीं हुई. मैंने अनुभव किया कि मोटरगाड़ी और मैं एक ही पदार्थ का बना हुआ हूँ. मेरे अवयवों में मानो उस समय कोई चेतना नहीं थी ऐसा लगा जैसे वे शक्तिहीन हो गये हों. मुझे खाना नहीं सुहाता. मुझे भान होता जैसे कोई और खा रहा है. कभी कभी खाते समय ही मैं लेट जाता और फिर कुछ क्षणों के बाद उठ कर खाने लगता. परिणाम यह हुआ कि कुछ दिन मैं बहुत अधिक खाता रहा, किन्तु इससे कोई हानि नहीं हुई. मेरी मां इससे विकल हो गयीं और कहा कि मेरे साथ निश्चय ही कोई गड़बड़ी है. उन्हें भय था कि मैं अधिक दिनों तक जीवित नहीं रहूँगी. जब ऐसी स्थिति कुछ बदली तब संसार मुझे स्वप्नवत् प्रतीत होने लगा. कार्नवालिस स्क्वायर पर घूमते हुए मैं वहां के लोहे की चहारदीवारी से अपना सर टकराता, सिर्फ यह अनुभव करने के लिए कि यह स्वप्न है या वास्तविकता. इस प्रकार की दशा कुछ दिनों तक रही. जब मैं पुनः स्वस्थ हुआ तो

विचार किया कि मुझे अवश्य ही अद्वैत स्थिति की एक झलक मिली है. तब मुझे ध्यान आया कि धार्मिक ग्रन्थों के शब्द झूठे नहीं थे. इसके बाद मैं अद्वैत दर्शन को गलत नहीं कह सका.'

जिस प्रकार रामकृष्ण की शिक्षा पद्धति अनुपम थी, उसी प्रकार नरेन्द्र के शिक्षा ग्रहण की शैली भी अद्वितीय रही. धीरे-धीरे नरेन्द्र के जीवन में संशय की जगह विश्वास, द्वन्द्व की जगह एकाग्रता, क्लेश की जगह आह्लाद और अंधकार की जगह प्रकाश भरता गया. विश्व की सारी विविधता मिट गयी. अब उन्हें विश्वास हो गया कि सब कुछ एक है. एक ही सत्त्व से निर्मित है. रामकृष्ण नरेन्द्र को बराबर कहा करते कि वे अपनी ईश्वरानुभूति को अच्छी तरह जांच लें और परख ले. यहां तक कि वे अपने आप को भी परीक्षा का विषय बना देते. वे कहते—'जैसे पैसे तुड़वाने वाला अपने सिक्के देखभाल कर लेता है, उसी प्रकार तुम मुझे भी परख लो. जब तक तुम मेरी परीक्षा न ले लो, तुम्हें मुझे स्वीकार नहीं करना चाहिए.' एक बार नरेन्द्र दक्षिणेश्वर आये और गुरुदेव का कक्ष सूना पाया. मालूम हुआ गुरुदेव कलकत्ता गये हुए हैं. नरेन्द्र ने झट एक रुपये का सिक्का गुरुदेव के बिस्तर में छिपा दिया और पंचवटी में ध्यानावस्थित होने चले गये. इसके कुछ ही देर बाद रामकृष्ण दक्षिणेश्वर आ गये. फिर अपने कमरे में जाने के बाद बिस्तर पर बैठे. अनजाने ही नरेन्द्र के द्वारा रखे गये सिक्के से उनका स्पर्श हो गया. स्पर्श के साथ ही वे अत्यन्त पीड़ा से कराहने लगे. नरेन्द्र अब पंचवटी से लौट आये थे और चुपचाप मुद्रा के प्रति गुरुदेव की प्रतिक्रिया निहार रहे थे. फिर रामकृष्ण के कष्ट को देख कर एक अन्य शिष्य उनके पास आया और बिस्तरे को ठीक करने के विचार से जैसे ही चादर खींचा कि रुपया पृथ्वी पर झनझना उठा. नरेन्द्र बिना कुछ बोले कमरे से बाहर चले गये. परन्तु रामकृष्ण को यह समझते देर न लगी कि नरेन्द्र उनकी परीक्षा ले रहे थे. इससे रामकृष्ण को सुख मिला कि नरेन्द्र जो कुछ भी ग्रहण करते हैं, तो उसे जांच कर, देखभाल कर. यहाँ तक कि नरेन्द्र की दृष्टि में गुरु भी परीक्षा के बाद ही ग्राह्य है.

इसी प्रकार रामकृष्ण ने भी कई बार, कई तरह से नरेन्द्र की भी परीक्षा ली. एक बार उन्होंने नरेन्द्र के शरीर की जांच करने के बाद कहा—'तुम्हारी शारीरिक दशा ठीक है. सिर्फ एक ही त्रुटि मुझे दिखाई पड़ती है कि तुम सोते समय कुछ गहरी सांस लेते हो. योगियों के शब्दों में इस प्रकार का मनुष्य अल्पायु होता है.' एक बार रामकृष्ण ने बहुत कठिन परीक्षा ली. यों तो नरेन्द्र के लिए रामकृष्ण के हृदय में अगाध प्रेम था. दक्षिणेश्वर से नरेन्द्र की अनुपस्थिति उन्हें व्याकुल बना देती थी. दूर से ही नरेन्द्र की झलक मात्र से वे आनन्द विह्वल होकर समाधि में डूब जाते थे. किन्तु एक बार जब नरेन्द्र दक्षिणेश्वर आये और गुरु से मिलने गये, तब गुरुदेव ने उदासीनता से मुंह दूसरी ओर फेर लिया और कुछ बोले नहीं. नरेन्द्र

ने समझा गुरुदेव दूसरी दुनिया में हैं इसलिए वे दूसरे भक्तों के पास आकर बैठे और बातें करने लगे. तभी रामकृष्ण की आवाज सुनाई पड़ी. वे किसी से बातें कर रहे थे.

फिर नरेन्द्र गुरु के कमरे में गये किन्तु गुरुदेव ने उनके अभिवादन का कोई उत्तर नहीं दिया, इसके विपरीत वे नरेन्द्र के प्रति उदासीन और मूक बने बैठे रहे. नरेन्द्र कुछ देर वहां बैठ कर फिर कलकत्ता लौट गये. इसके एक सप्ताह बाद नरेन्द्र फिर दक्षिणेश्वर आये और गुरुदेव का व्यवहार अपने प्रति वैसा ही रूखा पाया. इस तरह प्रत्येक दो चार दिनों पर कई बार नरेन्द्र दक्षिणेश्वर आये, गुरु का दर्शन किया, कुछ देर बैठे और लोगों से बातें कीं और शाम होने पर कलकत्ता लौटते रहे. किन्तु नरेन्द्र के सामने गुरु का हृदय नहीं पसीजा. नरेन्द्र की अनुपस्थिति में रामकृष्ण किसी को कलकत्ता नरेन्द्र के स्वास्थ्य की जानकारी के लिए भेजा करते. नरेन्द्र को यह सब पता नहीं होता. एक माह बाद तक जब नरेन्द्र वैसे ही गुरु के दर्शनार्थ दक्षिणेश्वर आते रहे, तब एक दिन गुरु ने उन्हें बुला कर पूछा—'यद्यपि मैं तुमसे कुछ भी नहीं बोलता, फिर भी तुम यहाँ आते रहे. ऐसा कैसे ?' नरेन्द्र ने उत्तर दिया—'क्या आप सोचते हैं कि मैं यहाँ सिर्फ आप की बातें सुनने आता हूँ ? मुझे आप से भक्ति है और मैं आप का दर्शन चाहता हूँ. इसीलिए मैं दक्षिणेश्वर आया करता हूँ.' नरेन्द्र के उत्तर ने रामकृष्ण का मन मोह लिया—उन्हें बेहद खुशी हुई. 'मैं यह जानने के लिए तुम्हारी परीक्षा ले रहा था कि मेरे प्यार और समय नहीं देने पर भी तुम यहाँ रुकते हो या नहीं.'

रामकृष्ण को कठिन योगाभ्यास से अपूर्व दैवी शक्ति मिली हुई थी. वे चाहते थे कि संसार के कल्याणार्थ इस शक्ति का प्रयोग हो. इसी कार्य के लिए वे नरेन्द्र को प्रशिक्षण दे रहे थे. एक दिन उन्होंने नरेन्द्र को पंचवटी में बुलाया और कहा—'मैंने अनेक आध्यात्मिक अभ्यासों के द्वारा अपने को पूर्ण रूप से अनुशासित कर अलौकिक शक्ति प्राप्त कर ली है. लेकिन वह मेरे किस काम की है ? मैं अपना तन तो ठीक से ढंक नहीं सकता. इसलिए माँ की अनुमति से मैं उन्हें तुम में डाल देने को सोच रहा हूँ. 'उनसे' मुझे ज्ञात हुआ कि तुम्हें 'उनके' लिए काफी काम करने होंगे. यदि मैं तुम्हें वे शक्तियां प्रदान करूँगा तो तुम आवश्यकतानुसार उनका प्रयोग कर सकते हो. तुम क्या चाहते हो ?' गुरुदेव को ऐसी अलौकिक शक्तियां प्राप्त हैं यह नरेन्द्र को विदित था. क्षण भर विचार करने के बाद उन्होंने कहा—'क्या ये शक्तियां ईश्वरानुभव में सहायक होंगी ?' 'नहीं, इस काम के लिए वे सहायता नहीं करेंगी. किन्तु ईश्वर को समझ लेने के बाद, जब तुम उनके कार्य में रत होगे तब उनसे तुम्हें बहुत मदद मिलेगी,' गुरुदेव ने कहा. नरेन्द्र का उत्तर था—'मैं उन्हें नहीं चाहता. पहले मुझे ईश्वर की ही साधना करने दीजिए. सम्भव है इसके बाद मुझे ज्ञान हो कि मुझे उन शक्तियों की आवश्यकता होगी या नहीं. यदि मैं उन्हें

अभी स्वीकार करता हूँ तो शायद मैं अपना आदर्श भूल जाऊँ और उन्हें स्वार्थपूर्ण प्रयोजनों में प्रयोग कर क्लेश का भागी बनूं.' खुले शब्दों में नरेन्द्र की बात सुन कर रामकृष्ण बहुत खुश हुए. शायद यह भी नरेन्द्र की परीक्षा ही थी. नरेन्द्र स्वतंत्र प्रकृति के व्यक्ति थे. रामकृष्ण ने नरेन्द्र पर प्रेम का अंकुश रखते हुए उनके विचार की स्वतन्त्रता में किसी प्रकार की बाधा नहीं आने दी. इससे नरेन्द्र में आत्मविश्वास की जड़ और भी मजबूत हो गयी. गुरु का हृदय नरेन्द्र के सामने अनावृत था. वे अपने हृदय का सारा रहस्य नरेन्द्र के सामने रख देते थे. नरेन्द्र उनके सबसे बड़े विश्वासपात्र थे. कहा जाता है कि प्रेम बंधन है. किन्तु रामकृष्ण का प्रेम नरेन्द्र के लिए मुक्ति था. ऐसी मुक्ति जो अवचेतन रूप से आजीवन नरेन्द्र के पथ पर दीपक बनी रही.

४

नये जीवन का प्रारंभ

युवावस्था के स्वच्छन्द एवं चितामुक्त वातावरण में नरेन्द्र अभी पूरी तरह सांस भी नही ले पाये थे कि उनके सुकुमार कंधों पर अकस्मात पूरे परिवार का बोझ आ पड़ा. उन दिनों (सन् १८८४ में) अभी-अभी स्नातक परीक्षा समाप्त हुई थी. परीक्षाफल निकलने में देर थी. एक दिन नरेन्द्र कलकत्ते से दो मील दूर बड़ानगर अपने किसी मित्र से मिलने आये हुए थे. वहाँ मित्रों के साथ खूब गप्पें जमी. देखते-देखते रात हो गयी. फिर गाने-बजाने का कार्यक्रम शुरू हुआ. संगीत की स्वर-लहरी सीमा को छूने लगी तभी एक व्यक्ति ने कमरे में प्रवेश किया. यह व्यक्ति नरेन्द्र के घर से आया हुआ था और उसने उन लोगों को दुखद सूचना दी कि अचानक हृदय की गति रुक जाने से नरेन्द्र के पिता की मृत्यु हो गयी है. इस खबर ने नरेन्द्र के हृदय में शोक का सागर उंडेल दिया. नरेन्द्र तुरंत क़लकत्ता लौट पड़े. पूरा घर शोक में डूबा हुआ था. चारों ओर काल की कालिमा छायी हुई थी. माँ के साथ दोनों बहनें और दोनों छोटे भाई बिलख-बिलख कर रो रहे थे. नरेन्द्र घबड़ाहट से किंकर्तव्यविमूढ़ से बन गये थे—न कुछ बोल पाये न रो पाये. लोगों ने आश्वासन का सहारा दिया. धीरे-धीरे मन को वश में कर उन्होंने पिता की अंतिम क्रिया पूर्ण की.

नरेन्द्र के पिता विश्वनाथ दत्त बड़े ही विशाल हृदय के थे. उनकी आय से व्यय का हिसाब सदैव अधिक रहा करता. इस शाहखर्च स्वभाव के कारण वे कुछ संचय नहीं कर सके थे. उनके सम्बंधी और मित्र उनके उपकारों के बोझ से दबे हुए थे. किन्तु जैसा कि संसार में आदिकाल से होता आया है, विश्वनाथ दत्त की आँखें बन्द होते ही सभी लोगों ने इनके परिवार से अपनी आँखें फेर लीं. शायद उन्हें संशय होने लगा कि अधिक कृतज्ञता दिखाने पर उन्हें दुखी परिवार की सहायता करनी पड़ेगी. श्राद्ध क्रिया समाप्त भी नहीं होने पायी थी कि ऋणदाता इनका द्वार खटखटाने लगे. नरेन्द्र के सामने पैसे उपार्जन का कोई साधन नहीं था. फिर भी उन्हें सात-आठ व्यक्तियों का भरण-पोषण करना था. विधि की विडम्बना भी कैसी है! सुख-सुविधाओं की गोद में पला हुआ सुकुमार बालक अनायास असुविधाओं

और अभावों की कठोर भूमि पर फेंक दिया गया. दुख के घने बादलों की छाया में कभी-कभी नरेन्द्र के हृदय में आत्मशक्ति की दामिनि दमक उठती. नरेन्द्र उस प्रकाश को पकड़ कर जीवन पथ पर आगे बढ़ने लगे. अपनी नियति के प्रतियोगी बन गये. कुछ दिनों पश्चात् स्नातक परीक्षाफल प्रकाशित हुआ. इस परीक्षा में उत्तीर्ण होने पर नरेन्द्र कानून पढ़ने के लिए फिर कालेज में आ गये. विद्यालय में नरेन्द्र अब सबसे दरिद्र विद्यार्थी थे. इनके वस्त्र बहुत ही मोटे तथा जूते अत्यंत सस्ते और साधारण होते थे. प्रायः ये भूखे पेट ही कालेज चले जाते थे. क्षुधा की क्लान्ति से कभी कभी वे चेतनारहित हो जाते थे. उनके मित्रगण उन्हें अपने घर पर आमंत्रित करते. वहां घंटों मित्रों के साथ बातचीत होती, संगीत सम्मेलन होता, किन्तु जब कभी मित्रगण उन्हें कुछ खाने पीने का आग्रह करते तब नरेन्द्र से तुरंत नकारात्मक उत्तर पाते. उस समय नरेन्द्र को आँखों के सामने माँ तथा भाई-बहनों के क्षुधा-कातर मुख दिखाई देने लगते. उनका हृदय विकल हो उठता. वे पुनः मित्रों की मनोरंजक बातचीत में अपने को भुला नहीं पाते. किसी बहाने वे उन लोगों से विदा लेकर अपने घर आ जाते.

नरेन्द्र का घराना अपने ठाठ-बाट के लिए प्रसिद्ध था. विश्वनाथ दत्त के निधन के बाद भी यह ठाठ-बाट कुछ हद तक निभाना ही पड़ा किन्तु द्वार के भीतर के अभावों की छाया कभी बाहर दिखाई नहीं पड़ी. नरेन्द्र के परिवार ने घर के दुख दारिद्र्य को दिखावे और आडम्बर के पर्दे में छिपाये रखा. एक प्रभुत्वपूर्ण वंश का भग्नावशेष क्या कभी बाहरी लोग देख सके ? नहीं. नरेन्द्र के कुल का अनावृत रूप किसी ने नहीं देखा. उनके सम्पन्न मित्रगण अपनी शानदार भव्य सवारियों पर आते और नरेन्द्र को घूमने के लिए ले जाते. नरेन्द्र जब घर लौटते तो उनकी माँ उनके सामने भोजन की थाली रखतीं. वे उसमें से थोड़ा भोजन अलग निकाल कर खा लेते जिससे माँ का दिल न टूटे तथा घर के अन्य सदस्यों के साथ वे भी कुछ ग्रास अपने मुख में डाल सकें. किन्तु जब उन्हें भोजन की कमी का ज्ञान हो जाता तो वे खाना नहीं खाते और कह देते कि मित्रों के घर खा लिया है. किन्तु सत्य यह होता कि मित्र के घर भी वे नहीं खाये होते. वे उतना ही खाते थे जिससे वे जीवित रह सकें. इस अल्पाहार के कारण उनका स्वास्थ्य दिनोंदिन गिरता गया. परन्तु नरेन्द्र के साथी उनके इस ढलते हुए स्वास्थ्य का कारण नहीं समझ सके.

नरेन्द्र के परिवार पर विपत्ति का प्रकोप कम होने के बदले दिनोंदिन बढ़ता चला गया. पर्दे के भीतर का भेद अब बाहर खुलने लगा. नरेन्द्र के परिवार के अन्य सम्बंधी भी उसी मकान में एक ओर बहुत दिनों से रह रहे थे. विश्वनाथ दत्त के निधन के बाद किसी कारणवश उन लोगों ने मकान के बंटवारे का प्रश्न उठाया. यद्यपि कानून के अनुसार नरेन्द्र के हिस्से में ही मकान का अधिक भाग आता, फिर भी एक रईस खानदान के कलह की लोकलाज से नरेन्द्र परिवार ने इस प्रश्न को

दवाये रखना चाहा किन्तु घर की सीमा के बाहर जो बात वह निकली, वह धीरे-धीरे बढ़ती हुई न्यायालय तक पहुँच गयी. बहुत लोगों ने इसके विषय में सुना-जाना. नरेन्द्र और उनकी माँ लज्जा से गड़ गये. दैवयोग से न्यायालय का निर्णय नरेन्द्र परिवार के लिए अच्छा ही हुआ. मकान का बड़ा भाग इनके हिस्से में आ गया. निवास की समस्या हल हो जाने पर नरेन्द्र के मस्तिष्क का बोझ कुछ घटा, किंतु मिटा नहीं वस्त्र और भोजन का सवाल उनके सामने भयानक रूप से खड़ा था. इसे हल करने के लिए उन्होंने ईश्वरचन्द्र विद्यासागर के एक शिक्षक संस्थान में शिक्षक का काम करना आरम्भ कर दिया. यह काम एक माह से अधिक नहीं चल सका. परिवार के भोजन और वस्त्र की समस्या ने नरेन्द्र के जीवन को बुरी तरह झकझोर दिया.

नरेन्द्र ने आगे चल कर अपने जीवन के इन अंधकारमय दिनों का उल्लेख इस प्रकार किया: 'मातम की अवधि समाप्त होने के पहले ही मुझे नौकरी का दरवाजा खटखटाना पड़ा. चिलचिलाती धूप में भूखे पेट और नंगे पांव, और हाथ में आवेदन-पत्र लिये हुए मैं एक दफ्तर से दूसरे दफ्तर में घूमता रहा. मेरे एक दो घनिष्ठ मित्र जिन्हें मेरे दुर्भाग्य के साथ संवेदना थी, कभी-कभी मेरे साथ हो लेते. मगर प्रत्येक स्थान पर मेरे लिए द्वार बन्द था. जीवन की वास्तविकता के इस प्रथम सम्बंध ने मुझे अच्छी तरह समझा दिया कि संसार में निःस्वार्थ सहानुभूति एक दुर्लभ वस्तु है—यहां दीन, दुखी और निर्बलों के लिए कोई स्थान नहीं है. मैंने देखा कि जो लोग मुझे कुछ दिन पहले बड़े अभिमान से किसी भी प्रकार से सहायता देते, उन लोगों ने भी मुंह मोड़ लिया. यद्यपि उनके पास देने को बहुत कुछ था. इन सबको देख कर कभी-कभी मुझे दुनिया एक शैतान का घर मालूम पड़ती. एक दिन थकामांदा मैं मैदान के 'आक्टरलोनी मानूमेन्ट' की छाया में बैठ गया. वहां मेरे कुछ मित्र भी थे. उनमें से एक ने शायद मुझे सुख पहुंचाने के ख्याल से ईश्वर के उमड़ते हुए सौंदर्य पर आधारित एक गीत सुनाया. इसने मेरे मस्तिष्क को एक भयानक धक्का दिया. मुझे अपनी मां और भाइयों की असहाय अवस्था याद हो आयी और मैं मर्मभेदी निराशा और तीव्र वेदना से चिल्ला उठा—'बन्द कर दो यह गाना. ये भावनाएं उन्हें खुश करेंगी जो फूलों की सेज पर हैं और जिनके घर पर कोई भूख से तड़पता सम्बंधी न हो. हाँ, एक समय था जब मैं भी इसी तरह सोचा करता था. पर आज जीवन के कटु सत्य के सामने यह एक गम्भीर मजाक मालूम पड़ता है.' मेरे मित्र को इससे अवश्य चोट पहुंची होगी. मेरे सम्पूर्ण क्लेश को, जिसने मुझे मुँह से वैसे शब्द निकालने के लिए बाध्य बना दिया, मेरा मित्र कैसे समझ सकता था ? कभी-कभी जब मैं देखता कि परिवार के लिए पूरा भोजन नहीं है और मेरी जेब भी खाली है तब मैं अपनी मां से बहाना बनाता कि मुझे बाहर खाने का निमंत्रण है, और उस दिन पूर्णरूपेण बिना भोजन के रह जाता. आत्मसम्मान के कारण यह

बात दूसरों के सामने प्रकट नहीं करता. मेरे सम्पन्न. मित्र कभी-कभी मुझे अपने घर या बगीचे में ले जाने का और गीत गाने का आग्रह करते. जब मैं इससे नहीं बच पाता तो मुझे उनका अनुरोध स्वीकार करना पड़ता. उनमें से कुछ कभी-कभी मुझसे पूछा करते, 'तुम आज इतने क्षीण और दुर्बल क्यों लग रहे हो ?' उन लोगों में से एक को बिना मेरे जाने मेरी गरीबी का पता चल गया और जब तब वह मेरी मां को गुमनाम रूप से मदद पहुंचाता रहा. इस दयापूर्ण कार्य के द्वारा उसने मुझे कृतज्ञता के महाऋण से दबा दिया.'

कठिनाइयों की इस वेला में भी नरेन्द्र के सामने कई प्रलोभन रखे गये. मगर वे उन्हें डिगा नहीं सके. उन्हीं के शब्दों में—'मेरे कुछ पुराने मित्रों ने, जो अनुचित साधनों से अपनी जीविका उपार्जित कर रहे थे, मुझे अपने साथ मिलने को कहा. उनमें से कुछ जो अनायास नियति के फेरे में पड़ कर, जैसा कि मेरे जीवन के साथ हुआ, जीवन के इस संदिग्धपूर्ण पथ पर चलने के लिए बाध्य कर दिये गये थे. इनको सचमुच मेरे लिए संवेदना थी. इसके अतिरिक्त और भी कठिनाइयाँ थीं, मेरे मार्ग पर अनेक प्रलोभन थे. एक धनी महिला ने मेरे पास अत्यन्त भद्दा प्रस्ताव भेजा कि मैं गलत रूप से उनके साथ अपना जीवन बिताऊँ. मैंने इसे बड़ी कठोरता से तिरस्कृत कर दिया.'

कठिनाइयों के ये दिन नरेन्द्र के आध्यात्मिक विकास में अपना विशेष महत्व रखते हैं. जैसा कि उन्होंने लिखा है—'इन सब आपत्तियों के रहते हुए भी मेरा न ईश्वर की सत्ता न उनकी दैवी कृपा का विश्वास उठ सका. हर सुबह मैं उनका नाम लेकर उठता और नौकरी की तलाश में निकलता. एक दिन मेरी मां ने मुझे सुन लिया और कठोरता से कहा 'धत्, तुम बड़े मूर्ख हो. बचपन से ही तुम भगवान-भगवान रट रहे हो किन्तु उन्होंने तुम्हारे लिए किया क्या ?' मुझे मर्मभेदी वेदना होने लगी. मस्तिष्क में संशय का प्रवेश हो गया. 'क्या ईश्वर वास्तव में है ?' मैंने सोचा और यदि है तो क्या वह सचमुच मानव की विह्वल प्रार्थना सुनता है ? यदि ऐसा है तब मेरे तीव्र निवेदन की कोई प्रतिक्रिया क्यों नहीं होती ? उनके कृपापूर्ण राज्य में इतना क्लेश क्यों है ? दयालु परमेश्वर के साम्राज्य में शैतान क्यों शासन कर रहा है ? पं० ईश्वरचन्द्र विद्यासागर के ये शब्द मेरे कानों में कटु उपहास करते हुए गूंजते रहे : 'यदि ईश्वर दयालु और गौरवपूर्ण है, तो दुर्भिक्ष के समय दो ग्रास आहार के लिए करोड़ों लोग क्यों मरते हैं ?' मैं ईश्वर से बहुत अधिक रुष्ट हो गया. यह बडा सुअवसर था जब मेरे हृदय में संदेह ने जन्म लिया. यह मेरे स्वभाव के बिल्कुल विरुद्ध था कि कोई भी काम गुप्त रीति से करता. इसके अतिरिक्त यहां तक कि किसी भय या और कारण से दूसरों से अपने विचार छिपाने की आदत मुझे बचपन से ही नहीं थी. इसलिए, ईश्वर एक कल्पना मात्र है, या यदि उसकी सत्ता है भी तो वहां किसी भी प्रकार की सुनवाई नहीं होगी, इसे संसार के सामने

साबित करने के लिए मेरा आगे बढ़ना मेरे लिए पूर्णरूपेण स्वाभाविक था.'

नरेन्द्र के वास्तविक विचार शीघ्र ही समाज में चर्चा की वस्तु बन गये. इतना ही नहीं, लोगों को विश्वास होने लगा कि अब नरेन्द्र को मदिरा या अन्य निषेधात्मक चीजें खाने-पीने में कोई हिचक न होगी. इस प्रकार की बातों की दुर्गन्ध हवा में कुछ इस प्रकार घुल-मिल गयी थी कि अब वह दक्षिणेश्वर के पवित्र वायुमंडल को भी दूषित करने लगी. रामकृष्ण के कानों तक ये बातें पहुंची परन्तु उन्हें अपने कानों पर विश्वास नहीं हुआ. हां, उनके अन्य शिष्यों ने कलकत्ता जाकर सत्य को अपनी आंखों से परखना चाहा. सही बात की जानकारी नरेन्द्र से ही मिल सकती थी, क्योंकि वे जानते थे कि चाहे जैसा भी काम हो अच्छा या बुरा, नरेन्द्र उसका ठीक उत्तर देंगे. नरेन्द्र ने किया भी वैसा ही. उदाहरणार्थ नरेन्द्र के ये वाक्य—'उत्तेजित मनःस्थिति में मैंने उन्हें सिर्फ इतना ही समझाया कि नरक के भय से ईश्वर में विश्वास रखना कायरता है. उदाहरणस्वरूप अनेक पश्चिमी दार्शनिकों के उद्धरण देते हुए मैंने ईश्वर के अस्तित्व और अस्तित्वहीनता पर उन लोगों के साथ वाद-विवाद किया. फल यह हुआ कि उन लोगों ने इस विश्वास के साथ मुझसे विदा ली कि मैं बुरी तरह भटक गया हूं. किन्तु मैं खुश था. मैंने सोचा कि सम्भव है रामकृष्ण भी इस पर विश्वास कर लें. इस विचार ने मेरे हृदय को अनियंत्रित रूप से उत्तेजित बना दिया. मैंने अपने आप से कहा, कोई बात नहीं, यदि किसी मनुष्य के विषय में अच्छे और बुरे विचार इस तरह के निर्बल आधार पर स्थित हैं, तो मुझे उसकी परवाह नहीं.'

उन शिष्यों ने जब दक्षिणेश्वर जाकर रामकृष्ण को ये बातें सुनायीं, तब ऐसा जान पड़ा जैसे रामकृष्ण ने सब कुछ सुन कर भी कुछ नहीं सुना. उनके मुखमंडल के भाव एक से बने रहे. क्रिया-कलाप में कोई परिवर्तन नहीं दिखाई पड़ा. किन्तु शिष्य मंडली में उत्तेजना थी. रामकृष्ण के एक प्रिय शिष्य भवनाथ ने जब भावावेश के कारण आँखों में आँसू भर कर कहा कि नरेन्द्र इतना नीचे गिर जायेंगे, इसका उन्हें स्वप्न में भी विश्वास नहीं था, तब रामकृष्ण से रहा नहीं गया. वे बड़े क्रुद्ध होकर गरज पड़े—'चुप रह मूर्ख. 'माँ' ने मुझसे कहा है कि ऐसा कभी नहीं हो सकता. यदि तुमने पुनः इस तरह की बात मुझसे की तो मैं तेरी ओर देखूंगा भी नहीं.' रामकृष्ण की दृष्टि में नरेन्द्र का व्यक्तित्व अन्य लोगों की तुलना में बहुत ही भिन्न था. वे उन्हें शिव के समान पावन एवं पूजनीय समझते थे. नरेन्द्र के विरुद्ध कोई भी बात किसी कीमत पर नहीं सुन सकते थे. एक बार किसी शिष्य ने नरेन्द्र के विषय में कुछ असंगत बातें कीं. इसे सुनते ही रामकृष्ण ने उक्त शिष्य को डांट कर कहा—'तुम शिव-निन्दा कर रहे हो. नरेन्द्र के विषय में कोई भी अपना मत स्थिर नहीं कर सकता. कोई भी उसे पूरी तरह नहीं समझ सकता.'

उस समय वास्तव में नरेन्द्र के हृदय में द्वन्द्वयुद्ध चल रहा था. उसकी

अशान्ति में वे खोये खोये से अपने आप को ही नहीं समझ पा रहे थे. परिस्थिति की कठोर वास्तविकता ने उन्हें अनीश्वरवादी अवश्य बना दिया था. मगर हृदय की अनेक-परतों के नीचे पूर्ण ईश्वरानुभूति की चिनगारी दबी पड़ी थी. समय की हवा लगते कभी भी वह चिनगारी अग्निपुंज का रूप धारण कर सकती थी. नरेन्द्र के ये शब्द—'किन्तु बाध्य होकर अपनाये गये इन नास्तिक विचारों को स्वीकारते हुए भी, मेरे बचपन के अनुभव और विशेषकर रामकृष्ण से मेरे संबंध के बाद के दैवी दर्शन की प्रत्यक्ष स्मृति मुझे यह सोचने के लिए विवश करने लगी कि ईश्वर की सत्ता अवश्य है और उसके प्रत्यक्षीकरण के भी कुछ मार्ग हैं. नहीं तो जीवन निस्सार है. अनेक कठिनाइयों और कष्टों के मध्य से ही मुझे उसका मार्ग ढूंढ़ना है. दिन बीतने लगे और मस्तिष्क संशय और असंशय के बीच घूमने लगा.'

दिन के बाद रात और रात के बाद दिन. इस तरह कितने मास और ऋतुएं आती और जाती रहीं. किन्तु नरेन्द्र को कोई स्थायी काम नहीं मिला. एक बार वर्षा में भीगते हुए, भूखे पेट, थके मांदे वे घर लौट रहे थे. मस्तिष्क में निराशा का घोर अंधकार था. आंखें खुली थीं. पर कुछ दिखाई नहीं दे रहा था. शरीर बिल्कुल निष्प्राण हो गया था. एक पग भी आगे बढ़ना कठिन था. सामने एक मकान था. वे उसके सूने बरामदे में एक ओर बैठ गये. उनके मस्तिष्क में तरह-तरह के विचारों की लहरें उठने लगीं. नरेन्द्र किसी लहर को पकड़ नहीं पाते. उनकी बुद्धि इन विचार-लहरों के भंवरजाल में चक्कर खाने लगी. इसी स्थिति में अचानक उन्हें अनुभव हुआ कि कोई अलौकिक शक्ति उनके हृदय से भ्रम का आवरण खींच रही है. धीरे-धीरे उनका हृदय निरावरण हो गया, उसमें एक अजीब प्रकाश समा गया. उसके आलोक में उन्होंने देखा कि उनके मस्तिष्क की सभी शंकाओं का अस्तित्व समाप्त हो रहा है और ईश्वर की सत्ता के प्रति विश्वास उमड़ रहा है. फिर नरेन्द्र का हृदय धीरे धीरे शान्त होने लगा. शरीर की थकान मिटने लगी. जब वे घर पहुँचे, तब उनके हृदय और मस्तिष्क दोनों ही स्थिर और शान्त थे.

नरेन्द्र में अब पहले से काफी परिवर्तन आ गया था. लोगों के मान-अपमान, स्तुति-निंदा का उन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता था. उन्हें विश्वास हो गया था कि उनका जीवन औरों से भिन्न है. उन्होंने सिर्फ भोग विलास या परिवार के भरण-पोषण के लिए जीवन धारण नहीं किया है. नरेन्द्र के पितामह ने संन्यास ग्रहण किया था. बचपन से ही संन्यास का आकर्षण नरेन्द्र के हृदय को उद्वेलित कर रहा था. अब इस विचार ने प्रगाढ़ शक्ति अपना ली थी कि उन्हें भी घरबार का मोह त्याग कर संन्यास ग्रहण करना है. वे प्राय: अपने मित्रों से कहा करते थे—'एक भिक्षु का जीवन वास्तव में महान है क्योंकि वह मृत्यु की शक्ति को ठेल कर अलग कर देता है. जब सारा जग परिवर्तनशील स्थिति में व्यापार कर रहा होता है, उसमें डूबा हुआ होता है, तब वह भिक्षु शाश्वत सत्य की खोज में लीन होता है.' बड़े सोच

विचार के बाद उन्होंने एक दिन घर छोड़ने का निश्चय किया. दैवयोग से उसी दिन रामकृष्ण कलकत्ता आये. नरेन्द्र ने सोचा कि गृहत्याग के पहले गुरुदेव का आशीर्वाद ले लेना श्रेयस्कर होगा. अतः वे उनसे मिलने गये. परन्तु रामकृष्ण ने उन्हें एक रात के लिए दक्षिणेश्वर चलने को बाध्य कर दिया. नरेन्द्र का मुहूर्त बीता जा रहा था. किन्तु गुरु के आग्रह को वे टाल नहीं सके और उनके साथ दक्षिणेश्वर चले गये. गुरु और शिष्य के साथ रास्ते में कोई बातचीत नहीं हुई. दक्षिणेश्वर पहुंच कर नरेन्द्र को दूसरे शिष्यों के साथ बैठा कर रामकृष्ण समाधि में डूब गये. काफी देर बाद जब उनकी समाधि टूटी तो वे नरेन्द्र के पास आये और बड़े प्यार से उन्हें स्पर्श किया. फिर नेत्रों में जल भर कर एक गीत गाने लगे. नरेन्द्र अब तक अपने को दबाये बैठे थे. किंतु अब रहा नहीं गया. उनके मर्म को गहरी चोट पहुंची थी. वे भी गुरुदेव के साथ आँसू बहाने लगे गुरु और शिष्य के मिलन का यह दृश्य अपूर्व था. इसने वहां उपस्थित अन्य लोगों के हृदय को द्रवित कर दिया. जब रामकृष्ण स्वस्थ हुए तो उपस्थित लोगों ने उनसे पूछा कि आप की और नरेन्द्र की ऐसी दशा क्यों हो गयी थी. उन्होंने हँस कर उत्तर दिया—'भाई, यह मेरे और उसके बीच की कुछ बात है.' रात काफी बीत गयी थी. लोगों को विदा कर रामकृष्ण ने नरेन्द्र से कहा—'मैं जानता हूँ, तुम 'माँ' के काम से यहाँ आये हो और संसार में लीन नहीं रहोगे परन्तु जब तक मैं जीवित रहूँ, सिर्फ मेरे लिए तुम ठहर जाओ.' यह कह कर गुरुदेव फूट फूट कर रोने लगे. दूसरे दिन उनकी आज्ञा लेकर नरेन्द्र घर लौट आये.

घर में पांव धरते न धरते अनेक प्रकार की चिंताएं घिर आयीं. परिवार के भरण-पोषण की मुख्य समस्या पर वे विचार करने लगे. उन्हें लगा कि परिवार को आर्थिक रूप से स्वावलम्बी बना कर ही वे कुछ और काम कर सकते हैं. बड़ी कठिनाई से एक दफ्तर में उन्हें थोड़ा सा काम मिला. फिर पुस्तकों के अनुवाद से भी कुछ पैसे मिल जाते. इस प्रकार परिवार का काम किसी तरह चलता रहा. किंतु जब तक नियमित रूप से परिवार को आर्थिक सहायता नहीं मिलने लगती तब तक नरेन्द्र की परेशानी दूर नहीं हो सकती थी. इस समस्या के समाधान के लिए नरेन्द्र के मस्तिष्क में अनेक तरह की योजनाएँ बनती और मिटती रहीं. एक दिन उनके दिमाग में यह बात आयी कि इस समस्या के समाधान के लिए रामकृष्ण की सहायता ली जा सकती है. रामकृष्ण मुझे बहुत मानते हैं. मेरे लिए अपनी जान तक देने को तैयार हो सकते हैं. वे अक्सर कहा करते हैं कि 'माँ काली' ने उनकी अनेक प्रार्थनाएं सुनी हैं, तो भला मेरी एक छोटी-सी प्रार्थना क्या वे 'माँ काली' के पास नहीं पहुंचा सकते ! मैं क्यों इतनी देर तक इस समस्या के साथ माथापच्ची करता रहा ? नरेन्द्र दक्षिणेश्वर की ओर चल पड़े. उन्हें रामकृष्ण पर आस्था थी कि वे उनकी लालसा को कभी नहीं ठुकरायेंगे. दक्षिणेश्वर पहुंच कर उन्होंने रामकृष्ण से कहा कि वे उनके परिवार

के भरण पोषण के लिए 'माँ काली' से प्रार्थना करें. रामकृष्ण ने पहले तो कुछ टालमटोल की. फिर कुछ सोच कर उत्तर दिया—

'मेरे वत्स, मैं इस प्रकार की मांग नहीं कर सकता. पर तुम ही क्यों नहीं वहां चले जाते हो. तुम स्वयं ही 'मां' से कह सकते हो. तुम्हारे हृदय में उनके प्रति अनादर है, इसी कारण ये सब कष्ट हैं.'

'मैं नहीं जानता 'मां' को. कृपया आप ही मेरे विषय में उनसे कहें.' नरेन्द्र ने कहा.

रामकृष्ण ने मृदु वाणी में फिर उत्तर दिया—

'मेरे प्यारे बच्चे, मैंने बार-बार ऐसा कहा है. परन्तु तुम उन्हें स्वीकार नहीं करते, इसलिए वे मेरी प्रार्थना नहीं सुनतीं. ठीक है, आज मंगलवार है. रात्रि के समय काली मन्दिर में जाओ. 'मां' के समक्ष साष्टांग दंडवत करो. फिर जो वरदान मांगना है मांगो. वह अवश्य ही प्राप्त होगा. वे पूर्ण हैं. वे ब्रह्म की अगाध शक्ति हैं. उनकी एक छोटी-सी इच्छा से संसार का निर्माण हुआ है. हर चीज उनकी शक्ति की सीमा में है. वे जो चाहें दे सकती हैं.'

नरेन्द्र का हृदय संतोष और खुशी से भर गया. उन्होंने गुरुदेव की एक-एक बात को अक्षरशः सत्य माना. वे बड़ी अधीरता से रात्रि की प्रतीक्षा करने लगे. करीब नौ बजे रामकृष्ण ने उन्हें मन्दिर में जाने की आज्ञा दी. 'देवी मां' को सजीव रूप में देखने और उनकी वाणी सुनने की सुखद कल्पना में डूबे हुए जैसे ही नरेन्द्र ने मन्दिर की देहरी पर कदम रखे, उन पर दैवी उन्माद-सा छा गया. उनके पांव डगमगाने लगे. मन्दिर में पहुंच कर उन्होंने प्रतिमा को निहारा, 'देवी माँ' वास्तव में सजीव और चेतनापूर्ण मालूम पड़ने लगीं. उस समय की उनकी अनुभूति का वर्णन उन्हीं के शब्दों में—'प्रेम और भक्ति की बड़ी-बड़ी लहरों के नीचे मैं दब गया. खुशी के नशे में मैं बार-बार 'मां' के समक्ष दंडवत करता रहा और प्रार्थना की कि मुझे विवेक दीजिए, मुझे वैराग्य दीजिए, मुझे ज्ञान और भक्ति दीजिए, मुझे वर दीजिए कि मैं आपका निर्विघ्न दर्शन कर सकूं. मेरी आत्मा में एक सौम्य शक्ति का साम्राज्य छा गया. मैं दुनिया को भूल गया. मेरे हृदय में सिर्फ 'देवी मां' ही दिखाई देती रहीं.'

लेकिन जिस समस्या को लेकर नरेन्द्र 'देवी माँ' के सामने गये थे, वह उनके मन में ही रह गयी. 'मां' के दर्शन के बाद हर्षातिरेक में झूमते हुए जब नरेन्द्र गुरुदेव के पास लौटे तो गुरुदेव ने पूछा—

'क्या तुमने अपनी सांसारिक आवश्यकताओं के लिए 'माँ' के सामने प्रार्थना की?'

प्रश्न सुन कर नरेन्द्र पहले तो चकित रह गये. फिर अपनी भूल पर लज्जित

होते हुए से बोले—

'नहीं गुरुदेव, मैं तो इसके विषय में बिलकुल भूल ही गया था. पर अब क्या होगा ? कोई और विधि है ?'

'फिर जाओ और उनसे अपनी जरूरतों के विषय में बोलो.' रामकृष्ण ने कहा.

नरेन्द्र पुनः मंदिर की ओर चल पड़े. 'मां काली' पूर्ववत् स्थिर भाव से खड़ी थीं. उन्हें देखते ही नरेन्द्र अपना अपेक्षित उद्देश्य भूल गये और बार-बार उनके सामने नतमस्तक होकर उनका प्यार और भक्ति पाने के लिए विनती करते रहे. दूसरी बार गुरुदेव ने फिर पूछा कि उन्होंने अपना काम किया या नहीं. नरेन्द्र ने विनम्रता से सर झुका लिया और मंदिर में जो कुछ हुआ था उन्हें कह सुनाया. गुरुदेव ने नरेन्द्र की भर्त्सना की—

'कैसे नासमझ हो. क्या उन थोड़े से शब्दों को कहने के लिए तुम अपने को वश में नहीं रख सकते ? हां, एक बार और प्रयत्न करो तथा उनसे अपनी प्रार्थना कहो. जल्दी करो.'

नरेन्द्र तीसरी बार मंदिर में गये. द्वार के भीतर प्रवेश करते ही घोर लज्जा ने उन्हें धर दबाया. वे सोचने लगे—कितनी हल्की-सी बात की प्रार्थना लेकर मैं 'मां' के पास आया हूं. यह ऐसा ही लगता है जैसे किसी बड़े सम्राट से थोड़ी-सी सब्जी मांगना. कितना मूर्ख हूँ मैं. लज्जा और ग्लानि से उनका सर झुक गया. होठों से बस एक ही पंक्ति किस तरह निकल सकी—

'मां, मैं ज्ञान और भक्ति के सिवा और कुछ नहीं चाहता.'

मन्दिर से बाहर आने पर वे समझ गये कि यह सब गुरुदेव की इच्छा से ही हुआ है. नहीं तो भला तीसरी बार भी वे अपने उद्देश्य की प्राप्ति में कैसे असफल हो गये. वे रामकृष्ण के पास आये और अपनी विफलता पर कुछ दुखी होते हुए से बोले—

'गुरुदेव, आप ही ने मेरे मस्तिष्क पर जादू कर दिया है और मुझे विस्मृतिपूर्ण बना दिया है. अब कृपा कर वरदान दीजिए कि मेरे घर के लोगों को दरिद्रता जरा भी नहीं सताये.'

रामकृष्ण ने गम्भीरतापूर्वक उत्तर दिया—

'इस प्रकार की प्रार्थना मेरे होठों पर नहीं आ सकती. मैंने तुमसे इसीलिए कहा था कि अपने लिए प्रार्थना करो. मगर तुम वैसा नहीं कर सके. इससे प्रमाणित होता है कि तुम्हारे भाग्य में सांसारिक आनन्द प्राप्त करना नहीं है. भला अब मैं क्या कर सकता हूं ?'

किन्तु नरेन्द्र ने गुरुदेव को आसानी से नहीं छोड़ा. उन्होंने उस प्रार्थना की सुनवाई के लिए गुरुदेव को बहुत ही बाध्य किया. अंत में विवश होकर रामकृष्ण

ने कहा : 'ठीक है, घर पर तुम्हारे लोग अब कभी भी भोजन और वस्त्र की चिंता नहीं करेंगे.'

यहां से नरेन्द्र के जीवन का दूसरा अध्याय शुरू होता है. अभी तक उन्हें जो ईश्वरानुभूति हुई थी वह अरूप दैवी शक्ति थी. इस अनुभूति के बाद नरेन्द्र अक्सर ही एक अलौकिक भावसागर में डूब जाया करते थे. किन्तु बाद वाली स्थिति में उन्होंने 'मां काली' की प्रतिमा में मातृत्व का उमड़ता हुआ स्नेह देखा. इसके बाद से ही उन्हें मूर्तिपूजा में विश्वास और श्रद्धा होने लगी. वे समझ गये कि प्रतिमा की आराधना पूजा भी वही है जो ब्रह्म की उपासना है. इस ज्ञान से नरेन्द्र का आध्यात्मिक जीवन भरापूरा हो गया. अनायास नरेन्द्र के इस विचार परिवर्तन ने रामकृष्ण को आश्चर्यचकित बना दिया. उन्हें आंतरिक खुशी हुई.

इसके ठीक दूसरे दिन, गुरुदेव के एक दूसरे शिष्य वैकुण्ठनाथ सान्याल दक्षिणेश्वर आये. आने के बाद उन्होंने जो देखा सुना, वह उन्हीं के शब्दों में—'दोपहर में दक्षिणेश्वर पहुँच कर मैंने देखा कि गुरुदेव अपने कमरे में अकेले हैं और नरेन्द्र बाहर सोये हुए हैं. रामकृष्ण बड़ी ही आनन्दित अवस्था में थे. जैसे ही मैंने उनका अभिवादन किया उन्होंने नरेन्द्र की ओर संकेत करते हुए कहा : 'इधर देखो, यह लड़का अति उत्तम है. इसका नाम नरेन्द्रनाथ है. पहले इसने कभी भी 'देवी माँ' को स्वीकार नहीं किया था, किंतु कल इसने उन्हें स्वीकार कर लिया. आजकल यह कठिन परिस्थिति में है. इसलिए मैंने इसे 'मां' से धन मांगने को कहा, परंतु यह मांग नहीं सका. इसने कहा कि उसे बहुत लज्जा आने लगी. मंदिर पर लौटने पर इसने मुझे 'देवी मां' के लिए एक गीत सिखाने को कहा. मैंने इसे सिखा दिया. पिछली सारी रात यह वह गीत गाता रहा भाव-विभोर होकर. इसीलिए अभी तक सो रहा है.' इसके बाद उन्होंने निश्च्छल आह्लाद से फिर कहा : 'क्या यह आश्चर्यजनक नहीं कि नरेन्द्र ने 'माँ' को स्वीकार कर लिया ?' मैंने कहा 'हां. कुछ क्षण बाद उन्होंने फिर अपनी बात की पुनरावृत्ति की. इसके बाद काफी देर तक उनसे इसी प्रकार की बातें होती रहीं.'

उस दिन अपराह्न में करीब चार बजे नरेन्द्र सोकर उठे. उन्हें शीघ्र ही कलकत्ता लौटना था. लौटने के पहले वे रामकृष्ण के कमरे में उनसे मिलने गये. रामकृष्ण नरेन्द्र को देखते ही अधीरता से उनके पास आ गये. और उनके बिल्कुल करीब सट कर बैठ गये. फिर पहले अपनी ओर और फिर बाद में नरेन्द्र की ओर उंगली से संकेत करते हुए कहा—

'सुनो, मुझे ऐसा लगता है कि यह जो मैं हूं वही फिर वहाँ हूं. सच, मुझे कोई अंतर नहीं मालूम पड़ता—जैसे गंगा में बहती हुई लकड़ी पानी को विभाजित करती हुई सी प्रतीत होती है, किन्तु वास्तव में वह एक है. क्या तुम मेरी बात समझ

रहे हो ? देखो, इन सबके बाद आखिर शेष क्या रहता है—केवल 'माँ'. तुम्हारा क्या विचार है ?'

कुछ देर तक वे इस तरह की बातें करते रहे फिर उन्होंने हुक्का पीने की इच्छा प्रकट की. उनके एक शिष्य ने हुक्का तैयार कर उन्हें पीने को दिया. एक दो फूंक लेने के बाद वे सिर्फ चिलम ही पीने लगे. इसके बाद उन्होंने चिलम को नरेन्द्र की ओर बढ़ाते हुए कहा—

'मेरे हाथ से तुम भी पिओ.'

नरेन्द्र को झिझक आने लगी. भला गुरुदेव के हाथ को वे अपने होंठों से जूठा कैसे करें. 'कितने मूर्खतापूर्ण तेरे विचार हैं ? क्या मैं तुमसे भिन्न हूं. यह मैं हूं और वह भी मैं हूं.' पहले अपनी ओर और फिर नरेन्द्र की ओर संकेत करते हुए गुरुदेव ने कहा और अपने हाथों चिलम नरेन्द्र के होंठों के पास ले गये. असमंजस में पड़े हुए नरेन्द्र को गुरुदेव के हाथों से चिलम पीने के सिवा बच निकलने का और कोई मार्ग नहीं था. नरेन्द्र ने दो तीन फूंके लीं. फिर रामकृष्ण उसे अपने होंठों के पास ले जाकर फूंक लेने ही वाले थे कि नरेन्द्र ने जल्दी से उन्हें रोक कर कहा—

'गुरुदेव, पहले अपने हाथ तो धो लीजिए.'

मगर नरेन्द्र के इस विरोध पर गुरुदेव ने कोई ध्यान नहीं दिया.

'असमानता के कितने गलत विचार तुमने पाल रखे हैं.' कहते हुए गुरुदेव बिना हाथ धोये ही चिलम पीने लगे.

रामकृष्ण का भोजन बड़े ही निष्ठा नियम से बनता था. उनके लिए बने भोजन में से यदि किसी को उनके खाने के पहले निकाल कर परोसा जाता, तो शेष भाग को वे उच्छिष्ट समझते थे और उसे ग्रहण नहीं करते थे. किंतु यहां नरेन्द्र के साथ जो उन्होंने अपना व्यवहार दिखाया उससे सत्य ही सिद्ध होता है कि नरेन्द्र से उनका संबंध अभिन्न ही नहीं, अलौकिक भी था. रामकृष्ण के निःस्वार्थ, निश्च्छल और असीम प्रेम ने नरेन्द्र के जीवन को बाँध रखा था. नरेन्द्र ने कहा भी है—"श्री रामकृष्ण ही समरूप से मुझ पर विश्वास करते रहे—यहां तक कि मेरी माँ या मेरे भाई भी ऐसा नहीं कर सके. यह मेरे प्रति उनकी अविचल आस्था और प्रेम ही है जिसने मुझे उनके साथ सदा के लिए बांध रखा है. वे सिर्फ यह जानते हैं कि दूसरे को प्यार कैसे किया जाता है. सांसारिक लोग तो अपने स्वार्थपूर्ण उद्देश्यों के लिए प्रेम का स्वाँग रचते हैं.'

१८८५ ई० की ग्रीष्म ऋतु रामकृष्ण के शरीर में व्याधि का बीज रोप गयी. वे गले के दर्द से परेशान रहने लगे. उनका जीवन दिन-प्रतिदिन बढ़ने वाले इस क्लेश के दंश से क्लांत होने लगा. शिष्यगण उनकी दशा देख कर चिंतित हुए. समुचित चिकित्सा के लिए उन्हें कलकत्ता लाया गया. अनुभवी डाक्टरों ने उनकी

जांच की और उसे घातक रोग, गले का कैन्सर बताया. डाक्टरों ने उन्हें कलकत्ते से बाहर खुली और स्वच्छ वायु में ले जाने को कहा. कलकत्ते में रहने की बड़ी असुविधा थी. अतः कुछ गृही भक्तों की सहायता से कलकत्ते के पास ही काशीपुर में एक बगीचेवाला छोटा-सा मकान किराये पर लेकर रामकृष्ण को वहां ले जाया गया. गुरुदेव की सेवा के लिए उसी मकान में उनके प्रमुख शिष्य भी रहने लगे. नरेन्द्र जो इन दिनों ईश्वरचन्द्र विद्यासागर के स्कूल में अध्यापन कार्य कर रहे थे, वे भी उसे छोड़ कर गुरुदेव की सेवा के लिए यहां आ गये. कुछ गृही शिष्य उस मकान से बाहर रह कर ही उन्हें आर्थिक सहायता देने लगे. नरेन्द्र पहले तो दो बार अपने घर भोजन के लिए जाया करते थे किन्तु गुरुदेव की स्थिति अधिक गम्भीर होने पर उन्होंने घर जाना छोड़ दिया. किंतु रामकृष्ण नरेन्द्र से किसी प्रकार की सेवा नहीं लेते थे. उनकी दृष्टि में नरेन्द्र अन्य शिष्यों से सर्वथा भिन्न थे.

काशीपुर के उद्यानगृह में रोगी की सेवा-शुश्रूषा के साथ-साथ शिष्यों का पठन-पाठन, ध्यान-चिंतन और पूजा-अर्चना का कार्यक्रम भी सुचारु रूप से चलता रहा. गुरुदेव की बताई विधि से नरेन्द्र ने एकाग्रचित्त होकर अपने को कठिन साधना और ध्यान में लीन कर दिया. वे अनुभव करते कि उनमें नित नूतन आध्यात्मिक शक्ति की धारा उमड़ी चली आ रही है. वे जानते थे कि इस धारा को प्रवाहित करने वाले रामकृष्ण थे. वे धीरे-धीरे नरेन्द्र को अपनी सम्पूर्ण आध्यात्मिक शक्ति से विभूषित कर रहे थे. उन्हें पूरा विश्वास था कि उनका नरेन्द्र इस शक्ति का उपयोग अच्छी तरह करेगा जिससे संसार का कल्याण होगा.

इस संदर्भ में एक घटना की याद हो आती है. उस दिन शिवरात्रि थी. नरेन्द्र तथा उनके साधक मित्रों ने उपवास किया और सारी रात पूजा, प्रार्थना तथा चिंतन में व्यतीत करने का निश्चय किया. शिव की पूजा-अर्चना के बाद ध्यान लगाने का समय आया. तब तक अन्य व्यक्ति किसी कारणवश कक्ष के बाहर चले गये थे. सिर्फ एक व्यक्ति, काली, नरेन्द्र के साथ था. इधर दिनोदिन विकसित होने वाली अलौकिक आध्यात्मिक शक्ति की परीक्षा लेने का विचार अचानक नरेन्द्र के हृदय को उद्वेलित करने लगा. ध्यानावस्थित होने के पूर्व नरेन्द्र ने काली से कहा—

'कुछ मिनट बाद तुम मुझे स्पर्श करना.'

काली ने अपने दाहिने हाथ से ध्यानावस्थित नरेन्द्र के दाहिने घुटने को स्पर्श किया. मात्र स्पर्श से ही काली की दक्षिण भुजा बड़े वेग से हिलने लगी मानो विद्युत से स्पर्श हो गया हो. दो मिनट बाद नरेन्द्र ने आँखें खोलीं और पूछा—

'ठीक है ? कैसा अनुभव हुआ ?'

काली ने अपने अनुभव का वर्णन करते हुए कहा कि उसने कितना भी अपने को स्थिर करने का प्रयत्न किया, पर सफल नहीं हो सका. इसे सुन कर नरेन्द्र का जिज्ञासु हृदय बड़ा ही तृप्त और संतुष्ट हुआ. वे सोचने लगे, तो क्या मुझमें

भी वही शक्ति आ गयी जो गुरुदेव में है. वे प्रसन्न वदन गुरुदेव के पास दूसरे कमरे में गये. उनके कमरे में पाँव रखते ही गुरुदेव ने क्रुद्ध स्वर में कहा—

'देखो, तुम अपनी शक्ति को बिना पूर्ण रूप से संचित किये ही व्यय करने लगे. पहले इसे एकत्र करो फिर समझोगे कि इसका कितना भाग किस काम में और किस प्रकार व्यय करोगे.'

रामकृष्ण की बातें सुन कर नरेन्द्र एक दम मूक रह गये. उन्हें आश्चर्य होने लगा कि अभी-अभी वाटिका-गृह के दूसरे कक्ष में क्या हो रहा है, गुरुदेव को भला कैसे मालूम. किन्तु वास्तव में वे रामकृष्ण की विलक्षण शक्ति से परिचित थे.

एक दिन रामकृष्ण ने अपने शिष्यों को बुला कर मठ के भिक्षु-जीवन की व्यावहारिक शिक्षा दी. जिस मनुष्य ने सत्य की खोज के लिए, जगत के कल्याण के लिए अपने घर और परिवार को त्याग कर परिव्राजक का रूप अपनाया है, उसके लिए पेट का ममत्व त्याज्य है. उसे अपने लिए किसी भी वस्तु का संग्रह नहीं करना है. उसे अपने लिए नहीं दूसरों के लिए जीना है. रामकृष्ण ने शिष्यों को आदेश दिया कि वे घर-घर जाकर भिक्षाटन करें. शिष्यों ने वैसा ही किया. जो थोड़े से चावल उन्हें प्राप्त हुए, उसे उन लोगों ने पकाया. पके हुए चावल के एक दाने को हाथ में लेकर रामकृष्ण ने शिष्यों से कहा—

'बहुत अच्छा बना है. यह चावल कितना पावन है.'

रामकृष्ण की दृष्टि में वह चावल इसलिए पावन था कि एक तो वह ममत्व से रहित था तथा उस पर सभी शिष्यों का समानाधिकार था. दूसरे, वह श्रेष्ठ और निम्न, सभी प्रकार की जातियों के घर से मांग कर आया था.

नरेन्द्र का अब कालेज की शिक्षा से पूर्णत: जी उचट गया था. अपनी रुग्णावस्था में रामकृष्ण ने एक बार नरेन्द्र को याद दिलाया कि वे अपने कालेज की शिक्षा पूर्ण कर लें. किन्तु नरेन्द्र ने भावावेश में उत्तर दिया—

'गुरुदेव मैंने जो कुछ आज तक पढ़ा है, यदि सदैव के लिए उसे भूल जाने की कोई औषधि मिल जाती तो मुझे बहुत चैन मिलता.'

अब तक नरेन्द्र का हृदय इस रोटी अर्जित करने वाली शिक्षा से एकदम विमुख हो चुका था. विशेषकर संन्यास ग्रहण करने के पश्चात् नरेन्द्र अधिकतर संन्यासियों की जीवनी तथा उनके उपदेशों की चर्चा में ही अधिकतर व्यस्त रहा करते. भगवान बुद्ध के चिंतन में खोये-खोये से रहने लगे. एक रात गुप्त रीति से अपने दो गुरुभाइयों के साथ नरेन्द्र बोध गया चले गये. वहाँ बोधिसत्व के मंदिर के दर्शन के उपरान्त, वे बोधिवृक्ष के नीचे समाधिरत हो गये. दोनों गुरुभाई भी ध्यानस्थ हुए. कुछ देर के बाद ध्यान टूटने पर उन लोगों ने देखा कि नरेन्द्र का शरीर पाषाणवत् हो गया है. उन लोगों ने बड़ी देर तक प्रतीक्षा की किन्तु नरेन्द्र की समाधि भंग नहीं हुई. कई घंटों के बाद उनकी आँखें खुलीं.

इधर प्रातःकाल उद्यान-गृह में नरेन्द्र तथा दो अन्य संन्यासियों को न देख कर लोग चिंतित हुए. सर्वत्र खोज की गयी. किन्तु व्यर्थ. जब रामकृष्ण ने यह सब सुना तो हंसते हुए कहा—

'तुम लोग चिंता न करो, वह लौट आयेगा. क्या वह इस जगह के अतिरिक्त अन्य कहीं स्थिर रह सकता है ?'

और सचमुच नरेन्द्र वहां स्थिर नहीं रह सके. बोधिवृक्ष के नीचे घंटों की गयी कठोर-साधना के बाद भी वे यही समझ सके कि रामकृष्ण के चरणों के बिना उन्हें कहीं भी शान्ति नहीं मिल सकती. फिर वे गुरुभाइयों के साथ काशीपुर लौट आये.

रामकृष्ण की अवस्था दिन प्रतिदिन गिरती जा रही थी. फलस्वरूप शिष्य एवं शुभाकांक्षियों की घबड़ाहट और चिंता की काली घटा घनीभूत होती जाती. गले के कष्ट के कारण पानी में पकायी हुई बारली निगलना भी कष्टप्रद था. उनका कंठस्वर क्षीण हो गया था. परन्तु साहस और उत्साह ज्यों का त्यों बना रहा. वे बराबर अपने भक्तों को किसी न किसी प्रकार की शिक्षा देते रहे तथा आराधना और भक्ति का स्वांग रचने वाले लोगों की नकल उतार कर अपने शिष्यों का कभी-कभी मनोरंजन भी किया करते. आत्मशक्ति के विकास पर वे विशेष बल देते. एक बार उन्होंने कहा था—

'यदि तुम कहते हो कि तुम सदा पापी हो, तो तुम अनंतकाल तक पापी बने रहोगे. इसके अतिरिक्त तुम्हें इस प्रकार की आवृत्ति अवश्य करनी चाहिए कि मैं बंधन में नहीं हूँ, मैं बंधा हुआ नहीं हूँ···मुझे कौन बाँध सकता है ? मैं परमात्मा का पुत्र हूँ. राजाओं का राजा हूँ··· तुम अपनी आत्मशक्ति से काम लो और फिर तुम स्वच्छन्द हो जाओगे, वे मूर्ख हैं जो निरन्तर कहते रहते हैं कि 'मैं एक दास हूँ.' वह अंततोगत्वा एक दास ही बनकर रह जाता है. दुःखी मनुष्य जो अथक रूप से जपता रहता है 'मैं दोषी हूँ,' वास्तव में दोषी बन जाते हैं, मगर वह मनुष्य मुक्त है जो कहता है 'मैं संसार के बंधन से मुक्त हूँ, मैं स्वतन्त्र हूँ,' क्या परमेश्वर हमारे पिता नहीं ?···बंधन मस्तिष्क का होता है, किन्तु मुक्ति मस्तिष्क से प्राप्त होती है.'

नरेन्द्र गुरुदेव की वाणी ध्यान से सुनते और उन्हें हृदयंगम करते. उपनिषद का अद्वैतवाद नरेन्द्र के रोम-रोम में व्याप्त हो रहा था. वे उपनिषद की आत्मा जहाँ मनुष्य और ईश्वर का एकाकार हो जाता है, को प्रत्यक्ष रूप से अनुभव करना चाहते थे, वे जानना चाहते थे कि आखिर किस आधार पर एक योगी बड़े आत्म-विश्वास से कहता है कि मैं ब्रह्म हूँ. उनकी आत्मा इस अपूर्व अनुभव के लिए विकल थी. यद्यपि भविष्य में वे गुरुदेव की इसी अनुभूति को मज़ाक समझ कर, उस पर व्यंग्यात्मक हंसी हंसा करते थे.

एक दिन बड़े अरमान लेकर नरेन्द्र गुरुदेव के कक्ष में गये. गुरुदेव उस समय

अकेले ही थे. नरेन्द्र नतमस्तक गुरुदेव के सामने खड़े थे. उनकी आंखों में संकल्प की दृढ़ता थी. गुरुदेव ने पूछा—

'नरेन, तू क्या चाहता है ?'

'निर्विकल्प समाधि के द्वारा सदैव सच्चिदानन्द के सागर में डूबा रहना चाहता हूँ.' नरेन्द्र ने सहमते हुए कहा.

रामकृष्ण विकल से हो गये, किन्तु फिर सहज भाव से कहा—

'वार-वार यही वात कहते तुझे लज्जा नहीं आती ? समय आने पर कहाँ तू वटवृक्ष की तरह बढ़ कर सैकड़ों लोगों को शांति की छाया देगा, और कहाँ आज अपनी ही मुक्ति के लिए व्यग्र हो उठा, इतना क्षुद्र है आदर्श तेरा ?' नरेन्द्र की आंखें छलछला उठीं. गले में कुछ अटकने-सा लगा, वे रुंधे हुए कंठ से वोले—

'निर्विकल्प समाधि न होने तक मेरा मन किसी भी तरह शांत नहीं होने का, यदि वह न हुआ तो मैं कुछ भी नहीं कर सकूंगा.'

'तू क्या अपनी इच्छा से करेगा ? 'देवी मां' तेरी गर्दन पकड़ कर करा लेंगी, तू न करे, तेरी हड्डियां करेंगी,...अच्छा जा, निर्विकल्प समाधि होगी.' सहज मुस्कान के साथ गुरुदेव ने कहा.

दूसरे दिन संध्या समय नरेन्द्र कमरे में वैठे हुए ध्यान लगा रहे थे. उनके एक गुरुभाई भी वहीं वैठे हुए थे. अचानक नरेन्द्र को जान पड़ा जैसे उनके मस्तिष्क के पिछले हिस्से पर न जाने कहां का एक प्रकाशपुंज खुल पड़ा, धीरे-धीरे उसकी ज्योति प्रखर होती गयी. अंत में इस ज्योति ने इतना उग्र रूप धारण कर लिया कि मस्तिष्क मानो खण्ड-खण्ड होकर उन्हीं प्रचंड किरणों में विलीन हो गया. नरेन्द्र की अपने शरीर की चेतना जाती रही. अचानक ध्यानावस्थित नरेन्द्र चिल्ला उठे—

'गोपाल दा, मेरा शरीर कहां है ?'

गोपाल ने घवड़ा कर नरेन्द्र को छूते हुए कहा—

'क्यों नरेन्द्र, तुम्हारा शरीर यहां है, यहां.'

गोपाल ने नरेन्द्र के शरीर को स्पर्श कर अनुभव किया कि वह पत्थर के समान सख्त और निर्जीव सा है. वे शीघ्र दूसरे कमरे में गुरुदेव के पास गये और घटना कह सुनायी तथा नरेन्द्र की सहायता के लिए आग्रह किया. किन्तु गुरुदेव विलकुल शांत थे जैसे उन्हें सव का ज्ञान हो. उन्होंने कहा—'कुछ देर तक उसे वैसे ही रहने दो.' करीब नौ वजे नरेन्द्र की चेतना लौटी. उनका मुख शांत और प्रसन्न था. उन्हें व्रह्मानंद की प्राप्ति हुई थी. उपनिपद के अनुसार नरेन्द्र को ईश्वर के अनादि और अनंत रूप का साक्षात्कार हुआ था. यह परमानंद की ऐसी अवस्था है जिसे भाषा व्यक्त नहीं कर सकती. यहीं, इसी एक स्थिति में वेदांत का सारा दर्शन सीमित हुआ सा जान पड़ता है. नरेन्द्र जव गुरुदेव के कमरे में जाकर नतमस्तक हुए तब उनकी आंखों की गहराई में उतरते हुए गुरुदेव ने हंस कर कहा—

'हाँ अब माँ ने सब कुछ तुम्हें दिखा दिया. जैसे कोई संचित राशि बक्से में बन्द रहती है वैसे ही यह अनुभूति अब ताले में बन्द रहेगी और कुंजी मेरे पास होगी. अभी तुम्हें काम करने हैं, काम समाप्त होने पर फिर ताला खुल जायेगा.'

भावोन्मत्त नरेन्द्र उस रात तथा अगले दिन अपनी सुध-बुध खोकर कीर्तन भजन में मस्त रहे. उनकी ऐसी हालत देख कर रामकृष्ण करुण कण्ठ से प्रार्थना करने लगे—' 'माँ' उसकी अद्वैत की अनुभूति को तू माया शक्ति के द्वारा ढक ले. 'माँ' मुझे तो उससे अभी अनेक काम करवाने हैं.'

इन दिनों रामकृष्ण की दशा बहुत गिर गयी थी. वे न ठीक से कुछ बोल सकते थे, न कुछ खा सकते थे. बहुत कठिनाई से अति क्षीण स्वर में बातें कर पाते थे. उन्हें इस दशा में देख कर उनके शुभाकांक्षी दु:खी और निराश थे. एक बार उनके एक भक्त जो बहुत बड़े पंडित और दार्शनिक थे, उन्हे देखने काशीपुर आये. उन्होंने उनकी दशा पर विचार करते हुए कहा कि बहुत से योगी अपनी व्याधि से अपने आप मुक्त हो जाते हैं क्योंकि उनके मस्तिष्क में ऐसी अलौकिक शक्ति रहती है कि उसे वे जिस स्थान पर केन्द्रित कर दें उस स्थान की बीमारी नष्ट हो जाती है. फिर आप तो एक महान् साधक हैं. यदि आप प्रयत्न करें तो अवश्य ही स्वस्थ हो जायेंगे. इनकी बातें सुनकर रामकृष्ण ने अति मंद स्वर में कहा—

'आप एक विद्वान हैं और आप इस प्रकार बुद्धिरहित प्रस्ताव कर रहे हैं. मैंने अपना मस्तिष्क एक बार सदैव के लिए परमेश्वर को दे दिया. यह मेरे लिए कैसे सम्भव है कि मैं उसे वहाँ से लौटा लूं और उसे इस सड़े हुए रक्त-माँस के पिंजर पर केन्द्रित करूँ.'

इस पर पंडित तो चुप होकर चले गये. किंतु नरेन्द्र तथा अन्य शिष्यों से गुरुदेव की पीड़ा देखी नहीं गयी. इस असाध्य रोग के सारे उपचार अब व्यर्थ प्रतीत होने लगे थे गुरुदेव का जीवन-दीप अब शनैः शनैः मंद होता जा रहा था. कहीं से कोई आशा किरण न देख कर नरेन्द्र तथा अन्य शिष्यों ने हिम्मत बांध कर उस विद्वान दार्शनिक के समान फिर दुराग्रह किया—

'गुरुदेव, आप को इस रोग से अवश्य ही मुक्त होना चाहिए, विशेषकर हम लोगों के लिए.'

रामकृष्ण ने कहा—

'क्या तुम समझते हो कि मैं स्वेच्छा से यह कष्ट झेल रहा हूँ. मैं इससे बचना चाहता हूँ. मगर फिर भी बीमारी लगी हुई है. देवी माँ की मधुर इच्छा पर ही सब कुछ आधारित है.'

नरेन्द्र—'तब कृपाकर माँ से कहिए कि वे आप को स्वस्थ बना दें. वे आप की प्रार्थना को अस्वीकार कभी नहीं करेंगी.'

रामकृष्ण—''तुम्हारे लिए ऐसा कहना सहज है पर मैं यह सब कभी नहीं कह

सकता.' नरेन्द्र ने फिर पीछा किया—'मगर इससे कुछ नहीं होने का. आप को माँ से निश्चय ही कहना होगा, सिर्फ हम लोगों का ख्याल कर.'

रामकृष्ण ने स्वीकृति दे दी—'ठीक है, मुझे सोचने दो, इस विषय पर क्या किया जा सकता है.'

कुछ घंटों के बाद नरेन्द्र तथा अन्य शिष्यों ने रामकृष्ण के कमरे में फिर प्रवेश किया और पूछा—

'क्या 'माँ' से कहा आपने ?'

रामकृष्ण ने उत्तर दिया—'हाँ, मैंने अपना गला दिखाते हुए माँ से कहा कि यहाँ के इस घाव के कारण मैं कुछ खा नहीं सकता. कृपा कर ऐसा करिए कि मैं थोड़ा सा भोजन कर सकूं. फिर माँ ने तुम लोगों की ओर संकेत करते हुए कहा कि इतने मुखों के द्वारा तुम क्यों नहीं खाते. फिर मैं इतना लज्जित हुआ कि कुछ और आग्रह नहीं कर सका.'

नरेन्द्र चौंक उठे. अद्वैत की वास्तविकता का इतना जीता जागता स्वरूप उन्हें और कहीं देखने को नहीं मिला था. रामकृष्ण की अद्वैत में ऐसी प्रगाढ़ आस्था देख कर नरेन्द्र कुछ बोल नहीं सके.

दिन धीरे-धीरे काल के पर्दे में ओझल होते जा रहे थे. नरेन्द्र के लिए पूजा, ध्यान और समाधि के अतिरिक्त गुरुदेव की सेवा का कार्यक्रम बढ़ता जा रहा था. अन्त में गुरुभाइयों का पथ-प्रदर्शन भी नरेन्द्र ने शुरू कर दिया था, अक्सर वे अन्य शिष्यों के साथ ध्यान और समाधि लगाया करते. उनकी समाधि में दिनोंदिन एकाग्रता और तीव्रता की मात्रा बढ़ती जाती, एक बार संध्या समय नरेन्द्र, गुरु-भाई गिरीश बाबू के साथ काशीपुर के उपवन में एक घने वृक्ष के नीचे ध्यान लगाने बैठे, यहाँ मच्छरों के आक्रमण के कारण गिरीश बाबू एकाग्रचित्त होकर ध्याना-वस्थित नहीं हो पाते थे, लाचार होकर जब उन्होंने अपनी आँखें खोलीं तो रोमां-चित कर देने वाला एक विचित्र दृश्य दिखाई पड़ा. पास में बैठे हुए नरेन्द्र का शरीर असंख्य मच्छरों से आच्छादित था, ऐसा लगता था मानो उनका शरीर मच्छरों के काले कम्बल से ढका हो. मगर नरेन्द्र को इसकी कोई खबर नहीं थी.

रामकृष्ण अपने जीवन के अंतिम दिनों में क्षीण स्वर और संकेत से ही बातें कर सकते थे. ऐसे कष्टकारक दिनों में भी वे भाव-विह्वल होकर प्यार से अपने शिष्यों की पीठ पर हाथ फेरते और कहते कि मेरे बाद नरेन तुम लोगों की देख-रेख करेगा. तुम्हें शिक्षा देगा. नरेन्द्र गुरुदेव की बीमारी से अधीर होकर और घबड़ा कर कहते कि उनसे यह सब नहीं होने का. इस पर गुरुदेव कहते—'तुम्हें यह करना ही होगा. समय आने पर मेरी शक्तियाँ तुम्हारे द्वारा ही अभिव्यक्त होंगी.' नरेन्द्र के हृदय का कोना-कोना संवेदना से भर जाता. शाम को प्रायः रोज ही गुरुदेव नरेन्द्र को अपने पास बुलाते और काफी देर तक मंत्रणा देते रहते. महासमाधि के तीन चार

दिन पूर्व उन्होंने नरेन्द्र को पास बुलाया. फिर उनकी आंखों में प्यार से कुछ देर तक देखने के बाद समाधिस्थ हो गये. नरेन्द्र को लगा जैसे उनके शरीर में बिजली छू गयी, जैसे कोई चीज तीक्ष्ण रूप से शरीर में प्रवेश कर गयी. नरेन्द्र उस संवेग को सहन नहीं कर सके और अचेत हो गये. जब उनकी चेतना लौटी तो उन्होंने देखा गुरुदेव के नेत्रों से अविरल अश्रुधारा प्रवाहित हो रही है. वे बोले—

'ऐ नरेन, आज मैंने तुझे अपना सब कुछ दे दिया ; अब मैं सिर्फ एक फकीर हूं जिसके पास कुछ भी नहीं है. इस शक्ति से तुम संसार में असंख्य अच्छे कार्य करोगे···.'

इस शक्तिदान के पश्चात् गुरु और शिष्य में मानो कोई भेद नहीं रहा. दोनों ही एकरस हो गये.

महासमाधि के दो दिन शेष रह गये. गुरुदेव के गले की पीड़ा चरमसीमा पर थी. अन्न-जल सब छूट चुका था. कंठ स्वर अत्यत मंद हो गया था. डाक्टर बुलाये गये, पर सबने निराशा ही प्रकट की. रामकृष्ण के शिष्य और शुभचिंतक दुख से विकल थे, किन्तु रामकृष्ण के मुखमण्डल पर शांति का साम्राज्य था. आंखों में स्नेह का सागर और होंठों पर मुस्कान की रेखा. उनका अनोखा व्यक्तित्व डूबते हुए सूरज के समान आकर्षक था. लोग जो उनकी ओर देखते तो देखते रह जाते. वे फुसफुसाहट की आवाज में लोगों को सांत्वना देते—

'सिर्फ शरीर ही कष्ट झेल रहा है. जब मस्तिष्क ईश्वर से मिला हुआ है तो वह कष्ट अनुभव नहीं कर सकता.'

थोड़ी देर वे चुप रहकर फिर कहने लगते—

'शरीर और उसके कष्टों को एक दूसरे में लीन रहने दो. हे मेरे मानस, तुम चरम आनन्द में रहो. अब मैं 'देवी मां' के साथ सदा के लिए एक हो गया.'

रविवार सन् १८८६ का १५ अगस्त, रामकृष्ण का अंतिम दिवस था. गले में असाध्य कष्ट रहते हुए भी दोपहर में उन्होंने बड़े उत्साह और प्रेम से शिष्यों के साथ करीब दो घन्टे तक बातें कीं. संध्या समय उनकी अवस्था अत्यंत चिंताजनक हो गयी. गले का दर्द तीव्र रूप से बढ़ गया था और श्वास क्रिया में भी अवरोध उत्पन्न हो गया था. डाक्टरों ने तो अपनी असमर्थता प्रकट कर दी. रामकृष्ण के शुभचिंतक, उद्विग्न और असहाय, उनके आस-पास मंडरा रहे थे. काश ! वे अपने गुरुदेव का कष्ट हर पाते. गुरुदेव अपने सबसे प्यारे शिष्य नरेन्द्र की ओर देखते हुए, लेटे-लेटे ही समाधि में लीन हो गये. सभी लोग घबड़ा कर रोने लगे. कुछ लोगों के ध्यान में यह बात भी आयी कि शायद रामकृष्ण की यह समाधि टूटेगी नहीं. वे सदा के लिए सो गये. किन्तु करीब आधी रात को रामकृष्ण ने आंखे खोलीं. चेहरे पर अपार शांति, मानो धरती को झकझोर देने वाली तूफान के बाद की स्थिति हो. आंखों के आकाश से कष्ट की काली घटा फट चुकी थी, उसकी जगह थी वहां

अध्यात्म की प्रखर ज्योति तथा स्वाभाविक रूप से अधखुले होंठों पर मुस्कान. उन्होंने कुछ खाने की इच्छा प्रकट की. तदुपरान्त उन्हें थोड़ी सी खीर खिलायी गयी. एक शिष्य ने गुरुदेव के पीछे चार-पांच तकियों का सहारा लगाया. गुरुदेव को उन तकियों के सहारे अधलेट बैठाया गया. नरेन्द्र काफी समय से गुरुदेव के पांव सहला रहे थे. किन्तु अब गुरुदेव ने संकेत से उन्हें अपने पास बुला लिया और अंतिम क्षण तक उन्हें अस्पष्ट स्वर में कुछ समझाते रहे. इसके बाद वे रुके. पल भर के लिए विश्राम किया. फिर होठों से देवी महाकाली के नाम तीन बार उच्चारित करने के उपरान्त वे पीछे सहारा दिये गये तकिये पर ढल गये. दृष्टि नासिका छोर पर बंध गयी. शरीर का ऊपरी भाग मंद गति से कांपने लगा—मानो अस्थिपिंजर में आबद्ध आत्मा मुक्त होने के लिए विकल हो. अभी रात्रि के एक बज कर दो मिनट हुए थे. रामकृष्ण का शरीर सदा के लिए निस्पंद हो गया. वे चिरनिद्रा में सो गये. नरेन्द्र का हृदय अधीर हो उठा. अन्य शिष्यों के साथ उनकी आंखों से भी लगातार आंसू बहने लगे. धैर्य का बांध टूट गया. कोई किनारा नजर नहीं आ रहा था. पतवार-हीन जीवन नौका अदृश्य के हाथों का खिलौना बनी हुई प्रतीत हो रही थी.

१६ अगस्त की उदास ऊषा. काशीपुर के उपवन गृह में दर्शकों की भीड़. अर्थी पर गेरुए वस्त्र से आवृत रामकृष्ण का शव. गले से ऊपर का भाग अनावृत. चंदन चर्चित भाल और आपादमस्तक फूलमालाओं का ढेर. लोग शीश झुका कर हाथ जोड़ रहे थे. कुछ समय के पश्चात अंत्येष्टि क्रिया के लिए उन्हें गंगा के घाट पर ले जाने की तैयारी हुई. सभी शिष्य बारी-बारी से अर्थी को कंधा लगा कर चलते रहे. अगरुधूम से सुवासित प्रात:कालीन पवन, श्लोकों और भजनों से गुंजित वातावरण. कुछ ही घंटों में घाट का कार्य समाप्त हो गया था. उनका कृश शरीर अब भस्म बन गया. शिष्यों और भक्तों ने उस पावन भस्म को भारी मन से कलश में उठाया और धीमे कदमों से काशीपुर के उपवन गृह में वापस लौटे. फाटक के अन्दर कदम बढ़ाते ही उस वाटिकाभवन की चारों दिशाएं, शिष्यों द्वारा घोषित 'भगवान श्री रामकृष्ण की जय' की ध्वनि से गूंजने लगी. किन्तु उसे सुने कौन ? घर सूना, आंगन सूना, वृक्ष-वल्लरि उदास और दिशाएं रोती हुईं. मगर गुरुदेव की अमर वाणी—'मैं एक कक्ष से दूसरे कक्ष में जा रहा हूं' की प्रतिध्वनि, युवा संन्यासियों के विह्वल हृदय में सांत्वना का संचार करती रही.

५
भारत दर्शन

दक्षिणेश्वर के पुजारी का नश्वर शरीर अब नहीं रहा, किन्तु वह अपनी सम्पूर्ण शक्ति से मठ के संन्यासियों के हृदय में व्याप्त था. मझधार में पड़े हुए लोगों को एक अदृश्य हाथ का महारा था. सभी शिष्यों को, विशेषकर नरेन्द्र को, बराबर ऐसा आभास होता रहा कि उनके गुरुदेव कहीं उनके आस-पास ही हैं. माँ शारदा को कई बार ऐसा ज्ञात हुआ जैसे रामकृष्ण सजीव होकर उनसे कुछ कह रहे हैं. उनके निधन के कुछ समय बाद जब वे सुहाग के चिह्न उतार कर भारतीय विधवा का रूप धारण कर रहीं थीं, तभी उन्हें न जाने किधर से पति की वाणी सुनाई पड़ी—'तुम ऐसा नहीं कर मकतीं. मैं मृत नहीं हूँ.' माँ शारदा ने पुनः अपनी सूनी कलाई में स्वर्ण-कंगन डाल लिये और उसके बाद सुहागिनों जैसी लाल किनारे वाली साड़ी पहनती रहीं.

श्री रामकृष्ण के निधन के दस पन्द्रह दिन बाद ही उद्यान भवन का अधिकृत समय समाप्त होने वाला था. नरेन्द्र, जिनके कंधों पर गुरुदेव ने अपने अन्य शिष्यों की देखभाल का उत्तरदायित्व सौंपा था, को दूसरे ठौर की चिंता सताने लगी. गुरुदेव की बीमारी के कारण लम्बी अवधि तक सभी शिष्यों को एक साथ रहना पड़ा. एकचित्त होकर गुरुदेव की सेवा-शुश्रूषा करनी पड़ी. आध्यात्मिकता की पाठशाला में काम करना पड़ा. इस सभी शिष्यों के जीवन का एक ही उद्देश्य था. इस कारण सभी प्रेम के एक सूत्र में बंध गये थे. अब गुरुदेव के देहावसान के बाद, एक उचित निवास के अभाव में यह सूत्र टूटने-टूटने को हो गया. कुछ अविवाहित युवक जो अपने घर और परिवार के बंधन तोड़ कर श्री रामकृष्ण की शरण में वैराग्य को गले लगा चुके थे, वे अब बिलकुल बेआसरा और बेसहारा हो रहे थे. श्री रामकृष्ण के अंतिम क्षणों में उन्होंने अपने को आजीवन गृहत्यागी संन्यासी के लिए वचनबद्ध किया था. अब इनका फिर घर लौटना आत्मसंगत नहीं था. किन्तु इस विकट स्थिति में कुछ युवकों के अभिभावक उन्हें उनके परिवार में वापस लौटने के लिए बाध्य करने लगे. वे नहीं चाहते थे कि उनके बच्चे भिक्षु का जीवन अपनायें. कुछ शिष्य कालेज की पढ़ाई छोड़ कर गुरुदेव की सेवा और साहचर्य के लिए एकत्रित हुए थे. उन

लोगों ने अपने माता-पिता के आग्रह पर पुनः अपनी अधूरी शिक्षा पूरी करने की इच्छा प्रकट की. नरेन्द्र के परिवार की समस्याएं भी अभी पूर्ण रूप से सुलझी नहीं थीं. इसलिए वे भी रात-दिन अपने गुरु-भाइयों के साथ उद्यान भवन में नहीं रह पा रहे थे. किन्तु गुरुभाइयों के मठ छोड़ने की समस्या के कारण उनका हृदय बड़ा ही अशांत था. देश के कल्याणार्थ संगठित ये सब गृहत्यागी वैरागी युवक, आश्रयहीन होकर इधर-उधर छिन्न-भिन्न हो जायें, नरेन्द्र के लिए यह बात बड़ी ही कष्टदायक थी.

रामकृष्ण के भक्तों में श्री बलराम बोस, श्री सुरेन्द्रनाथ मित्र, श्री महेन्द्र गुप्ता और गिरीशचन्द्र घोष, ये चार सम्पन्न परिवार के व्यक्ति थे. ये लोग दायित्व-पूर्ण, प्रौढ़ एवं स्थिर विचार वाले थे. नरेन्द्र ने इन लोगों से परामर्श किया. सुरेन्द्र-नाथ मित्र ने श्री रामकृष्ण की रुग्णावस्था में काशीपुर के उद्यान-गृह का खर्च संभाला था. इस बार भी उन्होंने मदद के हाथ बढ़ाये. बड़ानगर में एक जीर्णावस्था का मकान किराये पर उपलब्ध करवा दिया. नरेन्द्र के लिए तो यह वरदान-स्वरूप ही था.

ठीक इसी समय श्री रामकृष्ण के कुछ गृहस्थ भक्तों ने गुरुदेव के देहावशेष को अपने अधिकार में करने का प्रश्न उठाया. उनका कथन था कि संन्यासियों का जीवन भ्रमणशील ठहरा. वे कब कहां रहेंगे कुछ ठिकाना नहीं. ऐसी स्थिति में गुरुदेव के देहावशेष के लिए कोई निश्चित स्थान निर्धारित नहीं हो सकेगा. गृहीभक्तों को यदि देहावशेष भस्म वाली कलशी प्राप्त हो जायेगी, तो वे लोग उसे उचित स्थान पर स्थापित कर, वहां श्री रामकृष्ण की स्मृति में मंदिर का निर्माण करवा देंगे. किंतु श्री रामकृष्ण के शिष्यों को गृहीभक्तों का यह प्रस्ताव स्वीकार नहीं था. वे किसी भी स्थिति में अपनी उस एकमात्र बहुमूल्य सम्पत्ति से विलग होना नहीं चाहते थे. दोनों ओर से काफी वाद-विवाद और अनबन चलती रही. अंत में नरेन्द्र ने अपने गुरुभाइयों को समझाया कि गुरुदेव पर सबका समानाधिकार है. देहावशेष की बात पर कलहपूर्ण वाद-विवाद करना शोभनीय नहीं है. संन्यासियों के सामने तो गुरुदेव की शिक्षा का आदर्श है—संन्यासियों का जीवन तो जगत-कल्याण के कार्य के लिए अर्पित है. ऐसी हालत में उन्हें देहावशेष भस्म और अस्थियों का कुछ भाग गृही-भक्तों को भी दे देना श्रेयस्कर है. नरेन्द्र की बात गुरुभाइयों ने मान ली. देहावशेष भस्म और अस्थियों का कुछ भाग अपने पास रख कर, शेष को कलशसहित गृहस्थ भक्तों को दे दिया गया. अब गृही भक्तों के आनन्द का कोई पारावार नहीं था. एक भक्त श्री रामचन्द्र दत्त ने कलकत्ते से थोड़ी दूर स्थित 'कांकरगाछी' की अपनी एक उद्यान-भूमि को इस पुनीत कार्य के लिए दे दिया. किसी शुभ दिन को श्री रामकृष्ण के सभी गृहीभक्त और शिष्य संन्यासी मिल कर उस पावन ताम्र कलश को वहां ले आये और विधिपूर्वक उसे मिट्टी में गाड़ दिया. कुछ दिनों बाद यहां एक सुन्दर मंदिर का निर्माण हुआ. इसका नाम सभी लोगों की सम्मति से 'योगोद्यान' रखा

गया. इस तरह इस सहयोगपूर्ण पुनीत कार्य के द्वारा सभी गृहीभक्तों और भिक्षु शिष्यों की अनबन सदा के लिए दूर हो गयी. वे पुनः प्रेम और कर्त्तव्य के एक सूत्र में बंध गये.

इसके बाद नरेन्द्र ने बड़ानगर वाले मकान की ओर ध्यान दिया. सभी गुरुभाइयों ने मिल कर उसकी सफाई की, तथा उसके मध्य के बृहत् कक्ष को गुरुदेव के स्मारक चिह्नों के लिए सुरक्षित रखा. अब उद्यान भवन छोड़ने का निश्चित दिन आ पहुंचा. उस गृह के साथ असंख्य भावपूर्ण स्मृतियां जुड़ी थीं. उससे विदा लेते समय नरेन्द्र का हृदय टूक-टूक होने लगा. किन्तु उसे छोड़ना तो था ही. बीते दिनों की याद आंखों में सजाये हुए नरेन्द्र गुरुदेव के शेष भस्म और अस्थियों वाले पात्र को अपने सर पर उठा कर, कुछ गुरुभाइयों के साथ बड़ानगर वाले मकान में चले आये.

यहां आने पर सर्वप्रथम नरेन्द्र का ध्यान मठ की जनशक्ति की ओर गया. वे उन सभी गुरुभाइयों के पास जिन्होंने अब बहुत अंशों में मठ से अपना नाता तोड़ लिया था, बार-बार गये. उन्होंने उन शिष्य युवकों को जी जान से समझाया कि उन्हें अपने परिवार के छोटे से परिवेश से निकल कर विश्व के सम्मुख खड़ा होना है, मानवता के कल्याण के लिए. जब तक वे लोग स्थायी रूप में मठ में लौट नहीं आते, तब तक मठ की शक्ति सबल नहीं बन सकती. नरेन्द्र को इस कार्य में आशातीत सफलता मिली. गुरुदेव के बहुत से शिष्य अपने माता-पिता एवं घरबार की ममता त्याग कर नरेन्द्र के बताये रास्ते पर चल पड़े. कुछ शिष्यों ने अपनी परीक्षा समाप्त कर मठ में लौट आने के वचन दिये. ये लोग आरम्भ से ही नरेन्द्र को अपना पथ प्रदर्शक मानते आ रहे थे, इसलिए नहीं कि श्री रामकृष्ण का यह आदेश था, बल्कि नरेन्द्र के व्यक्तित्व में कुछ ऐसी मोहिनी शक्ति थी, उनकी बातों में कुछ ऐसा जादू था कि लोग बरबस उनकी ओर खिंचे चले आते.

नरेन्द्र के परिवार की आर्थिक समस्या का समाधान कुछ-कुछ हो गया था. अतः वे बड़ानगर के इस मठ में अन्य भिक्षुओं के साथ रहने के लिए चले आये. कुटुम्ब का संकुचित ममत्व अब प्रस्फुटित होकर विश्व ममत्व में परिणत हो चुका था. परिवार की थोड़ी सी समस्याओं के स्थान पर अब उन्हें सारी मानवता की समस्याओं को सुलझाना था. अब उनके सामने एक विस्तृत कार्यक्षेत्र था. मठ का मुख्य कक्ष, जहां गुरुदेव के देहावशेष वाला कलश रखा गया था. वहीं सभी शिष्यगण एकत्र होकर ध्यान-जप, चिंतन-मनन तथा अन्य धार्मिक अनुष्ठान किया करते. नरेन्द्र यहीं पर गुरुभाइयों की कक्षाएं भी लिया करते. इस कक्षा में पाश्चात्य या भारतीय दर्शन के अतिरिक्त भारत तथा विदेश के इतिहास, समाजशास्त्र, साहित्य, कला और विज्ञान की पढ़ाई होती. ईश्वर के अस्तित्व पर बात चलती. नरेन्द्र विज्ञान और तर्कशास्त्र के आधार पर यह सिद्ध कर देते कि ईश्वर का अस्तित्व एक कपोल-कल्पित वस्तु है. किन्तु साथ ही वे अपने तर्क से इस पर भी लोगों को विश्वस्त

बना लेते कि संसार में ईश्वर ही एक सत्य है, एक वास्तविकता है. वही एक
ग्राह्य है जिससे मनुष्य को परमसुख प्राप्त होता है. उनके वाद-विवाद ऐसे बुद्धि-
संगत एवं अकाट्य होते कि सभी श्रोता एवं विवादकारी मंत्रमुग्ध की तरह उनके
वश में हो जाते. सांख्य, योग, न्याय वैशेषिक, मीमांसा तथा वेदान्त, हर विषय की
बारी-बारी से चर्चा होती और एक दूसरे से उनकी समता और विषमता बतायी
जाती. बौद्ध दर्शन और वेदान्त की तुलना होती. प्रायः इस मठ में ईसाई पादरी भी
वाद-विवाद के लिए आते. परन्तु नरेन्द्र के गहन अध्ययन एवं तीक्ष्ण बुद्धि के सामने
कोई नहीं टिक पाता. उन्हें अपने विचार में पराजित होना पड़ता. अंत में नरेन्द्र
उनके सामने ईसामसीह की महानता की व्याख्या करते. नरेन्द्र के सारे तर्क-वितर्क
पर मौलिकता की छाप होती. गुरुदेव के जीवन और उपदेश से अनुप्राणित नरेन्द्र
की एक-एक वाणी अपने खास रंग में रंगी होती. भयंकर से भयंकर विषधर बीन
की स्वर-लहरी से अभिमंत्रित हो जाते हैं. नरेन्द्र की मधुर कंठ-ध्वनि भी इसी प्रकार
विपरीत विचार के लोगों को मंत्रमुग्ध कर लेती थी.

मठ के सभी गुरुभाइयों ने पुनः गेरुआ वस्त्र धारण कर पूर्ण रूप से साधु
का रूप अपनाया. किन्तु यह सिर्फ वस्त्र से ही नहीं, मन पर भी जोगिया रंग का
पूर्ण प्रभाव था. सबके हृदय में एक सी आध्यात्मिकता की प्रचंड अग्नि प्रज्वलित हो
उठी थी. इस अग्नि के प्रकाश में सबके हृदय से संशय और दुविधा का अंधकार
लुप्त हो गया था. अनेक शरीर किन्तु एक प्राण, एक पंथ और एक लक्ष्य. अब
संसार की कोई भी शक्ति उन्हें अपने पथ से विचलित नहीं कर सकती थी. सभी
ने बन्धुत्व भाव से संगठित होकर, मठ की ओर से लोक कल्याण कार्य के लिए, एक
साथ कदम बढ़ाने का प्रण किया.

इतने कठिन संकल्प के बाद भी संन्यासियों के अभिभावक जब तब मठ में
आकर उन्हें घर लौट चलने की मंत्रणा देते. परन्तु संन्यासियों का हृदय शिला से
भी कठोर बन गया था. सांसारिकता का ममत्व अब उन्हें अपने पथ से विचलित नहीं
कर सकता था. संसार के माया-जाल से मुक्त, अब वे पूर्णरूपेण एक दूसरे व्यक्ति-
त्व को धारण कर चुके थे. इसी समय सभी के पुराने नामों को बदल कर नये
नामकरण हुए. अतीत के जीवन और उसकी यादों को भुला कर नये सिलसिले से
अपना जीवन आरम्भ करना इस नामकरण-संस्कार का उद्देश्य था. सभी नामों का
उत्तरार्द्ध 'आनन्द' शब्द से सुशोभित था. इसका तात्पर्य एक पथ और एक लक्ष्य से था.

कितना दुरूह था इस लक्ष्य प्राप्ति का मार्ग, कितनी तपस्या और कितनी
साधना से भरा हुआ था. पेट के लिए भिक्षाटन करना नहीं. सिर्फ भाग्य के सहारे
जीना. यदि किसी दाता के हृदय में दया उपजी, तो उस दिन आश्रम के चूल्हे पर
हांडी चढ़ी, अन्यथा नहीं. वैसे श्री सुरेन्द्रनाथ मित्र तथा एक अन्य भक्त सज्जन इस
आश्रम में आधार-स्तम्भ थे. उनके अवलम्ब के बिना मठवासियों का आधा जीवन

क्षुधापूर्ति के साधन की खोज में बीतता होता. फिर भी यदा कदा ऐसे दिन आ ही जाते जब भात है तो नमक नहीं, नमक है तो भात नहीं. फिर भी भजन-कीर्तन, मनन-चिंतन, योग एवं शास्त्रार्थ में वे लोग इतने लीन होते कि पेट की पुकार उन्हें सुनाई नहीं देती. कमरे में फैली हुई चटाई, उनके बैठने और सोने का एकमात्र सामान था. शरीर पर वस्त्र कहलाने वाला एक कौपीन, कटि को आवृत करने के लिए घुटने तक का एक छोटा सा वस्त्र तथा एक चादर कमरे में खूंटी पर लटके रहते. जब भी किसी आश्रमवासी को किसी कार्यवश अहाते से बाहर जाना होता तो वह उन वस्त्रों से अपने शरीर को ढंक लेता. फिर वापस लौटने पर वे कपड़े वहीं लटका दिये जाते. इन दो वस्त्रों पर सभी आश्रमवासियों के समानाधिकार थे.

दैवी साधना के क्षेत्र में बड़ानगर दक्षिणेश्वर का पर्यायवाची बन गया. इसका महत्व दक्षिणेश्वर से किसी भी स्तर पर कम नहीं था. दक्षिणेश्वर की भूमि श्री रामकृष्ण परमहंस के कठिन योग और तप से पावन बन गयी थी. किन्तु रामकृष्ण के चरणों में स्थान पाने वाले अनेक युवा संन्यासियों की योग-साधना की तपस्या भूमि बड़ानगर ही थी. मृत्यु शैया पर पड़े हुए गुरुदेव की वाणी—'इन बालकों की बराबर देखरेख करना' क्या नरेन्द्र कभी भूल सके थे ? कभी नहीं उन्होंने इसे जीवन पर्यन्त याद रखा. वे अपने गुरुभाइयों को उसी दृष्टि से देखते थे जैसे श्री रामकृष्ण उन्हें देखते थे. नरेन्द्र के द्वारा निर्देशित पठन-पाठन, तर्क-वितर्क, चिंतन-मनन तथा योग-तप ने सहयोगी संन्यासियों के हृदय के विकार को पूर्णतः नष्ट कर उन्हें अग्नि में तपाये हुए सोने के समान दमकता हुआ और शुद्ध बना दिया. कभी-कभी अपने गुरुभाइयों की कठिन साधना को देख कर नरेन्द्र उनसे मजाक में कहते—'क्या तुम सोचते हो कि इस प्रकार तुम श्री रामकृष्ण परमहंस बन जाओगे ? यह कभी नहीं होगा. एक रामकृष्ण परमहंस का जन्म युग में एक ही बार होता है.'

श्री रामकृष्ण के देहावसान के बाद मां शारदा उनके दो शिष्यों को साथ लेकर वृन्दावन की तीर्थयात्रा के लिए निकल पड़ीं. बड़ानगर मठ की नियमित दिनचर्या की गाड़ी को एक ही लीक पर बहुत दिनों तक चलते हुए देख कर कुछ संन्यासियों के मन ऊब गये. पर्यटन की भावना उनके हृदय में घर बनाने लगी. एक दिन नरेन्द्र किसी कार्यवश कलकत्ता गये हुए थे, वहां से लौटने पर उन्होंने सुना कि तीन संन्यासी मठ छोड़ कर कहीं चले गये हैं. नरेन्द्र मठ के नेता थे. उन्हीं के कंधों पर सभी संन्यासियों की देखभाल का उत्तरदायित्व था. अतः इस सूचना से वे बड़े दुःखी और चिंतित हुए. बिना उनसे परामर्श लिये हुए मठ त्यागने के कारण नरेन्द्र का दुःखी होना भी स्वाभाविक था. उन्हें चिंता थी कि खाली हाथ संन्यासियों को भ्रमण के दौरान न जाने कौन-कौन से कष्ट झेलने पड़ें. इसी समय एक गुरुभाई ने उनके हाथों में एक कागज का टुकड़ा पकड़ा दिया. उस पर लिखा था—'मैं पैदल

वृन्दावन जा रहा हूँ. यहां पर रहना मेरे लिए असम्भव हो गया है. कौन जाने किस समय मन की गति बदल जाये, मैं बीच-बीच में घर-स्वजन, माता-पिता आदि के स्वप्न देखता रहता हूं. मैं स्वप्न में माया द्वारा प्रलोभित हो रहा हूँ. मैंने काफी सहन किया है. यहां तक कि प्रबल आकर्षण के कारण मुझे दो बार घर जाकर स्वजनों से मिलना पड़ा है. अतः अब यहां रहना किसी भी तरह उचित नहीं है. माया के पंजे से छुटकारा पाने के लिए दूर देश में जाने के अतिरिक्त और कोई गति नहीं है.' यह पत्र शारदाप्रसन्न (स्वामी त्रिगुणातीतानन्द) का था जो गुप्त रूप से इसे मठ में छोड़ कर चले गये थे.

इस पत्र ने नरेन्द्र की आंखों का पर्दा हटा दिया. अरे यह क्या घर बार का बंधन तोड़ कर मैंने वैराग्य धारण किया. मगर फिर भी क्या सचमुच मैं सांसारिक माया जाल से मुक्त हो सका ? अब मैं मठ की ममता, गुरुभाइयों की ममता के नये बंधन में जकड़ गया हूँ. एक छूटा तो दूसरा गले आ पड़ा. इसे मुझे निश्चय ही तोड़ डालना होगा. नहीं तो मैं कहीं का नहीं रहूंगा. मेरा घर सारा देश है, मेरा परिवार सारे देश के लोग हैं, मेरे जीवन की कर्मभूमि बड़ी विस्तृत है, मुझे सारे देश को देखना है. यहां के लोगों की परिस्थितियों को समझना है. भांति-भांति के नये अनुभव मुझे प्रदान करेंगे, फिर मैं अपनी शक्ति को कार्य की कसौटी पर परख सकूंगा, यहां बड़ानगर मठ की चहारदीवारी के अंदर बंध कर न तो मैं अपने जीवन को सार्थक बना सकता और न अपने गुरुभाइयों के हृदय में आत्मविश्वास या आत्म-निर्भरता की सबल भावना ही उपजा सकता हूँ. क्या एक वटवृक्ष की छाया में छोटे छोटे पौधे पनप सकते हैं ? इस मठ को सुदृढ़ बनाने के लिए, देश के कल्याण के लिए मुझे मठ त्यागना ही चाहिए. नरेन्द्र का निश्चय अटल था. एक दिन अपने गुरुभाइयों को आश्रम का सारा उत्तरदायित्व सौंप कर नरेन्द्र काशी की ओर चल पड़े.

काशी में वे श्री द्वारकादास के आश्रम में ठहरे, भिक्षाटन के द्वारा पेट-पालन, देव स्थानों का दर्शन, ध्यान, जप, उपासना आदि इनकी दिनचर्या थी. श्री द्वारकादास ने एक बंगाली विद्वान संत भूदेवचंद्र चटोपाध्याय से इनका परिचय करवा दिया. भूदेव बाबू के साथ ज्ञान का आदान-प्रदान कर नरेन्द्र का हृदय बड़ा ही प्रसन्न रहता. भूदेव बाबू भी नरेन्द्र की धर्म, नीति, समाज आदि विषयों से सम्बंधित ज्ञान भरी बातों को सुन कर मुग्ध थे. उन्होंने नरेन्द्र के विषय में किसी व्यक्ति से कहा—'मुझे आश्चर्य हो रहा है कि इस तरुण युवक ने इतनी अल्प अवस्था में ही इतनी गंभीर अंतर्दृष्टि और असीम ज्ञान कैसे प्राप्त कर लिया है. मुझे पूर्ण विश्वास है कि भविष्य में यह एक महान् व्यक्ति बनेगा.' वाराणसी में नरेन्द्र अनेक योगी एवं साधु-संतों से मिले. उन दिनों त्रिलंग स्वामी एक बड़े ही विख्यात योगी अपनी योग साधना में संलग्न थे. इनसे श्री रामकृष्ण भी एक बार मिल चुके थे. नरेन्द्र ने भी इनके

दर्शन किये तथा उनसे शास्त्रार्थ भी किया. एक दिन नरेन्द्र माँ दुर्गा के मंदिर से दर्शन के उपरान्त लौट रहे थे तभी बंदरों के एक झुण्ड ने उनका पीछा किया. इतने बंदरों को एक साथ देख कर वे डर गये और भागने लगे, तभी पीछे से आवाज आयी—'रुको, दुष्टों का सामना करो.' एक वृद्ध संन्यासी नरेन्द्र को आदेश दे रहा था. नरेन्द्र रुक गये. हृदय से भय भाग चुका था. बंदरों ने जब उनके निर्भीक एवं दृढ़ स्वरूप को देखा तो वे पीछे की ओर लौट पड़े. इस घटना ने नरेन्द्र पर अपनी अमिट छाप छोड़ी. वर्षों बाद न्यूयार्क में या इधर-उधर कई जगह अपने भाषणों के बीच उन्होंने इस घटना के शब्द चित्र खींचे और इसके आदर्श की ओर लोगों का ध्यान आकर्षित किया. प्रकृति का सामना करना, अज्ञानता का सामना करना तथा मानसिक भ्रम का सामना करना मानव धर्म है. इससे कभी भी पीछे नहीं हटना चाहिए.

नरेन्द्र का भावुक हृदय बहुत दिनों तक बड़ानगर मठ के आकर्षण से दूर नहीं रह सका. वे जल्दी ही बड़ानगर लौट आये और अपने गुरुभाइयों के साथ पूर्ववत् पठन-पाठन, मनन-चिंतन आरम्भ कर दिया. किन्तु इस बार वे वहां अधिक दिनों तक नहीं ठहर सके. काशी की साधु-संगति उन्हें बुरी तरह खींचने लगी. इस बार यहां श्री अखण्डानन्द जी (श्री रामकृष्ण के एक प्रिय शिष्य) ने उनका परिचय श्री प्रमदादास मित्र से करवाया. ये सज्जन संस्कृत भाषा, साहित्य एवं वेदान्त दर्शन के प्रकांड विद्वान थे. इनके साथ धर्म शास्त्रों पर प्रायः नरेन्द्र का वाद-विवाद हुआ करता. इनकी विद्वत्ता से नरेन्द्र इतने प्रभावित हुए कि भविष्य में जहां कहीं भी इन्हें धार्मिक ग्रंथों के अनुशीलन में कुछ भ्रम होता तो ये तुरन्त श्री प्रमदादास मित्र के साथ पत्रव्यवहार कर अपनी भ्रांति दूर करते.

इसके बाद नरेन्द्र ने उत्तर भारत के कई स्थानों का पर्यटन किया. सरजू नदी की गोद में बसी हुई रामराज्य की पावन अयोध्या नगरी, जहां का कण-कण आज भी राम की स्मृति से सुवासित है. मुगलकालीन स्थापत्य कला की अद्वितीय छटा लिए आगरा. कार्तिक पूर्णिमा की मादक रात्रि. दूधिया संगमरमर से निर्मित शुभ्र ज्योत्सना में नहाता हुआ ताजमहल. मुमताजमहल के प्रणय की अनोखी निशानी. इसकी एक झलक, मुगल सम्राट शाहजहां के मन में न जाने कितनी भूली बिसरी स्मृतियां जगाती रही होगी. विचारों में खोये नरेन्द्र न जाने कब तक ताज-महल के इर्द-गिर्द घूमते रहे. लखनऊ की बड़ी-बड़ी गौरवशाली मस्जिदें, नवाबों के भव्य महल और रंगीन बाग, अतीत में लुप्त हुई उनकी शान को आज भी व्यक्त कर रही थीं. मुगलकालीन भारत का सम्पूर्ण चल-चित्र नरेन्द्र की आंखों के सामने घूम गया.

इसके बाद सूरदास, विद्यापति, जयदेव और चंडीदास का वृन्दावन नरेन्द्र को अपनी ओर खींचने लगा. यमुना का किनारा, करील के कुंज, कदम्ब की छांह और सबसे अनोखी मोहन-मुरली की जादू भरी तान उन्हें सुनाई पड़ने लगी. नरेन्द्र

भला कहां रुकने वाले थे. वृन्दावन के प्राकृतिक सौंदर्य को निहारने के लिए करीब तीस मील पहले से ही उन्होंने सवारी छोड़ दी और पैदल चलने लगे. पूर्ण भिक्षुक का रूप—काषाय वस्त्र, एक हाथ में कमण्डल और दूसरे में दो पुस्तकें. चलते-चलते जब थक जाते तो वहीं विश्राम कर लेते. किसी दयालु ने कुछ खाने को दे दिया तो खा लेते. यात्रा के श्रम से श्रांत-क्लांत उन्होंने देखा कि सड़क के किनारे बैठा हुआ एक व्यक्ति आराम से चिलम पी रहा है. यदि एक दो कश मैं भी लगा लूं तो थोड़ी सी थकान अवश्य मिट जायेगी, नरेन्द्र ने सोचा. और याचना करते हुए उनके हाथ उस व्यक्ति की ओर बढ़ गये. वह झटके से पीछे खिसक गया और झिझकते हुए बोला—'महाराज, मैं भंगी हूं, एक मेहतर.' पारम्परिक संस्कारवश उनके बढ़े हुए हाथ अनायास सिमट गये. वे दो पग पीछे हट गये, कुछ कहा नहीं और अपने निर्धारित पथ पर जाने लगे. अभी दो चार कदम ही आगे बढ़े होंगे कि उनके मस्तिष्क में यह बात कौंधी—'भला यह मैंने क्या किया ? मैंने तो संन्यासी का व्रत लिया है. मैं तो जाति-भेद, छुआछूत, और खानदान की इज्जत-प्रतिष्ठा सब कुछ से ऊपर उठ चुका हूं फिर भी जब उस व्यक्ति ने अपने को भंगी बताया तो मैं जाति-भेद को नहीं छोड़ सका और जिस चिलम को उसने छू रखा था, उसे पी न सका. यह युग-युग के संस्कार का परिणाम है.' नरेन्द्र का मानसिक द्वन्द्व समाप्त हो चुका था. किसी ने जैसे चाबुक मार कर उनकी सोयी हुई अन्तरात्मा को जगा दिया था. वे उस व्यक्ति की खोज में पीछे की ओर मुड़ पड़े. वह वहीं उसी प्रकार बैठा हुआ चिलम पी रहा था. वहां पहुँचते ही नरेन्द्र ने कहा—'मेरे बेटे, कृपा कर मुझे भी चिलम पीने को दो.' आश्चर्यचकित भंगी असमंजस में पड़ा हुआ था—भला इस साधु को क्या हो गया है. मानता ही नहीं. अपना जूठा चिलम इसे पिला कर पाप का भागी कैसे बनूं. उसके अनेक नकारात्मक उत्तरो के बावजूद नरेन्द्र उसकी चिलम पीते रहे और वह इस देवस्वरूप साधु को सहमा हुआ सा देखता रहा. इसके बाद नरेन्द्र ने पूर्ण शांति और संतोष के साथ वृन्दावन की यात्रा आरम्भ की.

वृन्दावन पहुंच कर नरेन्द्र एक मंदिर में ठहरे. यह मंदिर काला बाबू के कुंज के नाम से प्रसिद्ध था. श्री रामकृष्ण के शिष्य बलराम बोस के पूर्वजों ने इस मंदिर का निर्माण करवाया था. यहां आते ही नरेन्द्र को राधाकृष्ण के अनन्य प्रेम का, आत्मा और परमात्मा के अटूट बंधन का नैसर्गिक आभास सा मिलने लगा. वे इसी अलौकिक प्रेम की कल्पना में खोये-खोये इधर-उधर घूमने लगे. एक बार गोवर्धन पर्वत की ओर घूमते हुए वे भूख और थकान से व्यथित होकर मूर्छित हो गये. जब मूर्छा दूर हुई तो वे मंदिर की ओर वापस लौटने लगे, इस समय उन्हें पीछे से किसी की पुकार सुनाई पड़ी. उन्होंने उस ओर ध्यान नहीं दिया और आगे बढ़ते चले गये. किंतु उस आदमी ने नरेन्द्र को आवाज देते हुए उनका पीछा किया. करीब एक मील तक दौड़ने के बाद वह नरेन्द्र के पास आ सका, उसने बड़ी विनम्रता से नरेन्द्र को

अपने साथ लाये हुए भोजन को ग्रहण करने के लिए आग्रह किया. नरेन्द्र ने जब उस भोजन से अपनी क्षुधापूर्ति कर ली तब वह मनुष्य प्रसन्न होकर चला गया. नरेन्द्र ने फिर कभी उस व्यक्ति को नहीं देखा. इस ईश्वरप्रदत्त आकस्मिक सहायता का ध्यान आते ही नरेन्द्र का हृदय आनन्दविभोर हो उठता है.

वृन्दावन के बाद हरद्वार. हाथरस का रेलवे स्टेशन. भ्रमण करते करते नरेन्द्र का जी थक गया था. अतः वे स्टेशन पर ही एक जगह विश्राम के लिए बैठ गये. स्टेशन मास्टर शरतचन्द्र गुप्त बहुत ही धार्मिक प्रकृति के एक सज्जन व्यक्ति थे. अचानक उनकी दृष्टि इस युवा संन्यासी पर पड़ी. संन्यासी के चेहरे पर आध्यात्मिकता की झलक थी. वे संन्यासी के पास गये. शायद उन्हें कुछ सहायता करने की भावना से. नमस्कार आदि के बाद शरत बाबू उन्हें आग्रहपूर्वक अपने घर ले गये और उन्हें प्रेम से भोजन करवाया. नरेन्द्र के विचारों से वे इतने प्रभावित हुए कि स्टेशन मास्टर की नौकरी से त्यागपत्र देकर कमंडल और काषाय वस्त्र को अपना लिया. हाथरस में नरेन्द्र की ख्याति काफी फैल गयी. विशेष रूप से हाथरस के बंगाली लोग नरेन्द्र की बातचीत सुनने या दर्शन करने के लिए बड़ी संख्या में जुटने लगे. उनकी इच्छा थी कि नरेन्द्र अभी और कुछ दिन उनके बीच रहें. लेकिन नरेन्द्र को तो अपनी साधना पूरी करनी थी. कहीं एक जगह ज्यादा रुकना उन्हें उचित नहीं जान पड़ा. उन्होंने कहा—'मैं यहां अब और अधिक नहीं रह सकता. हम संन्यासियों को कहीं भी अधिक दिनों तक नहीं ठहरना चाहिए. इसके अतिरिक्त मुझे तुम लोगों से ममता हो रही है. आध्यात्मिक जीवन का यह भी एक बंधन है. अब मुझे बाधित मत करो.' शरत तथा अन्य लोगों ने उन्हें कितना भी समझाया पर नरेन्द्र अपनी बात पर अटल रहे. अंत में शरत तथा उनके एक मित्र ने नरेन्द्र के सामने शिष्य बनने का प्रस्ताव किया. नरेन्द्र ने कहा—

'क्यों ! तुम यह नहीं सोचो कि सिर्फ शिष्य बन कर ही आध्यात्मिकता के जीवन में सब कुछ पा सकते हो. याद रखो कि हर वस्तु में भगवान है. जो भी तुम करोगे उससे तुम्हारी उन्नति होगी. मैं तुम्हारे पास यदा-कदा आता रहूँगा.' किन्तु शरत आसानी से मानने वाले जीव नहीं थे. विवश होकर नरेन्द्र ने उन्हें शिष्य की दीक्षा दी. अब शरत भी मन, वचन और कर्म से भिक्षु बन कर नरेन्द्र के साथ ऋषिकेश चल पड़े. आराम की दुनिया में पले शरद को एक योगी का जीवन बहुत ही कष्टकर प्रतीत हुआ. अनिश्चित जीवन, परिमित आहार, विस्तृत कर्मक्षेत्र, मार्ग में अनेक प्रकार की असुविधाएँ और कठिनाइयाँ. सचमुच यह एक कठोर साधना थी. नरेन्द्र के साथ चलते चलते भूख, प्यास और थकान से मूर्छित हो गये. किन्तु नरेन्द्र ने उनकी बड़ी मदद की. मार्ग में एक बार वन की ओर से जाते समय उन्हें मानव अस्थियों के कुछ अवशेष दिखाई पड़े—पास ही धूलधूसरित गेरुआ वस्त्र के चिथड़े भी पड़े हुए

थे. नरेन्द्र की आँखों में करुणा उभर पड़ी. बोले—'देखो यहाँ वनराज ने एक संन्यासी का भक्षण किया है. तुम डर तो नहीं रहे हो ?'

'स्वामीजी, आप के साथ भय कैसा ?' शिष्य ने निर्भीकता से उत्तर दिया.

स्वामी और शिष्य दोनों ऋषिकेश पहुँचे. आध्यात्मिकता के रंग में रंगे यहाँ के सम्पूर्ण वातावरण ने नरेन्द्र के ऊपर एक अजीब सा जादू डाल दिया. हिमाच्छादित पर्वतमाला, कल-कल नाद करती हुई गंगा की चंचल लहरें, छोटे-छोटे पर्णकुटीरों में रहने वाले योगियों की साधना, पंडितों तथा साधुओं के मंत्रोच्चारण की ध्वनि तथा हवा में लहराते हुए अगरु धूम की सुगंध में अजीव वशीकरण जादू था. नरेन्द्र अपने मनोनुकूल स्थान पर पहुँच गये थे. किन्तु कुछ ही दिन बाद शरत वहाँ बहुत अधिक रुग्ण हो गये. अतः उन्हें लेकर नरेन्द्र को हाथरस लौटना पड़ा. यहाँ आते ही नरेन्द्र को मलेरिया ज्वर सताने लगा. बड़ानगर के गुरुभाइयों को किसी प्रकार इसकी खबर लगी. वे लोग यहाँ आये और नरेन्द्र को विवश कर बड़ानगर ले गये. कुछ महीनों के पश्चात् वहाँ नरेन्द्र बिलकुल चंगे हो गये.

अब बड़ानगर के पूर्वनिश्चित पठन-पाठन के कार्य में नरेन्द्र ने भी हिस्सा लेना आरम्भ कर दिया. आश्रमवासियों को वेदोपनिषद् में पूर्ण रूप से पारंगत करने के लिए उन्होंने अपने बनारस के एक मित्र, संस्कृत के महापंडित प्रमदादास गुप्त द्वारा लिखित वेद की टीका मंगवायी. वेद अध्ययन के समय जहाँ कहीं भी विवादास्पद प्रसंग आता और नरेन्द्र उसे सुलझा नहीं पाते तो तुरन्त प्रमदा बाबू के पास अपनी शंका समाधान के लिए लिख भेजते. बड़ानगर आश्रम में गुरुभाइयों के साथ कुछ दिन रहने के बाद १८८९ के दिसम्बर में वे फिर वैद्यनाथ धाम के लिए चल पड़े. यहाँ से वे पुनः बनारस गये. उनका विचार था कि वहाँ वे कुछ दिन के लिए रहेंगे. किन्तु ऐसा नहीं हो सका. उनके बनारस पहुंचने के कुछ ही दिन बाद उन्हें खबर मिली कि उनके एक गुरुभाई को इलाहाबाद में छोटी माता निकल आयी है. अब नरेन्द्र इलाहाबाद पहुँचे. यहाँ शहर के बंगालियों ने उनकी खूब आवभगत की. गुरुभाई की सेवा सुश्रूषा के बाद नरेन्द्र वहाँ के लोगों के साथ आध्यात्मिक और सामाजिक विषयों पर वार्तालाप किया करते. यहीं उनका एक मुसलमान साधु से परिचय हुआ. नरेन्द्र उसकी ओर बहुत शीघ्र ही आकृष्ट हो गये. कारण उस साधु की आकृति श्री रामकृष्ण से बहुत मिलती-जुलती थी. इलाहाबाद में ही इन्होंने गाजीपुर के एक योगी के विषय में अनेक आश्चर्यजनक बातें सुनी. वे उनके दर्शन की लालसा को किसी भाँति दबा नहीं सके और गाजीपुर की ओर चल पड़े.

ये योगी पवहारी बाबा के नाम से प्रसिद्ध थे. काशी के पास किसी ब्राह्मण कुल में जन्म लेकर बचपन में ही ये घर छोड़ कर गाजीपुर चले आये थे. गाजीपुर में अपने बाल ब्रह्मचारी योगी चाचा के पास रह कर ये न्यायशास्त्र, व्याकरण और वेदांत की शिक्षा लेकर योग साधना का अभ्यास करने लगे. काठियावाड़ के गिरनार

पर्वत पर इन्होंने कठिन तपस्या की. फिर युवास्था में भारत भ्रमण कर भांति-भांति के लोगों से मिलते-जुलते और भिन्न-भिन्न प्रकार के अनुभवों से अपने जीवन को परिपक्व करते हुए पुनः गाजीपुर लौट आये. गाजीपुर में नदी तट पर भूमि खोद कर इन्होंने अपने लिए एक कोटर तैयार किया. यहाँ ये कई-कई दिनों तक ध्यानमग्न बैठे रहते, कभी कभी तो महीना बीत जाता और ये अपनी गुफा से बाहर नहीं निकलते. लोगों को संदेह होने लगता कि भला पवहारी बाबा जीवित हैं या नहीं! भोजन के नाम पर नीम की पत्तियाँ और लाल मिर्च और वह भी भगवान को अर्पित करने के बाद ग्रहण करते. यदा कदा आहार के लिए उबाला हुआ अन्न अपने इष्ट को समर्पित करने के बाद दीन-दुखियों या भ्रमणशील साधुओं को खिला देते और आप भूखे रह जाते. इसीलिए लोगों में ये 'पवहारी बाबा' अर्थात् (पवन खाकर जीने वाले पिता) के नाम से प्रसिद्ध हो गये. पवहारी बाबा का दर्शन नरेन्द्र के लिए एक बड़ी समस्या थी क्योंकि ये अपनी गुफा से बहुत कम बाहर निकलते थे. कभी-कभी जब लोग इन्हें अपनी गुफा के अन्दर द्वार पर बैठा हुआ देखते तो कुछ बातचीत कर लेते. नरेन्द्र ने उन्हें ऐसी ही स्थिति में देखा. संयोग अच्छा था. दोनों ही एक दूसरे के व्यक्तित्व से आकर्षित हुए. नरेन्द्र ने बाद में पवहारी बाबा के विषय में लिखा 'निस्संदेह ये एक महान योगी हैं. आज के इस नास्तिक युग में वे भक्ति तथा योग की अद्भुत क्षमता का उदाहरण हैं, यह बात कितनी आश्चर्यजनक है. मैं इनकी शरण में आ गया हूं. इन्होंने मुझे आश्वासन भी दिया है जो सभी के भाग्य में प्राप्त नहीं है.'

पवहारी बाबा श्री रामकृष्ण परमहंस से मिल चुके थे और उनकी महानता से परिचित थे. नरेन्द्र को श्री रामकृष्ण का शिष्य जान कर तथा उनके व्यक्तित्व और ज्ञान से प्रभावित होकर वे उनका सम्मान करते. धीरे धीरे नरेन्द्र पवहारी बाबा के अत्यन्त समीप खिच आये. एक बार नरेन्द्र कुछ अस्वस्थ होने के कारण उनसे मिलने नहीं जा सके तो उन्होंने किसी व्यक्ति को नरेन्द्र का समाचार लाने के लिए उनके पास भेजा. नरेन्द्र के आने पर उन्होंने कहा—'यहाँ मेरे साथ कुछ दिन और रह कर मुझे सुख दो.' पवहारी बाबा बड़ी नम्रता और स्नेह से नरेन्द्र को योग साधना की शिक्षा देते. जिस समय नरेन्द्र और पवहारी बाबा की दार्शनिक तत्व संबंधी बातचीत होती उस समय वे लोग ऐसी उच्च स्थिति पर पहुंच जाते कि अन्य कोई उपस्थित व्यक्ति उसका मर्म नहीं समझ पाता.

पवहारी बाबा के अद्भुत व्यक्तित्व के सम्पर्क ने नरेन्द्र के हृदय को बड़ा अशान्त बना दिया. दो अत्यन्त महान शक्तियां उनके हृदय को दो विपरीत दिशाओं की ओर खींच रही थीं. कभी वे एक ओर झुकते कभी दूसरी ओर. एक ओर पवहारी बाबा के साथ योग साधना करने की सुख भरी अभिलाषा और दूसरी ओर अंधकार के गर्त में गिरे हुए भारत को उठाने का, इसकी सोयी हुई आत्मा को जगाने की आकांक्षा.

अवसर समाधि के अनिर्वचनीय सुख के आनन्द की कल्पना ही उन्हें वशीभूत कर लेती. किन्तु जब-जब उन्होंने पवहारी बाबा से शिक्षा लेकर उनके पथ का अनुसरण करना चाहा, तब तब रामकृष्ण के अदृश्य हाथ उनके पथ में कांटे बिछा देते. नरेन्द्र को ऐसा भास होता जैसे रामकृष्ण उनके सामने खड़े होकर उनकी आंखों में आंखें गड़ाये हुए हैं. उस समय नरेन्द्र के हृदय में रामकृष्ण की वाणी गूंजने लगती-'तुमने चरम कोटि की समाधि का रसास्वादन कर लिया है. वर्तमान के लिए मैंने अब इसमें ताला लगा दिया है. इसकी चाभी मेरे पास रहेगी. तुम्हें अब कार्य करना है. जब तुम इसे पूर्ण कर लोगे तो फिर अटूट समाधि में प्रवेश करोगे.' इस प्रकार क्षण भर में ही पवहारी बाबा से दीक्षा लेने का नशा नरेन्द्र पर से उतर जाता. ऐसा कई बार हुआ. अन्त में नरेन्द्र ने पवहारी बाबा की ओर से अपना मन मोड़ लिया. इन घटनाओं के बाद, काल के पर्दे में छिपे हुए रामकृष्ण के व्यक्तित्व के कुछ नये रूप नरेन्द्र के सामने उपस्थित हुए. वे गुरुदेव के और निकट आये. उन्हें और अच्छी तरह से समझा.

इसी समय नरेन्द्र ने यह भी अनुभव किया कि गुरुदेव की स्मृति स्वरूप उनकी जन्मभूमि बंगाल में एक स्मारक बनवाना चाहिए. जब वे गाजीपुर से बड़ानगर लौटे तो काफी दिनों तक इसके लिए साधन जुटाने में व्यस्त रहे राम-कृष्ण के अनेक गृहस्थ भक्त जिन्होंने रामकृष्ण की बीमारी में या बड़ानगर मठ की स्थापना के समय अर्थ तथा अन्य साधन जुटाये—वे अब इस संसार से विदा ले चुके थे. उन्होंने बनारस के प्रमदा दास बाबू के पास इसके विषय में काफी पत्र व्यवहार किया. इससे बहुत अंशों में लाभ भी हुआ किन्तु इतना नहीं कि स्मारक में शीघ्र हाथ लगाया जा सके. नरेन्द्र का मन स्थिर नहीं हो पा रहा था—लगता था कि जैसे किसी खोयी हुई वस्तु को वे ढूंढ़ रहे हों. कहीं अशिक्षा और अंधविश्वास की बेड़ियों में जकड़ा भारत का मरणासन्न समाज, कहीं हिन्दू धर्म की ओट में होते हुए अनेक कुकर्म, कहीं दरिद्रता और व्याधि के कारण असमय में ही जीर्ण हुए लोगों की बुझी-बुझी आंखें ये सब चीजें नरेन्द्र के हृदय को मथ डालतीं. उन्हें समझ में नहीं आता कि किस ओर और कैसे अपना पहला कदम उठायें. पूर्ववत् एक बार फिर बड़ानगर से इनका जी उचट गया. हिमालय की घाटियां उन्हें बुलाने लगीं. ऐसा लगता मानो वे कह रही हों—'आओ, मेरी गोद में विश्राम करो. फिर तुम्हें शान्ति मिलेगी.'

भ्रमणशील जीवन अपनाने के बाद से नरेन्द्र स्वामीजी के नाम से प्रसिद्ध हो गये थे. उनके गुरुभाई तथा यात्रा में यत्र-तत्र मिले जिन लोगों से उनका परिचय होता सभी ने उन्हें स्वामीजी ही संबोधित किया. अतः अब उनकी चर्चा इसी नाम से उचित होगी.

हिमालय की यात्रा के लिए स्वामीजी कटिबद्ध थे. कलकत्ते का जीवन अब

उनके लिए नीरस था. लगता था जैसे एक पक्षी सोने के पिंजड़े में बन्द है. यहां आदर है, सम्मान है, सुख है. किन्तु पक्षी यह सब कुछ नहीं चाहता. वह चाहता है विस्तृत नभ जिसका कोई कोना उसकी पहुँच से अछूता न रहे. स्वच्छन्द विचरण, स्वदेश दर्शन तथा भांति-भांति के नवीन अनुभव के आकर्षण को वे हृदय में दबा न सके. बड़ानगर मठ के सारे उत्तरदायित्व को वे जैसे भूलने से लगे. यह आवश्यक था. गुरुभाइयों को भी मठ के संचालन की कला में कुशल होना था. उन्होंने अपने गुरुभाइयों को बुलाया और कहा—'मैं हिमालय की ओर जा रहा हूँ. वहां से मैं तब तक नहीं लौटूंगा जब तक मैं सत्य के प्रत्यक्षीकरण द्वारा अपने में ऐसी शक्ति न जगा लूं कि मेरे सिर्फ स्पर्श मात्र से मानव की सारी मानवता जाग उठे.'

स्वामीजी मां शारदा के पास गये, उनका आशीर्वाद लिया और फिर यात्रा आरम्भ की. इस बार गुरुभाई अखण्डानन्द भी इनके साथ थे. ये दोनों पहले भागलपुर में नित्यानन्द सिन्हा के अतिथि रहे फिर मन्मथनाथ चौधरी तथा मथुरानाथ सिन्हा के यहां भी कुछ दिन ठहरे. पहले तो इन लोगों ने स्वामी जी को साधारण संन्यासी समझ कर उनकी ओर कुछ विशेष ध्यान नहीं दिया, किन्तु बाद में बातचीत से जब स्वामी जी की असाधारण प्रतिभा की झलक मिली तो भागलपुर का जनसमूह उनके पास इकट्ठा होने लगा. इसके बाद वैद्यनाथ धाम, बनारस, नैनीताल और फिर अलमोड़ा. जहाँ भी जाते कुछ ही समय बाद उनकी विद्वत्ता की ख्याति चारों ओर फैलने लगती. यहां स्वामीजी के दो और गुरुभाई, शारदानन्द और वैकुण्ठानन्द मिल गये. ये बहुत पहले ही हिमालय दर्शन की आशा लेकर मठ छोड़ चुके थे. यहां एक सज्जन अम्बादत्त के मकान में स्वामीजी ठहरे. यहां आये अभी कुछ भी दिन नहीं बीते थे कि स्वामीजी को एक मर्मस्पर्शी खबर मिली. स्वामीजी की एक बहन ने समाज की यातनाओं से ऊब कर आत्महत्या कर ली थी. इस समाज का ऐसा अधोपतन ! स्वामीजी का हृदय व्यथा से भर गया. इस घटना ने मानो उनके हृदय में सुलगती हुई समाज सुधार की चिनगारी को धधकते हुए शोलों में परिणत कर दिया.

इसके बाद ही सिर्फ अखण्डानन्द को साथ लेकर स्वामीजी गढ़वाल होते हुए श्रीनगर चले गये. यहां भी पठन-पाठन, पूजा-प्रार्थना तथा चिंतन-मनन का कार्यक्रम चलता रहा. भिक्षाटन के द्वारा अर्जित अन्न को पेट में डाल कर और वृक्ष की छांव में सोकर इन लोगों ने करीब एक महीना गुजार दिया. यहीं एक वैश्य अध्यापक जिसने ईसाई धर्म स्वीकार कर रखा था, स्वामीजी से मिला और इतना प्रभावित हुआ कि पुन: सनातन धर्म का अनुयायी हो गया. एक सप्ताह के लिए देहरादून ठहर कर स्वामीजी पुन: ऋषिकेश आये. प्रकृति का लहराता हुआ एकांत सौन्दर्य, लहराती, बल खाती गंगा, ऊँची-नीची भूमि पर बिखरे हुए नन्हे-नन्हें पर्णकुटीर भला स्वामीजी के हृदय को कैसे बांध न लेते. चंदेश्वर महादेव के मंदिर के पास ही

उनका आश्रम था. यहां एक बार फिर परिस्थिति ने उन्हें बुरी तरह परास्त कर दिया. वे भयंकर व्याधि के चंगुल में फंस गये. हिमालय की तराई में पूस की ठंढक. कुटिया की कठोर भूमि पर फैला हुआ एक कम्बल. तीक्ष्ण ज्वर से म्लान, वेसुध स्वामीजी वेसहारा पड़े हुए हैं. मूर्छा की स्थिति में मुंह से उल्टी सीधी बातें निकल रही हैं. जब वहां के निवासियों ने स्वामीजी की दयनीय दशा देखी तो उपचार और औषधि का प्रबंध किया. स्वामीजी की स्थिति में सुधार होने लगा. किन्तु पूर्ण-रूप से स्वस्थ होने में उन्हें कुछ समय लगा. स्वस्थ होने के बाद कुछ दिनों तक स्वामीजी वहां और ठहरे. इस बीमारी में उन्होंने अनुभव किया कि वे बहुत अंशों में अपने गुरुभाई अखण्डानन्द पर अवलम्बित हैं तथा माया के वशीभूत हैं. योगी के लिए एकांत जीवन और भाग्य का भरोसा चाहिए. तभी इच्छित ध्येय की प्राप्ति हो सकती है. अखण्डानन्द से उन्होंने अपने एकान्तवास की लालसा की चर्चा की. किन्तु गुरुभाई स्वामीजी का साथ छोड़ने के लिए तैयार नहीं हुए. अतः एक दिन ब्रह्मवेला के नितान्त सूने प्रहर में बिना किसी से कुछ कहे सुने स्वामीजी ने ऋषिकेश की कुटिया छोड़ दी.

स्वामी जी अपने सम्बंधियों और परिचितों से अपने को अज्ञात रखना चाहते थे. अतः उन्होंने अपना नया नामकरण किया. अब वे विविदिशानन्द थे. दिल्ली के आकर्षण ने उन्हें ऋषिकेश से अपनी ओर खींचा. दिल्ली प्राचीन गौरव का भग्नावशेष है. कौरव-पाण्डवों का हस्तिनापुर तथा गुलाम, खिलजी, तुगलक, लोदी, आदि वंशों की स्मृतियां, दिल्ली के अनेक खण्डहरों में आज तक जीवित हैं. फिर वैभव और विलासिता के पुजारी मुगल सम्राट शाहजहां ने तो दिल्ली का रूप ही बदल दिया. अपनी स्मृति चिरस्थायी बनाने के हेतु यमुना के किनारे अपना आवास-दुर्ग बनाया, जो लाल किला के नाम से प्रसिद्ध है. यह लाल रेतीले पत्थरों से बना हुआ विशाल किला आज भी उसी तरह मुगलों के गौरवपूर्ण गाथा के प्रतीक के रूप में खड़ा है. कौरव-पांडवों के युग से आज तक यह चिरयौवना दिल्ली अनेक बार सधवा और अनेक बार विधवा बनी. सजती, संवरती और उजड़ती रही. शाहजहां का युग मुगलकालीन वास्तुकला का स्वर्णयुग था. स्वामीजी इस वास्तुकला के शेष चिह्नों का निरीक्षण कर आत्मविभोर होते रहे थे.

यहां ये श्री श्यामल दास के घर ठहरे. यहां के लोगों में भी इनके पांडित्यपूर्ण प्रवचनों से उत्तजना थी. बड़ानगर के दो गुरुभाईयों ने जो उन दिनों मेरठ में थे, विविदिशानन्द नामक एक अत्यन्त प्रतिभाशाली युवक संन्यासी की ख्याति सुनी. ऐसा संन्यासी जो न केवल भारतीय धर्मशास्त्र में ही पारंगत है, अपितु विभिन्न धर्मग्रन्थों तथा पश्चिम के ज्ञान पर भी समान अधिकार रखता है और धाराप्रवाह रूप में अंग्रेजी बोलता है. उसे देखने की लालसा से वे दोनों गुरुभाई दिल्ली आये. किन्तु जब स्वामी विविदिशानन्द से उनका साक्षात्कार हुआ तो चकित रह गये.

बहुत दिनों बाद स्वामीजी से मिल कर उनका हृदय आनन्दित हो गया. उन्होंने स्वामी जी के साथ रहने की इच्छा व्यक्त की. किन्तु स्वामीजी इससे सहमत नहीं थे. उन्होंने कहा—'मेरे भाई, मैंने कहा है कि मैं अकेला रहना चाहता हूँ. मेरा पीछा तुम लोग मत करो, यह भी मैंने कहा है. फिर इसी की मैं आवृत्ति कर रहा हूँ.' इसके बाद स्वामीजी के गुरुभाई उनसे अलग रहने लगे. कुछ दिन दिल्ली रह कर और दिल्लीवासियों पर अपनी अमिट छाप छोड़ने के बाद स्वामीजी राजपूताना की ओर अग्रसर हुए. इन दिनों स्वामीजी को अपने परिचितों से अलग रहने का एक अजीब नशा था. उनका संकल्प था—आगे की ओर चरण बढ़ाते जाओ, चाहे मार्ग हो या न हो, ये चरण राह के कांटों को कुचल कर नवीन पथनिर्माण करेंगे. अभी कहीं रुकना नहीं है. संसार के अनुभवों को अपने दामन में लपेटे हुए आंधी के समान वह निकलना है. इस संकल्प ने स्वामीजी के हृदय को और भी सुदृढ़ बना दिया; जल में स्थित कमलदल के समान उनका हृदय सांसारिक ममत्व से रहित, निर्मल और निर्विकार बन गया.

राजपूताना में पहला कदम स्वामीजी ने अलवर में रखा. रेलगाड़ी से उतरने के बाद वे मुख्य सड़क पर चलते हुए एक राजकीय औषधालय के पास पहुँचे. गुरुचरण लस्कर, एक डाक्टर सज्जन वहां खड़े मिले, देखने में वे बंगाली जान पड़ते थे. अत: स्वामीजी ने उनसे साधुओं के ठहरने की जगह के विषय में पूछा. गुरुचरण स्वामीजी के भव्य व्यक्तित्व एवं मधुर बातचीत से मुग्ध थे. उन्होंने बाजार में स्वामीजी के लिए ऊपर का एक कमरा ठीक कर दिया. बाद में इन्होंने अपने एक मुसलमान दोस्त का जो स्कूल में उर्दू और फारसी के शिक्षक थे, स्वामीजी से परिचय करवाया. इन लोगों के साथ इस्लाम धर्म पर स्वामीजी की काफी बातचीत हुई. इनकी बातों से अभिभूत होकर मौलवी साहब ने अपने और मुसलमान भाइयों को स्वामीजी से मिलने के लिए बुलाया. इस प्रकार अलवर में भी कुछ दिनों तक स्वामीजी के पास भीड़ जुटती रही और दर्शन धर्म तथा अन्य विषयों पर चर्चा होती रही. स्वामीजी द्वारा गाये हुए उर्दू गीत, हिन्दी भजन, बंगाली कीर्तन तथा वेद पुराण एवं उपनिषद की रचनाएँ, बाइबल और कुरान के उद्धरणों के पाठ सुन कर अलवर की जनता मन्त्रमुग्ध हो गयी. स्वामीजी के पास अब इतने अधिक लोग इकट्ठे होने लगे कि उनके लिए वह कमरा छोटा पड़ने लगा. अलवर राज्य के एक प्रसिद्ध अवकाशप्राप्त इंजीनियर पंडित शंभूनाथ के यहां स्वामीजी को एक बड़ा कमरा दिलवाया गया.

यहां काफी लोगों के बैठने की जगह थी. अत: स्वामीजी के दर्शन और प्रवचन से लाभ उठाने के लिए हर तरह के व्यक्ति आने लगे. एक बार स्वामीजी किसी गूढ़ विषय का विवेचन कर रहे थे. तभी आगन्तुक श्रोताओं के बीच से आवाज आयी—

'स्वामीजी आप किस जात के हैं ?'

स्वामीजी ने तत्क्षण उसी गम्भीरता से उत्तर दिया—'कायस्थ'

फिर दूसरी आवाज आयी 'महाशय, आप गेरुआ वस्त्र क्यों पहनते हैं ?' स्वामी जी ने फिर शान्ति से उत्तर दिया—

'क्योंकि यह एक भिक्षु का परिधान है. यदि मैं उज्जवल वस्त्र पहनूंगा तो लोग मुझसे भी भिक्षा मांगने लगेंगे, खुद ही भिखारी होने के कारण मेरे पास कभी एक पैसा भी नहीं होता कि मैं उन्हें दूं. यदि मुझसे कभी किसी ने कुछ मांगा और मैं उसे वह न दे सका तो मुझे इससे घोर कष्ट होता है. मेरे कापाय वस्त्र को देख कर वे समझ जाते हैं कि मैं उन्हीं जैसा भिखारी हूं और फिर वे एक भिखारी से भीख मांगने की बात नहीं सोचते .'

गहन विषय की विवेचना के मध्य में पूछे गये ऐसे क्षुद्र, अबौद्धिक प्रश्नों से स्वामीजी को कभी झुंझलाहट या खेद नहीं हुआ. वे बराबर ही संयतभाव से विद्वान-अनपढ़, चतुर-मूर्ख, सज्जन-दुर्जन, अमीर-गरीब सभी के प्रश्नों का स्वागत करते हुए उचित उत्तर से उन्हें संतुष्ट करते. स्वामीजी के प्रशंसकों और स्नेहभाजनों में मौलवी साहब का प्रथम स्थान है. उनके श्रद्धालु हृदय की बहुत ही बड़ी अभिलाषा थी कि स्वामीजी एक वार उनके घर जूठन गिराते. किन्तु मुसलमान होने के नाते वे इस बात को कभी मुह पर नहीं लाये. एक दिन बहुत साहस कर उन्होंने अपनी लालसा स्वामीजी के सम्मुख रखी. उन्होंने कहा कि वे एक ब्राह्मण से शुद्ध वर्तन में खाना बनवायेंगे और घर के सारे सामान ब्राह्मण से ही धुलवा कर पवित्र करेंगे. स्वामीजी ने मौलवी साहब को समझाया कि वे संन्यासी हैं और संन्यासियों के सामने जात-पति तथा ऊंच-नीच का कोई भेदभाव नहीं है. जो भी श्रद्धा से निमन्त्रित करता है उसका निमन्त्रण स्वामीजी स्वीकार करते हैं. इस घटना से प्रफुल्लित होकर कई मुसलमान भाइयों ने स्वामीजी को अपने घर भोजन के लिए आमन्त्रित किया.

अलवर राज्य के महाराजा मंगलसिंह जी अंग्रेजी सभ्यता के रंग में रंगे हुए थे. उनके दीवान ने स्वामीजी के विषय में महाराजा से चर्चा की. महाराजा स्वामी जी के अंग्रेजी के ज्ञान से बहुत ही प्रभावित हुए. उन्होंने स्वामीजी से प्रथम मिलन के समय ही पूछा कि स्वामीजी आप तो प्रकांड विद्वान हैं आप चाहें तो इसके द्वारा अधिक से अधिक धन उपार्जन कर सकते हैं. फिर वह न कर आप को भिक्षाटन क्यों पसन्द है ? प्रश्न के उपयुक्त निर्भीक और बेजोड़ उत्तर मिला—

'महाराज, मुझे पहले आप यह बतायें कि आप बराबर पाश्चात्य लोगों का साथ क्यों पसंद करते हैं. क्यों अपने राजकीय कर्त्तव्यों की अवहेलना कर आखेट और आमोद-प्रमोद में व्यस्त रहते हैं ?'

महाराज के दीवान और दरबारी स्वामीजी के इस उत्तर को सुन कर सहम

गये. किन्तु महाराजा ने शांति और संयम से काम लिया, बोले—

'मैं ठीक-ठीक नहीं बता सकता क्यों ? किन्तु इसमें संदेह नहीं कि मैं ऐसा ही पसन्द करता हूँ.'

स्वामीजी ने कहा—'तो मैं भी इसी कारण एक फकीर के समान घूमना पसन्द करता हूँ.'

महाराजा को मूर्तिपूजा पर विश्वास नहीं था. वे इसके कट्टर विरोधी थे. उन्होंने बड़े ही व्यंग्यात्मक रूप से हंस कर कहा कि पत्थर की मूर्ति को भला भगवान कैसे समझा जा सकता है. महाराजा के कथन की अभिव्यक्ति, जो बहुत ही निम्न कोटि की थी, स्वामीजी के हृदय में एक शूल चुभा गयी. स्वामीजी की बड़ी-बड़ी आँखों में एक ज्वाला चमक उठी. महाराजा का एक बड़ा सा चित्र सामने की दीवार को सुशोभित कर रहा था. स्वामीजी ने उस चित्र को उतार कर भूमि पर रख दिया और दीवान को कठोर शब्दों में आज्ञा दी—

'थूको इस पर. यह क्या है, सिर्फ एक कागज का टुकड़ा. तुम्हें इस पर थूकने में कौन-सी हिचक है ?'

राजदरबार में सन्नाटा छा गया. स्वामीजी की मुद्रा देख कर सामने खड़े दीवान और दरबारी सभी भय से काँपने लगे. दीवान के मस्तिष्क में द्वंद्व छिड़ा हुआ था. उसकी बुद्धि काम नहीं कर रही थी. एक ओर महाराजा के अपमान का भय, तो दूसरी ओर स्वामीजी के क्रोध का. भयभीत सा वह कभी अपने आश्रयदाता महाराजा की ओर देखता तो कभी स्वामीजी की ओर. स्वामीजी फिर गरजे—

'थूको इस पर, मैं कह रहा हूँ थूको.'

डर और घबड़ाहट में दीवान मति-शून्य की भाँति चिल्ला पड़ा—

'क्या स्वामीजी. आप मुझे क्या करने को कह रहे हैं ? यह हमारे महाराजा का चित्र है. हम ऐसा कैसे कर सकते हैं ?'

स्वामीजी की मुद्रा शांत थी. उन्होंने कहा—

'ऐसा ही होता है. इसमें महाराज स्वयं तो उपस्थित नहीं हैं. यह सिर्फ एक कागज का टुकड़ा है. इसमें उनका अस्थि-मज्जा और रक्त नहीं है. यह न हिलता-डुलता है, न बोलता है और न महाराजा के समान व्यवहार ही करता है. फिर भी तुम सब इस पर थूकना नहीं चाहते क्योंकि तुम इस चित्र में अपने महाराजा की प्रतिच्छाया देखते हो. इस पर थूकने से निस्संदेह तुम्हें ऐसा अनुभव होता जैसे तुम अपने महाराजा का निरादर कर रहे हो.'

इसके पश्चात महाराजा की ओर मुड़ कर स्वामीजी ने उन्हें समझाया कि यद्यपि वास्तव में चित्र उस चीज से नहीं बना है जिससे स्वयं महाराज का शरीर निर्मित है फिर भी दूसरे रूप में चित्र वही है जो महाराजा हैं. इसीलिए दीवान चित्र पर थूक नहीं सका क्योंकि वह उसमें महाराजा को देखता था. इसी प्रकार

भगवान के भक्त मूर्ति में भगवान को देखते हैं. किसी विशेष प्रतिमा से हम किसी विशेष देवता की कल्पना करते हैं. उस पर हमारी आस्था रहती है. जिसकी आस्था भगवान के जिस रूप में है उसी रूप में भगवान मिलते हैं.

स्वामीजी की बातें महाराजा बड़े कृतज्ञ भाव से तन्मय होकर सुन रहे थे. उनकी बात खत्म होते ही महाराजा बोले—

'स्वामीजी, आप की कृपा से आज मुझे मूर्तिपूजा के संबंध में नया ज्ञान प्राप्त हुआ है. वास्तव में आपकी दृष्टि से यदि विचार करें तो आज तक मैंने एक भी लकड़ी या पत्थर का उपासक नहीं देखा. इतने दिनों तक मैंने मूर्तिपूजा का वास्तविक रहस्य नहीं समझा था और न समझने की चेष्टा की थी. पर आज आप ने मेरी आँखें खोल दी. स्वामीजी, कृपा कर आप मुझे आशीर्वाद दीजिए.'

स्वामीजी अपनी आंखों से स्नेह की वर्षा करते हुए बोले—

'एकमात्र ईश्वर के अतिरिक्त भला कृपा करने का अधिकार और किसे है? आप सरल शुद्ध भाव से उनके चरणों में शरण लीजिए, वे अवश्य ही कृपा करेंगे.'

स्वामीजी की बात और व्यवहार महाराजा के हृदय को छू गया. स्वामीजी को सादर विदा देने के बाद उन्होंने दीवान से कहा कि उन्हें आज तक इस तरह के महात्मा से भेंट नहीं हुई थी. ऐसी प्रतिभा और ऐसे व्यक्तित्व वाले विरले ही होते हैं.

ऐसा देखा गया कि अलवर की जनता स्वामीजी से बहुत ही प्रभावित हुई. बहुत से लोग स्वामीजी के सामने विरोधी विचार लेकर आयें, किन्तु स्वामीजी के प्रभाव से अपने को बचा नहीं सके. स्वामीजी के संस्कृत के ज्ञान से आकर्षित होकर बहुत से युवक इनसे संस्कृत पढ़ने आये. स्वामीजी ने नवयुवकों को संस्कृत पढ़ाने के साथ-साथ पश्चिम के विज्ञान की ओर भी उनका ध्यान दिलाया और उन्हें समझाया कि सिर्फ संस्कृत पढ़ कर ही आज का भारत उन्नत नहीं हो सकता. पश्चिम की दुनिया विज्ञान की दिशा में बहुत आगे कदम बढ़ा चुकी है. इसलिए विज्ञान का ज्ञान हासिल कर उनके साथ कदम मिला कर चलना चाहिए. तभी हम अन्य राष्ट्रों के साथ जी सकेंगे और आगे बढ़ सकेंगे. यहां कुछ दिन और रहने के बाद स्वामीजी ने जयपुर के लिए प्रस्थान किया.

जयपुर में वे करीब दो सप्ताह तक ठहरे. यहां एक संस्कृत के ख्यातिप्राप्त वैयाकरण से स्वामीजी का परिचय हुआ. स्वामीजी उनके पास गये और उन्हें अपना गुरु मान कर उनसे संस्कृत व्याकरण में पारंगत होने की इच्छा प्रकट की. व्याकरण-वेत्ता ने स्वामीजी को पाणिनि रचित अष्टाध्यायी की शिक्षा देनी प्रारम्भ की. तीन-चार दिनों तक लगातार प्रयत्न करने पर भी पंडितजी प्रथम सूत्र का भाष्य स्वामीजी को समझा नहीं सके. पंडितजी ने चौथे दिन स्वामीजी से कहा—

'स्वामीजी, आप को मेरे यहां अध्ययन करने से विशेष लाभ नहीं होगा क्यों-

कि तीन दिनों के अनवरत परिश्रम के बाद भी मैं आप को कुछ समझा नहीं सका.' स्वामीजी बड़े ही लज्जित हुए. उन्होंने पंडितजी से पुस्तक ली और मन ही मन संकल्प किया कि जब तक पूरी पुस्तक के सूत्रों को पूरी तरह से समझ न लूं तब तक अन्न-जल ग्रहण नहीं करूँगा. दो दिनों में उन्होंने सम्पूर्ण पुस्तक को पूरी तरह समझ कर उसे कंठस्थ कर लिया, फिर नम्र भाव से पंडितजी के पास गये. पंडितजी ने उनसे कुछ सूत्रों के विषय में पूछा. स्वामीजी पंडितजी के पूछे हुए प्रश्नों के उत्तर देने के बाद सारी पुस्तक की विवेचना कर गये. पंडितजी आश्चर्यचकित रह गये. जीवन में पहली बार उन्हें ऐसे व्यक्ति से भेंट हुई थी जो दो दिनों के अध्ययन से गुरु का गुरु बन बैठे.

जयपुर राज्य के प्रमुख सेनाध्यक्ष सरदार हरिसिंह से स्वामीजी की गहरी मित्रता हो गयी. वे हरिसिंह के घर कुछ दिन ठहरे भी थे. वेदान्त में विश्वास करने वाले हरिसिंह को मूर्तिपूजा में बिल्कुल ही आस्था नहीं थी. स्वामीजी से इस विषय पर प्रायः चर्चा होती. किन्तु इससे हरिसिंह के विचारों में कोई भी परिवर्तन नहीं आया. एक बार संध्या समय में दोनों व्यक्ति सड़क के किनारे बातें करते हुए घूम रहे थे. तभी झाल-मजीरे के साथ मधुर संगीत-लहरी सुनाई पड़ी. कुछ भक्तों ने श्रीकृष्ण की रथयात्रा निकाली थी. भक्तिभाव में लीन वे भगवत्महिमा का गुण-गान करने में मस्त थे. स्वामीजी और हरिसिंह उस जुलूस के साथ-साथ चलते रहे. स्वामीजी स्वयं भक्तिरस में डूबते जा रहे थे किन्तु हरिसिंह के लिए यह सब एक तमाशा था. इतने में स्वामीजी ने हरिसिंह का हाथ स्पर्श किया और कहा—'ईश्वर का जीता-जागता स्वरूप देखिए.'

हरिसिंह की आँखें मूर्ति पर थीं. वे निर्निमेष नयनों से देखते रहे और उनके कपोलों पर प्रेमाश्रु की धारा बहती रही. पता नहीं यह किस जादू का प्रभाव था. काफी देर बाद उन्हें अपनी सुध आयी. वे प्रेम-विभोर होकर बोले—

'स्वामीजी, अनेक बार तर्क करके जिस चीज को अब तक नहीं समझ सका था, उसे आज आपके जादू भरे स्पर्श ने क्षण भर में समझा दिया.'

जयपुर के बाद अजमेर और अजमेर के बाद माउन्ट आबू. माउन्ट आबू अपनी रमणीयता तथा दिलवारा मंदिर की कलात्मकता के लिए प्रसिद्ध है. इस मंदिर का निर्माण सफेद संगमर्मर से हुआ है. इस संगमर्मर पर हाथी दांत के किस्म की बहुत ही महीन नक्काशी की नफासत है. स्वामीजी ने इस अद्भुत कलाकृति को देखा. उनके माउन्ट आबू पहुँचते ही पहले की तरह अनेक मित्र और भक्त इकट्ठे होने लगे.

एक बार संध्या समय स्वामीजी अपने भक्तों के साथ माउन्ट आबू की ऊँची-नीची सड़कों पर टहलते हुए वहाँ की झील के पास पहुँचे, फिर वहाँ के सुन्दर-शांत वातावरण से मोहित होकर वहीं बैठ गये और भजन गाने लगे. उनके भावपूर्ण

सुरीले कंठस्वर से धीरे-धीरे वहुत लोग आकर्षित होने लगे. थोड़ी देर में वहाँ काफी भीड़ इकट्ठी हो गयी. कुछ यूरोपियन जो भ्रमण के लिए आये थे वे भी मधुर संगीत को सुन कर मुग्ध भाव से वहाँ खड़े हो गये और गायक की एक झलक पाने के लिए आतुर हो उठे. वहुत कठिनाई से उन लोगों ने स्वामीजी के पास जाने के लिए रास्ता वनाया और वहाँ पहुँच कर स्वामीजी को श्रुतिप्रिय संगीत के लिए अनेक वधाइयाँ दी.

स्वामीजी ने यहाँ पहाड़ की एक गुफा में अपना डेरा डाला था. एक दिन खेतरीनरेश का एक प्रसिद्ध मुसलमान वकील उस गुफा की ओर से गुजर रहा था कि उसकी दृष्टि गुफा के सामने ध्यानमग्न वैठे हुए एक युवा संन्यासी पर पड़ी. संन्यासी के सौम्य-स्निग्ध रूप ने सहज ही में उस पथिक को आकर्षित कर लिया. जब उस मुसलमान भाई का स्वामीजी से परिचय हुआ तो उनके अतुलनीय ज्ञान और स्नेही स्वभाव ने उसे वहुत आकर्षित किया. वर्षा के दिनों में स्वामीजी को गुफा में द्वार नहीं होने के कारण काफी तकलीफ होती थी. वहुत आग्रह के वाद उसने स्वामीजी को अपने घर आ जाने के लिए तैयार किया. वकील ने वहाँ के अनेक जाने-माने लोगों से स्वामीजी का परिचय करवाया. उन्हीं दिनों खेतरी के महाराजा अपने दरवारियों के साथ गर्मी विताने माउण्ट आवू आयें हुए थे. मौलवी वकील ने खेतरी के दीवान मुंशी जगमोहनलाल को अपने घर स्वामीजी के दर्शन के लिए वुलाया. जव दीवान जगमोहनलाल वकील साहव के यहाँ पहुँचे तो उस समय कौपीन पहने हुए स्वामीजी एक चारपाई पर विश्राम कर रहे थे. दीवान उन्हें देखते रहे और सोचते रहे— 'यह तो विल्कुल साधारण साधु हैं. इस तरह के तो चोर उचक्के भी होते हैं.' थोड़ी देर में स्वामीजी ने आँखें खोलीं और सामने एक अपरिचित व्यक्ति को देख कर उठ वैठे. दीवान ने अपना परिचय देते हुए पूछा—

'स्वामीजी, आप हिन्दू संन्यासी होकर एक मुसलमान के घर पर ठहरे हुए हैं, आप के भोजन वगैरह को ये मुसलमान छूते होंगे.'

स्वामीजी ने गम्भीरता से उत्तर दिया—'महाशय, आप के ऐसा कहने का आशय क्या है ? मैं संन्यासी हूँ. मैं सभी सामाजिक आचार-विचार से परे हूँ. मैं एक मेहतर के साथ भी वैठ कर भोजन करता हूँ. यह तो ईश्वर का निर्देश है. अत: मैं निर्भय हूँ. शास्त्र का मुझे भय नहीं, क्योंकि शास्त्र इसका समर्थन करते हैं. परन्तु हाँ, मुझे भय है आप जैसे कुछ अंग्रेजी जानने वालों से. आप लोग शास्त्र या भगवान की परवाह नहीं करते. मैं तो सर्वभूतों में ब्रह्म को देखता हूँ. मेरे लिए कोई ऊँच-नीच नहीं है.'

इस तरह की वातें करते-करते वे उत्तेजना से आरक्त हो उठे. स्वामीजी की वातों ने दीवान को वहुत प्रभावित कर लिया. उसने अपने महाराजा से इस स्वामी की वड़ी चर्चा की और उनके निमंत्रण पर वह उन्हें राजभवन में लिवा ले गया.

महाराजा ने बड़े प्रेम से उनका स्वागत किया और श्रद्धा से उन्हें बैठा लेने के बाद स्वयं बैठे. बैठते ही महाराजा ने प्रश्न किया—'स्वामीजी, जीवन क्या है ?'

'एक अंतर्हित शक्ति, जो अपने स्वरूप में व्यक्त होने के लिए लगातार चेष्टा कर रही है, और बाह्य प्रकृति उसे दबा रही है. इसी चेष्टा का नाम जीवन है,' स्वामीजी ने तुरन्त उत्तर दिया.

इसके बाद महाराजा ने और भी कितने प्रश्न पूछे. सबके समुचित एवं पाण्डित्यपूर्ण उत्तर पाकर बड़े प्रसन्न हुए. स्वामीजी ने उनसे गुरुदेव श्री रामकृष्ण की जीवनी भी सुनायी. महाराजा बड़ी श्रद्धा-भक्ति से ध्यानमग्न होकर श्री रामकृष्ण की कहानी सुनते रहे. फिर कुछ दिनों के बाद महाराजा उन्हें बड़े आग्रह से अपने राज्य में ले गये.

खेतरी पहुँचने पर दीवान जगमोहन लाल और महाराजा अजितसिंह दोनों ही ने स्वामीजी का शिष्यत्व ग्रहण किया. स्वामीजी ने बड़े अनुरोध के बाद राजमहल में कुछ दिनों तक रहना स्वीकार किया. महाराजा नित्य ही स्वामीजी से पाश्चात्य और भारतीय दर्शन, धर्म, संस्कृत साहित्य तथा संगीत आदि पर ज्ञानवर्धक वार्तालाप किया करते.

स्वामीजी और महाराजा अब एक दूसरे से सरल, निष्कपट और उदार हृदय से परिचित होकर बहुत समीप खिच आये थे. एक-दूसरे पर दोनों की असीम आस्था अब प्रगाढ़ मैत्री का रूप ले चुकी थी. महाराजा को संगीत से बहुत प्रेम था. वे स्वयं एक बहुत अच्छे वीणा वादक थे. हारमोनियम पर भी उनका अच्छा अधिकार था. उधर स्वामीजी भी संगीत के प्रेमी थे. अतः संगीत की दुनिया में कभी-कभी दोनों आत्मविभोर होकर खो जाते. कोई सुरीले कण्ठ से मधुर गीत गाता होता तो कोई उसके साथ हारमोनियम या वीणा बजा रहा होता. कभी दोनों दो घोड़ों पर बैठ दर्शनीय स्थान देखने को निकल जाते. भोजन भी दोनों साथ ही करते.

महाराजा को संस्कृत और अंग्रेजी का अच्छा ज्ञान था. शास्त्रों का भी उन्होंने अच्छा अध्ययन किया था. किन्तु विज्ञान से ये बहुत कुछ अपरिचित थे. स्वामीजी से इन्होंने रसायन शास्त्र, भौतिक शास्त्र तथा ज्योतिष शास्त्र की शिक्षा लेनी आरम्भ की. प्रयोगात्मक अध्ययन के लिए राजमहल के ऊपरी मंजिल के एक कमरे में विज्ञान की प्रयोगशाला भी बनायी गयी. नक्षत्रों की गति और स्थान देखने के लिए एक बड़ा दूरबीन मगवाया गया. अक्सर ही अंधेरी रात में राजभवन की छत पर खड़े ये लोग घंटों नक्षत्रों का अध्ययन किया करते.

जब स्वामीजी खेतरी पहुँचे थे उस समय वहाँ काफी गर्मी थी. दिन की तपती हुई धूल भरी हवा स्वामीजी को परेशान करने लगी. वे बीमार से हो गये. महाराजा ने जब उनकी हालत देखी तो उन्हें पगड़ी बाँधने की सलाह दी. गर्म स्थान में सर को ढंक कर रखने से लू नहीं लगती, ऐसा वहाँ के लोगों का विश्वास था.

स्वामीजी ने महाराज की बात मान ली. महाराजा ने स्वयं उन्हें पगड़ी बांधना सिखाया. इसके बाद से स्वामीजी ने जीवनपर्यन्त पगड़ी धारण की. इसने स्वामीजी के व्यक्तित्व को और भी आकर्षक बना दिया.

संन्यास ग्रहण करने के बाद से स्वामीजी ने अपने कई नाम बदले. बड़ानगर मठ में रामकृष्ण के सभी शिष्यों ने जब अपने अतीत के जीवन से सम्बन्ध विच्छेद कर लेने पर अपने-अपने नाम परिवर्तित कर लिये, उस समय नरेन्द्रनाथ का नाम स्वामी सच्चिदानन्द पड़ा. इसके कुछ दिन बाद ही गुरुभाइयों के प्रति बढ़ती हुई ममता का आभास पाकर नरेन्द्र ने मठ त्याग दिया और भारत दर्शन के लिए निकल पड़े. वे नहीं चाहते थे कि उनके गुरुभाइयों को किसी प्रकार उनके पता-ठिकाना के विषय में कुछ ज्ञात हो. अतः कुछ दिनों के भ्रमण के उपरान्त लोगों के बहुत आग्रह पर वे अपना नाम विविदिशानन्द बतलाने लगे. खेतरी नरेश से जब उनका परिचय हुआ तो विविदिशानन्द ही थे. एक दिन खेतरी के राजमहल में बैठे हुए महाराज ने हँसते-हँसते कहा—

'स्वामीजी, आप का नाम बड़ा कठिन है. बिना टीकाकार की सहायता के साधारण लोगों की समझ में इसका मतलब नहीं आयेगा, उच्चारण करना भी सहज नहीं है. इसके अतिरिक्त अब तो आप का विविदिषा काल (विविदिषा का अर्थ है जानने की इच्छा) भी समाप्त हो चुका है.'

'आप किस नाम को पसन्द करते हैं ?' स्वामीजी ने पूछा.

महाराज कुछ सोच कर बोले—'मेरी समझ से आपके योग्य नाम है—विवेकानन्द.'

स्वामीजी महाराज की इच्छा का आदर करते थे. अतः इस दिन से उन्होंने अपना नाम विवेकानन्द मान कर उसका व्यवहार आरम्भ कर दिया, इसी नाम से वे सारी दुनिया में विख्यात हुए.

एक दिन संध्या वेला में स्वामीजी महाराज के साथ राजभवन में बैठे हुए थे. धार्मिक विषयों पर चर्चा हो रही थी. आज दरबार में एक नर्तकी के गाने का भी आयोजन था. जब गणिका ने सभा में प्रवेश किया तो उस पर दृष्टि पड़ते ही स्वामी जी वहां से उठ कर जाने लगे. कुछ क्रोध से और कुछ घृणा से उनका चेहरा लाल हो गया, किन्तु महाराज ने उनका हाथ पकड़ कर उन्हें पुनः बैठने के लिए आग्रह करते हुए कहा—'स्वामीजी, इसका गीत तो सुनिए, इसका गीत हृदय की श्रेष्ठ भावनाओं को जगाता है.'

स्वामीजी को कुछ समझ में नहीं आया कि ऐसी स्थिति में क्या करें. यह सोचते हुए कि किसी प्रकार एक गीत सुन कर चले जायेंगे, वे वहां बैठ गये. गणिका ने स्वामी के प्रथम व्यवहार को देखा, उनके मुखमण्डल की भावनाओं को पढ़ा किन्तु

दूर होने के कारण महाराजा की बातें नहीं सुन सकीं. वह अपमान और लज्जा से सिहर उठी. हीनता और कलुषता की भावना से वह दबी जा रही थी. क्षण भर बाद उसने अपने को संभाला और बड़े ही मार्मिक शब्दों में महाकवि सूरदास का यह भजन गाया—

प्रभु मेरे औगुन चित न धरो ।
समदरसी है नाम तिहारो, चाहो तो पार करो । प्रभु मेरे०
इक लोहा पूजा में राखत, इक घर बधिक परो ।
पारस गुन औगुन नहि चितवै, कन्चन करत खरो । प्रभु मेरे०
इक नदिया इक नाल कहावत, मैलोहि नीर भरो ।
जब दोऊ मिलि एक बरन भये, सुरसरी नाम परो । प्रभु मेरे०
यह माया भ्रम जाल निवारो, सूरदास सगरो ।
अबकी बर मोहि पार उतारो नहि प्रन जात टरो । प्रभु मेरे०

सूरदास के सुन्दर शब्दों में यह एक पतिता के हृदय की पुकार थी. हृदय को छू देने वाले इस भजन ने स्वामीजी के हृदय में करुणा की धारा प्रवाहित कर दी. उन्हें अपने ही व्यवहार पर लज्जा आने लगी. आत्मग्लानि कुरेदने लगी. एक नर्तकी के द्वारा आज उन्हें शिक्षा मिली—मानवता की शिक्षा, नैतिकता की शिक्षा और सबसे ऊपर चिरंतन सत्य की शिक्षा. इस शाश्वत सत्य को मानों वे भूल ही गये थे कि सभी वस्तुओं में, सभी जीवों में एक ही ब्रह्म विद्यमान है. इस घटना के विषय में उन्होंने स्वयं लिखा है—'इस गीत को सुन कर मैंने सोचा, क्या यही मेरा सन्यास है, मैं एक संन्यासी हूँ और तो भी मैं अपने में और एक स्त्री में भेद की भावना रखता हूँ.'

स्वामीजी का शरीर खेतरी नरेश के दरबार में है किन्तु वे कहीं और हैं—हिमालय की तराई में एक तिब्बती परिवार के साथ. वहाँ छः भाई हैं किन्तु उन सबकी एक ही पत्नी है. अपने संस्कारगत सामाजिक मान्यताओं में घिरे हुए स्वामीजी को तिब्बतियों का यह आचरण बहुत अनैतिक और कलुषित मालूम पड़ रहा है, वे उन्हें उनके इस बहुपतित्व की दूषित प्रथा का ज्ञान करवाते हैं, परन्तु पतियों ने स्वामीजी के उपदेश की ही निन्दा की. उन्होंने कहा—

'क्या एक के लिए एक स्त्री की इच्छा...... इसमें कितना घोर स्वार्थ है.' स्वामीजी की आँखों पर से अज्ञान का पर्दा हट जाता है. उन्हें तिब्बतियों की इस प्रथा के आंतरिक गुण का आभास मिलता है. उसी दिन स्वामीजी निश्चय करते हैं कि किसी भी जाति विशेष और गुण विशेष की सामाजिक या धार्मिक मान्यताओं को समझने के लिए अपनी नैतिक मान्यताओं की परिधि विस्तृत कर लेंगे.

खेतरीनरेश के साथ बैठे हुए स्वामीजी को इस प्रकार के न जाने कितने अनुभवों की याद आने लगी. अब स्वामीजी पहले से बहुत परिवर्तित हो गये थे.

उनकी धार्मिक और सामाजिक मान्यताएँ सभी रूढ़ियों की वेड़ी से मुक्त हो चुकी थीं. वे देख रहे थे कि जीवन के प्रत्येक पग पर उन्हें कैसे कैसे नूतन अनुभव प्राप्त हो रहे हैं. जब वे अनुभवों की गहराई में उतरते हैं तो उन्हें ज्ञान उपलब्ध होता है, वह ज्ञान जो दूसरों के जीवनपथ को आलोकित करता है. देश-विदेश के भ्रमण से इसी ज्ञान की शिक्षा मिलती है, इसे किसी पुस्तक में नहीं पाया जा सकता.

उन दिनों खेतरी के दरबार में एक अत्यन्त प्रसिद्ध संस्कृत व्याकरणवेत्ता, पंडित नारायण दास जी रहते थे. स्वामीजी ने पाणिनि के सूत्रों पर आधारित पातंजलि के महाभाष्य की शिक्षा पंडित जी से लेनी शुरू कर दी. कुछ ही दिनों में पंडितजी ने स्वामीजी को सब कुछ बता दिया जो वे जानते थे. अब स्वामीजी संस्कृत व्याकरण के महापंडित हो गये. किन्तु वे पंडित नारायण दास जी को बराबर अपना गुरु कहते रहे.

खेतरी के महाराजा को स्वामीजी की दैवी शक्ति पर बड़ा विश्वास था. उन्हें अब तक कोई पुत्र नहीं था. एक दिन स्वामीजी से उन्होंने पुत्र से संबंधित अपने हृदय की छिपी हुई वेदना की चर्चा की. उन्होंने कातर भाव से निवेदन किया—'स्वामीजी, मुझे ऐसा आशीर्वाद दीजिए कि मुझे एक पुत्र संतान हो.'

महाराज के चेहरे की ओर देखते हुए स्वामीजी ने शान्त स्वर में कहा—'अच्छा, श्री रामकृष्ण की कृपा से आप की मनोकामना पूर्ण होगी.'

और वास्तव में महाराज की मनोकामना पूर्ण हुई. खेतरी के राज दरबार में रहते हुए ऐसा नहीं था कि स्वामीजी का सम्पर्क गरीब जनता से छूट गया हो. वे अक्सर अपने दुखी और निर्धन भक्तों के घर जाते और उनका भोजन ग्रहण करते. सम्पूर्ण खेतरी शहर स्वामीजी के व्यक्तित्व से प्रभावित था.

इस प्रकार पांच महीने खेतरी में बिता कर स्वामीजी अहमदाबाद की ओर मुड़े. कई दिनों तक पैदल चलने और मधुकरी भिक्षा पर निर्भर रहने के बाद उन्हें वहां के किसी न्यायाधीश के घर में आश्रय मिला. यहां ठहर कर उन्होंने अहमदाबाद के प्रमुख स्थानों को देखा. उन दिनों अहमदाबाद में जैन साहित्य और धर्म के अनेक विद्वान रहते थे. धीरे-धीरे स्वामीजी से उनका परिचय गहरा होता गया और स्वामीजी ने इस परिचय से लाभ उठा कर जैन धर्म और साहित्य का अच्छा ज्ञानार्जन किया.

इसके बाद वह लिम्बड़ी पहुँचे. लिम्बड़ी में भी कई दिनों तक भूखे-प्यासे घूमना पड़ा. बहुत छानबीन करने पर एक साधु समाज के निवास स्थान का पता चला. नगर से दूर किसी निर्जन स्थान पर यह साधु मण्डली रहती थी. इन लोगों ने स्वामीजी को सस्नेह अपने यहां आश्रय दिया. बाद में स्वामीजी को पता चला कि ये लोग लिंगोपासना करने वाले तंत्र धर्मी हैं और इनके साथ कामिनियों का भी एक जत्था है. स्वामीजी ने एक रात उनकी आंख बचा कर

वहां से भाग निकलने की कोशिश की परन्तु उन्होंने अपने कमरे को बाहर से बंद पाया. उनके कमरे के पास दो पहरेदार भी बैठे हुए थे. स्वामीजी स्थिति समझते हुए भी अनजान बने हुए थे. एक दिन उन साधुओं के मुखिया ने उन्हें बुलाया और कहा कि तुम्हारे चेहरे पर ब्रह्मचर्य का तेज है. तुमने अभी तक इस कठिन व्रत का पालन किया है, हम लोग ऐसे ही श्रेष्ठ व्यक्ति की खोज में थे. तुम्हारा ब्रह्मचर्य व्रत नष्ट कर हम लोग एक विशेष साधना को पूर्ण कर सकेंगे. फिर हम लोगों को अपूर्व ब्रह्म ज्ञान प्राप्त होगा. स्वामीजी के अंतर में विद्रोह की आग भभक उठी थी किन्तु बाह्य बिल्कुल ही शान्त और शीतल था. साधुगण इस विरोधाभास को समझ नहीं सके. लिम्बड़ी नगर का एक छोटा बालक अक्सर स्वामी जी के दर्शन के लिए आया करता था. स्वामीजी ने अपनी सुरक्षा की याचना करते हुए एक चिट्ठी लिम्बड़ी नरेश के पास उस लड़के के द्वारा भिजवा दी. पत्र मिलते ही लिम्बड़ी नरेश के संरक्षक स्वामी जी को महल में ले गये. यह एक नयी अनुभूति थी जिसने स्वामीजी को भविष्य के लिए सचेत बना दिया. लिम्बड़ी नरेश की सहायता और शुभकामना से स्वामीजी ने आस पास के कई क्षेत्रों, जैसे भावनगर, जूनागढ़ आदि को देखा. जूनागढ़ में हिन्दू और मुस्लिम सभ्यता के अनेक भग्नावशेष हैं. जहाँ हिन्दू, बौद्ध और जैन धर्म के पावन मंदिरों से आज भी अगुरु-धूम की सुवास आती है और श्लोकों का पुनीत उच्चारण सुनाई पड़ता है. वहाँ अनेक सुन्दर मस्जिदों और मकबरों पर भी बड़ी भीड़ लगती है. स्वामीजी की तबीयत यहाँ खूब लगी. विशेषकर गिरनार पर्वत ने अपने आकर्षणपाश में इन्हें बांध लिया. इसकी गुफा में स्वामीजी ने अपना निवासस्थान बनाया. यहां ध्यान और चिंतन में विशेष सुविधा होती थी. जूनागढ़ के दीवान की इन पर विशेष कृपा रही.

अन्य स्थानों की तरह यहां भी स्वामीजी के अनेक प्रशंसक, मित्र और भक्त इकट्ठे हो गये. जूनागढ़ के दीवान से भोज के बड़े अफसरों के नाम परिचय-पत्र लेकर स्वामीजी भोज पहुंचे. वहां ये भोजराज के दीवान के यहां ठहरे. सोमनाथ का मंदिर, जो ऐतिहासिक दृष्टि से अत्यंत महत्व का है, जिसकी कई मील की परिधि की धूल हिन्दुओं के लिए अतिपावन रही, जो कई बार यवन आक्रमणकारियों द्वारा श्रीहीन कर दिया गया किन्तु हिन्दुओं ने उसे बार-बार सजाया संवारा; ऐसे सोमनाथ के मंदिर को देखने की लालसा स्वामीजी के हृदय में बहुत दिनों से पल रही थी. शीघ्र ही वे सोमनाथ का प्राचीन मंदिर, सूर्य-मंदिर तथा रानी अहिल्याबाई द्वारा निर्मित सोमनाथ का नव मंदिर देखने निकल पड़े. यहां स्वामीजी कच्छ के महाराजा से मिले. महाराजा ने इनका बहुत सम्मान किया तथा काफी समय तक स्वामीजी से धर्म, दर्शन, साहित्य, विज्ञान आदि विषयों पर वाद-विवाद करते रहे. स्वामीजी की प्रगाढ़ पांडित्यपूर्ण बातें सुन कर महाराजा ने कहा कि जैसे बहुत देर तक कठिन विषय की पुस्तकों को पढ़ने के बाद सर में चक्कर आने लगता है,

उसी प्रकार की दशा आप की ज्ञान की वातें सुन कर हो जाती है.

राजसी व्यक्तित्व वाले स्वामीजी जिस राज दरवार में गये, राजाओं, महाराजाओं ने उन्हें यथोचित सम्मान दिया और उन्हें अपने पास रहने के लिए आग्रह किया. स्वामीजी ने जव तक उनके साथ रहने की आवश्यकता समझी, तव तक राजदरवारों में ठहरे और आराम के दिन विताये. कुछ लोगों ने स्वामीजी के इस आचरण पर उंगली उठायी. साहस वटोर कर किसी ने उनसे पूछ भी लिया कि एक संन्यासी का राज दरवार में ठहरना कहाँ तक उचित है. स्वामीजी ने अत्यंत शांतिपूर्वक उसे अपना उद्देश्य समझा दिया. उनका कार्य क्षेत्र वहुत व्यापक था. यदि वे इन महाराजाओं को अपने उद्देश्य से प्रभावित करते हैं तो इससे उनका कार्यभार वहुत कुछ हल्का हो जाता है. राजाओं के हृदय में सच्चे शाश्वत धर्म की भावनाओं का उदय होता है जो उन्हें स्वयं ही 'स्वधर्म' का ज्ञान करवाता है. राजाओं के स्वधर्म का अर्थ है राजाओं का शासन जो जनता की भलाई से ओतप्रोत हो. जनता की भलाई में न केवल उनकी शारीरिक आवश्यकताओं, वस्त्र, निवास और भोजन की समस्या का हल होता है, वरन् इसके साथ-साथ उनके मानसिक एवं नैतिक विकास पर भी यथोचित ध्यान दिया जाता है. स्वामीजी के उद्देश्य और भावनाओं से प्रभावित अनेक नरेशों ने अपने-अपने राज्य में जनता के लिए हर प्रकार के उदारतापूर्ण लोकहितैषी सुधार करने के वचन दिये. 'यदि मैं अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए उन लोगों के हृदय जीत लेता हूं, जिनके अधिकार में पैसे हैं और जो हजारों-हजार व्यक्तियों के जीवन और कारोवार पर शासन करते हैं, तो वहुत शीघ्र ही मेरा उद्देश्य पूरा हो जाता है. सिर्फ एक महाराजा को प्रभावित करने से ही मैं हजारों-हजार व्यक्तियों को अप्रत्यक्ष रूप से लाभान्वित कर सकता हूं.' स्वामीजी के इन शब्दों ने सचमुच उन पर उंगली उठाने वाले लोगों के मुह वन्द कर दिये. इस अनुच्छेद से यह निष्कर्ष कदापि नहीं निकलता कि स्वामीजी ने भारत दर्शन के दौरान सदा धन और शक्ति के प्रभुओं, राजाओं-महाराजाओं के पास ही अपना समय विताया. हम कई वार देख चुके हैं कि अपने गरिमापूर्ण शाही व्यक्तित्व में स्वामीजी कभी किसी राज दरवार में चार चांद लगा रहे हैं तो कभी धूलधूसरित वेष में भूखे-प्यासे किसी दीन भक्त के घर चले जा रहे हैं. कभी पंडितों और साधुओं की टोली में शास्त्रार्थ कर रहे हैं, और कभी गुफा के अंदर आंखें वन्द किये हुए ब्रह्म-चिंतन में लीन हैं. इस प्रकार उन्हें हम किसी परिवेश-विशेष में वंधा हुआ नहीं पाते.

जूनागढ़ से स्वामीजी कच्छ और काठियावाड़ भी घूमने गये. पोरवन्दर में पोरवन्दर राज्य के दीवान, पं शंकर पांडुरंग ने, जिन पर उन दिनों राजकुमार के नावालिग होने के कारण शासन का वोझ था, स्वामीजी का वहुत सम्मान किया. पं० शंकर पांडुरंग संस्कृत के वहुत वड़े विद्वान थे. उन दिनों वे वेद का अनुवाद

कर रहे थे. जब उन्हें स्वामीजी के धर्मशास्त्रों के ज्ञान की झलक मिली तो वे स्वामीजी की ओर विशेष रूप से आकर्षित हुए. वेद के कुछ दुरूह श्लोकों के अनुवाद में स्वामीजी ने पंडित की बहुत सहायता की. इस कार्य के बंधन में वे ग्यारह माह तक पोरबन्दर रुके रहे. इस अवधि में पंडित से उनकी गहरी मित्रता हो गयी. पंडित के हृदय में प्रतिभाशाली व्यक्तियों के लिए विशेष सम्मान और श्रद्धा थी. यहीं स्वामीजी ने फ्रेंच भाषा का अध्ययन आरम्भ किया.

पोरबन्दर के आसपास कई जगह घूमने के बाद बड़ौदा और खंडवा होते हुए १८९२ ई के ग्रीष्म में स्वामीजी बम्बई पहुंचे. बम्बई में कुछ दिन व्यतीत कर इन्होंने पूना की यात्रा आरम्भ की. कुछ गुजराती सज्जन स्वामीजी को विदा देने स्टेशन आये हुए थे. बम्बई से पूना जाने वाली जिस गाड़ी में चढ़े, उसी में महान देशभक्त बालगंगाधर तिलक भी बैठे हुए थे. उन्हें भी पूना ही जाना था. गुजराती सज्जनों ने स्वामीजी का लोकमान्य तिलक से परिचय करवा दिया. प्रारम्भिक औपचारिकता के बाद दोनों व्यक्तियों में भिन्न-भिन्न विषयों पर बातें होने लगीं. इस तरुण संन्यासी के ज्ञान भंडार को देख कर तिलक मुग्ध हो गये. बड़े आग्रह के साथ उन्होंने इस साधु को पूना में अपने घर ठहराया. इस सम्बंध में तिलक ने लिखा है—'हम लोग पूना पहुंचे और वह संन्यासी मेरे साथ आठ-दस दिनों तक ठहरा. जब भी उसका नाम पूछा जाता, वह सिर्फ यही कहता कि वह एक संन्यासी हैं. यहां उसने किसी सार्वजनिक सभा में भाषण नहीं दिया. घर पर वह प्रायः वेदान्त या अद्वैत दर्शन के विषय में ही वार्तालाप करता. इस स्वामी को लोगों से मिलने-जुलने में रुचि नहीं थी. इसके पास पैसे बिल्कुल ही नहीं थे. एक मृगछाला, एक या दो कपड़े तथा एक कमण्डल, बस यही उसकी सम्पत्ति थी. यात्रा के लिए कोई न कोई उसे निर्धारित स्थान का रेल-टिकट खरीद दिया करता था.'

स्वामीजी भी लोकमान्य तिलक की प्रखर प्रतिभा तथा वेद-वेदान्तों पर उनका अधिकार देख कर बड़े प्रसन्न थे. दोनों महान् व्यक्तियों में काफी समय तक गूढ़ विचारों का आदान-प्रदान चलता रहता था.

इस प्रकार पूना के तिलकभवन में कुछ दिन बिता कर स्वामीजी ने महाबलेश्वर के लिए प्रस्थान किया. लिम्बडीनरेश ठाकुर साहब उन दिनों महाबलेश्वर आये हुए थे. एक दिन अचानक उन्होंने स्वामी जी को दीन-हीन वेश में राजपथ पर घूमते हुए पाया. वे स्वामीजी को घर लिवा लाये और बहुत मिन्नतें कीं कि स्वामीजी उनके साथ लिम्बडी चलें और स्थायी रूप से वहां के दरबार में रहें. पर स्वामीजी ने उत्तर दिया—

"ठाकुर साहब, एक अद्भुत शक्ति मुझे घुमा रही है. भगवान श्री रामकृष्ण मेरे कंधों पर एक महान् कार्य का भार सौंप गये हैं. जब तक वह कार्य समाप्त न

होगा, तब तक विश्राम की आशा नहीं है. यदि जीवन में कभी विश्राम करने का अवसर मिला तो अवश्य ही आप के पास रहूंगा.'

इसके उपरान्त स्वामीजी कोल्हापुर चले गये. कोल्हापुर की महारानी स्वामीजी की भक्त बन गयीं. उन्होंने एक जोड़ा कापाय वस्त्र स्वामीजी को उपहार में दिया. स्वामीजी ने उसे स्वीकार कर महारानी को अनुगृहीत किया. किन्तु नये वस्त्र को ग्रहण करने के बाद पुराने वस्त्र को वहीं छोड़ दिया. कारण पूछने पर बताया कि संन्यासियों को दो वस्त्रों से अधिक की आवश्यकता नहीं होती. कोल्हापुर के एक बड़े अफसर ने बेलगाम के एक मराठा सज्जन के नाम स्वामीजी के विषय में चिट्ठी लिखी. स्वामीजी बेलगाम में उक्त सज्जन के पास ठहरे. उन सज्जन के पुत्र प्रो जी एस भाटे ने अपने संस्मरणों में लिखा है—

'स्वामीजी के आगमन के प्रथम दिन से ही कुछ ऐसी घटनाएं घटीं, जिनके कारण उनके प्रति हम लोगों का विचार बदल गया. सबसे पहली बात यह है कि यद्यपि उनके वस्त्र संन्यासियों वाले रंग में ही रंगे हुए थे फिर भी वे अपने अन्य संन्यासी भाइयों से बिल्कुल ही अलग तरीके के कपड़े पहने हुए दिखाई देते थे. वे एक बनियाइन पहना करते थे. डंडे की जगह एक पतली सी छड़ी लिया करते थे. उनके मुख्य सामान में गीता की एक सबसे छोटी प्रति तथा एक दो अन्य पुस्तकें थीं···वार्तालाप के माध्यम के बतौर अंग्रेजी भाषा का प्रयोग करते हुए, खुले बदन की जगह बनियाइन पहने हुए, विविध प्रकार के ज्ञान का बाहुल्य, अनेक प्रकार की खबरों की जानकारी दिखाते हुए, ऐसे संन्यासी से हम लोगों का परिचय नहीं था··· पहले दिन स्वामी ने भोजन के पश्चात पान या सुपारी मांगी. इसके बाद उसी दिन या उसके एक दिन बाद तम्बाकू की मांग की. उन्हीं की बातों से हम लोगों ने जाना कि वे ब्राह्मण नहीं हैं, फिर भी संन्यासी हैं ; वे संन्यासी हैं फिर भी उन चीजों की लालसा रखते हैं जिनकी इच्छा एक गृहस्थ रखता है.' जीवन के प्रति उदासीनता मिटाने के लिए स्वामीजी ने हरिपद बाबू को गीता का भावार्थ बड़े ही रोचक ढंग से समझाया. पारिवारिक दैनिक जीवन को सुदृढ़ और कर्त्तव्यनिष्ठ बनाने में गीता कितनी सहायक होती है, इसका ज्ञान हरिपद बाबू को पहले नहीं था. गीता द्वारा गार्हस्थ्य धर्म की शिक्षा, और वह भी एक संन्यासी के मुख से. कैसा आश्चर्य !

हरिपद बाबू ने एक दिन स्वामीजी से संन्यास आश्रम में प्रवेश करने की बात चलायी. स्वामीजी ने बहुत ही दृढ़ता से कहा कि मनुष्य के लिए सबसे पहले आवश्यक है कि चाहे तो विद्यार्थी जीवन में या गार्हस्थ जीवन में अपने मस्तिष्क को अपने वश में कर ले, फिर चाहे तो साधु बने या और कुछ, उसका जीवन सुखी होगा. बिना इसके संन्यासी का चोला पहन कर कोई संन्यासी नहीं हो सकता. हरिपद बाबू ने पुनः शंका प्रकट की कि यदि वे अपने अभिमान को या क्रोध को अपनी प्रकृति में स्थान न दें तो समाज के लोग उनकी कोई इज्जत नहीं करेंगे, उन्हें जीने

ही नहीं दें. स्वामीजी ने रामकृष्ण-कथित सर्प वाली कथा को दुहराया : वह विषैला नाग जिससे गांव थर थर कांपता था, एक दिन एक साधु से मिला. साधु ने नाग को उपदेश दिया कि वह निर्दोष लोगों को डंस कर पाप का भार नहीं बटोरे. नाग ने उस दिन से शांत रहने की कसम खायी. गांव के लोगों ने जब उस जीवित नाग को पेड़ के नीचे शांत पड़ा हुआ पाया तो ढेले मार मार कर उसे अत्यंत घायल कर दिया और नाग कराहता हुआ चुपचाप पड़ा रहा. इसी समय वह साधु फिर उस गांव से गुजरता हुआ नाग से मिलने गया. नाग ने अपनी दुर्दशा कह सुनायी. साधु ने कहा, अपनी रक्षा के लिए नाग को फुंफकार कर अपने दुश्मनों को दूर रखने में कोई पाप नहीं है. इससे वह दूसरों को बिना कष्ट पहुंचाये हुए अपनी सुरक्षा कर सकता है. इसके बाद से साधु के बताये हुए तरीके को अपना कर सर्प सुखपूर्वक रहने लगा.

स्वामीजी ने अपनी बातों से उन मराठा सज्जन को अच्छी तरह समझा दिया कि एक सफल संन्यासी यदि पान, सुपारी या तम्बाकू की इच्छा रखता है, तो इससे उसकी तपस्या पर कोई आंच नहीं आती.

बेलगाम में जंगल के एक बंगाली अफसर हरिपद मित्र से भी स्वामीजी का परिचय घनिष्ठता में परिणत हो गया. किन्तु स्वामीजी अभी भी उन मराठा परिवार के अतिथि थे. एक दिन हरिपद मित्र ने स्वामीजी को अपने घर भोजन के लिए आमन्त्रित किया, किन्तु स्वामीजी जब अपने वादे के अनुसार नियत समय पर हरिपद बाबू के घर नहीं पहुंचे तो काफी देर तक उनकी राह देखने के बाद हरिपद बाबू उस मराठा परिवार के घर गये और देखा कि स्वामीजी अनेक पंडित, साहित्यकार, वैज्ञानिक, वकील, डाक्टर तथा संस्कृत के विद्वानों से घिरे हुए बैठे हैं, लोग उनसे तरह-तरह के दुरूह क्लिष्ट प्रश्न पूछते हैं और स्वामीजी सब प्रश्नों के उत्तर सहज भाव से देते हैं. उनकी अभिव्यक्ति की भाषा अंग्रेजी, हिन्दी बंगला और संस्कृत है. हरिपद बाबू इस दृश्य को देख कर स्वामीजी से कुछ बोल नहीं सके और वहीं श्रोताओं के बीच बैठ गये, काफी देर बाद जब भीड़ छंटी तो स्वामीजी ने हरिपद बाबू से नियत समय पर न आने के लिए स्वयं ही क्षमा मांगी. उन्होंने बताया कि इन जिज्ञासु श्रोताओं को छोड़ कर भला वे भोजन के लिए कैसे आ सकते थे. हरिपद बाबू ने स्वामीजी को अपने घर ठहराने के लिए मराठा सज्जन से बहुत आग्रह किया. अंत में वे तैयार हो गये और इस प्रकार स्वामीजी अपने इने गिने सामान कमण्डल, छड़ी, एक कपड़ा और तीन पुस्तकों (जिनमें एक गीता और दूसरी फ्रांसीसी संगीत की थी) के साथ हरिपद बाबू के घर आ गये. हरिपद बाबू बहुत दुर्बल मस्तिष्क के व्यक्ति थे—साधारण परिस्थितियों में भी घबरा जाते थे, इसलिए हरिपद बाबू के व्यक्तिगत जीवन की अनेक समस्याओं और परिस्थितियों पर भी स्वामीजी अपने विचार प्रकट करते रहे. इससे हरिपद बाबू को बहुत शांति

मिलती. स्वामीजी ने हरिपद बाबू को इस कहानी का भावार्थ बताया और उन्हें समझाया कि क्रोध और अभिमान को जीत कर भी वे आदर के पात्र बने रह सकते हैं. एक दिन भिखारियों को भीख देने और न देने पर विवाद शुरू हुआ. हरिपद बाबू का विचार था कि भिखारियों को भीख देकर लोग उन्हें अकर्मण्य बनाने में योग देते हैं. स्वामीजी के सुलझे हुए विचार थे कि जब तक अपने समाज में बैठे-ठाले लोगों या अपाहिजों के काम-धंधों की कोई व्यवस्था नहीं है तब तक भिखारियों को मुट्ठी भर भिक्षा देने में कोई हानि नहीं बल्कि लाभ ही है. ऐसा नहीं करने से वे भूखे और नंगे लोग चोरी के द्वारा अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करेंगे, जो समाज के लिए बड़ा अहितकर होगा. हरिपद बाबू के साथ स्वामीजी विभिन्न विषयों पर वार्तालाप करते रहे. इस प्रकार हरिपद बाबू से बहुत ही आत्मीयता हो गयी. हरिपद बाबू की पत्नी भी स्वामीजी की भक्त थीं. उन्होंने अपने पति के साथ स्वामीजी से दीक्षा ली.

सन् १८९२ का वर्ष अंतिम सांस ले रहा था. स्वामीजी ने इसी समय बेलगाम से बंगलौर के लिए प्रस्थान किया. वहां के लोगों के बीच दो-चार दिनों तक अजनबी रहने के बाद धीरे-धीरे इनके परिचितों और मित्रों की संख्या बढ़ने लगी. इसी समय स्वामीजी का मैसूर के दीवान से परिचय हुआ. कुछ ही क्षणों की बातचीत ने दीवान को मन्त्रमुग्ध बना दिया, उन्होंने इस प्रकार के अद्भुत व्यक्तित्व वाले संन्यासी को पहले कभी नहीं देखा था. स्वामीजी उनके यहां तीन-चार सप्ताह तक ठहरे. इस बीच राज्य के प्रमुख अधिकारियों तथा विभिन्न विषय के विद्वानों से स्वामीजी का विविध विषयों पर विचार-विनिमय होता रहा. दीवान ने स्वामीजी का परिचय मैसूर के महाराजा से कराया. स्वामीजी के अपूर्व प्रतिभापूर्ण तथा मोहक व्यक्तित्व के जादू ने महाराजा को भी बहुत आकर्षित किया. स्वामीजी मैसूर राज्य के अतिथि के रूप में महाराजा के साथ रहने लगे. मैसूर नरेश राज्य की कई मुख्य समस्याओं की गुत्थियों को सुलझाने के लिए स्वामीजी की सहायता लेते थे. स्वामीजी भी निर्भीकता से शासन की कमजोरियों की ओर राजा का ध्यान आकर्षित करते तथा उनके उपचार का सुझाव देते. स्वामीजी की यह प्रकृति थी कि किसी भी व्यक्ति के अवगुण पर वे उसके सामने ही प्रहार कर देते, यह सोच कर कि इससे उस व्यक्ति में सुधार होगा. किन्तु उस व्यक्ति की पीठ पीछे सर्वदा प्रशंसा ही करते.

एक दिन राज दरबार में विद्वानों की बैठक हुई. दूर दूर के महापंडित और विद्वान आमन्त्रित थे. चर्चा का विषय था वेदान्त. सब लोगों के व्याख्यान के बाद स्वामीजी की बारी आयी. स्वामीजी के सौम्य व्यक्तित्व पर लोगों की दृष्टि जम गयी. मधुर स्वर में जब उन्होंने वेदान्त का अत्यन्त सरल एवं सुलझा हुआ विश्लेषण किया तो सभा में उनकी धाक जम गयी. लोग उनकी प्रतिभा और पांडित्य पर मुग्ध

होकर हर्ष से करतल ध्वनि करने लगे. कितने अनुभवी एवं अभिमानी विद्वानों के गर्व चूर-चूर हो गये. वहां स्वामीजी की एक आस्ट्रियन संगीतज्ञ से भी भेंट हुई. जब स्वामीजी उस संगीतज्ञ से यूरोपीय संगीत की चर्चा करने लगे तो स्वामीजी के पश्चिमी संगीत पद्धति के ज्ञान को देख कर सभा के लोगों ने दांतों तले उंगली दबा ली. एक दिन दीवान ने अपने सचिव को एक हजार रुपये देकर कहा कि जब स्वामीजी शहर देखने जायें तो तुम भी उनके साथ हो लेना. बाजार में यदि उन्हें कोई वस्तु पसंद आये तो मेरी ओर से उसे उनके लिए खरीद देना. संध्या समय स्वामीजी बाजार घूमने निकले. पंक्तिबद्ध दुकानों में भांति-भांति की वस्तुएं. स्वामीजी उन वस्तुओं को बड़े गौर से देखते, उनकी दृष्टि में एक नन्हें बालक की जिज्ञासा, विस्मय और प्रफुल्लता थी. किन्तु जब सचिव उन्हें कोई बहुमूल्य वस्तु पसंद करने का आग्रह करता, तो स्वामीजी उसकी बात की ओर ध्यान नहीं देते—जैसे उन्हें उन चीजों को देखने में ही रुचि है, खरीदने में नहीं. इस प्रकार सब देखते-घूमते वे लोग धूम्रपान करने वाली वस्तुओं की दुकान पर पहुंचे. स्वामीजी ने सचिव से कहा—

'मित्र, यदि दीवान की इच्छा है कि तुम मेरे लिए वह चीज खरीदो जिसे मैं पसंद करूं, तो ठीक है मुझे एक अच्छे किस्म का सिगार ही ले लेने दो.' इस प्रकार सिगार खरीदा गया और स्वामीजी उसे आनंदपूर्वक पीते हुए दरबार में लौटे.

मैसूर में रहते हुए स्वामीजी को काफी दिन हो गये थे. वे यहाँ से दक्षिण की ओर जाने वाले थे. विदा के समय महाराजा ने उन्हें कई तरह के बहुमूल्य उपहार देने का प्रयत्न किया, किन्तु स्वामीजी ने कुछ भी नहीं लिया. महाराजा का दिल न टूटे इसलिए स्वामीजी ने कहा—'यदि आप मुझे कुछ देना चाहते हैं तो एक बिना धातु का बना हुआ हुक्का दे दें, वह मेरे कुछ काम का होगा'. अतः महाराजा ने स्वामीजी को उनकी इच्छानुसार बहुत ही सुन्दर नक्काशी की हुई लकड़ी का कलात्मक हुक्का उपहार में दिया. मैसूर नरेश का दीवान स्वामीजी को अपनी ओर से बहुत से रुपये भेंट देने लगा. किन्तु स्वामीजी ने कुछ भी स्वीकार नहीं किया. दीवान को दुखी देखकर उन्होंने कहा कि यदि वह उन्हें कुछ देना ही चाहता है तो त्रिचूर तक का दूसरी श्रेणी का एक टिकट खरीद दे, वैसे तो स्वामीजी यहाँ से सीधे रामेश्वरम् जाने वाले थे, किन्तु सोचा बीच में एक दो दिन त्रिचूर भी देख लें. दीवान ने त्रिचूर का टिकट खरीद दिया और कोचीन के दीवान के नाम एक परिचय पत्र भी स्वामीजी को दे दिया.

इस प्रकार त्रिचूर में एक दो दिन ठहरने के पश्चात स्वामीजी प्रोफेसर सुन्दरम अय्यर के यहाँ, जो ट्रावनकोर के प्रथम महाराजा के शिक्षक थे, ठहरे. इनके साथ स्वामीजी ने करीब नौ दिन बिताये सुन्दरम अय्यर ने अपने संस्मरणों में लिखा है—'मैं पहली बार स्वामी से त्रिवेन्द्रम में दिसम्बर १८९२ ई० में मिला था.

उनके विषय में काफी कुछ देखने और जानने का सौभाग्य भी मुझे मिला था. वे मेरे यहां एक मुसलमान पथ निदर्शक के साथ आयें. मेरा द्वितीय पुत्र, बारह साल का छोटा लड़का, उन्हें मेरे पास बुला लाया और उन्हें भी मुसलमान ही बताया. जैसा कि स्वामी के लिबास में वे दीख रहे थे, वह दक्षिण भारत के हिन्दू संन्यासियों के लिए एकदम अजनबी था. मैं उन्हें ऊपर ले गया और बातचीत शुरु की. जैसे ही मुझे ज्ञात हुआ कि वे किस प्रकार के व्यक्ति हैं मैंने उनका उचित अभिवादन किया. सबसे पहली बात जो उन्होंने मुझसे कही, वह अपने मुसलमान परिचारक के भोजन की व्यवस्था करने के विषय में. उनका यह साथी कोचीन राज्य सरकार का दरबान था और वहाँ के दीवान द्वारा, स्वामी को त्रिवेन्द्रम तक पहुँचाने के लिए आदेशित था···स्वामी ने पहले दो दिनों में सिर्फ थोड़े दूध के अतिरिक्त कुछ नहीं खाया पिया था. लेकिन जब तक उनके मुसलमान दरबान ने भोजन कर विदा नहीं ले ली तब तक उन्होंने अपनी आवश्यकताओं पर कुछ भी ध्यान नहीं दिया, चन्द मिनटों के वार्तालाप से ही मैं समझ गया कि स्वामी कितने महान व्यक्ति हैं.···जब मैंने उनसे पूछा कि वे किस प्रकार का भोजन करते हैं तो उन्होंने कहा 'जो कुछ भी आप दे दें, हम संन्यासियों को किसी विशेष स्वाद से मतलब नहीं'.

'स्वामीजी की उपस्थिति, उनका कंठ स्वर, उनकी आंखों की दीप्ति, उनके विचार एवं शब्द प्रवाह इतने प्रभावोत्पादक थे कि मैं उस दिन मार्तण्ड वर्मा के यहां, जो उन दिनों ट्रावनकोर के प्रथम नरेश थे और एम० ए० की पढ़ाई की तैयारी कर रहे थे और मैं जिनका शिक्षक था, नहीं जा सका.' सुन्दरम ने इन्हें वहां के अनेक विद्वानों से मिलाया. सभी लोगों को स्वामीजी ने अपने ज्ञान और व्यक्तित्व के आकर्षण से अपना भक्त बना ली. स्वामीजी जब तक त्रिवेन्द्रम में रहे, यही क्रम चलता रहा. सुन्दरम के घर पर ठहरने और बच्चों से बातचीत करते करते उन्होंने तमिल भी सीख ली. रसोई बनाने वाले ब्राह्मण तथा बच्चों से वे तमिल में ही बातें करते थे. सुन्दरम लिखते हैं—'जब स्वामीजी ने विदा ली तो कुछ समय के लिए ऐसा मालूम हुआ जैसे हमारे घर की रोशनी बुझ गयी हो.'

यहां से स्वामीजी रामेश्वरम् की ओर चल पड़े. रास्ते में मदुरै में कुछ समय के लिए विश्राम किया और वहां रामनद के राजा भास्कर सेतुपति से मिले. महाराजा ने स्वामीजी को कुछ दिन वहां और ठहरा लिया. वह उनका बहुत बड़ा प्रशंसक और भक्त बन गया. जनशिक्षा के प्रचार के लिए तथा कृषि उन्नति के लिए स्वामीजी ने उन्हें अनेक सुझाव दिये. संसार से वैराग्य लिय हुए एक संन्यासी के मुख से जनशिक्षा और कृषि आदि के उत्थान की बात सुन कर महाराजा को बड़ा आश्चर्य हुआ. स्वामी ने महाराजा के नयनों के भाव पढ़कर कहा—

'संन्यासी का लक्ष्य मोक्ष प्राप्त करना अवश्य है पर मुझे मेरे गुरुदेव से यही आदर्श प्राप्त हुआ है कि भारतवर्ष की जनता की उन्नति की चेष्टा करना भी

मोक्ष प्राप्ति का एक साधन है.'

इस प्रकार मदुरा का भ्रमण समाप्त कर स्वामी दक्षिण भारत की महा-तीर्थ भूमि रामेश्वरम् की ओर चल पड़े. लंका के राजा रावण को पराजित कर राम ने जब महारानी सीता के साथ भारत में चरण रखे, तब रामेश्वरम् में सर्वप्रथम उन्होंने शिव की पूजा की. उसी की स्मृति में यहां एक मन्दिर बना. इस मन्दिर का मुख्य द्वार भूमि से एक सौ फीट ऊंचा है. कई सीढ़ियां चढ़ने के बाद मन्दिर में प्रवेश किया जाता है. स्वामीजी बचपन से ही रामेश्वरम् के शिव मन्दिर तक पहुंचने का स्वप्न देखा करते थे. आज उनकी मनोकामना पूर्ण हुई तो उनका हृदय फूला नहीं समाया. रामेश्वरम् की पावन धरती पर घूमते हुए उनके मस्तिष्क में रामायण के अनेक मार्मिक चित्र उभरते और मिटते रहे. समय के प्रवाह में राम-रावण आदि सब खो गये, किन्तु उनकी स्मृति जन-जन के मानस में आज भी उसी प्रकार ताजी है, जैसे बात बिल्कुल कल की हो. ऐसी है हमारी संस्कृति.

रामेश्वरम् के बाद कन्याकुमारी. भारत का अंतिम भूभाग, जिसकी कल्पना-मात्र से स्वामी का हृदय स्पंदित हो जाता था. आज उसे अपने बिल्कुल करीब देख कर वे आनन्दविभोर हो रहे हैं. कन्याकुमारी में मां काली का मन्दिर है. स्वामी का हृदय उन्मत्त हो रहा है मां काली के दर्शन के लिए, जैसे बहुत देर से बिछुड़ा शिशु अपनी मां की गोद में पहुंचने की सुखद कल्पना से हर्षोत्तेजित हो रहा हो. मंदिर में पहुंचते ही वे भूमिशायी होकर दण्डवत करते हैं और फिर बहुत देर तक नेत्र बन्द किये हुए मां काली के ध्यान में लीन रहते हैं. आराधना जब समाप्त होती है तो वे मंदिर छोड़ समुद्र की ओर चल पड़ते हैं, मानो सागर उन्हें आमंत्रित कर रहा था. दूर तक फैली श्वेत सिकता की भूमि पर सागर की लहरों और पवन के द्वारा निर्मित अनेक प्रकार की कलाकृतियों पर स्वामी के कदमों के उभरते हुए निशान. सामने अथाह, असीम जलधि का श्यामवर्ण विराट रूप. तट से क्रीड़ा करती तरंगों का उन्मुक्त फेनिल हास. दूर क्षितिज पर बंधी हुई स्वामी की एकाग्र दृष्टि. मुख-मण्डल पर विचार-गाम्भीर्य की छाया.

कश्मीर से कन्याकुमारी तक चार साल की अविराम यात्रा में प्राप्त भांति भांति के अनुभवों की स्मृतियों से स्वामीजी का हृदय आलोड़ित है. कभी राजा-महा-राजाओं के राजभवनों में उन्होंने निवास किया, विविध प्रकार के पकवान खाये, दास-दासियों ने चँवर डुलाये. कभी चार-चार, पांच-पांच दिनों तक भूखे-प्यासे, श्रान्त-शिथिल, किसी वृक्ष की छाया में आश्रय लिया, भंगी और चमार की भीख ग्रहण की. कभी गृहस्थों के घरों में अपने घर का ममत्व और स्नेह पाया तो कभी कभी परिव्राजक साधुओं की टोली में जप-तप के विभिन्न रूप देखे. राजा-रंक, ऊँच-नीच, पंडित-मूर्ख सभी के द्वार पर वे गये. सभी के देखने-परखने का उन्हें अवसर प्राप्त हुआ. सभी प्रान्तों के आचार-विचार, रीति-रिवाज देखे. एक प्रदेश और दूसरे

प्रदेश के लोगों में समता और विषमता देखी. इस साम्य और वैषम्य के बीच एक संस्कृति की झांकी पायी—एक आत्मा की झलक देखी. किंतु इन सबके ऊपर दिखायी पड़ी दरिद्रता, कुसंस्कार, अंधविश्वास तथा हिन्दू धर्म के हृदयहीन नियम-बंधन. इससे भी अधिक हृदय में शूल चुभाने वाली थी यहां की अशिक्षा. एक कोने से दूसरे कोने तक पूरा भारत कुंभकर्णी नींद सो रहा था. इसे कैसे जगाया जाय, इसे कैसे आगे बढ़ाया जाये ? ये ही प्रश्न स्वामीजी के मस्तिष्क में बार-बार घूमते रहे. इसका उत्तर सोचते-सोचते उन्होंने वह निर्णय लिया, जिसने न सिर्फ उनके जीवन को बल्कि पूरे भारत को जीवन क एक नया मोड़ दिया.

६
विश्व विजय की ओर

कन्याकुमारी के सागर तट पर खड़े-खड़े स्वामी विवेकानन्द के पांव जम से गये हैं—शरीर जड़ हो गया है. तट की चहल-पहल और शोरगुल से वे बिलकुल निर्लिप्त एवं अछूते हैं. इन दो सालों के भारत भ्रमण में मिली अनुभूतियों के अनेक चित्र उनकी आँखों में तैर रहे हैं. कानों में विविध ध्वनियां तरंगित हैं. मस्तिष्क में विचारों की आंधी उठी हुई है. यह झंझा, यह झकोर उन्हें तोड़ कर रख देगा. वे अपने से दूर भाग जाना चाहते हैं, अपने को अपने से काट कर अलग कर देना चाहते हैं. अजीब उलझन है, बेचैनी है. कहां जायें, जहाँ दो क्षण की शांति मिले.

तट से कुछ हाथ दूर चंचल-फेनिल जल के बीच एक बृहत् शिलाखंड पड़ा है. हां, वहां एकांत में शांति मिल सकती है. किंतु वहां जाया कैसे जाये ? नौकाएँ तो हैं, पर पैसे जो नहीं हैं. स्वामीजी सोचने लगते हैं कि सामने से हुलसती, ललकती लहरें तीव्र गति से आकर उनके चरण चूम कर लौटने लगती हैं. स्वामीजी के पग अनायास उठ कर लहरों की गति के साथ मिल जाते हैं. किंतु उस तीव्रतम गति की होड़ में उनके पांव लड़खड़ा उठते हैं. वे पीछे छूट जाते हैं. मगर आधे रास्ते से लौटना उन्होंने जीवन में नहीं सीखा है. वे चपल तरंगों के ऊपर अपने को फेंक देते हैं और क्षण भर में तैर कर मंजिल पा जाते हैं.

स्वामी शिलाखंड पर समाधि की मुद्रा में बैठ गये हैं. गीले वस्त्र उनके शरीर से चिपके हुए हैं. बंद पलकों के भीतर भारत माता का संपूर्ण रूप है—सुदूर उत्तर में रजत हिमकण से आच्छादित हिमालय के शिखर, माता के भाल का जगमगाता मुकुट और यहां दक्षिण में माँ के चरण पखारता हुआ यह जलधि. प्रकृति ने तो मां के रूप को सजाने का यथाशक्ति यत्न किया. किन्तु यह रूप सजा नहीं. सजे भी कैसे ? परतंत्रता की बेड़ी में जकड़ी भारत माता की स्थिति विवश, दीन, हीन और विपण्ण है. अश्रुपूर्ण नमित दृष्टि, कम्पित मौन अधर, स्नेहसिक्त रूखी केशराशि. कृश शरीर पर जर्जर, मला वस्त्र है. इसकी कोटि-कोटि संतानें अर्धनग्न, अर्धक्षुधित, शोषित, मूढ़ और अशिक्षित हैं. आखिर क्या है इसका कारण?

एक ओर ऐशआराम में लीन, अधिकार और ऐश्वर्य में उन्मत्त धनिक वर्ग असंख्य दीन-दुखियों का रक्त चूस रहा है. दूसरी ओर विशिष्ट और शिक्षित कहलाने वाला ब्राह्मण समुदाय, निम्न श्रेणी के दरिद्र लोगों के साथ निर्मम, कठोर व्यवहार कर रहा है. हिन्दू धर्म पर से लोगों की श्रद्धा ही नहीं उठ रही है, बल्कि दुख के मारे हुए लोग अधिकाधिक संख्या में ईसाई धर्म को गले लगा रहे हैं. यहाँ उनके पेट भरते हैं, सहानुभूति और शिक्षा मिलती है तथा सबके ऊपर उनके साथ मानवोचित व्यवहार किया जाता है. भला वे क्यों न दूसरे धर्म को अंगीकार करें ? अपने हिन्दू धर्म के माथे पर यह कैसा कलंक ! हम अपनी दृष्टि में अपने आप गिर रहे हैं. हम अपने पैरों पर आप ही कुल्हाड़ी मार रहे हैं. फिर हमारा सम्मान कौन करेगा ? हमारी सहायता के लिए कौन आयेगा ?

स्वामीजी का हृदय वेदना से व्याकुल है. उनकी बंद आँखों के भीतर असीम क्लेश है. इस क्लेश की छाया उनकी सम्पूर्ण मुखाकृति पर व्याप्त है. वे सोचते हैं— इन राजा-महाराजाओं के यहाँ मेरे ठहरने का मुख्य उद्देश्य यही था कि मैं उनका ध्यान देशहितैषी कर्त्तव्यों की ओर आकर्षित करूं. यदि वे चाहें तो इस दिशा में बहुत कुछ सुधार ला सकते हैं, क्योंकि उनके पास अर्थ है, अधिकार है. किन्तु भारत के दुख-दैन्य, अशिक्षा और कुसंस्कार को मिटाने के लिए वे अपनी कितनी शक्ति और कितनी सम्पत्ति अर्पित कर सकते हैं ? सदियों से सताये और कुचले गये भारतवासियों की आँखों के आंसू पोंछ कर क्या वे वहां सुख और संतोष की क्रांति ला सकते है ? क्या उनके हृदय की हीन भावना को उखाड़ कर वहां आत्मविश्वास उपजा सकते हैं ? यह सब उनके वश की बात नहीं है. इन देशी नरेशों के द्वारा भारत की समस्याओं का समाधान सम्भव नहीं है. इसके लिए तो मुझे और कुछ करना होगा, उसमें आत्मविश्वास पैदा करना होगा. यह तभी सम्भव है जब भारतवासियों को आध्यात्मिक बल का सम्बल मिले. किन्तु नहीं. यह सब थोथी दलील है. गुरुदेव कहा करते थे—'भूखे पेट से भजन नहीं होता.' ठीक ही है. मुझे तो सबसे पहले भारत की दरिद्रता से युद्ध करना होगा. इसका एक ही मार्ग है, भारतवासियों की शिक्षा. एक शिक्षित मस्तिष्क अपनी हर आवश्यकता का हल अपने आप ढूंढ़ निकालता है.

गेरुए वस्त्र में वह व्यक्ति जो शिलाखंड पर ध्यानावस्थित है, अपनी आध्यात्मिक अनुभूतियों में लीन एक संन्यासी नहीं, बल्कि समाज की काया पलटने की कामना से प्रेरित एक क्रांतिकारी है. उसके हृदय में भावनाओं का सागर है और बाहर यथार्थ का. समुद्र की अगणित लहरें उठती हैं और उसके पैरों के नीचे की चट्टान से टकरा कर चूर-चूर हो जाती हैं और चट्टान ज्यों की त्यों स्थिर है. वह सोचता है, उद्देश्य की प्राप्ति के मार्ग में इसी प्रकार अनेक बाधाओं की लहरें आयेंगी, किन्तु उसका हृदय इस शिलाखंड से भी अधिक सुदृढ़ बना रहेगा. उसका साध्य उसकी आँखों

के सामने स्पष्ट था. किंतु साधन कहीं दिख नहीं रहा था. उसका मुख म्लान हो उठता है. वह सोचता है—एक संन्यासी, जिसकी झोली बराबर रिक्त रहती है वह भला इतने बड़े कार्यक्रम का बोझ कैसे वहन कर सकता है ? इसके लिए पैसा मुख्य साधन है. इस एकमात्र पैसे के लिए कहां जाऊँ ? क्या करूं ? किसके सामने हाथ फैलाऊं ? कोई देगा भी क्यों और कितना ? हमारे पीछे कोई जन शक्ति भी तो नहीं है.

निराशा के घोर अंधकार में आशा की किरण फूटी. इस समय संसार का सबसे सम्पन्न देश अमरीका है. वहीं से अर्थोपलब्धि सम्भव है. किन्तु कैसे ? क्या मैं वहां भिक्षाटन करूँगा ? फिर तो धन मिलने से रहा. आत्मसम्मान भी साथ छोड़ देगा. नहीं. इस दीन-हीन भारत मां की झोली में एक वस्तु, सिर्फ एक वस्तु अभी शेष है. यह है भारत का वेदांत दर्शन. इसका कोप अपरिमित है. क्यों न मैं अमरीका, यूरोप में इसकी शिक्षा देकर, इसका प्रचार करके अर्थोपार्जन करूं. इसके अतिरिक्त मेरे पास है ही क्या जिसे इन देशों को दूं, जिसका सहारा लेकर मैं इन देशों में खड़ा रह सकूं. बिना किसी को कुछ दिये उससे कुछ लेना सम्मान के विरुद्ध है. आदान-प्रदान प्रकृति का शाश्वत नियम है. मुझे अमरीका जाना है तो उनके मानस-गुरु के रूप में जाना है, भिखारी के रूप में नहीं. हमारी सफलता से देश का सम्मान बढ़ेगा, लोगों में आत्मविश्वास उपजेगा. फिर भारत के कल्याण कार्य में कितने ही निष्ठावान युवक हाथ बढ़ाने आयेंगे.

स्वामी का मुखमंडल दृढ़ संकल्प के तेज से दमकने लगा. यह तेज भारत की चिंता, निराशा और अकर्मण्यता से युद्ध करने को तत्पर था. इस तेज की विभा के सम्मुख निर्विकल्प समाधि का तेज भी मंद पड़ जाता था. निर्विकल्प समाधि, यह तो अकर्मण्यता को प्रश्रय देती है. यह सिर्फ व्यक्ति को सुख पहुंचा सकती है, समाज का कोई कल्याण इससे सम्भव नहीं. आज समाज के लिए, देश के लिए विवेकानन्द की जरूरत है. देश उन्हें पुकार रहा है. गुरुदेव भी तो यही चाहते थे. 'यदि मैं सिर्फ उस ईश्वर की पूजा कर सकूं, जिसके विषय में मेरा विश्वास है कि वह समस्त जीवों में विराजमान है, तो मैं इसके लिए पुनः जन्म लूं और हजारों तरह के कष्ट झेलूं. मेरे भगवान दुष्ट जन हैं. मेरे भगवान दुखी जन हैं. मेरे भगवान सभी जातियों के दरिद्र जन हैं.' गुरुदेव रामकृष्ण अपने प्रिय शिष्य नरेन्द्र के हृदय में इस तरह की भावना का बीजारोपण कर गये थे. यही भावना अब पूर्णरूप से प्रस्फुटित होकर स्वामी के पूरे हृदय में लहलहा रही थी. किंतु वाणी के बंधन में उन्होंने इसे बहुत बाद में बांधा.

उस दिन मध्य रात्रि के बाद स्वामी की तंद्रा टूटी. आंखें खुलीं तो दूर क्षितिज से जाकर टकरा गयीं. चांद-सितारों से झिलमिलाती रात. सामने विशाल जलधि का गहन-गम्भीर रूप. पवनसुत हनुमान इसी जलधि को एक छलांग में पार कर सीता की

खोज में श्रीलंका पहुंच गये थे. काश, मेरे भी अंगों में इसी प्रकार की जादुई शक्ति होती, स्वामीजी सोचने लगे. किंतु नहीं, मानव असमर्थ नहीं है. यदि उसमें संकल्प बल हो तो उसके लिए कुछ भी असंभव नहीं है. वह आकाश से सितारे तोड़ ला सकता है. स्वामी के स्मृति पट पर पिछली यात्रा के अनेक दृश्य उभरने लगे, अनेक तरह की आवाजें सुनाई पड़ने लगीं.

'स्वामीजी, मुझे भय है, आप इस देश में कुछ अधिक नहीं कर सकते. यहां के बहुत कम लोग आप का मूल्यांकन कर सकते हैं. आप को पश्चिम जाना ही चाहिए. वहां के लोग आप को और आप की कीमत को पहचानेंगे. अपने सनातन धर्म के उपदेश से आप पश्चिम की जनता पर निस्संदेह प्रभाव डाल सकते हैं' ये शब्द पोरबंदर के दीवान शंकर पांडुरंग के थे. वह स्वयं संस्कृत के प्रकांड विद्वान थे और उन दिनों वेदों का अनुवाद कर रहे थे. स्वामी ने वहां ग्यारह महीने तक निवास किया था. इस अवधि में दीवान से इनकी मित्रता हो गयी थी. पहली बार उन्होंने स्वामी को विदेश जाने के लिए प्रोत्साहित किया. उनका विश्वास था कि सच्चे प्रतिभावान व्यक्ति की प्रतिभा सर्वप्रथम विदेशों में ही पहचानी जाती है. उनका मान-सम्मान पहले विदेशों में होता है, फिर स्वदेश में.

पोरबंदर निवास की अवधि में स्वामीजी का हृदय काफी अशांत रहा था. विदेश जाने का सुझाव सुन कर उनको बार-बार गुरुदेव की बातें याद आने लगी थीं. वे अक्सर कहा करते, 'नरेन, तुझमें संसार को हिला देने की शक्ति है.' क्या सचमुच मुझमें कोई महान शक्ति अंतर्हित है ? स्वामी सोचने लगे, गुरुदेव ने तो मुझे एक दिन अपना सब कुछ, सारी दैवी शक्ति दे दी थी और आंखों से अश्रुधारा बहाते हुए कहा था 'नरेन—अब मैं एक फकीर हूं।'

इन सब भावुक स्मृतियों के प्रवाह में बहते-बहते स्वामीजी एक कगार पर क्षण भर रुक गये. यह खंडवा था. यहीं उन्होंने अगले साल शिकागो में सम्पन्न होने वाली विश्व-धर्म महासभा के विषय में सुना था और उस सम्मेलन में उपस्थित होने की कामना उनके हृदय में अंगड़ाइयां लेने लगी थी. काश, कोई उनकी अमरीका-यात्रा का खर्च वहन कर सकता—वे सोचने लगे थे. फिर उनकी आंखों के सामने एक और चित्र आया—मैसूर दरबार का. महाराजा ने पूछा था कि वे स्वामी की सहायता किस प्रकार कर सकते हैं ? स्वामी ने अपने भारत भ्रमण के दौरान देश की तत्कालीन स्थिति का वर्णन करते हुए कहा था—'हमारी वर्तमान आवश्यकता है पाश्चात्य विद्याओं की सहायता से आर्थिक और सामाजिक स्थिति को उन्नत बनाने का प्रयत्न करना. केवल यूरोप निवासियों के द्वार पर खड़े होकर रोने-पीटने या भीख मांगने से उद्देश्य सिद्ध नहीं होगा. वे लोग हमें जिस प्रकार वर्तमान उन्नत वैज्ञानिक प्रणाली से कृषि तथा शिल्प आदि की शिक्षा देंगे, उसके बदले में हमें भी उन्हें कुछ देना होगा. भारत के पास इस समय एकमात्र आध्यात्मिक ज्ञान के अति-

रिक्त और देने योग्य है ही क्या ? इसलिए कभी-कभी मेरी इच्छा होती है कि वेदांत दर्शन के प्रचार के लिए पाश्चात्य देश जाऊं. प्रत्येक भारतवासी का स्वजाति और स्वदेश के कल्याण की कामना से ऐसी चेष्टा करना कर्तव्य है जिससे इस प्रकार के आदान-प्रदान का संबंध स्थापित हो सके. आप जैसे महान् कुल में जनमे शक्तिशाली महाराजे यदि चेष्टा करें तो सहज ही यह काम प्रारंभ हो सकता है. आप इस महा-कार्य में हाथ बटायें यही मेरी एकमात्र इच्छा है.' मैसूर नरेश ने स्वामी की बातें ध्यान से सुनी थीं और अमेरिका यात्रा का सारा व्यय वहन करने के लिए तैयार हो गये थे. किन्तु स्वामीजी ने उस समय उसे ग्रहण करने की आवश्यकता नहीं समझी थी, क्योंकि शिकागो के विश्वधर्म महासम्मेलन का दिन अभी काफी दूर था. महाराजा के वचन से ही स्वामी का मन आश्वस्त हो गया था. वे सोचने लगे थे कि समय आने पर देखा जायेगा, एक संन्यासी अपने साथ इतने रुपये कहां-कहां ढोता फिरेगा. *आज उन्हें विश्वास हो गया कि भारतीय दर्शन तथा सनातन धर्म के सर्व-*धर्म समन्वय का सिद्धान्त ही भारत का मूल मंत्र है. यही सभी धर्मों की जननी है. यही वह निर्झर है जहां से अनेकानेक धर्मों की नदियां फूट निकली हैं. इसी से सारे विश्व को जीता जा सकता है. उसे वश में किया जा सकता है.

स्वामी को अनुभव हो रहा है कि परोक्ष रूप से गुरुदेव रामकृष्ण उनका दिशा-निर्देशन कर रहे हैं. अब उनका मार्ग प्रशस्त और कंटकहीन हो गया है. उनके मस्तिष्क की चिंता, आशंका सब दूर हो चुकी है. मुखमंडल आत्मविश्वास और संकल्प बल से दमक रहा है. वे निश्चय कर लेते हैं—मैं विदेश जाऊंगा. अपने मानस बल से धनोपार्जन करूंगा. फिर स्वदेश लौट कर मातृभूमि की सेवा के लिए तन मन धन अर्पण कर दूंगा.

स्वामी समुद्र तट से नगर की ओर आने लगे. कल्पना का साकार रूप देने के पूर्व भारत भ्रमण तो पूरा करना ही था. मद्रास, हैदराबाद आदि कुछ जगहें देखने और समझने को शेष रह गयी थीं. स्वामी ने अब पद यात्रा आरम्भ की, कन्या-कुमारी से मद्रास की ओर. कुछ विश्राम की इच्छा से इन्हें पांडिचेरी में रुकना पड़ा. पुष्प की मादक मधु-गंध से जैसे तितलियां और भ्रमर अपने आप उसके चारों ओर एकत्र हो जाते हैं, वैसे ही मद्रास पहुंचने के थोड़े ही दिन बाद स्वामीजी के उदात्त व्यक्तित्व, प्रतिभा और विद्वत्ता ने वहां के शिक्षित समाज को अपनी ओर आकर्षित कर लिया. विश्वविद्यालय के अध्यापकगण एवं छात्र सभी के साथ स्वामी ने विज्ञान, साहित्य और दर्शन पर बातचीत करना आरम्भ कर दिया. कितने ही युवक पाश्चात्य दार्शनिक युक्तियों की चर्चा कर उनसे वाद-विवाद करते. स्वामी उन युवकों के मनोविज्ञान से परिचित थे. कुछ साल पूर्व वे भी तो गुरुदेव रामकृष्ण के पास ऐसे ही जिज्ञासु-हृदय लेकर जाया करते थे—और गुरुदेव कितनी सरलता से उनकी जिज्ञासा पर, उनकी भ्रांति पर, उनके तार्किक मस्तिष्क पर विजय पा

लेते थे. स्वामीजी ने इन युवक छात्रों के ज्ञान-पिपासु एवं तर्कशील मस्तिष्क में अपने ही छात्र-मस्तिष्क का प्रतिविम्ब देखा. अपने गुरुदेव के समान उन्होंने भी बड़े सहज रूप से इन तरुण छात्रों के मस्तिष्क की जिज्ञासा और भ्रम को दूर किया. मद्रास में अनेक शिक्षित युवक स्वामीजी के शिष्य और भक्त बने. स्वामी ने अपनी विदेश-यात्रा का उद्देश्य भी उन्हें बताया. उनके साथ वे राष्ट्र-कल्याण की योजना पर विचार-विमर्श कर, राष्ट्र के प्रति उनके कर्तव्य की ओर उनका ध्यान खींचते. स्वामीजी के कुछ पुराने भक्तों एवं शिष्यों को इस पदयात्रा का पता मिल गया था. अतः वे लोग भी मद्रास पहुंच गये थे. स्वामी के ये सभी नये-पुराने शिष्य और भक्त बड़े ही कर्तव्यनिष्ठ थे. स्वामीजी के विदेश गमन के बाद भी उनके द्वारा प्रदर्शित मार्ग पर ये लगन से काम करते रहे और उन्हें यहां की परिस्थितियों से पत्रव्यवहार के द्वारा अवगत रखा.

मद्रास हिन्दू धर्म और उसके कर्मकांड का केन्द्र है. स्वामी के दर्शन और प्रवचन से लाभान्वित होने के लिए मद्रास के साधारण पढ़े-लिखे लोगों की भीड़ तो रहती ही थी. किन्तु जब वहां के पंडितों और दार्शनिकों के कानों में स्वामी की ख्याति पहुंची, तब वे लोग भी उनकी सभाओं और गोष्ठियों में उपस्थित होने लगे. स्वामी के व्यक्तित्व का एक आकर्षण था विनम्रता और अहम् का समुचित सामंजस्य. एक अति साधारण पंडित जिसने अज्ञानतावश इनका अपमान किया, उससे स्वामी क्षमायाचना कर लेते हैं और दूसरी ओर श्रोताओं द्वारा अपने विचारों का निरर्थक खंडन किये जाने पर विवाद के रूप में बादल के समान फट पड़ते हैं. उनकी आंखों में बिजली चमक उठती है. स्वामी को ईश्वर के अद्वैत रूप पर आस्था थी. कुछ विद्वानों की एक सभा में उन्होंने बड़े जोरदार शब्दों में इसका प्रतिपादन किया. उपस्थित लोगों ने शंका प्रकट की कि यदि हम स्व और स्वामी (ईश्वर) में कोई अंतर नहीं समझे तो फिर हमारा सारा उत्तरदायित्व एक बार ही समाप्त हो जाता है. हम चाहे गलत रास्ते पर चलें या सही रास्ते पर, हम पर कोई अंकुश नहीं रह जाता. यह सुनते ही स्वामी ने एक उत्तर से ही सबको मौन कर दिया. उन्होंने कहा—'यदि हम सच्चे दिल से विश्वास करें कि परमात्मा और हम एक ही हैं तो फिर पाप स्वतः हमसे दूर हो जायेगा और किसी प्रकार के अंकुश की आवश्यकता नहीं रह जायेगी.' इसी प्रकार एक दिन क्रिश्चियन कालेज के विज्ञान विभाग के एक नास्तिक अध्यापक सिंगारवेलु मुदालियर, स्वामी के भाषण के समय अपनी व्यंग्यात्मक हंसी नहीं रोक सके और बड़ी धृष्टता के साथ उत्तेजित होकर हिन्दू और ईसाई धर्म की आलोचना की. उनका अटूट विश्वास था कि स्वामी उनकी युक्तियों का खंडन किसी तरह भी नहीं कर सकेंगे. किन्तु स्वामी ने बड़ी सहनशीलता से न सिर्फ उनकी युक्तियों का खंडन किया, बल्कि उन्हें अपना अनुयायी बना लिया. स्वामी उन्हें प्यार से 'किडी' कहकर पुकारा करते थे. स्वामी ने एक बार उनके

सामने चुटकी ली—'सीजर ने कहा था मैं आया, देखा और विजयी हुआ', किन्तु किडी आया, देखा और विजित हुआ.' मुदालियर संन्यासी बन कर आजीवन स्वामी के प्रदर्शित मार्ग पर चलते रहे. इन्हीं के प्रस्ताव पर सर्वप्रथम 'प्रबुद्ध भारत' नामक पत्रिका प्रकाशित होने लगी जो स्वामी के विचारों को जनता के सम्मुख रखती थी. मुदालियर इसके अवैतनिक प्रबंधक थे.

अमेरिका में आयोजित होने वाली विश्व धर्म महासभा का समय समीप आ चला था. स्वामी ने इस महासभा में भाग लेने का मंतव्य मद्रासी भाइयों के सामने रखा. मद्रासी लोगों ने इस पक्ष पर बहुत उत्साह दिखाया. उन्होंने बहुत शीघ्र जन-साधारण से स्वामी के विदेश गमन के व्यय के लिए चंदा मांगना आरम्भ कर दिया. बात की बात में पांच सौ रुपये इकट्ठे हो गये. लेकिन स्वामी ने अभी रुपया लेना ठीक नही समझा. ऐसे अवसरों पर उनके मन में द्विविधा आ जाती थी. वे निश्चय कर चुके थे कि उन्हें अमरीका जाना है. वे यह भी जानते थे कि इसमें काफी रुपये खर्च होंगे और स्वयं कभी-कभी अपने शिष्यों से इसकी चर्चा भी कर बैठते थे. किन्तु इसके साथ ही साथ एक संन्यासी होने के नाते अपने हाथ में अधिक रुपये-पैसे रखने में उन्हें झिझक होने लगती. वे सोचने लगे, यदि ईश्वर वास्तव में मुझे विदेश भेज कर सनातन धर्म के ध्वज को ऊँचा उठाना चाहेंगे तो फिर इसके लिए मुझे क्या चिंता. अभी से इतने धन का साथ ठीक नहीं. मैं कोई गृहस्थ तो हूँ नहीं कि भविष्य की सुरक्षा के लिए धन-संचय करूं. एक संन्यासी के रूप में जैसे मैं कल के भोजन के लिए नहीं सोचता वैसे ही मुझे विदेश-यात्रा के खर्च के विषय में भी नहीं सोचना है. मैं तो माँ काली के हाथ का कठपुतला हूं. उनकी इच्छा के अनुसार ही मुझे काम करना है. उन्होंने अपने शिष्यों को बुला कर कहा कि वे मां काली की इच्छा का पालन करेंगे. यदि उनकी इच्छा हुई तो फिर समय आने पर विदेश जाने का प्रबंध अपने आप हो जायेगा. स्वामी नें चंदा द्वारा संचित उन पाँच सौ रुपयों को दरिद्रों की सहायता में व्यय कर देने की आज्ञा दे दी.

स्वामी की प्रकृति का यह एक विचित्र रूप है कि एक ओर देशभक्ति की भावना से ओत-प्रोत, अति विद्वान मस्तिष्क लिये यह व्यक्ति 'अहं ब्रह्मास्मि' में दृढ़ आस्था रखता है तो दूसरी ओर निरे अबोध बालक के समान मां काली की आज्ञा की प्रतीक्षा में बैठा है, यह विश्वास करते हुए कि एक न एक दिन वे जरूर अपनी इच्छा प्रकट करेंगी. इसके लिए स्वामी ने अपनी प्रार्थना-उपासना, किसी में कोई कसर बाकी नही छोड़ी.

इसी बीच हैदराबाद की जनता स्वामी के दर्शन और श्रवण से लाभ उठाने की कामना करने लगी. यहां के लोगों ने अपने मद्रासी मित्रों से स्वामी के विषय में बहुत कुछ सुन रखा था. बाबू मधुसूदन चटर्जी के घर जो हैदराबाद के निजाम के यहां इंजीनियर थे, स्वामी के ठहरने का प्रबंध हुआ. स्वामी ने हैदराबाद के

निमंत्रण को स्वीकार कर लिया.

स्वामी के हैदरावाद पहुंचने के एक दिन पूर्व वहां के हिन्दुओं ने एक भारी सभा की और स्वामी के भव्य स्वागत का कार्यक्रम वनाया. दूसरे दिन स्वामी की गाड़ी जव स्टेशन पर रुकी तो वहां करीव पांच सौ से अधिक लोगों की भीड़ उमड़ पड़ी थी.

स्वामी यहां करीव एक सप्ताह ठहरे. एक दिन वे हैदरावाद के निजाम सर खुर्शीद जंग वहादुर से मिलने गये. निजाम हिमालय से कन्याकुमारी तक के सभी हिन्दू स्थानों की यात्रा कर चुके थे. इस्लाम धर्म में पूरी आस्था रखते हुए भी वे हिन्दू दार्शनिकों और पंडितों का आदर करते थे. इनके दरवार में स्वामी ने कई घंटों तक विभिन्न धार्मिक सिद्धांतों की विवेचना की. स्वामी की नम्रता, विद्वत्ता और सर्वोपरि उनकी वक्तृत्व कला ने निजाम को वहुत ही आकर्षित किया. वे स्वामी को धर्म सम्वंधी कार्यों के लिए एक हजार रुपये देने लगे, किंतु स्वामी ने वड़ी नम्रता से उसे अस्वीकार करते हुए कहा—

'नवाव वहादुर, इससे पूर्व मेरे परम मित्र मैसूर के महाराजा तथा शिष्य रामनद के राजा मुझे पश्चिम जाने के लिए आर्थिक सहायता देना चाहते थे. परंतु मैं समझता हूं, अभी समय नहीं आया है. यदि कभी पाश्चात्य देश जाने के लिए मुझे भगवान का आदेश होगा, तो आप को अवश्य सूचित करूंगा.'

सिकन्दरावाद के 'महवूव कालेज' में स्वामी का एक वड़ा प्रभावशाली भाषण हुआ—'मेरी पश्चिम यात्रा का उद्देश्य' पर. यहां करीव एक हजार की संख्या में कितने ही गण्यमान्य विद्वान और यूरोपीय लोग उपस्थित थे. इस भाषण ने स्वामी के हृदय में अटूट विश्वास की जड़ जमा दी कि उनकी विद्वत्ता और भावों की कुशल अभिव्यक्ति पश्चिम के लोगों को प्रभावित किये विना नहीं छोड़ेगी. नगर में वे जहां-जहां गये, हर ओर उन्हें आदर और सम्मान मिला. साथ ही लोगों ने उन्हें विश्वास दिलाया कि वे उनकी विदेश-यात्रा के लिए पूर्ण सहयोग देंगे. किंतु स्वामी की झोली रिक्त ही रही. इस वार भी उन्होंने धन अस्वीकार कर दिया.

फरवरी के मध्य में स्वामी ने हैदरावाद से पुनः मद्रास के लिए प्रस्थान किया. उन्हें विदा देने के लिए स्टेशन पर विशाल जनसमूह उमड़ पड़ा था. उधर मद्रास स्टेशन पर भी इनके स्वागतार्थ यही दृश्य था. मद्रास पहुंचने के कुछ ही दिन वाद स्वामी ने गुरुदेव श्री रामकृष्ण को स्वप्न में देखा, कि वे समुद्र तट से विस्तीर्ण महासागर के ऊपर पैदल चले जा रहे हैं और पीछे-पीछे नरेन को आने के लिए हाथ से संकेत कर रहे हैं. दूसरे दिन नींद खुलने पर उनका चित्त वड़ा ही शांत और स्थिर रहा. जान पड़ा जैसे उन्हें विदेश जाने की आज्ञा मिल गयी हो. अव स्वामी ने मां शारदा का आशीर्वाद लेने के लिए उनके पास एक पत्र लिखा. अपना परिव्राजक जीवन आरम्भ करने के पहले भी उन्होंने मां शारदा का आशीर्वाद लिया था. अव

इस पुण्य कार्य के आरम्भ के पहले फिर एक बार उनके आशीर्वाद की अभिलाषा जाग उठी. माँ शारदा ने बहुत ही स्नेहसिक्त पत्र लिखा और अपनी शुभकामनाएं भेजीं. स्वामी ने अपने शिष्यों को बुलाकर कहा—'यह मां की इच्छा है कि मैं विदेश जाऊं, इसलिए मुझे यहां के जनसाधारण से पैसे लेने दो, क्योंकि मैं भारत के लोगों, दीन-दुखियों के लिए ही विदेश जा रहा हूं.'

ठीक इसी समय एक विचित्र घटना घटी. अपने भ्रमण के बीच स्वामी ने कुछ दिन खेतरी राज्य में निवास किया था. खेतरी नरेश स्वामी के बड़े सच्चे भक्त और मित्र थे. उनका विश्वास था कि स्वामी के आशीर्वाद से ही उन्हें पुत्ररत्न प्राप्त हुआ था. पुत्र के शुभ जन्म-दिवस पर राज्य में भारी उत्सव का आयोजन हुआ. बड़ी कठिनाई से महाराज को पता चला कि स्वामी अभी मद्रास में हैं और उनके अमरीका जाने की तैयारी हो रही है. उन्होंने तत्क्षण अपने दीवान जगमोहन लाल को स्वामी के पास भेजा कि वे उन्हें नवजात शिशु को आशीर्वाद देने के लिए बुला लायें.

मुंशी जगमोहन लाल मद्रास आये. स्वामी से मिले और खेतरी नरेश का संदेश सुना कर उनसे चलने के लिए आग्रह किया. किंतु स्वामी ने कहा कि अब से ठीक एक माह बाद ही उन्हें अमरीका के लिए प्रस्थान करना है और इसके लिए कई आवश्यक प्रबंध भी करने हैं, अतः वे खेतरी राज्य के उत्सव में उपस्थित नहीं हो सकेंगे. मगर जगमोहन लाल आग्रह करते ही रहे—'स्वामी जी, आप कम से कम एक दिन के लिए भी खेतरी अवश्य चलिए. यदि आप चलने में असमर्थ होते हैं तो राजा जी निराशा में डूब जायेंगे. आपको पश्चिम जाने के लिए किसी प्रकार के प्रवन्ध के कष्ट उठाने की कोई आवश्यता नहीं है. इसे महाराज पर छोड़ दीजिए, आप केवल मेरे साथ अवश्य चलिए.' अंत में जगमोहन लाल की जीत हुई और स्वामी ने खेतरी चलने की अनुमति दे दी.

खेतरी का उत्सव समाप्त हो जाने के बाद जब स्वामी ने बम्बई के लिए प्रस्थान किया तब खेतरी नरेश ने दीवान जगमोहन को स्वामी के साथ जाने तथा उनकी विदेश यात्रा के लिए टिकट, कपड़े आदि आवश्यक वस्तुओं का प्रबंध कर देने का आदेश दिया. रास्ते में आबूरोड स्टेशन पर स्वामी ने एक रात एक साधारण रेलवे भृत्य के घर बितायी. भारत-दर्शन के दौरान इस दीन व्यक्ति ने स्वामी की बड़ी सहायता की थी. माउंट आबू में स्वामी की अपने दो प्रिय गुरुभाई स्वामी तुरीयानन्द और स्वामी ब्रह्मानन्द से अकस्मात् भेंट हो गयी. इस अप्रत्याशित मिलन से स्वामी को बड़ा संतोष हुआ.

बम्बई पहुंचने पर विदेश यात्रा की तैयारी विधिवत् होने लगी. दीवान जगमोहन ने स्वामी के लिए गेरुए रंग के कीमती रेशमी कपड़े—अचकन, पगड़ी आदि बनवा दिये. इसके अतिरिक्त यात्रा में काम आने वाली सभी वस्तुएं एक बक्से में रख

दी गयीं. स्वामी के जीवन में यह प्रथम अवसर था जब इतनी अधिक वस्तुओं के वे स्वामी थे. इसके कारण प्रायः उनके हृदय में अंतर्द्वंद्व चला करता. मधुकरी भिक्षा पर ही जिसने जीवन-यापन का व्रत लिया था उस व्यक्ति के कंधों पर इतनी वस्तुओं का बोझ ! किन्तु जिस पथ पर वे जा रहे थे, उस पर इनके बिना वे चल नहीं पाते, यह सोच कर उन्हें संतोष करना पड़ता. लेकिन जब जगमोहन ने उन्हें जहाज की यात्रा के लिए प्रथम श्रेणी का टिकट दिया तब स्वामी अपने विरोध को नहीं दबा सके और साधारण दर्जे के टिकट की मांग की. किन्तु दीवान अपने आग्रह पर डटा रहा. उसने यह दलील दी कि स्वामी के साधारण दर्जे में जाने से खेतरी नरेश को बहुत दुख पहुंचेगा. अब जाकर स्वामी ने अपना विरोध वापस ले लिया.

स्वामी को दीवान तथा अन्य शिष्यों का एक और आग्रह मानना पड़ा और विदा के समय नये रेशमी वस्त्रों को धारण करना पड़ा. ३१ मई १८९३ को बम्बई से जहाज में चढ़ने के समय स्वामी एक सुन्दर राजकुमार की तरह लग रहे थे : हृष्ट-पुष्ट शरीर, तेजस्वी मुखमण्डल, शतदल के समान बड़ी-बड़ी शांत आंखें और इनके साथ मर्यादायुक्त बहुमूल्य वस्त्र. दीवान तथा दो और शिष्य जहाज के प्रवेश द्वार तक स्वामी के साथ गये. धराशायी होकर इन लोगों ने स्वामी की चरण-धूलि माथे से लगायी. सभी के नयन जलमग्न हो गये. सदा संयमित और शांत रहने वाले स्वामी का हृदय भी विदा के शोक को नहीं छिपा सका. उनकी बड़ी-बड़ी आंखें छलछला उठीं.

जहाज खुलने की पहली घंटी बजती है. सभी यात्री जल्दी-जल्दी जहाज के अंदर जाने लगते हैं. स्वामी क्षण भर मौन अपने शिष्यों को देखते हैं, फिर बड़ी शीघ्रता से मुड़ कर अन्य यात्रियों के साथ आगे बढ़ जाते हैं. जहाज के अंदर जाकर वे सीधे ऊपर के डेक पर चले जाते हैं. यहां से वे विदा देने आये स्वजनों को अच्छी तरह देख सकते हैं. चारों ओर अजीब चहल-पहल. यात्रियों में किसी के मुखमण्डल पर अपने प्रियजन से भावी मिलन का उल्लास था तो किसी के चेहरे पर अपने प्रिय-जन से बिछुड़ने का विषाद था. स्वामी जहाज के डेक के घेरे को पकड़ कर खड़े हो गये. जहाज छूटने का अंतिम भोंपा बजा. तट से जहाज पर चढ़ने वाला सेतु तट की ओर खींच लिया गया. धीरे-धीरे जहाज ने किनारा छोड़ दिया. जहाज के नीचे लगे पहिए के द्वारा पानी कटने की ध्वनि सुनाई पड़ती रही—घरर-घरर, छप्-छप्. अपनी मातृभूमि से, मातृभूमि के किनारे से, मातृभूमि के लोगों से स्वामी प्रतिपल दूर होते गये. वे उस किनारे को, विदा देने आये हुए अपने लोगों को तब तक देखते रहे, जब तक वे क्षितिज के पीछे ओझल नहीं हो गये. कुछ देर में तो क्षितिज की भूरी रेखा भी देखते ही देखते लुप्त हो गयी. जहाज की गति तीव्र से तीव्रतर होती जा रही थी. किनारा छूटा, लोग छूटे, उन्मुक्त गगन-विहारी पक्षी जो अब तक स्वामी की आंखों के सामने सागर तट से दूर ऊंची उड़ानें भर रहे थे, वे भी न जाने कहां

खो गये. अब रह गया केवल अगाध जलधि के वक्ष पर तैरता हुआ एक छोटा-सा जहाज. ऊपर नील गगन और नीचे नील-सागर; सर्वत्र मां काली के रूप की नीलिमा व्याप्त हो रही थी. समुद्र की लहरें बड़े वेग से ऊपर उठतीं और फिर न जाने किस तल में समा जाती. स्वामी के हृदय में भी इसी प्रकार भावनाओं की लहर उमड़ती और सिमटती रही. गुरुदेव की, मां शारदा की, गुरुभाइयों की, सगे-सम्बधियों की स्मृतियां घटनाओं में ढल कर स्वामी की आंखों के सामने तैरने लगीं. उनके मन में एक टीस सी उठी. बड़ानगर के गुरुभाई या अपने माता-भ्राता किसी को भी वे अपने प्रवास की सूचना नहीं दे सके. क्या सूचना देना उनकी दृष्टि में आवश्यक था ? नहीं. इसकी उन्होंने आवश्यकता नहीं समझी थी. मां काली की कृपा से अमरीका में अर्जित ख्याति उन लोगों तक आप ही आप पहुंच जायेगी—ऐसा उन्होंने अनुमान कर लिया था. इस तरह की सूचना का प्रभाव बड़ा गहरा पड़ेगा यह भी वे समझते थे.

स्वामी कुछ देर तक तो डेक पर टहलते रहे, अपनी चौड़ी छाती पर हाथ बांधे हुए. फिर एक कुर्सी पर बैठ गये. मस्तिष्क अनेक तरह के विचारों का अड्डा बना हुआ था. भारत के गौरवमय इतिहास का चलचित्र उनके नेत्रों के सामने था. भारत का अतीत, भारत का धर्म और संस्कृति. इन सबसे उन्हें एक अजीब तरह की प्रेरणा मिलने लगी. उनके हृदय की भावना अस्फुट वाणी बन कर उनके होठों पर फड़फड़ाने लगी—"सचमुच मैं वैराग्य की भूमि से भोग विलास की भूमि पर जा रहा हूं.' किन्तु उनके हृदय में सांसारिक भोग विलास की कोई लिप्सा नहीं थी. वे कठोर कर्मभूमि पर अनवरत परिश्रम करना चाहते थे. जैसे-जैसे भविष्य की कठिनाइयों के चित्र उनके मस्तिष्क पर उभरते, वैसे-वैसे हृदय में और भी दृढ़ता आती जाती. उनके मन-मंदिर में गुरुदेव श्री रामकृष्ण और माँ काली की प्रतिमा विराजती थी. जीवन-संघर्ष से जब कभी उनके पाँव लड़खड़ाये, इन दा प्रतिमाओं ने बराबर उन्हें सहारा दिया.

जहाज के प्रथम कुछ दिनों तक स्वामी नितांत अकेले, अपने आप में ही खोये रहे. भारतीय इतिहास के देशभक्त सम्राट, साहित्यिक और धर्मग्रंथों के उदात्त चरित्र ही उन दिनों मानों उनके मानस-बंधु थे. इन्हीं लोगों के साथ वे अपना मन-बहलाव किया करते थे. इस प्रकार इस समुद्र यात्रा की लम्बी अवधि के पूर्वार्ध में उन्होंने बारी-बारी से भारत के बदलते हुए रूप को, उसके अतीत, वर्तमान और भविष्य के झरोखे से झांक कर देखा. इन सभी रूपों में एक साम्य था—उनकी आत्मा के स्वरूप का साम्य. वे इसी अपूर्व रूप की ख्याति संसार में फैलाना चाहते थे. सनातन धर्म के द्वारा विश्व इस रूप को देख सकेगा, पहचान सकेगा. शिकागो नगर में आयोजित होने वाली विश्व धर्म महासभा का विचार स्वामी के मस्तिष्क में चक्कर काट गया. उनका मुखमण्डल शांति और संतोष से चमक उठा.

जहाज के नवीन परिवेश में स्वामी शीघ्र ही घुल मिल गये. बिल्कुल नये

प्रकार के खाद्य व्यंजन तथा अजनबी लोगों से उन्हें कोई विशेष असुविधा नहीं हुई. कुछ ही दिनों में वे जहाज के अनेक यात्रियों के आकर्षण का केन्द्र बन गये. जहाज का प्रमुख कप्तान अक्सर अपना काम समाप्त कर स्वामी के एकांतवास का साथी बन जाता. वह अक्सर स्वामी को जहाज पर इधर-उधर घुमाता, जहाज के कलपुर्जे दिखाता तथा उसके चलने की विधि बताता. स्वामी के साहचर्य से कप्तान को बड़ा सुख मिलता था.

करीब एक सप्ताह बाद जहाज श्रीलंका पहुंचा. कोलम्बो के बन्दरगाह पर जहाज को पूरे दिन भर ठहरना था. स्वामी कई यात्रियों के साथ जहाज से उतर पड़े और सारा दिन प्रसिद्ध बौद्ध मंदिरों को देखने में बिताया. इसके बाद जहाज पेनांग होता हुआ सिंगापुर में आकर रुका. स्वामी ने यहां भी उतर कर आस पास की मुख्य जगहें, अजायबघर तथा वनस्पतिशास्त्र सम्बंधी उद्यान देखे. सिंगापुर से जहाज हांगकांग पहुंच कर वहां तीन दिन ठहरा. इस बीच स्वामी ने सिक्यांग नदी के मुहाने से अस्सी मील दूर स्थित दक्षिण चीन की राजधानी कैंटन में अनेक बौद्ध मंदिर और मठ देखे. प्राचीन बौद्ध सभ्यता के दो महान उत्तराधिकारी देश भारत और चीन की उन्होंने मन ही मन तुलना की. चीन की सभ्यता और संस्कृति पर उन्होंने भारतीय प्रभाव की झलक देखी. विशेषकर धार्मिक क्षेत्र में बौद्ध धर्म का बहुत महत्वपूर्ण हाथ था. अनेक बौद्ध मंदिरों में संस्कृत के मंत्र बंगाली रीति से पत्थरों पर खुदे हुए थे. न जाने कितनी संस्कृत की हस्तलिखित पुस्तकों पर बंगालीपन की छाप थी. स्वामी पहले भी चीनी बौद्ध धर्म के विषय में बहुत कुछ पढ़ चुके थे. किन्तु अब चीन के बौद्ध मठों और मंदिरों को देख कर उन्हें पूर्ण विश्वास हो गया कि किसी समय बंगाल और चीन में बहुत निकट का सम्बन्ध था. इसी कारण चीन में अनेक बंगाली भिक्षुओं का प्रवेश हो सका था. फिर उन्होंने देखा कि चीन की गरीबी भारत की गरीबी की तरह ही है. उनके दैनिक जीवन में साधारण छोटी-छोटी चीजों के अभाव और कष्ट का बाहुल्य था.

जापान के भी कई नगर, यूकोहामा, ओसाका, क्योटो और टोकियो देखने-घूमने का अवसर इन्हें मिला. दरिद्रता की गोद में दुःखी भारत और चीन को देखने के बाद सुंदर, सुरुचिपूर्ण जापान को देख कर स्वामी बड़े प्रसन्न हुए. भारत और चीन से यहां कितना अंतर था. जापानी आधुनिक जीवन की साधारण आवश्यकताओं से वंचित नहीं थे. वे धन की दृष्टि से बहुत सम्पन्न तो नहीं थे, परन्तु स्वच्छता, कलात्मकता और विनम्रता उनके जीवन के हर क्षेत्र में व्याप्त थी. साफ-सुथरे नगर, चौड़ी सड़कें, फूल-पौधों के बेल-बूटों से सजे हल्के-फुल्के मकान, रंग-बिरंगे नन्हें-सुकुमार बगीचे, कृत्रिम झरने और जलाशय, ये सब चीजें देखते ही बनती थीं. यहाँ भी चीन की ही तरह अनेक बौद्ध मंदिर और मठ थे तथा मंदिरों में संस्कृत के मंत्र खुदे हुए थे. जापानी साहसी थे, उद्यमी थे और भारत

की अपेक्षा शिक्षित भी थे. साधारणतया उनके चेहरे आशा और उत्साह से चमकते रहते थे. धन का बाहुल्य नहीं होने पर भी लोग सुखी और प्रसन्न थे. शायद वहां की मिट्टी ही कुछ दूसरे प्रकार की थी जिसने ऐसे लोगों को जन्म दिया. स्वामी ने जापान से अपने मद्रास के एक शिष्य के पास एक पत्र में लिखा—'जापानियों के सम्बंध में मेरे मन में कितनी ही बातें आ रही हैं. एक संक्षिप्त पत्र में उसे प्रकट नहीं किया जा सकता, परंतु इतना कह सकता हूं कि हमारे देश के नवयुवकों को प्रतिवर्ष दल के दल चीन और जापान जाना चाहिए. विशेषकर जापान तो अवश्य जाना चाहिए. जापानियों की दृष्टि में भारतवर्ष सभी प्रकार की उच्च और महान् वस्तुओं की स्वप्नभूमि की तरह है.······और तुम लोग क्या कर रहे हो ? जीवन भर केवल वृथा बकते हो, आओ इन्हें देख जाओ, उसके बाद जाओ और शर्म से मुंह छिपा लो. भारत की जराजीर्ण स्थिति से मानो बुद्धि का नाश हो गया है. देश छोड़ कर बाहर जाने में तुम लोगों की जाति बिगड़ जाती है. हजारों वर्ष के पुराने कुसंस्कार का बोझ सिर पर धरे हुए तुम लोग बैठे हो. हजारों वर्ष से खाद्य अखाद्य की शुद्धाशुद्धि पर विचार करते हुए तुम लोग अपनी शक्ति बरबाद कर रहे हो. पुरोहितों की मूर्खता के भारी भंवर में चक्कर काट रहे हो. सैकड़ों युग के लगातार सामाजिक अत्याचार से तुम्हारा सारा मनुष्यत्व सम्पूर्ण रूप से नष्ट हो गया है. ···अरे मैं कहता हूं, क्या समुद्र में जल का अभाव हो गया है ? तुम सब लोग उसमें अपनी पुस्तकें, गाउन, विश्वविद्यालय डिप्लोमा आदि सब कुछ क्यों नहीं डुबा देते ? आओ मनुष्य बनो. पहले तो इन दुष्ट पुरोहितों को दूर कर दो, क्योंकि ये मस्तिष्क-विहीन लोग कभी अच्छी बातें न मानेंगे. उनके हृदय भी शून्य है, जिनका विकास कभी न होगा. सैकड़ों सदियों के कुसंस्कार और अत्याचारों के बीच इनका जन्म हुआ है. पहले इनका उच्छेद करो. आओ मनुष्य बनो. अपने संकीर्ण अंधकूप से निकल कर बाहर जाकर देखो, सभी राष्ट्र कैसे उन्नति के पथ पर चल रहे हैं.'

यूकोहामा से जहाज प्रशांत महासागर लांघता हुआ वैन्कुवर (कनाडा) पहुँचा. अब स्वामी पूरब से पश्चिम की ओर, पुरानी दुनियां से नयी दुनिया की ओर आ गये थे. यहां पहुंचते-पहुंचते जून के महीने में ठंडक का प्रकोप काफी बढ़ गया. वैसे तो बहुत दिन पहले जहाज की समुद्री हवा में ही शीतलता की लहर समा गयी थी, किन्तु स्वामी उस शीत-लहर को झेल गये थे. पर कनाडा में भारत के राजसी सुकुमार परिधानों के अंदर उनके शरीर की हड्डियां जमने लगीं बम्बई से विदा देते समय खेतरी-नरेश के दीवान ने स्वामी की सुख-सुविधा का पूरा ख्याल रख कर एक बड़े बक्से में यात्रा के काम में आने वाली सारी वस्तुएँ साथ दे दी थीं. किन्तु इतना सब सामान होते हुए भी उनके पास शीत से सुरक्षा के लिए कोई ऊनी वस्त्र नहीं था. यूरोप और अमरीका की ठंडक से न खेतरी-नरेश परिचित थे न उनके दीवान. स्वामी या उनके शिष्यों-भक्तों को भी इसका ध्यान नहीं था. शायद इसीलिए उन्हें

शीत का शिकार बनना पड़ा. वैंकुवर से रेलगाड़ी द्वारा उन्होंने शिकागो तक सफर किया. रात और दिन गाड़ी चलती रही. नदी, निर्झर, वन-पर्वत, लहलहाते खेत-वंध्या भूमि, तथा नगर के बाद नगर पार होते गये. अंत में तीसरे दिन, अपने चिर अभिलाषित शिकागो नगर में स्वामी विवेकानन्द ने कदम रखे.

विलासिता और वैभव की नगरी शिकागो इन दिनों विशेष रूप से सुसज्जित थी. यहाँ विश्व मेला आयोजित किया गया था. फलस्वरूप शहर में विभिन्न देशों के नागरिक अपनी विभिन्न साज-सज्जा में उमड़े हुए थे. वातावरण में कोलाहल और रंगों का समां था. जुलाई आधा बीत चुका था. मौसम सुहावना था. लेकिन अभी स्वामी को इन्हें देखने-परखने की सुधि कहां थी ? उनके सामने तो मुख्य प्रश्न था कि स्टेशन से किधर जायें, कहाँ जायें. उनकी वेष भूषा के कारण लोग उन्हें घूर-घूर कर देख रहे थे. बच्चे कौतुक में उनके आगे-पीछे चक्कर काटते और किलकारियां मारते स्थिति ऐसी थी मानो वे कोई अजायबघर की चीज हों. उन्होंने एक साधारण होटल का पता लगाया. जब कुली सामान को उनके कमरे में पहुंचा कर लौट गया तब उन्होंने शांति की सांस ली.

दूसरे दिन विवेकानन्द विश्व मेला देखने चल पड़े. मेले में करीब-करीब विश्व के सभी प्रमुख देशों की दूकानें थीं तथा हस्तकला और यंत्र-निर्मित वस्तुएं विशेषरूप से प्रदर्शित थीं. इसके अतिरिक्त विज्ञान की भी वहां प्रदर्शनी थी. विवेकानन्द एक सूक्ष्म दर्शक थे. वे मेले की सभी चीजों का पूर्ण रूप से निरीक्षण करते. यूरोप और अमरीका विज्ञान के क्षेत्र में कितना आगे बढ़ चुके हैं, इसका अब उन्हें प्रत्यक्ष अनुभव हुआ. पश्चिमी दुनिया की शक्ति, ऐश्वर्य तथा आविष्कारक-प्रतिभा से वे अत्यन्त प्रभावित हुए. आश्चर्यान्वित कर देने वाली विज्ञान की वस्तुओं को कभी-कभी वे मुंह खोले हुए विस्फारित नेत्रों से एक साधारण जन के समान देखते रह जाते. शिकागो के कोलाहलपूर्ण वातावरण के वे पूर्ण रूप से अभ्यस्त हो चुके थे, इस वातावरण से उन्हें न अब कोई घबड़ाहट थी न ऊब. शिकागो पहुंचने के चार-छः दिन बाद विश्व धर्म महासभा के विषय में स्पष्ट रूप से पता लगाने वे पूछताछ के दफ्तर में गये. अजीब धक्का लगा. ज्ञात हुआ कि महासभा सितम्बर के दूसरे सप्ताह के पहले आरम्भ नहीं होगी. सभा के सदस्यों का पंजीकरण बहुत पहले हो चुका है और विशेष स्थिति में भी उस धर्म सभा के किसी बड़े पदाधिकारी की सहायता के बिना नये सदस्य का नाम रजिस्टर में नहीं लिखा जायेगा.

विवेकानन्द घोर चिन्तासागर में डूब गए. वे अमेरिका स्वेच्छा से अपने बल पर आये थे. धर्म महासभा में भारत का प्रतिनिधित्व करने के लिए भारत के किसी भी सामाजिक या धार्मिक संगठन या संस्था के द्वारा वे नहीं भेजे गये थे. उस समय रामकृष्ण मिशन की भी स्थापना नहीं हुई थी. कलकत्ते के पास बड़ानगर के मठ में रामकृष्ण के अनेक शिष्य और अनुयायी योगाभ्यास, मनन-चिंतन तथा समाज सेवा

में लगे हुए थे. उन्हें यह पता भी नहीं था कि उनके 'नरेन' कब और कैसे विवेकानन्द बन कर अमरीका पहुंच गये. खेतरी से अमरीका प्रस्थान के समय भी किसी संस्था के द्वारा उनकी विदाई नहीं हुई थी. इस प्रकार जब ये अमरीका पहुँचे तब उनके पास किसी भी तरह का प्रमाण पत्र नहीं था. यह रुकावट उनके सामने एक कठिन समस्या बन कर खड़ी हो गयी. अब 'धर्म प्रतिनिधि सभा मण्डल' में एक सदस्य का स्थान पाना असम्भव सा प्रतीत होने लगा.

उस दिन पूछताछ के सरकारी कार्यालय से विवेकानन्द सीधे होटल लौट आये—बिलकुल निरुत्साह और चिन्ताग्रस्त. शिकागो जैसे खर्चीले शहर में उनकी जेब भी खाली हो चली थी. एक डेढ़ माह के बाद ठंड का प्रकोप भी बढ़ने वाला था. इससे बचने का भी इनके पास कोई साधन नहीं था. उनके हृदय में चिन्ता के बादल घिर आये. बहुत देर के बाद आशा की किरण दिखाई पड़ी. यदि वे अपने मद्रास के मित्रों और भक्तों का सहारा लें तो कैसा रहे. उन्होंने अपने मित्रों के नाम मद्रास पत्र लिखे कि वे किसी विशेष धार्मिक संस्था के कार्यालय से इनके लिए कुछ रुपये भिजवायें. किन्तु धार्मिक समितियों में इतनी उदारता कहां जो बिना पूर्व परिचय के किसी व्यक्ति की सहायता कर सकतीं, विशेषकर ऐसे व्यक्ति की जो बिना किसी संस्था की मदद से अमरीका जैसे दूर देश में पहुंच जाय. संस्था के प्रमुख अधिकारी ने विवेकानन्द के आवेदन के उत्तर में उनके मित्र के पास लिखा—'दुष्ट को ठंड में मरने दो.'

किन्तु 'दुष्ट' मरा नहीं. वह आशा का दामन थामे विधि की विडम्बना देखता रहा. उसमें अदम्य साहस और आत्मविश्वास था. वह अपने को भाग्य के हाथों सौंप कर, तृष्णारहित भाव से अपना कर्तव्य पालन करता रहा.

शिकागो के होटल के खर्च बहुत ही अधिक थे. विवेकानन्द के पैसे पानी के समान बह गये. जो कुछ थोड़े से शेष बचे थे, उनके आधार पर शिकागो में सितम्बर तक रहना कठिन था. किसी ने उन्हें बताया कि बोस्टन नगर में रहने का व्यय शिकागो से कम है. अतः करीब दस-बारह दिन शिकागो रहने के बाद वे बोस्टन चल पड़े. विधि का विधान भला किसे मालूम ! भाग्य ने यहां इनकी सहायता की. बोस्टन जाते समय रेलगाड़ी पर एक सम्पन्न वृद्ध महिला की नजर इन पर पड़ी. विवेकानन्द बगल के यात्री से बातें कर रहे थे. उनकी बातें बहुत ही तत्वपूर्ण और मनोरंजक थीं. उक्त महिला उस ओर आकर्षित हुई और उनकी बातों में रस लेने लगी. बाद में वह विवेकानन्द से इतनी प्रभावित हुई कि उन्हें अपने देहात के घर 'ब्रीजीमीडो' जो मैसाचूसेट्स प्रदेश में था, चलने के लिए बाध्य कर दिया. यह महिला, केट सनबोर्न, अविवाहित थी और विद्वानों तथा कलाकारों के प्रति विशेष आदर का भाव रखती थी. अपनी उदारता और समाज सेवा के लिए वह प्रसिद्ध थी. भारत के इस विलक्षण व्यक्ति को उसने अपने महिला मण्डल के बीच उपस्थित किया.

महिलाएं विवेकानंद के अनोखे पहनावे को कुतूहलभरी नजरों से देखती रहीं और उनके भाषण का रसास्वादन करती रहीं. सनबौर्न विवेकानन्द को अपने साथ गाड़ी में बैठा कर आसपास के नगरों और कस्बों को दिखाने ले जाया करतीं. जहां-जहां भी ये लोग जाते, विवेकानन्द सबके लिए मुख्य चर्चा का विषय बन जाते. रेशमी अचकन और पगड़ी में एक संन्यासी को लोग भारत का कोई राजा समझ लेते. उनके इस विलक्षण परिधान ने उन्हें सबके सामने इतने आश्चर्य की वस्तु बना दिया कि अंत में हरदम पहनने के लिए उन्होंने बोस्टन जाकर पश्चिमी पोशाक खरीदी. इस विषय में उन्होंने अपने एक पत्र में लिखा था : 'अगर मुझे यहां अधिक दिन रहना है तो मेरी इस अनोखी पोशाक से काम नहीं चलेगा. रास्ते में मुझे देखने के लिए खासी भीड़ लग जाती है. इसलिए मैं काले रंग का एक लम्बा कोट पहनना चाहता हूं, सिर्फ व्याख्यान देने के समय के लिए एक गेरुआ पहनावा और पगड़ी रखना चाहता हूं.' सनबौर्न मैसाच्यूसेट्स की अन्य जगहों के जाने-माने प्रसिद्ध लोगों से अपने 'भारतीय राजा' का परिचय करवातीं रहीं. इसी उदार महिला ने अपने अतिथि को हार्वर्ड विश्वविद्यालय के एक सुप्रसिद्ध प्राध्यापक, जॉन हेनरी राइट, से मिलाया. प्रोफेसर राइट तथा उनके परिवार से विवेकानन्द का शीघ्र ही घनिष्ठ सम्बंध स्थापित हो गया. उनके व्यक्तित्व ने इस परिवार पर बहुत गहरा प्रभाव डाला. उदाहरणस्वरूप प्रो० राइट की पत्नी का अपनी माता के नाम यह पत्र देखने योग्य है :

एनिसक्वाम,
मैसाच्यूसेट्स
२९ अगस्त, १८९३

मेरी प्यारी मां,

इस समय हम लोगों का समय विचित्र रूप से कट रहा है. केट सनबौर्न के पास एक हिन्दू संन्यासी आया हुआ था, जिसकी चर्चा मैंने शायद अपने पिछले पत्र में की है. जॉन उनसे मिलने बोस्टन गये, फिर यहां आने के बाद इन्हें उसकी बहुत याद आती रही, इसलिए उसे यहां बुला लिया. वह यहां शुक्रवार को आया, एक काषाय रंग के लम्बे परिधान में, जिसे सभी लोग आश्चर्य की दृष्टि से देख रहे थे. वह बहुत ही भव्य रूप था. उसने अपने सर पर एक बहुत अच्छी सी चीज बांध रखी थी, प्राच्य दृष्टि से वह बहुत ही सुन्दर था, उम्र की दृष्टि से करीब तीस का, किन्तु ज्ञान की दृष्टि से युगों प्राचीन. वह यहां सोमवार तक ठहरा और अब तक के मेरे परिचित लोगों में सबसे दिलचस्प आदमी मालूम पड़ा. हम लोग सारे दिन और सारी रात बातें करते रहे, और अगले दिन फिर नये आकर्षण से बातें आरम्भ कीं. नगर के सारे लोग उसे देखने के लिए बुरी

तरह व्याकुल थे. कुमारी लेन के यहाँ के रहने वाले लोग भी अत्यधिक उत्तेजना में थे. वे लोग आवेग में कभी घर के भीतर कभी घर के बाहर आते-जाते थे, अत्यधिक उत्तेजित होने के कारण उनके गाल लाल हो गये थे. मुख्यत: हम लोग धर्म सम्बंधी बातें करते थे. यह एक प्रकार का पुनरुत्थान था. मैंने स्वयं बहुत दिनों से इतनी अधिक उत्तेजना अनुभव नहीं की थी. इसके बाद रविवार को जॉन ने इसे चर्च में बोलने के लिए आमंत्रित किया....

यह एक शिक्षित सज्जन है, किसी भी विद्वान के बराबर इसका ज्ञान है, अट्ठारह साल की उम्र में ही यह साधु बन गया···यह साधु विचित्र रूप से चतुर है और अपने तर्क या विचारधारा को स्पष्ट रूप से सामने रखता है. तुम उसको उलझा नहीं सकती और न उससे आगे ही बढ़ सकती हो. ·'

वहां पर अधिकतर बातें धर्म सम्बंधी होतीं, लेकिन इसके साथ ही साथ भारतीय इतिहास, राजनीति, समाज आदि की चर्चा भी चलती रहती. साधारणत: विवेकानन्द शान्त, गम्भीर रहते परंतु जब भारत में ब्रिटिश शासन की चर्चा निकल पड़ती तो उनकी भौहें तन जातीं, आवाज ऊँची हो जाती और चेहरा क्रोध से तमतमाने लगता, उनके इस रूप में श्रोताओं को भारतीय जनता के शोषण का हृदयद्रावक चित्र दिखाई पड़ता था, किन्तु भारत अब जाग रहा है और उसके दिन बदलने वाले हैं—इस पर उन्हें विश्वास था और इसे भी वे खुले शब्दों में व्यक्त करते थे.

प्रोफेसर राइट ने शीघ्र ही विवेकानन्द की प्रतिभा को पहचान लिया और इन्हें शिकागो के धर्म महासभा में भाग लेने के लिए उत्साहित किया तथा उनकी कठिनाइयों को हल करने का रास्ता निकाला. उन्होंने कहा—'आपको राष्ट्र में बड़े पैमाने पर परिचित करवाने का केवल यही एक रास्ता है,' परन्तु विवेकानन्द के मार्ग में दो बाधाएं थीं—एक तो उनके पास कोई प्रमाण पत्र या परिचय पत्र नहीं था. दूसरे उनकी गांठ भी खाली थी. विवेकानन्द ने अपनी कठिनाई प्रो० राइट के सामने रखी. प्रो० राइट ने कहा—'आपके प्रमाण पत्र के विषय में मैं आप से कहता हूँ स्वामी, कि यह उसी प्रकार है जैसे सूर्य से कोई उसके चमकने के अधिकार के सम्बंध में पूछे.' फिर उन्होंने विवेकानन्द को धर्म महासभा में हिन्दू धर्म की व्याख्या के प्रतिनिधि के रूप में स्थान प्राप्त करवा देने का आश्वासन दिया. प्रो० राइट की धर्म महासभा से सम्बंधित अनेक मुख्य व्यक्तियों और अधिकारियों से घनिष्ठता थी. उन्होंने तुरंत अपने एक मित्र के पास जो उस समय सदस्यों के चुनाव समिति के सभापति थे, एक पत्र लिखा—'यह जो व्यक्ति है उसकी विद्वत्ता हमारे यहां के सभी प्रोफेसरों की सम्मिलित विद्वता से अधिक है.' उन्होंने स्वामी जी के लिए शिकागो तक का टिकट खरीद दिया और उनके आहार और आवास के लिए इससे संबंधित धर्म महासभा के विशेष समिति के नाम स्वामी का परिचय पत्र दिया. स्वामी की खुशी की सीमा न रही. जान पड़ा जैसे प्रो० राइट के रूप में भगवान ही उनकी

मदद के लिए खड़े हो गये हैं, अंधकारमय और कंटकपूर्ण पथ पर जाने कैसे उजाला छा गया. उस पर आशाओं के शत शत दीप जगमगाने लगे.

एक नयी उमंग के साथ विवेकानन्द ने बोस्टन से शिकागो के लिए राइट परिवार से विदा ली. रास्ते में उनका एक व्यापारी से परिचय हुआ. व्यापारी ने उनसे कहा कि वह शिकागो पहुंच कर उनके गंतव्य स्थान का मार्ग निर्देशन कर देगा. किन्तु शिकागो स्टेशन पर उतरते ही, वहां के जनसमूह में वह जाने कहां खो गया. शायद वह अपने कार्य की व्यस्तता के कारण शीघ्रता में स्वामी को समझाना भूल गया कि डा० जॉन हेनरी बैरोज़ (सदस्य-निर्वाचन समिति के अध्यक्ष) का कार्यालय किस ओर है. विवेकानन्द ने अपनी जेब टटोली—शायद प्रो० राइट के दिये हुए पते से डा० बैरोज़ का ठिकाना मिल जाये. किंतु दुर्भाग्यवश वह पता कहीं खो गया था. अब तो वे बड़े संकट में घिर गये. वे जिससे भी डा० बैरोज़ के दफ्तर का पता पूछते वह कुछ ठीक बता नहीं पाता, कारण विवेकानन्द अभी शिकागो के उत्तर-पूर्वी भाग में थे. इस क्षेत्र में अधिकतर जर्मनी के लोग बसते थे. अतः न वे स्वामीजी की बातों को ठीक तरह से समझ पाते और न स्वामीजी उनकी बातों को. इस तरह पूछताछ करते-करते रात हो गयी. विवेकानन्द किधर जाते, क्या करते. यहां तक कि वे किसी होटल का भी पता नहीं लगा सके जहां जाकर रात बिताते. भटकते-भटकते वे पुनः स्टेशन की ओर पहुंच गये. स्टेशन के पीछे माल परिवहन क्षेत्र था. वहां बहुत बड़े बड़े लकड़ी के खाली बक्से पड़े हुए थे, विवेकानन्द का शरीर और मस्तिष्क अब बिल्कुल थक चुका था. वे अपने को परमेश्वर के हाथों सौंप कर लकड़ी के बक्से में लेट कर विश्राम करने लगे, कुछ ही देर में निद्रा ने संसार की सारी चिताओं और कठिनाइयों से उन्हें मुक्ति दे दी. वे सुख की नींद सोते रहे. दूसरे दिन बाल सूर्य की सुनहली किरणों ने उन्हें झकझोर कर जगा दिया, प्रातःकालीन मंद-मंद वायु गजब की सुगंध से बोझिल थी, विवेकानन्द के शरीर में इसने नयी स्फूर्ति डाल दी, वे उठे और अपनी झोली सम्भाली जिसमें थोड़े-से कपड़े और पुस्तकें थीं. मादक पवन का अनुकरण करते हुए कुछ ही देर में वे नगर के एक बहुत ही भव्य क्षेत्र में पहुंच गये. बड़े-बड़े आलीशान भवन रंग बिरंगे पुष्पों से सुसज्जित बगीचे, चौड़ी चमचमाती सड़कें, लगता था जैसे स्वामी कुबेर की बस्ती में भ्रमण कर रहे हों. यहां ऊंचे स्तर के व्यापारी और करोड़पति बसे हुए थे, विवेकानन्द की तत्कालीन अवस्था इस परिवेश से बिल्कुल विपरीत थी. कठिन यात्रा तथा रात के अद्भुत शय्या स्थल के कारण धूमिल और अव्यवस्थित वस्त्र, भूख की ज्वाला के कारण कांतिहीन मुखमण्डल, पेट के लिए वे द्वार-द्वार पर हाथ फैलाते रहे तथा धर्म महासभा के कार्यालय का मार्ग पूछते रहे. किन्तु धनवानों की दुनिया में उन्होंने यह क्या देखा, कितने द्वार खुले, और जब तक कि ये कुछ पूछें, खटाक से बंद हो गये. न कोई दान, न आश्वासन के दो मीठे बोल. कितने द्वारों पर तीखे कठोर वचनों से स्वागत

हुआ और कितने ही द्वारों पर भृत्यों के द्वारा अपमान का गरल पान करना पड़ा. यह शिव का गरल था. इसे पीकर वे अपमान की अग्नि में जल नहीं गये वरन् उनमें सच्चे सोने के समान निखार आ गया. लेकिन अभी तो भूख और थकान से शरीर निःशक्त हो गया. इस समय तक उन्हें शहर के नाम-धाम सूचक पुस्तक या फोन आदि का भी कुछ ज्ञान नहीं था, इस कारण गंतव्य स्थान का पता लगाने में स्वामी और भी अधिक निस्सहाय हो गये. उन्हें कुछ समझ में नहीं आ रहा था कि अब करें तो क्या करें. अंत में यह श्रांत निश्चेष्ट पथिक सड़क के किनारे चुपचाप बैठ गया. थोड़ी देर बाद पथ के पार वाले महल का द्वार खुला, एक अत्यंत ही सुसंस्कृत एवं भद्र महिला इस संन्यासी के पास आकर खड़ी हुई और बड़ी ही विनम्रता से कोमल शब्दों में पूछा—'श्रीमान् क्या आप धर्म महासभा के सदस्य हैं?' स्वामी की जान में जान आयी, उन्होंने उक्त महिला से अपने समस्याओं का वर्णन किया. महिला उन्हें अपने साथ आदरपूर्वक महल में ले आयी, फिर परिचारकों को बुला कर आदेश दिया कि वे स्वामीजी को अतिथि कक्ष में ले जायें और उनकी आवश्यकताओं की देखभाल करें. उसने स्वामीजी को आश्वासन दिया कि स्नानादि तथा नाश्ते से निवृत्त होकर वह उन्हें स्वयं अपने साथ धर्म महासभा के कार्यालय में ले चलेगी. स्वामी के हृदय का कोना-कोना महिला के प्रति कृतज्ञता से भर गया, ईश्वर की महिमा अपरिमित है, क्षण में कुछ और क्षण में कुछ. स्वामी के हृदय में अदम्य साहस और असीम आत्मविश्वास की अविरल धारा प्रवाहित होने लगी, लगा जैसे गुरुदेव श्री रामकृष्ण का वरद हस्त उनके सर पर है, अब दुनिया की कोई शक्ति उन्हें अपनी मंजिल से पीछे नहीं खींच सकती.

स्नान तथा भोजन के बाद विवेकानन्द उस महिला, श्रीमती जार्ज डब्लू हेल के साथ धर्म महासभा के कार्यालय में गये और प्रो० राइट का दिया हुआ परिचय-पत्र दिया. कार्यालय ने सहर्ष उन्हें सदस्य की मान्यता प्रदान की तथा सभा के दूसरे पूर्वी देशों के सदस्यों के साथ इनके आवास और आहार का प्रबंध किया. वहां कितने प्रमुख व्यक्तियों तथा सभामण्डल के सदस्यों से इनकी जान-पहचान हुई. यह सितम्बर माह की १०वीं तिथि थी. दूसरे दिन विश्व धर्म-महासभा की पहली बैठक प्रारम्भ होने वाली थी. सभी सदस्य इस महत्वपूर्ण दिवस की तैयारी में व्यस्त थे. स्वामी वहां के लोगों से मिलने-जुलने के बाद मनन-चिंतन तथा मौन प्रार्थना में लीन हो गये. धर्म महासभा की सदस्यता की समस्या तो हल हो गयी थी, किन्तु मुख्य परीक्षा अब होने वाली थी. उन्हें विजय चाहिए, उनके सनातन धर्म की विजय, उनके भारत की विजय. स्वामी उसी ध्यान में खोये रहे, तभी गुरुदेव रामकृष्ण की स्मृति साकार हो उठी, गुरुदेव की अंतिम वाणी उनके कानों में गूंजने लगी—'आज मैंने तुम्हें अपना सर्वस्व दे दिया, अब मैं सिर्फ एक गरीब फकीर हूं जिसके पास कुछ नहीं है, इस शक्ति से तुम विश्व का बहुत बड़ा कल्याण करोगे….'

७

धर्म सभा के रंगमंच पर

11 सितम्बर १८९३ का सिहरन भरा प्रातःकाल. शिकागो के नव निर्मित 'आर्ट इंस्टिट्यूट' के भवन पर बड़ी रौनक है. इसके भीतर-बाहर चहल-पहल का समां है. अंदर का वृहत् कक्ष तथा इसके ऊपर बने चारों ओर की बड़ी गैलरी करीब छः सात हजार शिक्षित नर-नारियों से खचाखच भरी है. इसके अतिरिक्त इस भवन के अन्य कमरों में भी जन समुदाय की बाढ़ आ गयी है. वृहत् कक्ष में एक विशाल मंच. इसके ठीक बीचोबीच पीछे की दीवार से लग कर यूनान के दो महान दार्शनिकों की संगमरमर की वृहदाकार प्रतिमाएं खड़ीं हैं. इनके दक्षिण में वरद हस्त उठाये शायद विद्या देवी की ताम्र मूर्ति है. लेकिन इन सबसे भी असामान्य वस्तु है वहां मंच के ठीक मध्य में स्थित एक बड़ी सी राजसिंहासननुमा कुर्सी. इसकी दोनों ओर और पीछे की तीन पंक्तियों में लकड़ी की कुर्सियां अर्धगोलाकार ढंग से सजायी गयी हैं. मंच पर सभी देशों की ध्वजाएं सुशोभित हैं. कुछ देर बाद एक बड़े घंटे की गूंजभरी टंकार सुनाई पड़ने लगती है—टन्···टन्···. एक के बाद दूसरी और दूसरी के बाद तीसरी. इसी तरह दस टंकारें. कक्ष का नितांत शांत वातावरण अब स्पंदित हो गया है. घंटे की अंतिम झंकार की गूंज शून्य में विलीन होते ही मुख्य कक्ष के पीछे वाले कमरे से सभा सदस्य युग्मों में पंक्तिबद्ध होकर अपने नपे तुले गरिमामय कदमों से वृहत्कक्ष के सुसज्जित मंच की ओर बढ़ते दिखाई देते हैं. सबसे पहले सभापति, चार्ल्स कैरोल बोनी, और अमरीकी कैथोलिक चर्च के प्रमुख पादरी, कार्डिनल गिबन्स हाथ में हाथ डाले इस शानदार जुलूस का नेतृत्व कर रहे हैं. इनके पीछे सम्मेलन के मुख्य अधिकारीगण और फिर इनके बाद प्रतिनिधियों की लम्बी पंक्ति. दृश्य बड़ा अद्भुत है. प्रतिनिधियों के विचित्र रंग बिरंगे परिधान और रूप, घुटने से लेकर एड़ी तक भिन्न-भिन्न माप और आकार के ढीले-ढाले लबादे और कुर्ते, टोपी और पगड़ी, ईसाई धर्म का चिह्न क्रास और इस्लाम धर्म का चिह्न अर्द्ध चन्द्र, किसी का सर लहराता कुंतलयुक्त और किसी का मुंडित.

मंच की सिंहासननुमा कुर्सी पर गहरे लाल रंग के परिधान में कार्डिनल गिबन्स और इनकी बगल में सभापति बोनी, अपने लम्बे काले कोट में, बैठे हैं.

इनके दाहिने चीन देश के श्वेत वस्त्रधारी पांच बौद्ध भिक्षु आसन ग्रहण करते हैं. बायीं ओर प्राचीन यूनानी गिरजाघर के आदरणीय वयोवृद्ध पादरी लोग हैं. इन लोगों के वस्त्र ढीले-ढाले काले रंग के हैं और सर पर इन लोगों ने अजीब आकृति की काली टोपियां पहन रखी हैं. इनके हाथों में हाथीदांत की कलात्मक रूप से खुदाई की हुई छड़ियां हैं. कनफ्यूसियस के सिद्धांत का विवेचन करने वाले चीनी सदस्य जो वहां के सम्राट के द्वारा भेजे गये हैं, अपने कद से भारी वस्त्रों में गरिमा पूर्ण ढंग से सजे हुए हैं . इस प्रकार जापान, अफ्रीका, मिश्र तथा भारत के विभिन्न सम्प्रदायों के प्रतिनिधि अपनी-अपनी उत्कृष्ट वेशभूषा में बैठे हैं. भारत के कई लोग हैं—प्रतापचन्द्र मजूमदार ब्रह्म समाज के, वीरचन्द्र गांधी जैन धर्म के, श्रीमती ऐनी बेसेन्ट थियोसोफी के प्रतिनिधि बन कर यहां उपस्थित हैं. बम्बई से नागरकर भी आये हैं. इन्हीं भव्य एवं क्रमानुबद्ध लोगों के बीच में स्वामी विवेकानन्द बैठे हैं—अपने गेरुए अचकन और पगड़ी में. एक विशुद्ध परिव्राजक का रूप—अंदर का विराग नयनों के झरोंखो से साफ दिखाई दे रहा है. श्रोताओं और दर्शकों की उत्सुक आँखें मंच के सुशोभित लोगों पर से फिसलती हुई इसी तरुण साधु पर आकर टिक जाती हैं.

यह विश्व धर्म महासम्मेलन के अधिवेशन का प्रारम्भ था. विश्व के भिन्न-भिन्न भागों में जब-तब कभी एक दूसरे धर्मों या सम्प्रदायों की सभाएँ होती रही थीं, परन्तु यह सच है कि इससे पहले कहीं भी कभी एक साथ सर्व धर्म महासम्मेलन का आयोजन इतने वृहत् रूप में नहीं हुआ था. विश्व के इतिहास में यह धर्म महा-सभा निस्संदेह अपना एक विशिष्ट स्थान रखती है. धर्म के इतिहास में—विशेषकर हिन्दू धर्म के इतिहास में तो यह नये युग का द्वार खोलता है. दुनियां के कोने-कोने से इसके सदस्य आये. ये सदस्य विश्व के विभिन्न धर्मों का प्रतिनिधित्व कर रहे थे. इनकी वाणी में विश्व के करोड़ों व्यक्तियों की भिन्न-भिन्न आस्थाओं और मान्य-ताओं की गूंज थी. संसार के विभिन्न धर्मानुयायी, करोड़ों की संख्या में अपने-अपने धर्म प्रतिनिधियों को अदृश्य रूप से शक्ति प्रदान कर रहे थे.

इस विश्व धर्म महासम्मेलन का आयोजन इसलिए हुआ था कि मनुष्य एक दूसरे के धार्मिक दृष्टिकोण का मूल्यांकन उचित रूप से कर सके. विश्व के विभिन्न धर्मों के प्रति मानव समाज में आदर और सम्मान के भाव जागृत हो सके, मनुष्य एक दूसरे के समीप आये और प्यार के बंधन में बंध जाये. इस सम्मेलन के आयोजन से सम्बंधित कितने ही ऐसे व्यक्ति भी थे जो किसी विशेष धर्म के बंधन में नहीं थे. वे मानव धर्म में विश्वास करते थे. उनका ख्याल था कि यह सम्मेलन सत्य के अन्वेषकों के हृदय में सद्भावना और समझ स्थापित करने में सहयोग देगा. सभापति बोनी इन्हीं महान आत्माओं में से एक थे. स्वामी विवेकानंद ने इनके विषय में एक पत्र में लिखा है—'श्री बोनी कितने अद्भुत व्यक्ति हैं, जरा उनके मस्तिष्क के बारे

में सोचो, जिसने इतने विशाल आयोजन की कल्पना की और उसे सफलतापूर्वक कार्य में परिणत किया; और उल्लेखनीय यह है कि वे पादरी नहीं थे; एक साधारण वकील होकर भी उन्होंने समस्त धर्म सम्प्रदायों के परिचालकों का नेतृत्व किया था. उनका स्वभाव अत्यंत मधुर है, एवं वे विद्वान् और धीर व्यक्ति हैं, उनके हृदय के गम्भीर मर्मस्पर्शी भाव उनके उज्ज्वल नेत्रों से प्रकट होते थे."

लेकिन सम्मेलन के संयोजकों में कुछ ऐसे प्राणी भी थे जो समझते थे कि इस अधिवेशन से सदा के लिए ईसाई धर्म की असंदिग्ध भव्यता और श्रेष्ठता प्रमाणित होगी. दोनों के प्रति उदार एवं श्रद्धापूर्ण भाव रखते हुए भी स्वामी विवेकानन्द का इस विश्व धर्म महासभा के प्रति यही विचार था. उनके एक पत्र में लिखा है—'विश्व के अन्य धर्मों पर ईसाई धर्म की श्रेष्ठता दिखाने के लिए ही अमरीका में विश्व धर्म सभा का आयोजन हुआ है.' जिस धर्म सभा ने स्वामी विवेकानन्द का नाम इतिहास के पृष्ठों पर स्वर्णाक्षरों में लिखवाया, जिसने उन्हें देश-विदेश में ख्याति दिलवाकर अमर बनाया, उसके प्रति उनके ऐसे विचार कुछ अनुचित और अनुदार जान पड़ सकते हैं. परंतु वास्तव में सम्मेलन के आयोजन और वक्तृत्व पर गहन दृष्टि डालने से यह स्पष्ट हो जाता है कि इस सम्मेलन पर ईसाई मत के पक्षपात का रंग चढ़ा हुआ था. विश्व भ्रातृत्व के मुखौटे के अन्दर से ईसाई धर्म अपनी प्रधानता के बोल बोल रहा था.

इन सब संकीर्णताओं से परे हट कर विचार करने पर इस धर्म सम्मेलन का कुछ दूसरा ही रूप दिखाई पड़ता है, उन्नीसवीं शताब्दी के अंत में जबकि संसार वेगपूर्ण गति से भौतिकता की ओर पग बढ़ा रहा था, उस समय विशेषकर अमरीका जैसे देश में विश्व धर्म सभा का आयोजन होना अपने आप में एक अद्वितीय घटना थी. लगता था जैसे सबके ऊपर किसी अदृश्य का हाथ है. वही सब कुछ करवा रहा है. स्वामी विवेकानन्द को भी कुछ ऐसा ही भान हो रहा था. भारत से विदा लेते समय उन्होंने अपने गुरुभाई स्वामी तुरीयानन्द (जो उन्हें बम्बई पहुंचाने आये थे) से कहा था—'इस धर्म सभा का आयोजन इसके लिए (अपनी ओर संकेत करते हुए) हुआ है, मेरा मन ऐसा कह रहा है. कुछ ही दिनों में तुम इसका पता लगा कर देखोगे.'

यद्यपि इन पंक्तियों में स्वामी विवेकानन्द का अहम् बोल रहा है, फिर भी बहुत अंशों में उनके मन ने ठीक ही कहा था. इस सम्मेलन ने पश्चिमी दुनिया में एक नयी विचारधारा प्रवाहित की—भारतीय हिन्दू दर्शन शास्त्र की विचारधारा. इस धारा की स्वच्छता से, उसकी कलकल ध्वनि से तथा सबके परे उसके विराट रूप से पश्चिमी दुनिया अभी तक बहुत कुछ अपरिचित थी. आदरणीय मरविन मरी स्नेल जो उस समय धर्म सम्मेलन के विज्ञान विभाग के सभापति थे, इस सभा के विषय में कहते है—"इसका सबसे बड़ा लाभ यह है कि ईसाई समाज को, विशेषकर अमरीका के लोगों को इसने पूर्णरूपेण बता दिया कि ईसाई धर्म से भी आदरणीय

और दूसरे धर्म हैं, जो अपने नैतिक सौन्दर्य और कार्यकुशलता के बिना एक बाल भी बांका किये, दार्शनिक गहराई में, अध्यात्मिक तीव्रता में, स्वतंत्र विचारशक्ति में और मानव संवेदना की सच्चाई में बहुत आगे बढ़े हुए हैं.'

इसी प्रकार के धर्म का प्रतिनिधित्व करने स्वामी विवेकानंद विश्व धर्म महासभा में उपस्थित हुए थे. सभा का उद्घाटन मधुर वाद्य संगीत के द्वारा किया गया. इसके पश्चात् सभी व्यक्ति खड़े हो गये और सर्वव्यापी परमेश्वर की प्रार्थना एक स्वर से करने लगे. प्रत्येक श्लोक के बाद कार्डिनल के हाथ ऊपर उठते और थोड़ी देर के लिए संगीत थम जाता. प्रार्थना समाप्त होने पर सभापति बारी-बारी से प्रतिनिधियों के नाम उच्चारित करते और इसी क्रम से प्रतिनिधि खड़े होकर कुछ शब्दों के साथ अपने परिचय देते. सभा का प्रातः अधिवेशन मुख्यतः सदस्यों के परिचय तथा छोटे-छोटे भाषणों में बीता. इसमें सबसे पहले यूनानी गिरजाघर के प्रधान धर्माध्यक्ष ने छोटा-सा भाषण दिया. भाषण बहुत ही उदार और भावपूर्ण था. श्रोताओं ने बहुत देर तक तालियां बजायीं. फिर और कुछ लोगों के छोटे-छोटे व्याख्यान हुए. श्रोताओं ने सबको पर्याप्त करतल ध्वनि से उत्साहित किया.

इस बीच सभापति ने स्वामी विवेकानन्द से कई बार व्याख्यान देने के लिए आग्रह किया परन्तु उन्होंने हर बार यही उत्तर दिया—'नहीं, अभी नहीं'. सम्मेलन की भव्यता और गुरुता के कारण उन्हें घबराहट सी हो रही थी. ऐसा दृश्य न तो उन्होंने कहीं देखा था, न सुना था, भला इसमें भाग लेने की बात कौन कहे. परंतु घबराहट की छाया रंचमात्र भी उनके चेहरे पर नहीं उतरी, अंदर ही अंदर सिमटी रही. इसका आभास तो उनके एक पत्र से हमें मिलता है जिसे सम्मेलन के पश्चात् उन्होंने अपने एक शिष्य के पास भारत भेजा था—'निस्संदेह मेरा हृदय धड़क रहा था और जबान प्रायः सूख गयी थी. मैं इतना घबराया हुआ था कि सुबह बोलने की हिम्मत नहीं हुई. उन्हें कुछ समझ में नहीं आ रहा था कि इतनी बड़ी सभा में वे कैसे बोलेंगे—क्या बोलेंगे! वहाँ करीब-करीब सभी लोग बड़ी तैयारी से, गहन अध्ययन के बाद लिखित व्याख्यान दे रहे थे. परन्तु उनके पास तो ऐसा कुछ भी नहीं था. फिर भी वे बेसहारा नहीं थे. उनके पास एक बहुत बड़ी शक्ति थी—रामकृष्ण की शक्ति, जगदम्बा काली की शक्ति. वे इसके अजाने हों, ऐसा भी नहीं था. इसी लिए तो वे सभाकक्ष में निरंतर जगदम्बा की मौन प्रार्थना में लीन थे. अपराह्न में भी व्याख्यान के लिए स्वामी विवेकानन्द को तैयार होते न देखकर सभापति महोदय शायद सोच में पड़ गये कि यह संन्यासी कुछ बोल भी सकेगा या नहीं. अंत में चार प्रतिनिधियों के लिखित वक्तव्य के बाद प्रधानाध्यक्ष के बहुत आग्रह पर वे बोलने के लिए खड़े हुए.

स्वामी विवेकानन्द के मुखमंडल पर प्रज्ज्वलित अग्नि का तेज था. उनकी बड़ी-बड़ी दीप्तिपूर्ण, गम्भीर आंखें एक बार एक कोने से दूसरे कोने तक सम्पूर्ण

श्रोताओं की ओर घूम गयीं. चारों ओर उत्सुकता भरी शांति छा गयी. स्वामीजी ने ज्ञान की देवी सरस्वती को मन ही मन नमस्कार कर (अंग्रेजी) में बोलना प्रारम्भ किया.

पहला वाक्य—'अमरीका की बहनों और भाइयों' उनके होंठों से निकला ही था कि इसका विद्युत प्रवाह श्रोताओं पर दिखाई पड़ा. काफी देर तक तालियों की गड़गड़ाहट से सभा भवन गूंजता रहा. स्वामी ने पीछे स्वयं इस घटना के विषय में लिखा—'दो मिनट तक कानों को बधिर बना देने वाली यह ध्वनि थी.'

इस सम्बन्ध में दूसरा उल्लेख श्रीमती एस० के० ब्लोजेट के द्वारा मिलता है, जो लासएंजेलस में स्वामीजी की आतिथेय बनीं. इन्होंने लिखा है—'१८९३ के शिकागो धर्म महासम्मेलन में मैं भी थी... जब यह युवक उठा और बोला, अमरीका की बहनों और भाइयों, तब करीब सात हजार व्यक्ति, किसी वस्तु की श्रद्धा में, जिसे वे समझ नहीं सके कि क्या है, उठ कर खड़े हो गये. जब यह समाप्त हुआ तब मैंने देखा कि बीसों स्त्रियां उनके समीप पहुँचने के लिए बेंचों को लांघती-फांदती आगे बढ़ रही हैं. मैंने अपने आप से कहा, 'ऐ मेरे बेटे, यदि इस आक्रमण को संभाल सके तो तुम निश्चय ही परमेश्वर हो'. जान पड़ता था कि सारे दर्शक खुशी में उन्मत्त हो गये हों.

स्वामीजी के स्वागत स्वरूप दर्शकों ने अपनी तुमुल करतल-ध्वनि से जिस अपार हर्ष को व्यक्त किया, उसका उचित उत्तर तो स्वामी जी को देना ही था. उन्होंने पुनः बोलना आरम्भ किया—'आप ने जिस सौहार्द्र और स्नेह के साथ हमारा स्वागत किया है, उसके प्रति आभार प्रकट करने के निमित्त खड़े होते समय मेरा हृदय अवर्णनीय हर्ष से भरा जा रहा है. संसार में संन्यासियों की सबसे प्राचीन परम्परा की ओर से मैं आप को धन्यवाद देता हूं, धर्मों की माता की ओर से मैं आपको धन्यवाद देता हूँ, और सभी सम्प्रदायों एवं मतों के कोटि-कोटि हिन्दुओं की ओर से धन्यवाद देता हूँ.' इस स्वागत उत्तर के आरम्भ होने के कुछ देर बाद तक सभाभवन में जय ध्वनि होती रही थी. किन्तु जब वे इसके बाद हिन्दू धर्म की विशाल-हृदयता का स्पष्टीकरण करने लगे तो धीरे-धीरे भवन में पूर्ण शांति छा गयी. उन्होंने कहा—'मैं एक ऐसे धर्म का अनुयायी होने में गर्व का अनुभव करता हूँ जिसने संसार को सहिष्णुता तथा सार्वभौम स्वीकृति दोनों की ही शिक्षा दी है.' हिन्दू धर्म की विशालहृदयता की पुष्टि के लिए उन्होंने वहाँ धर्मग्रंथ के दो श्लोकों की भी चर्चा की—

रुचीनां वैचित्र्यादृजु कुटिलनानापथ जुषाम् ।
नृणामेको गम्यस्त्वमसि पयसामर्णव इव ।।

जैसे विभिन्न नदियां भिन्न-भिन्न स्रोतों से निकल कर समुद्र में मिल जाती हैं, उसी प्रकार हे प्रभो ! भिन्न-भिन्न रुचि के अनुसार विभिन्न टेढ़े-मेढ़े अथवा सीधे रास्ते से जाने वाले लोग अंत में तुझमें ही मिल जाते हैं.

ये यथा मां प्रपद्यान्ते तांस्तथैव भजाम्यहम् ।
मम बर्त्मानुवर्त ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः ।।

जो कोई मेरी ओर आता है चाहे किसी प्रकार से हो, मैं उसको प्राप्त होता हूँ.
लोग भिन्न-भिन्न मार्ग द्वारा प्रयत्न करते हुए अंत में मेरी ही ओर आते हैं.

शिकागो की यह धर्मसभा जो संसार के लिए आशा का संदेश लेकर आयी थी—विश्व को स्वर्णिम प्रभात की रागिनी सुना रही थी—उसके उद्देश्य के सम्बन्ध में स्वामी ने अपने भाषण के अंत में ये विचार व्यक्त किये :

> साम्प्रदायिकता, हठधर्मिता और उसकी वीभत्स धर्मांधता इस सुंदर पृथ्वी पर बहुत समय तक राज्य कर चुकी है. वे पृथ्वी को हिंसा से भरती रही हैं, उसको बारम्बार मानवता के रक्त से नहलाती रही हैं, सभ्यताओं को विध्वंस करती और पूरे-पूरे देशों को निराशा के गर्त में डालती रही हैं. यदि ये वाभत्स दानवी शक्तियां न होतीं तो मानव समाज आज की अवस्था से कहीं अधिक उन्नत हो गया होता. पर अब उनका समय लद चुका है, और मैं हृदय से आशा करता हूँ कि आज प्रात: इस सभा के सम्मान में जो घंटा ध्वनि हुई है वह समस्त धर्मांधता का, तलवार या लेखनी के द्वारा होने वाले सभी उत्पीड़नों का, तथा एक ही लक्ष्य की ओर अग्रसर होने वाले मानवों की पारस्परिक कटुता का मृत्युनाद सिद्ध हो.

११ सितम्बर का तीसरा पहर समाप्त होते-होते स्वामीजी ने अपने इस प्रथम लघु व्याख्यान का समापन किया. सभा की समाप्ति के बाद रात्रि में जब स्वामीजी अपने विश्राम-कक्ष में पधारे तो फूट-फूट कर रोने लगे—बिल्कुल एक बच्चे की तरह जो अपने प्रिय खिलौने को टूटा हुआ देख कर रो रहा हो. भारत के लोगों की टूटी हुई आत्मा, बिखरा हुआ साहस और अभिमान, उनकी निराशापूर्ण दरिद्रता और क्लेश सभी एक साथ स्वामीजी के हृदय को टुकड़े-टुकड़े कर रहे थे. अमरीका जैसे सुखी-सम्पन्न एवं भौतिकतावादी देश में उन्हें इतना सम्मान मिला, इतनी जयध्वनि हुई. क्या इस जयनाद से भारत माँ का कष्ट दूर होगा ? क्या इससे वहां के लोग सुखी होंगे ? निराशा के अंधकार में पड़े हुए कोटि-कोटि भारतवासियों के अशिक्षित मस्तिष्क, भूखे पेट और नंगे बदन के सजीव चित्र स्वामीजी की आँखों के सामने उभरने लगे. भारत के लोगों के कष्ट का ध्यान आते ही, सभा-सदन के रूप में मिली हुई यहां की सुख-सुविधा उन्हें काट खाने लगी. कुछ देर तक वे बहुत ही विक्षिप्तावस्था में थे. वे सोच रहे थे यदि उनसे स्वजनों का दुख-दर्द दूर नहीं हो सका तो यहां का जीवन, यहां की ख्याति सब व्यर्थ है—किसी का कोई मोल नहीं.

सम्मेलन की बैठकें—प्रात:, दोपहर और संध्या—निरंतर सत्रह दिनों तक चलती रहीं. सैकड़ों निबंध इस सम्मेलन में पढ़े गये और उन पर वाद-विवाद हुए. दिनोंदिन दर्शकों की संख्या बढ़ती गयी. चौथे दिन तो जन-सागर इतना बढ़ गया कि उसकी धारा को 'आर्ट इंस्टीच्यूट' में बाँधना कठिन हो गया. पड़ोस के 'वाशिंगटन हॉल' में लोगों के बैठने का प्रबंध किया गया. वहां सम्पूर्ण कार्यक्रम का अक्षरश:

विवरण सुनने का प्रबंध था. स्वामी विवेकानन्द का प्रारम्भिक व्याख्यान बहुत ही छोटा था फिर भी इसने दर्शकों के हृदय को छू लिया. सनातन धर्म की सहिष्णुता, सार्वभौमिकता, इसकी आंतरिक सचाई तथा हृदय की विशालता ने सभासदों तथा दर्शकों को प्रचुर मात्रा में प्रभावित किया था.

इसके बाद स्वामी विवेकानन्द ने १५ सितम्बर को भी एक छोटा-सा व्याख्यान दिया. विषय था—'हमारे मतभेद के कारण.' स्वामी जी के भाषण के पूर्व अपराह्न अधिवेशन में विभिन्न धर्मावलम्वी अपने-अपने धर्म की प्रधानता का प्रतिपादन करने में जी जान से जुटे हुए थे. गरमागरम वाद-विवाद चल रहा था. जब स्वामीजी की बारी आयी तो इन्होंने अपने धर्म के समर्थन में कुछ नहीं कहा, वलिक विभिन्न धर्मों में मतभेद का कारण समझाने के लिए, लोगों को एक मेंढक की रोचक कहानी कह सुनायी. एक मेंढक का जन्म और लालन-पालन एक कुएँ में हुआ था, छोटा कुआं ही उसका सारा संसार था. एक दिन समुद्र में रहने वाला एक मेंढक वहाँ आया और कुएँ में गिर गया. पहले मेंढक ने दूसरे से पूछा—'तुम कहाँ से आये हो ?' दूसरे मेंढक ने कहा—'समुद्र से.' फिर समुद्र वाले मेंढक ने कूप के मेंढक से अपने समुद्र के विस्तार की बात कही. किन्तु कूप के मेंढक को समुद्र की छलांग का अनुभव तो था नहीं, अतः उसे समुद्री मेंढक की बात पर विश्वास नहीं हो रहा था और वह अपने कूप को ही सबसे बड़ा संसार मानरहा था. उसने कहा—'कुएँ से बड़ा और कुछ हो ही नहीं सकता. तुम बड़े झूठे हो. अरे, इसे बाहर निकाल दो.' स्वामीजी ने कहा, 'हम सभी धर्मावलम्बी इसी प्रकार के अपने-अपने क्षुद्र कुएँ में बैठकर अपने-अपने धर्म को एक दूसरे से बड़ा कह कर झगड़ा मोल ले रहे हैं. मैं आप अमरीका वालों को धन्य कहता हूँ, क्योंकि आप हम लोगों के इन छोटे-छोटे संसारों की क्षुद्र सीमाओं को तोड़ने का महान् प्रयत्न कर रहे हैं.'

तदोपरांत १९ सितम्बर को स्वामी विवेकानन्द ने धर्म सभा में अपना प्रमुख भाषण 'हिन्दू धर्म' पर दिया. यह लिखित निबंध था. इसमें इन्होंने हिन्दू धर्म की व्युत्पत्ति, विस्तार, मनोविज्ञान और दर्शन के सिद्धांतों का वैज्ञानिक आधार पर प्रतिपादन किया. हिन्दू धर्म की व्युत्पत्ति और विस्तार के सम्बंध में उनके निबंध में ये विचार थे :—'हिन्दू जाति ने अपना धर्म वेदों से प्राप्त किया है. उनकी धारणा है कि वेद अनादि और अनंत हैं. श्रोताओं को सम्भव है, यह बात हास्यास्पद लगे कि कोई पुस्तक अनादि और अनंत कैसे हो सकती है. वेदों का अर्थ है भिन्न-भिन्न कालों में भिन्न-भिन्न व्यक्तियों द्वारा आविष्कृत आध्यात्मिक सत्यों का संचित कोष. जिस प्रकार गुरुत्वाकर्षण का सिद्धांत मनुष्यों के पता लगाने के पूर्व से ही अपना काम करता चला आया था, और आज यदि मनुष्य जाति उसे भूल भी जाये तो भी यह नियम अपना काम करता ही रहेगा, ठीक यही बात आध्यात्मिक जगत का शासन करने वाले नियमों के सम्बंध में भी है. एक आत्मा

का दूसरी आत्मा के साथ और जीवात्मा का आत्माओं के परम पिता के साथ जो नैतिक या आध्यात्मिक सम्बंध है, वे उनके पूर्व भी थे, और हम यदि उन्हें भूल भी जायें तो भी बने रहेंगे. वेदांत दर्शन की अत्युच्च आध्यात्मिक उड़ानों से लेकर आधुनिक विज्ञान के नवीनतम आविष्कार जिसकी केवल प्रतिध्वनिमात्र प्रतीत होते हैं, मूर्तिपूजा के निम्नस्तरीय विचारों एवं तदानुषंगिक अनेकानेक पौराणिक दंतकथाओं तक और बौद्धों के अज्ञेयवाद तथा जैनों के निरीश्वरवाद इनमें से प्रत्येक को हिन्दू धर्म में स्थान है.'

हिन्दू धर्म के वेदांत दर्शन की व्याख्या करते हुए उन्होंने बताया कि हिन्दू धर्म सभी प्रकार के धार्मिक विचारों तथा सभी प्रकार की आराधनाओं का समन्वय करता है. 'हिन्दुओं के अनुसार आत्मा पूर्ण परब्रह्म परमात्मा का अंश है. यह परमात्मा सर्वत्र है : शुद्ध, निराकार और सर्वशक्तिमान्. यह अनादि और अनंत है. इसके आदेश से वायु चलती है, अग्नि दहकती है, बादल बरसते हैं और मृत्यु पृथ्वी पर नाचती है. इस कारण आत्मा भी नित्य, शुद्ध, बुद्ध और मुक्त है. यह अनादि और अमर है. इसे शस्त्र काट नहीं सकते, अग्नि दग्ध नहीं कर सकती, जल भिगो नहीं सकता और वायु सुखा नहीं सकती.' स्वामीजी ने कहा—"आत्मा एक ऐसा वृत्त है, जिसकी परिधि कहीं नहीं है, किन्तु जिसका केन्द्र शरीर में स्थिर है. और मृत्यु का अर्थ है इस केन्द्र का एक शरीर से दूसरे शरीर में स्थानांतरित हो जाना.' हिन्दू धर्म पूर्वजन्म में विश्वास करता है. मनुष्य का वर्तमान पूर्वजन्म के कर्मों पर तथा भविष्य, वर्तमान के कर्मों से निर्धारित होता है.' मुक्ति के सम्बंध में स्वामीजी ने वेद की वाणी का उद्धरण प्रस्तुत किया—'आत्मा दिव्य स्वरूप है, वह केवल पंचभूतों के बंधनों में बंध गयी है और उन बंधनों के टूटने पर वह अपने पूर्णत्व को प्राप्त कर लेगी. इस अवस्था का नाम मुक्ति है, जिसका अर्थ है स्वाधीनता—अपूर्णता के बंधन से छुटकारा, जन्म-मृत्यु से छुटकारा.' यह बंधन केवल ईश्वर की दया से ही टूट सकता है और यह दया पवित्र लोगों को ही प्राप्त होती है. अतः आत्मा की पवित्रता ही भगवान के अनुग्रह की प्राप्ति का एकमात्र साधन है.

उन्होंने कहा कि 'परमब्रह्म के साक्षात्कार, उनमें आत्मसात होने के लिए मनुष्य अहम् भावना के भ्रमजाल से निकल भागना चाहिए. उस असीम विश्व-व्यक्तित्व मुक्ति की प्राप्ति के लिए इस कारास्वरूप दुखमय क्षुद्र व्यक्तित्व का अंत होना चाहिए. जब मैं प्राणरूप से एक हो जाऊँगा, तभी मृत्यु के हाथ से मेरा छुटकारा हो सकता है; जब मैं आनंदस्वरूप हो जाऊँगा, तभी दुख का अंत हो सकता है; जब मैं ज्ञानस्वरूप हो जाऊँगा, तभी सब अज्ञान का अंत हो सकता है. यह अनिवार्य वैज्ञानिक निष्कर्ष भी है. विज्ञान ने मेरे निकट यह सिद्ध कर दिया है कि हमारा यह भौतिक व्यक्तित्व भ्रममात्र है, वास्तव में मेरा यह शरीर एक अविच्छिन्न जड़ सागर का एक क्षुद्र सदा परिवर्तित होने वाला पिण्ड है, और मेरे दूसरे पक्ष—आत्मा

के सम्बंध में अद्वैत ही अनिवार्य निष्कर्ष है.'

अपने निबंध के अंतिम अनुच्छेदों में स्वामीजी वेदांत दर्शन के निर्गुण उपासना से अलग हट कर परमेश्वर की सगुण उपासना का महत्व समझाते हैं. उनके विचार से भारतवर्ष में अनेकेश्वरवाद नहीं है. यद्यपि ईश्वर की सगुण उपासना में आस्था रखने वाले भक्त अनेकानेक देवी देवताओं की पूजा अर्चना करते हैं फिर भी—'यदि प्रत्येक मंदिर में कोई खड़ा होकर सुने, तो वह यही पायेगा कि भक्तगण सर्वव्यापित्व आदि ईश्वर के सभी गुणों का आरोप उन मूर्तियों में करते हैं. यह अनेकेश्वरवाद नहीं है, और न एकदेववाद से ही इस स्थिति की व्याख्या हो सकती है. गुलाब को चाहे दूसरा कोई भी नाम क्यों न दे दिया जाये, पर सुगंधि तो एक सी वैसी ही मधुर रहेगी. नाम ही व्याख्या नहीं होती.' मूर्तिपूजा के समर्थन में उन्होंने फिर कहा—'मन में किसी मूर्ति के आये बिना सोच सकना उतना ही असम्भव है, जितना श्वास लिये बिना जीवित रहना.......इसीलिए तो हिन्दू आराधना के समय बाह्य प्रतीक का उपयोग करता है' वास्तव में यदि कोई बाह्य प्रतीक मन में नहीं रहे तो ईश्वर का एकाग्रचित्त होकर ध्यान नहीं किया जा सकता. करीब-करीब सभी सगुणोपासक यह अच्छी तरह जानते हैं कि उनके इष्ट-देव की मूर्ति सर्वव्यापी, अनादि, अनंत और अरूप परमेश्वर का प्रतीक मात्र है.

स्वामीजी ने धर्म शास्त्र का एक श्लोक सुनाया. अर्थ था— 'बाह्यपूजा या मूर्तिपूजा सबसे नीचे की अवस्था है; आगे बढ़ने का प्रयास करते समय मानसिक प्रार्थना साधना की दूसरी अवस्था है, और सबसे उच्च अवस्था तो वह है जब परमेश्वर का साक्षात्कार हो जाये.' उन्होंने उपनिषद से एक और श्लोक उद्धृत किया. एक मूर्तिपूजक भक्त अपनी उपासना की अंतिम सीमा तक पहुँच गया है और कह रहा है—'सूर्य उस परमात्मा को प्रकाशित नहीं कर सकता, न चंद्रमा या तारागण ही; वह विद्युत प्रभा भी परमेश्वर को उद्भासित नहीं कर सकती, तब इस सामान्य अग्नि की बात ही क्या ? ये सभी तो उसी परमेश्वर के कारण प्रकाशित होते हैं.'

पर वह मूर्तिपूजक भक्त किसी की मूर्ति को अपमानित नहीं करता न उसकी पूजा को पाप बताता है. इसे जीवन की एक आवश्यक अवस्था समझ कर उसको स्वीकार ही नहीं करता, बल्कि नतमस्तक होता है. भारत में अनेक साधकों ने मूर्तिपूजा की सहायता से ही ईश्वर के दिव्य स्वरूप को पाया है. दिव्य स्वरूप की प्राप्ति के बाद भी उन्होंने मूर्तिपूजा को भ्रमात्मक कभी नहीं कहा, वरन् भावपूर्ण स्थिति में उन्हें उस मूर्ति में ही ईश्वर का विराट् दिव्य रूप दिखाई पड़ा. स्वामीजी ने विषय को फिर स्पष्ट किया—'हिन्दू की दृष्टि में मनुष्य भ्रम से सत्य की ओर नहीं जा रहा है, वह तो सत्य से सत्य की ओर, निम्न श्रेणी के सत्य से उच्च श्रेणी के सत्य की ओर अग्रसर हो रहा है.'

इस प्रकार हिन्दुओं के धार्मिक विचारों की संक्षिप्त रूपरेखा प्रस्तुत करने के

वाद निबंध के अंत में स्वामीजी ने एक सार्वभौमिक धर्म की चर्चा की—'जो किसी देश और काल से सीमाबद्ध नहीं होगा—वह उस असीम ईश्वर के सदृश ही असीम होगा.' जो संसार के सभी कोटियों के सभी प्राणियों पर एक सा प्रकाश वितरण करता रहेगा. यह विश्व धर्म सभी धर्मों की अच्छाइयों को अपने बाहुपाश में आबद्ध कर लेगा. और मानवता को सुकार्य एवं प्रेम का संदेश देगा. अंत में उन्होंने अमरीका को सम्बोधित करते हुए कहा :—'ऐ स्वाधीनता की मातृभूमि कोलम्बिया, तू धन्य है. यह तेरा ही सौभाग्य है कि तूने अपने पड़ोसियों के रक्त से अपने हाथ कभी नहीं भिगोये, तूने अपने पड़ोसियों का सर्वस्व हरण कर सहज में ही धनी और सम्पन्न होने की चेष्टा नहीं की, अतएव समन्वय की ध्वजा फहराते हुए सभ्यता की अग्रणी होकर चलने का सौभाग्य तेरा ही था.'

अमरीका की प्रशंसा सुनकर अमरीकावासियों के हृदय में हर्ष का संचार होना स्वाभाविक था. किन्तु इसके परे एक और चीज थी जिसने सभा के सदस्यों तथा सभी दर्शकों पर जादू डाल रखा था. यह चीज स्वयं स्वामी विवेकानन्द थे. उनका काषाय वस्त्र, हृष्ट-पुष्ट तरुण शरीर, बड़ी-बड़ी चुभती हुई सी काली आँखें, नुकीली नाक, प्रस्तर मूर्ति के समान कुशलता से तराशे हुए होंठ और उनसे प्रस्फुटित अमर सत्य की ओजस्वी वाणी—इन सबने स्वामीजी के व्यक्तित्व को चुम्बक का आकर्षण दे रखा था. उनका व्याख्यान भावपूर्ण था और भाषा कवित्वमयी—मानो सोने में सुगंध. उनके सम्मुख अमरीका की जिज्ञासु और जागरूक जनता थी. अमरीकावासियों के सामने, उन्हीं की आंग्ल भाषा में इन्होंने बहुत ही सहज भाव से एक ऐसी अत्युत्तम रचना प्रस्तुत की कि सभा भवन के सभी लोग मुग्ध हो गये. उसकी आत्मा समन्वय की भावना से सुवासित थी.

बहन निवेदिता ने स्वामी के इस भाषण के सम्बंध में कहा है—'जब उन्होंने अपना भाषण आरम्भ किया तो विषय था, 'हिन्दुओं के धार्मिक विचार', किन्तु जब उन्होंने अंत किया, तब तक हिन्दू धर्म की सृष्टि हो चुकी थी.' स्वामी के सम्मुख उपस्थित विशाल श्रोता समूह पाश्चात्य विचारधारा का ही समर्थक था—उसी का प्रतिनिधित्व कर रहा था. किन्तु इस भाषण के पश्चात् उनकी विचार पद्धति का दिशा-परिवर्तन हो गया. पाश्चात्य विचार धारा के अतिरिक्त कोई और सरिता है जिसका स्वच्छ, निर्मल जल दूसरों को आकर्षित करने की सामर्थ्य रखता है, इसका आभास पश्चिम को मिल गया.

२० सितम्बर को स्वामी ने बहुत ही छोटा सा भाषण दिया. विषय था—'धर्म भारत की प्रधान आवश्यकता नहीं.' इसमें उन्होंने ईसाइयों के द्वारा भारत में भेजे हुए धर्म प्रचारकों की कड़ी आलोचना की. किसी अप्रिय सत्य को हृदय में छिपा रखना उन्होंने नहीं सीखा था. ईसाइयों के देश में ही उन्होंने ईसाई धर्म के इस 'धर्म प्रचार' के कार्य की निन्दा की. उन्होंने कहा—'आप ईसाई लोग जो मूर्तिपूजकों की आत्मा का उद्धार करने के लिए अपने धर्म प्रचारकों को भेजने के लिए इतने उत्सुक

रहते हैं, उनके शरीरों को भूख से मर जाने से बचाने के लिए कुछ क्यों नहीं करते ? भारतवर्ष में जब भयानक अकाल पड़ा था, तो सहस्रों और लाखों हिन्दू क्षुधा से पीड़ित मर गये, पर आप ईसाइयों ने उनके लिए कुछ नहीं किया. आप लोग सारे भारत में जाकर गिरजे बनवाते हैं, पर पूर्व का प्रधान अभाव धर्म नहीं है, उनके पास धर्म पर्याप्त है—जलते हुए भारत के लाखों दुखार्तर भूखे लोग सूखे गले से रोटी के लिए चिल्ला रहे हैं. वे हमसे रोटी मांगते हैं, और हम उन्हें देते हैं पत्थर. क्षुधार्त को धर्म का उपदेश देना उनका अपमान करना है. भारतवर्ष में यदि कोई पुरोहित द्रव्य प्राप्ति के लिए धर्म का उपदेश करे, तो वह जाति से च्युत कर दिया जायेगा और लोग उस पर थूकेंगे. मैं यहां पर अपने दरिद्र भाइयों के लिए सहायता मांगने आया था, पर मैं यह पूरी तरह समझ गया हूँ कि मूर्तिपूजकों के लिए ईसाई धर्मावलम्बियों से, और विशेषकर उन्हीं के देश में सहायता प्राप्त करना कितना कठिन है.'

२६ दिसम्बर को 'बौद्ध धर्म और हिन्दू धर्म की निष्पत्ति' पर स्वामीजी ने एक और व्याख्यान दिया. उन्होंने बताया कि बौद्ध धर्म और हिन्दू धर्म में कोई बहुत बड़ी असमानता नहीं हैं. बौद्ध धर्म भी एक प्रकार से हिन्दू धर्म अर्थात् वैदिक धर्म से ही प्रस्फुटित हुआ है. उन्होंने बताया कि हिन्दू धर्म के दो भाग हैं—कर्मकांड और ज्ञानकांड, ज्ञानकांड का विशेष अध्ययन संन्यासी लोग करते हैं, बौद्ध धर्म मुख्यतः इसी से सम्बंधित है. ज्ञानकांड में जाति भेद नहीं है, अतः बौद्ध धर्म में भी हम जाति भेद नहीं पाते. हिन्दू धर्म और बौद्ध धर्म में वैसा ही सम्बंध है जैसा यहूदी तथा ईसाई धर्म में. ईसामसीह यहूदी थे, और शाक्य मुनि हिन्दू. यहूदियों ने ईसा को नहीं समझा और उन्हें सूली पर चढ़ा दिया, परन्तु हिन्दुओं ने शाक्य मुनि को ईश्वर के रूप में देखा. यह बात दूसरी है कि हिन्दुओं ने हिन्दू धर्म और बौद्ध धर्म को अलग-अलग रूप में ग्रहण किया. इसका मुख्य कारण यह है कि उस युग में हिन्दू धर्म के कर्मकांड रूप में बहुत कुछ अशुद्धियाँ आ गयी थीं, हिन्दू धार्मिक ग्रन्थों की भाषा संस्कृत अब जन-भाषा नहीं रह गयी थी, यह कुछ चुने हुए पंडितों की भाषा थी. अतः हिन्दू धर्म का वास्तविक दर्शन क्या है इसे साधारण जनता नहीं समझ पा रही थी. परन्तु बुद्धदेव जनभाषा का सहारा लेकर ऊँच-नीच सभी को एक सतह पर रख कर ज्ञानोपदेश देते रहे. बुद्ध का आविर्भाव हिन्दू धर्म का विनाश करने नहीं बल्कि उसमें सुधार लाने के लिए हुआ था. बौद्ध धर्म, अपनी जन्मभूमि भारतवर्ष में बहुत ही कम समय तक जीवित रह सका, कारण 'इसने जनता के बीच से उस सनातन परमेश्वर को उठा लिया जिसमें हर नर-नारी इतने अनुराग से आश्रय लेता है.' परंतु इसके साथ ही साथ बौद्ध धर्म में जो समाज सुधार का उत्साह, सर्वभूतों के प्रति, दीन, दुर्बल और अज्ञानियों के प्रति आश्चर्यजनक सहानुभूति और करुणा के भाव निहित थे, उसके प्रति तत्कालीन हिन्दू धर्म अपनी आंखें बंद किये हुए था.

अपने भाषण में हिन्दू धर्म को बौद्ध धर्म की जननी के रूप में चित्रित करते हुए भी स्वामी इस पर जोर देना नहीं भूले कि बौद्ध धर्म में कुछ अपनी मौलिकताएँ थी. अंत में उन्होंने कहा—'हिन्दू धर्म बौद्ध धर्म के बिना नहीं रह सकता और न बौद्ध धर्म हिन्दू धर्म के बिना ही. हिन्दू धर्म का पांडित्यपूर्ण दर्शन और बौद्ध धर्म का विशाल हृदय दोनों जब तक पृथक्-पृथक् रहेंगे, भारत का पतन अवश्यंभावी है, दोनों के सम्मिलन से ही भारत का कल्याण सम्भव है.'

अधिवेशन में स्वामीजी प्रतिदिन किसी न किसी विषय पर भाषण देते. कभी कभी तो उनकी बोलने की तबियत नहीं रहने पर भी उनसे अधिवेशन के अंत में दस पंद्रह मिनट के छोटे से व्याख्यान के लिए आग्रह किया जाता. इसका एक विशेष कारण था सभा भवन में दस बजे दिन से बैठे हुए श्रोतागण संध्या के पूर्व ही धीरे-धीरे उठ कर जाने लगते. किन्तु जब मंच पर यह घोषणा की जाती कि सभा विसर्जित होने के पूर्व स्वामीजी दस मिनट का लघु भाषण देंगे, तब सभी श्रोतागण और दर्शक इस दस मिनट के आनंद के लिए न जाने कई घंटे अपनी सीट पर ऊबते हुए बैठे रह जाते.

२७ सितम्बर विश्व धर्म महासभा का अंतिम दिन था. सभा के अंतिम अधिवेशन में स्वामीजी पुनः बोलने के लिए खड़े हुए. धर्म महासभा की सफलता के लिए उन्होंने सभी को भाव भीने शब्दों में धन्यवाद दिया—'उन महानुभावों को मेरा धन्यवाद है, जिनके विशाल हृदय तथा सत्य के प्रति अनुराग ने पहले इस अद्भुत स्वप्न को देखा और उसे कार्यरूप में परिणत किया, उन उदार भावों को मेरा धन्यवाद जिससे यह सभामंच आप्लावित होता रहा है. इस प्रबुद्ध श्रोतामंडली को मेरा धन्यवाद, जिसने मुझ पर अविकल कृपा रखी है और जिसने मत-मतांतरों के मनो-मालिन्य को हलका करने का प्रयत्न करने वाले प्रत्येक विचार का सत्कार किया है, इस समसुरता में कुछ बेसुरे स्वर भी बीचो-बीच में सुने गये हैं, उन्हें मेरा विशेष धन्यवाद, क्योंकि उन्होंने अपने स्वर वैचित्र्य से इस समरसता को और भी मधुर बना दिया है.' इसके उपरांत उन्होंने श्रोताओं को धार्मिक एकता का सही अर्थ समझाया—'यदि कोई यह आशा कर रहा है कि यह एकता किसी एक धर्म की विजय और बाकी सभी धर्मों के विनाश में सिद्ध होगी, तो उनसे मेरा यह कहना है कि भाई, तुम्हारी यह आशा असम्भव है. क्या मैं यह चाहता हूँ कि ईसाई लोग हिंदू हो जाएं ? कदापि नहीं, ईश्वर ऐसा न करें. क्या मेरी यह इच्छा है कि हिंदू या बौद्ध लोग ईसाई हो जायें ? ईश्वर इस इच्छा से बचाये,···ईसाई को हिंदू या बौद्ध नहीं हो जाना चाहिए और न हिंदू या बौद्ध को ईसाई. पर हाँ, प्रत्येक को चाहिए कि वह दूसरों के सार-भाग को आत्मसात करके पुष्टि लाभ करे और अपने वैशिष्ट्य की रक्षा करते हुए अपनी निजी वृद्धि के नियम के अनुसार वृद्धि को प्राप्त हो.'

धर्म महासभा की उन्नति इसी विचार की पुष्टि थी. स्वामीजी के ही ओजस्वी

शब्दों में : 'इस धर्म महासभा ने जगत के समक्ष यदि कुछ प्रदर्शित किया है, तो वह यह है : इसने यह सिद्ध कर दिया है कि शुद्धता, पवित्रता, और दयाशीलता किसी सम्प्रदाय विशेष की ऐकांतिक सम्पत्ति नहीं है, एवं प्रत्येक धर्म ने श्रेष्ठ एवं अतिशय उन्नत चरित्र स्त्री-पुरुषों को जन्म दिया है. अब हम प्रत्यक्ष प्रमाणों के बावजूद भी यदि कोई ऐसा स्वप्न देखें कि अन्यान्य धर्म नष्ट हो जायेंगे और केवल उसी का धर्म जीवित रहेगा, तो उस पर मैं अपने हृदय के अन्तस्तल से दया करता हू और उसे स्पष्ट बतलाये देता हूँ कि शीघ्र ही सारे प्रतिरोधों के रहते हुए प्रत्येक धर्म की पताका पर यह लिखा होगा—'सहायता करो, लड़ो मत. पर-भाव-ग्रहण, न कि पर-भाव-विनाश; समन्वय और शांति, न कि मतभेद और कलह'.

इस प्रकार अपने आप में अकेले इस भारतीय संन्यासी ने हृदय की सम्पूर्ण सचाई के साथ विश्व के सभी धर्मो का उचित महत्व समझाया तथा अनेक बातों में उन्हें एक दूसरे से सम्बंधित बताया. किंतु इसके साथ ही साथ हिन्दू धर्म और उसके दर्शन की इतने प्रभावोत्पादक रूप में व्याख्या कर उसने असंख्य विदेशियों के हृदय जीत लिये. अपने आकर्षक व्यक्तित्व, विद्वत्ता, विनम्रता, वक्तृत्वकला एवं मधुर संभाषण के कारण वह शिकागो शहर मे चर्चा का मुख्य विषय बन गया. नगर के रास्ते-रास्ते पर जगह-जगह आदमकद तस्वीरे लगायी गयीं और उनके नीचे वृहत अक्षरों में लिखा गया —'संन्यासी विवेकानंद'. मार्ग में गुजरने वाले विभिन्न सम्प्रदायों के हजारों पथिक इन चित्रों के प्रति भक्ति के साथ सम्मान प्रदर्शित करते, नतमस्तक होते और चले जाते. अमरीका के न जाने कितने प्रमुख समाचार पत्र एवं पत्रिकाओं ने स्वामी की प्रशंसात्मक चर्चा छापी. 'न्यूयार्क हेरल्ड' पत्र ने लिखा—'धर्म महासभा में वे निस्सदेह सर्वश्रेष्ठ व्यक्ति हैं. उन्हें सुनने के बाद लगता है कि उनके राष्ट्र में हम धर्म-प्रचारकों को भेज कर कैसा मूर्खतापूर्ण कार्य करते हैं.'

'बोस्टन ईवनिंग ट्रांसपोर्ट' ने कहा—'वे अपने व्यक्तित्व और भावना की महानता के कारण सम्मेलन में सबसे अधिक प्रिय थे. यदि वे सिर्फ मंच की ओर गुजरते तो तालियां बजने लगती. हजारों लोगों के इस विशेष रूप से लक्षित अनुमोदन एवं हर्ष को वे बाल-सुलभ कृतज्ञता के रूप में स्वीकार करते, वहाँ लेशमात्र भी अहंकार का चिह्न दिखाई नहीं देता.…धर्म सभा में लोगों को अधिवेशन के अंत तक ठहराये रखने के लिए वे विवेकानन्द का कार्यक्रम सबसे अंत में रखते थे.'

'द प्रेस आफ अमेरिका' ने स्वामीजी के सम्बंध में लिखा—'हिन्दू दर्शन और विज्ञान में सुपंठित उपस्थित सभासदों में अग्रगण्य प्रचारक स्वामी विवेकानन्द ने अपने भाषण द्वारा विराट् सभा को मानो सम्मोहिनी शक्ति के बल पर मुग्ध कर रखा था. प्रत्येक आधुनिक ईसाई चर्च के पादरी, प्रचारकगण सभी उपस्थित थे, परन्तु स्वामीजी की भाषणपटुता की आंधी में उनके वक्तव्य के सभी विषय बह गये थे.' 'द इंटीरियर शिकागो', 'द सदरफोर्ड अमेरीका', 'द न्यूयार्क क्रिटिक' आदि पत्रों ने

भी इसी प्रकार के प्रशंसात्मक लेख छापे. कुछ पत्रों ने तो उनके सम्पूर्ण भाषणों को उद्धृत कर दिया.

शिकागो धर्म सम्मेलन के विज्ञान विभाग के सभापति श्री मरविन स्नेल ने लंदन की सुप्रसिद्ध पत्रिका 'पायोनियर' में इस महासभा के विषय में इस प्रकार लिखा—'हिन्दू धर्म ने इस महासभा और जनसाधारण पर जिस प्रभाव का विस्तार किया है, वैसा करने में कोई दूसरा धर्मसंघ समर्थ नहीं हुआ. हिन्दू धर्म के एकमात्र आदर्श प्रतिनिधि स्वामी विवेकानन्द ही इस महासभा के निर्विवाद रूप से सबसे अधिक लोकप्रिय और प्रभावशाली व्यक्ति हैं. उन्होंने इस धर्म महामंडल के व्याख्यान मंच पर तथा विज्ञान शाखा की सभा में अक्सर भाषण दिये हैं. ईसाई अथवा किसी भी अन्य धर्म के व्याख्याता को किसी भी समय इस प्रकार के उत्साह के साथ आदर प्राप्त नहीं हुआ. वे जहाँ भी जाते थे, वहीं जनता की भीड़ उमड़ पड़ती थी और लोग उनकी प्रत्येक बात को सुनने के लिए आग्रह के साथ उत्कंठित रहा करते थे. ··जिन्होंने उनका भाषण सुना है और विशेष रूप से जो लोग उनके साथ व्यक्तिगत रूप से परिचय प्राप्त कर सके हैं, वे सदैव ही उनकी मुक्त कंठ प्रशंसा कर रहे हैं. घोर कट्टर ईसाई भी उनके सम्बंध में कह रहे हैं, 'स्वामी मनुष्यों के बीच में अति मानव हैं' !···भारतवर्ष ने स्वामी को भेजा है—इसलिए अमरीका धन्यवाद दे रहा है. लेकिन जिन्होंने अभी तक विश्वबंधुत्व तथा हृदय एवं मन की उदारता की शिक्षा प्राप्त नहीं की है, अमरीका की ऐसी संतानों को अपने आदर्श का प्रदर्शन करने तथा शिक्षा देने के लिए यदि सम्भव हो तो स्वामी जी की तरह और कुछ आदर्श पुरुषों को भेजने के लिए अमरीका प्रार्थना कर रहा है.'

इस महासभा में थियोसोफिकल सोसायटी की प्रमुख नेत्री डा० ऐनी बेसेंट भी उपस्थित थीं. सभा सदस्यों को ठहरने के लिए 'आर्ट इंस्टीच्यूट' में कुछ कमरे अलग रखे गये थे. ऐनी बेसेंट पहली बार स्वामी विवेकानन्द से ऐसे ही किसी एक कमरे में मिलीं. बहुत दिनों बाद 'ब्रह्मवादिन' पत्रिका में इस चिरस्मरणीय भेंट का उल्लेख करते हुए उन्होंने लिखा—'एक अनोखा व्यक्तित्व, गेरुआ वस्त्र मंडित, शिकागो नगर के धूम्रमलिन वातावरण में भारतीय सूर्य के समान दीप्तिमान, शेर के समान उन्नत सिर, चुभती हुई आँखें, फड़कते हुए होंठ, तीव्र और आकस्मिक अंगभंगिमा—धर्म सभा के प्रतिनिधियों के लिए निर्दिष्ट कमरे में स्वामी विवेकानन्द मेरी आँखों में सर्वप्रथम इसी रूप में प्रतिभासित हुए. वे संन्यासी के नाम से विख्यात थे, परन्तु यह समुचित नहीं था क्योंकि प्रथम दृष्टि में वे स्वामी के अलावा योद्धा भी मालूम पड़ते थे—और वे वास्तव में एक योद्धा संन्यासी थे भी. वे भारत के गौरव, अपने राष्ट्र के मुख को उज्जवल करने वाले, सबसे प्राचीन धर्म के प्रतिनिधि, दूसरे प्रतिनिधियों से उम्र में सबसे छोटे होने पर भी प्राचीनतम और श्रेष्ठतम सत्य की जीती जागती प्रतिमूर्ति स्वामी, दूसरे किसी से किसी बात में कम न थे.

अहंकारपूर्ण एवं उन्नतशील पाश्चात्य जगत् में, दूत का काम करने के लिए, अपनी योग्यतम संतान को नियुक्त कर भारत माता गौरवान्वित हुई.'

धर्म महासभा समाप्त होने के करीब महीनों बाद तक स्वामी जी की अद्भुत प्रतिभा की चर्चा अमरीका के समाचारपत्रों में होती रही. समाचार पत्रों के प्रतिनिधिगण, स्कूल और कालेज के विद्वान अध्यापकगण, विख्यात थियोसोफिस्ट, गिने चुने दार्शनिक तथा सत्य के अन्वेषक सभी स्वामी से मिलने आने लगे. इन लोगों में स्त्रियों की संख्या भी कम नहीं थी. पश्चिम के घोर भौतिकतावादी संसार में एक भारतीय संन्यासी के आध्यात्मवाद का इतना प्रभाव ! इतनी ख्याति ! स्वामी विवेकानन्द के स्थान पर यदि और कोई होता तो निश्चय ही अहंकार के मद में उसके पग डगमगाने लगते. किन्तु वे इन सब क्षुद्र भावनाओं से बहुत ऊपर थे. वे तो अपने को एक यंत्र समझते थे जिसे गुरुदेव रामकृष्ण के संदेश को संसार के सामने रखना था, जिसे अद्वैतवाद के दर्शन से पाश्चात्य जाति के अंधकारमय पथ को आलोकित करना था. ऐश्वर्य और विलास की गोद में पलने वाला अमरीकी राष्ट्र का हृदय अशांत था, असंतुष्ट था—उसमें आध्यात्मिकता की तृष्णा थी. स्वामीजी ने भारतीय दर्शन का अमृत पिला कर अमरीकी राष्ट्र की आत्मा को सन्तुष्ट किया.

स्वामी कटु से कटु सत्य को किसी भी व्यक्ति या समाज के सामने नग्न रूप में रख देते थे. अपनी इसी निर्भीक प्रकृति के कारण स्वदेश और विदेश में कई अवसरों पर उन्हें अनेक कठिनाइयां उठानी पड़ीं. फिर भी उन्होंने सत्य को चाटुकारिता के आकर्षक पर्दे में छिपा कर प्रस्तुत करने का स्वांग कभी नहीं भरा. ईसाईयों के देश में आकर जिस श्रद्धा-भक्ति के लय में उन्होंने ईसा मसीह तथा उनके उपदेशों का गुणगान किया, उसी लय में ईसाई धर्म के प्रचारकों की तीव्र आलोचना भी की. धर्म महासभा के मंच पर उन्होंने ईसाई मिशनरियों के भारत में प्रचार कार्य की बुरी तरह निंदा की. ये अल्प-शिक्षित ईसाई मिशनरी भारत में शिक्षा का कार्य करते थे. वहां गिरजाघर बनवाते थे, भूखे-नंगे अस्थिपंजरों को पहले ईसाई बनाते थे—फिर उन्हें रोटी कपड़ा देते थे. क्या भारतीयों के प्रति यही उनकी सहानुभूति और दानशीलता थी ? जब भारत में दुर्भिक्ष काले नाग के समान फुंकारता हुआ, विकराल रूप धारण कर आता और लाखों स्त्री पुरुष एवं नन्हे-मुन्नों को निगलता जाता था, तब उनकी रक्षा के लिए इन मिशनरियों ने क्या किया था ? स्वामी की इस निर्भीक एवं तीव्र आलोचना से अपने धर्म में कट्टर ईसाई मिशनरी निश्चय ही बहुत खीझ उठे थे. ये नगर नगर में उनके विरुद्ध झूठा प्रचार करने लगे. यहाँ तक कि उन्होंने उनके पावन चरित्र पर भी कालिमा लगानी चाही. वे कुछ सुंदरी युवतियों के द्वारा स्वामी को पथभ्रष्ट करवाने की चेष्टा करवाने लगे. किन्तु स्वामी के पास था ब्रह्मचर्य धर्म का कवच, जो वज्र से भी अधिक कठोर था. स्वामी के

निन्दकों की सारी कुचर्चाएं, उस लोह कवच से टकरा कर छिन्न-भिन्न हो गयीं. वे निर्विकार भाव से अपना कार्य करते रहे.

स्वामी के विरुद्ध इस लोक चर्चा से उनके शुभेच्छु बहुत दुखी और चिंतित हुए. उन्होंने स्वामी को बहुत तरह से परामर्श दिया कि वे मधुर वाणी से सभी लोगों को संतुष्ट रखें तथा कटु सत्य की इतने खुले शब्दों में आलोचना नहीं करें. इस संबंध में किसी सहृदय अमरीकी महिला ने उनके पास लिखा था. किन्तु स्वामी ने इसका उत्तर इस प्रकार दिया—'संसार के क्रीत दासगण क्या कर रहे हैं, इसके द्वारा मैं अपने हृदय में जांच-विचार करूंगा ! छि:, वहन, तुम संन्यासी को नहीं पहचानती. वेदों का कथन है, संन्यासी वेदशीर्ष हैं, क्योंकि वे गिरजा, धर्ममत, ऋषि, शास्त्र आदि किसी की भी परवाह नहीं करते. मिशनरी या दूसरा कोई भी क्यों न हो, वे भरसक चीत्कार आक्रमण करें, मैं उनकी परवाह नहीं करता.' उन्होंने संन्यासियों की स्थिर और शांत प्रकृति के विषय में अनेक उदाहरण दिये. उनमें से एक यहां उद्धृत है—

हाथी चले वजार, कुत्ताभौं के हजार,
साधु का दुर्भाव नहीं, जव निन्दे संसार.

अर्थात् जव हाथी वाजार के वीच से चलता है तो हजारों कुत्ते उसके पीछे भौंकने लगते हैं, परंतु हाथी पीछे मुड़ कर नहीं देखता—वह आगे की ओर शांत मन से वढ़ता जाता है. इसी प्रकार संतों के नि:स्वार्थ कार्य की अनेक संसारी व्यक्ति आलोचना करते हैं, पर उसका असर संन्यासियों पर कुछ नहीं पड़ता.'

शुद्ध योगियों का हृदय एक ओर फूल से भी अधिक कोमल होता है और दूसरी ओर पाषाण से भी अधिक कठोर. पर-दुख से जो हृदय क्षण भर में द्रवित हो जाता है वही हृदय दूसरों के द्वारा अपनी आलोचना सुनकर सहिष्णु वना रहता है. उस पर स्तुति-निन्दा का कोई प्रभाव नहीं पड़ता है.

स्वामी के प्रशस्त पथ पर कांटे विछाने वाले न केवल ईसाई पादरी और मिशनरीगण थे, वल्कि इसके साथ धर्म सभा में ब्रह्म समाज का प्रतिनिधित्व करने वाले कलकत्ते से आये हुए एक प्रतापचन्द्र मजुमदार भी थे. धर्म सभा में स्वामी की अपरिमित ख्याति से मजुमदार का हृदय ईर्ष्या से जल उठा और वे स्वामी के विरुद्ध अफवाह फैलाने में पीछे नहीं रहे. १६ मार्च १८९४ ई० को स्वामी ने अपने एक प्रिय शिष्य शशि के नाम लिखे गये पत्र में इसकी चर्चा इस प्रकार की :

'प्रभु की इच्छा से मजुमदार महाशय से मेरी यहां भेंट हुई. पहले तो बड़ी प्रीति थी, पर जव सारे शिकागो शहर के नर-नारी मेरे पास झुण्ड के झुण्ड आने लगे, तव मजुमदार भैया के मन में आग जलने लगी. मैं तो देख सुन कर दंग रह गया.···और मजुमदार ने धर्म महासभा में एवं पादरियों से मेरी यथेष्ट निन्दा की. 'वह कोई नहीं; वह ठग है, ढोंगी है; वह तुम्हारे देश में कहता है कि मैं साधु हूं'

आदि बातें कह कर उनके मन में मेरे बारे में गलत धारणा पैदा कर दी.'

९ अप्रैल १८९४ को स्वामी अपने एक दूसरे शिष्य आलासिंगा पैरूमल के नाम पत्र में पुनः इस विषय की चर्चा करते हैं :

'निःसंदेह कट्टर पादरी मेरे विरुद्ध हैं और मुझसे मुठभेड़ करना कठिन जान कर हर प्रकार से मेरी निन्दा करते हैं और मुझे बदनाम करने एवं मेरा विरोध करने में भी नहीं हिचकते और इसमें मजुमदार उनकी सहायता कर रहे हैं. वह द्वेष के मारे पागल हो गया है. उसने उन लोगों से कहा है कि मैं बहुत बड़ा धोखेबाज और धूर्त हूं. और इधर वह कलकत्ते में कहता फिर रहा है कि मैं अमरीका में अत्यंत पापपूर्ण एवं लम्पट जीवन व्यतीत कर रहा हूं. भगवान उनका कल्याण करें. मेरे भाई, बिना विरोध के कोई भी अच्छा काम नहीं हो सकता. जो अंत तक प्रयत्न करते हैं उन्हें ही सफलता मिलती है.'

ईसाई मिशनरियों ने स्वामी के विरोध में भारत में भी अनेक प्रकार की झूठी सच्ची बातों में नमक-मिर्च मिला कर फैलाना शुरू कर दिया था. भावावेश में कभी-कभी स्वामी अमरीकी जाति की भौतिकवादी आस्था की कड़ी आलोचना कर देते थे. मिशनरी लोग स्वामी के इन्हीं भाषणों का अंश-विशेष, बिना उसके पूर्व-प्रसंग के, लेकर अपने पर्चों में उद्धृत करते थे और जनता को भड़काया करते. उन दिनों 'बंगवासी' हिन्दू धर्म का एक मुख्य पत्र निकलता था—वह स्वामी विवेकानन्द की निन्दा से ओत-प्रोत रहने लगा. इस प्रकार की पत्र-पत्रिकाओं को वे लोग अमरीका के पादरियों के पास भी भेजा करते. उन लोगों ने स्वामी के खान-पान तथा रहन सहन की भी कटु-आलोचना की. उन्होंने कहा कि यह ढोंगी संन्यासी अमरीका में निरामिष भोजन नहीं करता. यह बात बहुत सीमा तक सत्य थी. अपने उद्देश्य में लीन स्वामी को अपने खान-पान की चिंता कहां थी ? जहाँ जो मिल गया उससे अपना पेट भर लिया. वे जीने के लिए खाते थे. खाने के लिए उन्हें जीना नहीं था. अपने निरामिष भोजन के लिए वे अपने आतिथेय को कठिनाइयों में डालना नहीं चाहते थे; और न अपना भोजन आप बनाने का उन्हें समय ही था. जिसका मस्तिष्क आध्यात्मिक मनन चिंतन में व्यस्त था, जो दर्शन के सूक्ष्मातिसूक्ष्म भावों के विश्लेषण में डूबा हुआ था, उसे भोजन जैसी अति साधारण वस्तु की ओर ध्यान देने का कहाँ समय था ? भारत से स्वामी जी के कुछ शुभेच्छुओं ने उनके पास इसके विषय में पत्र लिखे कि उन्हें शाकाहारी भोजन पर ही रहना चाहिए था. उत्तर में स्वामी जी ने उनके पास इस प्रकार लिखा :

'मुझे आश्चर्य हो रहा है कि तुम लोग मिशनरियों द्वारा प्रचारित बेवकूफियों को सुन कर विचलित हुए हो. यदि कोई हिन्दू मुझे कट्टर हिन्दू की तरह खाद्य प्रणाली अवलम्बन करने के लिए अयाचित परामर्श देते हों तो उन्हें कहो कि वे एक ब्राह्मण रसोइया और उसके साथ कुछ धन भेज दें. एक पैसे से सहायता करने की

शक्ति नहीं—परंतु विज्ञ व्यक्ति की तरह उपदेश देने की खूब योग्यता है, यह देख कर मैं हँसी रोक नहीं सकता. दूसरी ओर, यदि मिशनरीगण ऐसा कहते हैं कि मैंने 'कामिनीकंचन' के त्यागरूपी संन्यास-जीवन के महान् व्रत को भंग किया है, तो उनसे कह दो कि वे घोर मिथ्यावादी हैं.…स्मरण रखो, मैं किसी के निर्देश पर चलने को तैयार नहीं हूँ. अपने जीवन का उद्देश्य मैं भली भांति जानता हूं. किसी प्रकार का हल्लागुल्ला तथा निन्दा आदि की मैं परवाह नहीं करता. क्या मैं किसी व्यक्ति विशेष या जाति विशेष का क्रीत दास हू ?'

अमरीका के मिशनरीगण तथा ब्रह्मसमाजी मजुमदार के प्रभाव में आये हुए कुछ हिन्दुओं ने स्वामी को तंग करने की काफी कोशिशें की. कभी-कभी ऐसा भी हुआ कि स्वामी किसी संस्था या परिवार में धर्मोपदेश के लिए आमंत्रित किये जाते थे. जब इनके विरोधियों को इसका आभास मिलता तो वे उक्त संस्था या परिवार को तरह-तरह की उल्टी-सीधी बातें स्वामी के विषय में समझा देते और इस प्रकार स्वामी का निमंत्रण वापस करा देने में सफल हो जाते. कई बार उपदेश के लिए आमंत्रित स्वामी नियत समय पर किसी के घर जाते तो वहां का द्वार बाहर से बंद पाते. परंतु वास्तविक स्थिति का पता होने पर इस प्रकार के मेजबानों ने अपनी भूल स्वीकार कर स्वामी से क्षमा-याचना भी की.

मजुमदार और ईसाई-मिशनरियों ने मिल कर स्वामी के बहुत से मित्रों के पास गुमनाम पत्र लिखे. इसी प्रकार स्वामी के चरित्र पर कलंक लगाते हुए एक गुमनाम चिट्ठी मि० हेल को भी मिली. उन्हें सावधान करते हुए परामर्श दिया गया था कि वे अपनी दोनों पुत्रियों और भतीजियों को हिन्दू संन्यासी से नहीं मिलने दें. मि० हेल ने पत्र पढ़ा और बगल की धधकती हुई अग्नि में डाल दिया. स्वामी का जिससे भी सम्पर्क था, जो भी उन्हें जानते थे, उन पर ऐसी-ऐसी बातों का लेशमात्र भी प्रभाव नहीं पड़ता था. स्वामी इस बात को अच्छी तरह जानते थे. इसीलिए वे इस प्रकार की घटनाओं से बराबर आश्वस्त रहे. उन्हें चिंता थी तो बस अपने देश के लिए, जहां वे नहीं थे. उनकी अनुपस्थिति में लोगों पर न जाने इसकी कैसी प्रतिक्रिया होती होगी, इसे सोचकर उनका हृदय कभी-कभी अशांत हो जाता—विशेष कर यह सब सुन कर उनकी मां क्या सोचेंगी, इसकी कल्पना से उन्हें बेहद दु:ख होता था. इसकी चर्चा करते हुए उन्होंने ईसाबेल मैंकिडले को एक पत्र लिखा—'मेरे ही लोग मेरे विषय में क्या कहते हैं, इसकी मैं परवाह नहीं करता—सिर्फ एक बात को छोड़ कर. मेरी वृद्धा मां हैं. सारे जीवन भर उन्होंने तकलीफ झेली और इसी बीच उन्होंने मुझे, जिसे वे अपने सभी बच्चों से अधिक प्यार करती थीं भगवान और मनुष्य की सेवा करने के लिए छोड़ दिया. उनकी आशा का क्या होगा ? कलकत्ते में मजुमदार जो चारों ओर कहता फिर रहा है कि मैं दूर देश में बैठा पशुवत् अनैतिक जीवन जी रहा हूँ, वह मेरी मां के प्राण हर लेगा.'

थियोसोफिकल सोसायटी के सदस्यों ने भी स्वामी के प्रचार कार्य में विभिन्न प्रकार से टांग अड़ाने की चेष्टा की, किन्तु उस प्रतिभाशाली व्यक्तित्व के सामने उनका कुछ विशेष वश नही चला. इस हिन्दू संन्यासी के पवित्र प्रभाव को वे रोक नहीं सके. विवेकानन्द की झूठी निंदा करके उन लोगों ने जिस अपकीर्ति का टीका अपने मुख पर लगाया था, शायद उसी के प्रक्षालन के लिए श्रीमती ऐनी बेसेन्ट ने 'ब्रह्मवादिन' पत्रिका में उन पर प्रशंसात्मक लेख लिखा था.

पीछे चल कर जब अमरीकी जनता को अच्छी तरह पता चल गया कि स्वामी की वाणी और कार्य में समरसता है तब उन्होंने अपने मिशनरियों की बातों पर जरा भी ध्यान नहीं दिया और यह भलीभांति समझ गये कि स्वामी का चरित्र साधना की अग्नि में तपा हुआ सोना है. वहां कलुष का नाम नहीं था. उनके जीवन में कुछ भी गुप्त नहीं था. वे कहा करते थे—'मैं सत्य का आग्रही और सत्य का उपासक हूं. सत्य कभी भी, किसी भी स्थिति में मिथ्या के साथ संधि नहीं करेगा.' स्वामी विवेकानन्द का अपना अहंकार तो कुछ था नहीं. वे यंत्रवत् वेदों की वाणी, सत्य की वाणी या परमेश्वर की वाणी में बोला करते थे.

इस प्रकार अमरीकी मिशनरियों, मुट्ठी भर पादरियों तथा कुछ हिन्दुओं की स्वामी के प्रति उल्टी-सीधी बातों का तूफान धीरे-धीरे शांत हो गया. विवेकानन्द के व्यक्तित्व, चरित्र, वाणी या कार्यप्रणाली में गजब की गरिमा थी. इसकी प्रखर ज्योति ने झूठी अफवाहों की कालिमा को छिन्न-भिन्न कर दिया. मिथ्या पर सत्य का विजयी होना अनिवार्य ही था. थोड़े ही समय में स्वामी के विरोधी उनके मित्र बनने लगे. यह जान कर स्वामी का हृदय फूला नहीं समाया कि भौतिकवादी देश में सच्चे सत्य के उपासकों की कमी नहीं है. उनको लगा मानो अमरीकी जनता बहुत बड़ी संख्या में आध्यात्मिक विकास के लिए लालायित है.

८

अमरीका के अनुभव

धर्म महासभा समाप्त होने के कुछ दिनों बाद तक स्वामी शिकागो नगर में ठहर कर यहाँ-वहाँ व्याख्यान देते रहे. शिकागो के सम्मानित मनीषी जॉन बी० लीन तथा उनकी विदुषी पत्नी ने उन्हें अपने घर पर निवास के लिए आमंत्रित किया. स्वामी शीघ्र ही इस परिवार में घुलमिल कर इसके अभिन्न अंग बन गये. श्रीमती लीन का व्यक्तित्व बहुत अंशों में उनकी माँ से मिलता जुलता था. शायद कुछ इसी कारण श्रीमती लीन के प्रति उनका इतना ममत्व था. श्रीमती लीन भी उन्हें पुत्रवत् स्नेह प्रदान करतीं थीं. एक बार श्रीमती लीन के किसी मित्र ने उन्हें बहुत ही कड़वी एवं चटपटी चटनी लाकर दी. खाने के समय मेजबान ने चटनी की बोतल मेज पर रखी. जब सभी लोगों ने भोजन आरम्भ किया तो श्रीमती लीन ने स्वामी से कहा कि चटनी बहुत ही तेज है, इसकी दो बूंदों से ही आप का भोजन चटपटा स्वादिष्ट हो जायेगा. यह सुनते ही स्वामी ने बोतल उठायी और ढेर सारी चटनी अपनी भोज्य सामग्रियों पर डाल ली. उन्हें ऐसा करते देख कर सभी लोग उन्हें चकित दृष्टि से देखने लगे. परन्तु स्वामी तो हँसते हुए बड़े प्रेम से भोजन का आनन्द ले रहे थे. उनको वह कड़वी चटनी इतनी अच्छी लगी कि श्रीमती लीन ने विशेष रूप से उनके लिए उस चटनी की और बोतलें खरीद कर मंगवायीं.

स्वामी करीब एक माह तक लीन दम्पति के अतिथि बने रहे. यहीं से वे शिकागो तथा शिकागो के निकटवर्ती नगरों में भाषण के लिए आमंत्रित किये जाते. उनके भाषणों का अच्छा खासा पारिश्रमिक उन्हें मिलने लगा. कुछ दयालु सज्जन उन्हें भारत के लोकहितकारी कार्यों के लिए दानस्वरूप पैसे भी दे जाते. सभी पैसों को स्वामीजी रूमाल में बांध कर घर लाते और गर्वीले बालक के समान हँसते हुए श्रीमति लीन के हाथों में रख देते. श्रीमती लीन ही उनके पैसों के आय-व्यय का हिसाब-किताब रखा करती थीं.

स्वामी का व्यक्तित्व इतना सशक्त था कि विशेषकर युवतियां उनकी ओर शीघ्र ही आकर्षित हो जाया करती थीं और तरह-तरह की भाव-भंगिमा एवं बातचीत

से उनकी दिलचस्पी अपनी ओर जगाया करतीं. श्रीमती लीन को यह सब अच्छा नहीं लगता था. उनके मन में प्राय: भय उत्पन्न हो जाता था कि कहीं इस सीधे-सादे संन्यासी के पाँव न फिसल जायें. अत: उन्होंने स्वामी को इस पक्ष में थोड़ा सावधान हो जाने का संकेत दिया. श्रीमती लीन की बातों ने स्वामीजी के हृदय को छू लिया. वे श्रीमती लीन के हाथों को आश्वासन से थपथपाते हुए विनोद के साथ बोले—'श्रीमती लीन, आप मेरी माँ हैं, मेरी प्यारी अमरीकी माँ ! आप मेरे लिए न डरें. यह सत्य है कि प्राय: किसी दयालु कृषक के द्वारा दिये गये एक कटोरा चावल को लेकर मैं किसी बरगद के पेड़ के नीचे सोता रहा हूँ. परन्तु इसके साथ-साथ यह भी सत्य है कि कभी-कभी किसी बड़े महाराजे के महल में मैं अतिथि के रूप में ठहरा हूँ और वहाँ दासियाँ सारी रात मुझे मयूर-पंख के पंखे से हवा करती रहीं हैं. मैं इन प्रलोभनों का अभ्यस्त हूँ. आप मेरे विषय में चिन्ता न करें.'

लीन दम्पति के यहाँ एक माह तक रहने के बाद स्वामी एक-डेढ़ माह और शिकागो में नगर के सम्पन्न एवं श्रद्धालु लोगों के अतिथि के रूप में रहे. इस अवधि के विषय में उन्होंने एक पत्र में लिखा था—'शहर के बहुत से सुन्दरतम गृहों के द्वार मेरे लिए खुले हैं. मैं हर समय किसी एक या दूसरे का अतिथि बन कर रह रहा हूँ.' इन गृहों में से श्री और श्रीमती जार्ज डब्ल्यू हेल का गृह, लीन दम्पति के गृह के समान ही अपना विशेष महत्व रखता था. इस घर से स्वामी जी को बहुत अधिक प्रीति थी. श्रीमती हेल ही थीं जिन्होंने शिकागो में स्वामी के नैराश्यपूर्ण पथ पर सबसे पहले आशा और विश्वास का दीप जलाया था; उस विशाल नगरी में एक क्षुधा-पीड़ित, मार्ग भ्रमित पथिक को भोजनादि से तृप्त कर उसे उसके मंजिल तक पहुँचाया था. धर्म सम्मेलन शुरू होने के एक दिन पूर्व यदि देवी स्वरूपा श्रीमती हेल स्वामी जी के सम्मुख उपस्थित होकर उन्हें धर्म सम्मेलन के आयोजित होने के स्थान तक नहीं पहुँचातीं तो पता नहीं आज स्वामी विवेकानन्द का नाम इतिहास के पन्नों में कहाँ होता !

स्वामी हेल परिवार के बहुत ही आदरणीय एवं दुलारे सदस्य थे. श्रद्धावश स्वामी श्री हेल को 'फादर पोप' और श्रीमती हेल को 'मदर चर्च' सम्बोधित करते थे. १८९४ ई० के अंत तक जब तक ये अमरीका के विभिन्न छोटे-बड़े नगरों में भाषण और भ्रमण करते रहे, इनका स्थायी पता हेल परिवार का ही था. भारत से इनकी सभी चिट्ठियाँ यहीं आतीं और यहाँ से ये लोग उन्हें स्वामी के नाम, उनके तत्कालीन पते पर, भेजा करते. श्री और श्रीमती हेल की दो युवती पुत्रियाँ थीं—मेरी हेल और हैरिएट हेल. श्री हेल की दो भतीजियाँ हैरिएट मैकिंडले और इसाबेल मैकिंडले भी वहीं रहती थीं. ये दोनों बहनें अपनी चचेरी बहनों की हमउम्र थीं. स्वामी इन चारों बहनों से बहुत ही घुले मिले थे. इन चारों बहनों को स्वामी की ओर से एक भाई का पवित्र प्यार मिला और स्वामी को बहनों का स्नेह दुलार. स्वामी के

शिकागो से बाहर रहने पर इनके साथ पत्र व्यवहार बराबर चलता रहता, विशेषकर मेरी हेल और ईसाबेल मैकिंडले के साथ. स्वामी को ये दोनों बहनें इसलिए विशेष भातीं कि उनका मानसिक झुकाव आध्यात्मिकता की ओर था. कभी-कभी तो स्वामी इतने भावमग्न हो जाते कि इन बहनों से काव्य में ही पत्र-व्यवहार करने लगते. छोटी बहन होने के नाते स्वामी काव्यमय पत्र में उन्हें ज्ञान की शिक्षा देते, प्यार दर्शाते तथा आवश्यकतानुसार डांट-फटकार भी बताते. प्रमाणस्वरूप उनकी कविताओं के कुछ अंशों के हिन्दी अनुवाद प्रस्तुत हैं :

बहन मेरी,
दुःख न मानो,
जो प्रताड़न दिया मैंने
जानती हो तुम भली विधि
किन्तु फिर भी चाहती हो, मैं कहूँ,
स्नेह करता मैं तुम्हें सम्पूर्ण मन से.
... ...
प्रकृति की त्योरियां चढ़ें, जैसे अभी वह कुचल देगी,
किन्तु मेरे आत्मन् हे, दिव्य हो तुम,
बढ़ो आगे, और आगे,
नहीं दायें और बायें तनिक देखो,
दृष्टि हो गन्तव्य पर ही.
देवदूत, मनुज, दनुज भी हूं नहीं मैं,
देह या मस्तिष्क, नारी या पुरुष भी,
ग्रन्थ केवल मूक, विस्मित,
देखते हैं प्रकृति मेरी, किन्तु मैं 'वह'
बहुत पहले, बहुत पहले,
जब कि रवि, शशि और उडुगन भी नहीं थे,
इस धरा का भी न था अस्तित्व कोई,
बल्कि यह जब समय भी जन्मा नहीं था,
मैं सदा था, आज भी हूँ, और आगे भी रहूँगा.
... ...
तत्व केवल एक मैं ही,
है कहीं न अनेक, मैं ही एक,
अतः मुझमें ही सभी, 'मुझ' हैं
मैं स्वयं से घृणा कर सकता नहीं,
प्यार, प्यार ही है मुझे सम्भव.

उठो, जागो स्वप्न से, तोड़ दो बन्धन,
चलो निर्भय,
यह रहस्य, कुहेलिका, छाया डरा सकती न मुझको
क्योंकि मैं ही सत्य, जानों तुम सदा यह.

स्वामी कोई कवि नहीं थे. काव्य कला की दृष्टि से उनकी कविताएँ उत्कृष्ट नहीं मानी जायेंगी. किन्तु भावप्रवण स्थितियों में उनके अत्यन्त भावुक तरुण हृदय से कविता आप ही आप फूट निकलती थी. बहन मेरी के नाम इस पत्र काव्य में स्वामी ने अद्वैत दर्शन को बड़े ही मधुर शब्दों में समझाने का प्रयत्न किया है. परन्तु पाश्चात्य मस्तिष्क में यह प्राच्य दर्शन पूर्ण रूप से नहीं समा सका है. कुमारी मेरी ने इसका प्रत्युत्तर भी कविता में देते हुए स्वामी की काव्य-कला की आलोचना की है:

संन्यासी, जिसको स्वामित्व मिला चिन्तन पर
अब कवि भी हैं,
शब्दों और विचारों में भी काफी आगे,
किन्तु, जिसे ज्यादा मुश्किल होई छंद में.
कहीं चरण छोटे हैं, कहीं बढ़ गये सहसा,
कविता के उपयुक्त छंद
मिल न सका जिसको,
उसने सानेट, गीत आज़माये हैं
और प्रबन्ध लिखा है,
बहुत किया श्रम,
लेकिन, उसे अजीर्ण हो गया.
... ...
तुमने, हम चारों बहनों को
जो कुछ लिख भेजा, भाई हे.
सदा रहेगा सर आंखों पर
दिखा दिया है तुमने, उनको जीवन का चिर परम सत्य
'सभी ब्रह्म हैं.'

बहन की नासमझी पर भाई उसे मीठी झिड़कियां सुनाने से पीछे नहीं रहता. वह रामायण के उस श्रोता का वर्णन अपनी कविता में करता है जिसने पूरी रामकथा सुनने के बाद कथा-वाचक से पूछा था कि ये सीता-राम कौन थे.

मेरी हेल, बहन, तुम भी तो
कुछ ऐसे ही,
मेरे उपदेशों, व्याख्यानों, शब्दों-छन्दों
के अजीब से अर्थ लगातीं.

'सब' कुछ ब्रह्म कहा जो मैंने
उसका केवल यही अर्थ है, याद करो तुम—
केवल ब्रह्म सत्य है और सभी कुछ झूठा,
विश्व स्वप्न है, यद्यपि सत्य दिखाई देता,
मुझमें भी जो सत्य,
ब्रह्म है, शाश्वत, अविनश्वर, अखण्ड है,
वही सत्य है मात्र सत्य है.

कुमारी मेरी की पकड़ में बात आ जाती है. वे पुन: उत्तर देती हैं :

हो गया अब स्पष्ट अंतर
आप ने जो कहा, वह तो ठीक बिलकुल,
किन्तु मेरी बुद्धि सीमित,
पूर्व का दर्शन समझने में
मुझे कठिनाइयां हैं.
... ...

अगले पत्र में भाई की मीठी झिड़कियां अभी जारी हैं. किन्तु बहन मेरी की भाव-ग्राह्यता की क्षमता से उसे हर्ष भी होता है. बहन के सौंदर्य और स्वभाव का विश्लेषण भाई की काव्यमय वाणी में :

झक्की, तेज मिजाज, अनोखी,
सुन्दर है वह बाला, बेशक,
अनुपम आत्मा,
जिसको मिस मेरी कहते हैं.
गहन भावनाएँ हैं जिसकी,
स्वयं प्रकट हो जाती हैं जो,
मुक्त हृदय वाली मिस मेरी,
सचमुच, वह तो ज्वालामयी है.
जिसका चिंतन अद्वितीय है,
वह संगीतमयी,
फिर भी कितनी पैनी है.
ठंढे मनवाली बाला,
नहीं किसी की सगी, भले ही
आये कोई, हृदय उसे दे, नयन बिछाये
मेरी बहन, सुना है मैंने
रूपवान व्यक्तित्व तुम्हारा
बहुचर्चित है,

नहीं ठहर पाता है कोई भी सौंदर्य तुम्हारे आगे.
फिर भी सावधान हो जाओ,
भौतिक बंधन बहुत मधुर,
फिर भी बंधन हैं, इनको मत स्वीकारो.
एक नया स्वर गूंजेगा
जब रूप तुम्हारा, गर्वीला व्यक्तित्व तुम्हारा,
कहीं एक जीवन कुचलेगा,
शब्द तुम्हारे टूक-टूक कर देंगे मन को —
लेकिन बहन, बुरा मत मानो,
यह जवाब जैसे को तैसा,
संन्यासी भाई का यह केवल विनोद है.

स्वामी विवेकानन्द एक योगी थे, संन्यासी थे. परन्तु उनका योग और संन्यास मनुष्य को संसार से विमुख बना देने वाला नहीं था. ऐसे योग-संन्यास की उन्हें आवश्यकता ही नहीं थी जो मनुष्य को संसार से हटा कर आत्ममुक्ति के स्वार्थ में लीन एकान्तवासी बना दे. उनका योग था मनुष्य को प्रबुद्ध बनाने के लिए. उनका संन्यास था मनुष्य को आत्मस्वार्थ की ओर से हटा कर परमार्थ की ओर अग्रसर करने के लिए. वे मुख्यतः समाजसेवी थे. उनका जीवन राग और विराग की समानान्तर रेखाओं के बीच बह रहा था. जिस व्यक्ति को समाज से, समाज के प्राणियों से अनुराग नहीं है वह भला संसार की क्या सेवा करेगा ? स्वामी को तो जीवन से प्यार था, चाहे वह प्राणिमात्र का हो या प्रकृति का. कुमारी मेरी हेल और ईसाबेल मैकिंडले के काव्यमय पत्र-व्यवहार में भले ही प्रेमी और प्रेमिका के प्रणय की झांकी नहीं हो, फिर भी एक भाई के ही नाते युवा हृदय का प्यार निवेदन अवश्य है. स्त्री-पुरुष के प्रेम पर से यदि वासना और एकाधिकार की अशुद्धि हटा दी जाये तो फिर यह प्रेम ईश्वरीय बन जाता है. स्वामी का मेरी हेल और ईसाबेल मैकिंडले बहनों के प्रति स्नेह इसी प्रकार का था.

अपने ऊपर वैराग्य का सबल अंकुश रखते हुए भी स्वामी स्वादिष्ट भोजन करने में, धूम्रपान करने में या गरिमापूर्ण वस्त्र पहनने में बहुत आनन्द लेते थे. इसीलिए स्वामी के वैराग्यपूर्ण, प्रशान्त एवं अद्वितीय व्यक्तित्व में कभी-कभी एक अति-साधारण व्यक्ति दिखाई दे जाता है, जैसे वह हम लोगों में से ही एक हो, जीवन की दुर्बलताओं को लिये हुये. मगर जब हम उनके जीवन पर गहरी दृष्टि डालते हैं तो भेद स्पष्ट हो जाता है—जीवन की दुर्बलताएं हमें नष्ट कर देती हैं और एक वह है जो दुर्बलताओं से खेलता है और आवश्यकता पड़ने पर उन्हें नष्ट कर देता है.

कुमारी ईसाबेल मैकिडले के पास भेजे गये स्वामीजी के इस पत्र में उनके व्यक्तित्व का बहुदर्शी रूप मिलेगा :

न्यूयार्क, २ (वास्तव में पहली) मई ९४

प्रिय वहन,

मैं विवश हूँ, अभी तत्काल तुमको पुस्तिका नहीं भेज सकूंगा. अखवार की कुछ कतरने भारत से आयी हैं, जिसे मैं तुम्हारे पास भेजता हूँ. तुम पढ़ने के पश्चात उसे कृपया श्रीमती वैग्ली के पास भेज दोगी. इस पत्र के सम्पादक मजुमदार के सम्बन्धी हैं. मैं वेचारे मजुमदार के लिए दुःखी हूँ.

मुझे यहां अपने कोट के लिए अभीष्ट नारंगी रंग के कपड़े नहीं मिल सके, अतः जो सबसे अधिक उसके समान मिला, उसी से संतोष करना पड़ा—गहरे लाल रंग में चटक पीले की आव वाला. कुछ दिनों में कोट तैयार हो जायेगा.

उस दिन वाल्डोर्फ में व्याख्यान से मुझे ७० डालर प्राप्त हुए. कल के व्याख्यान से आशा है कुछ अधिक ही प्राप्त होंगे.

७ तारीख से १९ तारीख तक वोस्टन में कार्यक्रम है, पर वे लोग बहुत कम देंगे.

कल मैंने एक पाइप १३ डालर का खरीदा है—कृपया 'फादर पोप' से इसकी चर्चा न करना. कोट के ३० डालर लगेंगे. मुझे खाना ठीक मिल रहा है······और पर्याप्त रुपये भी. आगामी लेक्चर के वाद वैंक में कुछ जमा करवा सकूंगा.······शाम को मैं एक निरामिष दावत सम्मेलन में वोलने जा रहा हूं.

हाँ, मैं निरामिष हूँ···, क्योंकि जव वैसा खाना मिलता है, तो मैं उसे अधिक पसन्द करता हूँ. परसों दिन के खाने का निमंत्रण और है···लीमन एवोट के यहाँ. समय बहुत अच्छा वीत रहा है, वोस्टन में भी अच्छा, बहुत अच्छा बीतेगा सिर्फ उस गर्हित लेक्चरवाजी को छोड़ कर. जैसे ही १९ तारीख वीतेगी, वोस्टन से शिकागो, एक कुदान,···और फिर आराम और विश्राम की एक लम्बी सांस, दो तीन हफ्ते तक विश्राम. वस वैठा रहूँगा और बातें करूंगा, वातें और धूम्रपान.

हाँ, तुम्हारे न्यूयार्क के लोग बड़े भले हैं, सिर्फ बुद्धि की अपेक्षा धन अधिक है. मैं हारवर्ड विश्वविद्यालय के विद्यार्थियों के वीच व्याख्यान देने जा रहा हूँ. श्रीमती ब्रीड ने बोस्टन और हारवर्ड में तीन-तीन व्याख्यान आयोजित किये हैं. कुछ की आयोजना लोग यहाँ भी कर रहे हैं, जिससे शिकागो जाते समय मैं न्यूयार्क एक वार फिर आऊँगा और उन्हें कुछ जोरदार मुक्के लगा कर मूर्खो को जेबियाऊँगा और शिकागो उड़ जाऊगा.

न्यूयार्क या वोस्टन से यदि तुम्हें कुछ मंगाना हो जो शिकागो में नहीं मिलता हो, तो जल्दी लिख देना. अब मेरे पास डालर ढेर से हैं. तुम जो चाहोगी,

क्षण भर में भेज दूंगा. यह मत सोचना कि इसमें कुछ अशोभन होगा. मेरे सम्बन्ध में कोई पाखण्ड नहीं. यदि मैं भाई हूँ तो भाई हूँ. मैं दुनिया में किसी बात से नफरत करता हूँ तो पाखण्ड से.

तुम्हारा स्नेही भाई, विवेकानन्द

स्वामी विवेकानन्द के जीवन में ऐसे कई व्यक्ति आये, जिनके लिए उनके हृदय में अगाध श्रद्धा और स्नेह था. मन की ये भावनाएँ समय-समय पर काव्य के रूप में ढलती गयी थीं. हारवर्ड विश्वविद्यालय के प्रोफेसर राइट, जिन्होंने स्वामी को विश्व-धर्म महासभा के सदस्य के रूप में सम्मिलित होने के लिए परिचय-पत्र देकर शिकागो भेजा, उनके प्रति भी उनके मन में असीम प्रेम था. स्वामीजी जब भी उनके पास पत्र लिखते तो उन्हें 'अध्यापक जी' लिख कर सम्बोधित करते. एक बार 'अध्यापक जी' के पास पत्र लिखते समय वे बहुत ही अधिक श्रद्धा से भावविभोर हो गये. ऐसी स्थिति में उनकी लेखनी से स्वत: कविता की निर्झरिणी फूट पड़ी. कविता का शीर्षक था 'अन्वेषण'. इस लम्बी कविता में उन्होंने जगतव्यापी परमेश्वर की खोज और उसकी महिमा का बड़ा सुन्दर वर्णन किया है. स्वामीजी के अन्तर में एक कवि भी है, इससे प्रोफेसर राइट अनभिज्ञ थे. जब वे उनकी इस नयी प्रतिभा से परिचित हुए तो बहुत प्रसन्न हुए. इस प्रकार भविष्य की कई भाव-प्रवण परिस्थितियों में उनकी भावभिव्यक्ति काव्य के रूप में हुई.

शिकागो नगर में धर्म सम्मेलन के बाद करीब दो माह तक स्वामी किस-किस परिवार के अतिथि रहे यह पूर्ण रूप से अज्ञात है. श्री और श्रीमती जॉन बी लीन तथा श्री और श्रीमती जार्ज डब्ल्यू हेल के यहाँ उनका अत्यधिक समय बीता. इसके प्रमाण स्वरूप उनके कई पत्र मिले हैं जिन पर इन दो व्यक्तियों के नाम-पते तथा दिनांक लिखे हुए हैं. हेल परिवार के सदस्यों के पास उनके द्वारा लिखित पत्रों से यह स्पष्ट हो जाता है कि इस परिवार से जैसा घनिष्ठ सम्बन्ध उनका था, वैसा किसी और के साथ नहीं.

धर्म सम्मेलन के उपरान्त इन दो महीनों की अवधि में स्वामी ने भारतीय धर्म, समाज और संस्कृति पर असंख्य व्याख्यान दिये. उनकी ख्याति इस समय चरमसीमा पर थी. उनका पूर्ण विकसित यौवन उनमें नयी स्फूर्ति और नवउमंग भर रहा था. उनके आनन पर गजब का तेज था. इन दो महीनों में उन्होंने सिर्फ व्याख्यान ही नहीं दिये बल्कि उन्होंने पाश्चात्य सभ्यता और संस्कृति का भी गहरा अध्ययन किया. पश्चिम की सभ्यता एवं उसकी सामाजिक रूपरेखा का भारतीय-करण कैसे सम्भव है, उससे भारत किस प्रकार लाभान्वित हो सकता है, इसके विषय में वे काफी चिन्तन मनन करते रहे. भारतीय समाज के विगलित अंगों को हृष्ट-पुष्ट बना कर उसकी आत्मा में वे पश्चिम का जोश भरना चाहते थे. सदियों से

कुचली गयी भारत की सूखी फुलवारी में वे पश्चिम की सुगन्ध भरना चाहते थे. अमरीका से भारत, अपने भक्तों और शिष्यों के पास, लिखे गये अनेक पत्रों में स्वामी विवेकानन्द, पश्चिमी समाज के ढांचे तथा उसके आचार-व्यवहार की अच्छाइयों की ओर ध्यान आकर्षित करते हैं तथा उन्हें आजमाने के लिए विकल दीख पड़ते हैं. वे चाहते हैं कि वे हंस के समान दूध को ग्रहण कर लें और पानी को छोड़ दें. शिकागो में जार्ज डब्ल्यू हेल के यहां से वे भारत अपने एक शिष्य के पास पत्र में लिखते हैं—'मैं इस देश में कुतूहलवश नहीं आया, न नाम के लिए, न यश के लिए परन्तु भारत के दरिद्रों की उन्नति करने का उपाय ढूंढने आया हूं. यदि परमात्मा सहायक हुए तो धीरे-धीरे तुम्हें वे उपाय मालूम हो जायेंगे.' इसी पत्र में वे यह भी लिखते हैं—'अमरीकावालों में अनेक दोष भी हैं. वे आध्यात्मिकता में हमसे निम्न स्तर पर हैं, परन्तु इनका सामाजिक स्तर अति उच्चतर है. हम इन्हें आध्यात्मिकता सिखायेंगे और इनके समाज के गुणों को स्वयं ग्रहण करेंगे.'

अमरीकी स्त्रियों के विषय में स्वामी की बहुत उच्च धारणा थी. उनके जीवन में अमरीकी नारियों का बहुत ही महत्वपूर्ण स्थान था. जैसे भारत से जब वे खाली हाथ, एक परिव्राजक बन कर, नाम-यशरहित असहाय दशा में अमरीका जैसे भौतिकवादी देश में आये, उस समय अमरीकी महिलाओं ने ही उनकी सहायता की, उनके निवास और भोजन की व्यवस्था की. वे उन्हें अपने घर ले गयीं, उनके साथ भाई और बेटे का सा व्यवहार किया. उनके पादरियों ने जब स्वामी को भयानक विधर्मी के विशेषण से सजा कर,उन्हें त्याग देने के लिए लोगों को बाध्य किया तथा मिशनरियों ने जब उनके उज्ज्वल चरित्र पर काले धब्बे लगाने चाहे, तब ऐसी स्थिति में भी अमरीकी महिलाएं उन्हें सहारा देती रहीं, उनकी मित्र बनी रहीं. ये स्त्रियाँ उनकी निराशापूर्ण प्रवास की अवधि में आशा की किरण बन कर आयीं. फिर भला स्वामी के हृदय मे अमरीकी महिलाओं के प्रति क्यों न कोमल स्थान हो ? क्यों न वे उनकी प्रशंसा करते-करते नहीं थकें ? खेतरी के महाराजा को पत्र में स्वामीजी ने अमरीकी महिलाओं के विषय में इस प्रकार लिखा—'अमरीका के पारिवारिक जीवन के सम्बन्ध में मुझे अनेक निरर्थक कहानियाँ सुनने को मिलीं. मैंने सुना कि वहाँ अनर्गलता की सीमा तक स्वच्छन्दता है, कि वहाँ की नारियों की चाल-चलन नारियों जैसी नहीं है, स्वतंत्रता की उन्मत्तता में आकर वे अपने पारिवारिक जीवन की सुख-शांति को पद-दलित कर चूर्ण-चूर्ण कर देती हैं. और भी इसी प्रकार की बकवास सुनने में आयी. किन्तु अब एक वर्ष बाद अमरीकी परिवार तथा अमरीकी स्त्रियों के सम्बन्ध में मुझे जो अनुभव प्राप्त हुआ है, उससे यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि उक्त प्रकार की धारणाएं कितनी भ्रांत और निर्मूल हैं. अमरीकी महिलाओ ! सौ जन्म में भी मैं तुमसे उऋण न हो सकूंगा मेरे पास तुम्हारे प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करने की भाषा नहीं है. 'प्राच्य अतिशयोक्ति' ही

क्षण भर मे भेज दूगा यह मत सोचना कि इसमे कुछ अशोभन होगा. मेरे सम्बन्ध मे कोई पाखण्ड नहीं. यदि मैं भाई हूँ तो भाई हूँ. मैं दुनिया मे किसी बात से नफरत करता हूँ तो पाखण्ड से.

तुम्हारा स्नेही भाई, विवेकानन्द

स्वामी विवेकानन्द के जीवन मे ऐसे कई व्यक्ति आये, जिनके लिए उनके हृदय मे अगाध श्रद्धा और स्नेह था. मन की ये भावनाएँ समय-समय पर काव्य के रूप मे ढलती गयी थी. हारवर्ड विश्वविद्यालय के प्रोफेसर राइट, जिन्होने स्वामी को विश्व-धर्म महासभा के सदस्य के रूप मे सम्मिलित होने के लिए परिचय-पत्र देकर शिकागो भेजा, उनके प्रति भी उनके मन मे असीम प्रेम था स्वामीजी जब भी उनके पास पत्र लिखते तो उन्हे 'अध्यापक जी' लिख कर सम्बोधित करते एक बार 'अध्यापक जी' के पास पत्र लिखते समय वे बहुत ही अधिक श्रद्धा से भावविभोर हो गये. ऐसी स्थिति मे उनकी लेखनी से स्वत: कविता की निर्झरिणी फूट पडी कविता का शीर्षक था 'अन्वेषण' इस लम्बी कविता मे उन्होने जगतव्यापी परमेश्वर की खोज और उसकी महिमा का बडा सुन्दर वर्णन किया है. स्वामीजी के अन्तर मे एक कवि भी है, इससे प्रोफेसर राइट अनभिज्ञ थे. जब वे उनकी इस नयी प्रतिभा से परिचित हुए तो बहुत प्रसन्न हुए. इस प्रकार भविष्य की कई भाव-प्रवण परिस्थितियो में उनकी भावभिव्यक्ति काव्य के रूप मे हुई.

शिकागो नगर मे धर्म सम्मेलन के बाद करीब दो माह तक स्वामी किस-किस परिवार के अतिथि रहे यह पूर्ण रूप से अज्ञात है. श्री और श्रीमती जॉन बी लीन तथा श्री और श्रीमती जार्ज डब्ल्यू हेल के यहाँ उनका अत्यधिक समय बीता. इसके प्रमाण स्वरूप उनके कई पत्र मिले हैं जिन पर इन दो व्यक्तियो के नाम-पते तथा दिनाक लिखे हुए हैं हेल परिवार के सदस्यो के पास उनके द्वारा लिखित पत्रो से यह स्पष्ट हो जाता है कि इस परिवार से जैसा घनिष्ठ सम्बन्ध उनका था, वैसा किसी और के साथ नही.

धर्म सम्मेलन के उपरान्त इन दो महीनो की अवधि मे स्वामी ने भारतीय धर्म, समाज और सस्कृति पर असख्य व्याख्यान दिये. उनकी ख्याति इस समय चरमसीमा पर थी. उनका पूर्ण विकसित यौवन उनमे नयी स्फूर्ति और नवउमंग भर रहा था उनके आनन पर गजब का तेज था इन दो महीनो में उन्होने सिर्फ व्याख्यान ही नहीं दिये बल्कि उन्होने पाश्चात्य सभ्यता और संस्कृति का भी गहरा अध्ययन किया. पश्चिम की सभ्यता एव उसकी सामाजिक रूपरेखा का भारतीय-करण कैसे सम्भव है, उससे भारत किस प्रकार लाभान्वित हो सकता है, इसके विषय मे वे काफी चिन्तन मनन करते रहे. भारतीय समाज के विगलित अगो को हृष्ट-पुष्ट बना कर उसकी आत्मा मे वे पश्चिम का जोश भरना चाहते थे. सदियो से

कुचली गयी भारत की सूखी फुलवारी मे वे पश्चिम की सुगन्ध भरना चाहते थे अमरीका से भारत, अपने भक्तो और शिष्यो के पास, लिखे गये अनेक पत्रो मे स्वामी विवेकानन्द, पश्चिमी समाज के ढाँचे तथा उसके आचार-व्यवहार की अच्छाइयो की ओर ध्यान आकर्षित करते हैं तथा उन्हे आजमाने के लिए विकल दीख पडते है. वे चाहते हैं कि वे हस के समान दूध को ग्रहण कर लें और पानी को छोड दें. शिकागो मे जार्ज डब्ल्यू हेल के यहाँ से वे भारत अपने एक शिष्य के पास पत्र मे लिखते हैं—'मैं इस देश मे कुतूहलवश नही आया, न नाम के लिए, न यश के लिए परन्तु भारत के दरिद्रो की उन्नति करने का उपाय ढूँढने आया हू यदि परमात्मा सहायक हुए तो धीरे-धीरे तुम्हे वे उपाय मालूम हो जायेंगे.' इसी पत्र मे वे यह भी लिखते हैं—'अमरीकावालो मे अनेक दोष भी है. वे आध्यात्मिकता मे हमसे निम्न स्तर पर है, परन्तु इनका सामाजिक स्तर अति उच्चतर है. हम इन्हे आध्यात्मिकता सिखायेंगे और इनके समाज कें गुणो को स्वय ग्रहण करेगे'

अमरीकी स्त्रियो के विषय मे स्वामी की बहुत उच्च धारणा थी. उनके जीवन मे अमरीकी नारियो का बहुत ही महत्वपूर्ण स्थान था. जैसे भारत से जब वे खाली हाथ, एक परिव्राजक बन कर, नाम यशरहित असहाय दशा मे अमरीका जैसे भौतिकवादी देश मे आये, उस समय अमरीकी महिलाओ ने ही उनकी सहायता की, उनके निवास और भोजन की व्यवस्था की वे उन्हें अपने घर ले गयी, उनके साथ भाई और बेटे का सा व्यवहार किया. उनके पादरियो ने जब स्वामी को भयानक विधर्मी के विशेषण से सजा कर,उन्हे त्याग देने के लिए लोगो को बाध्य किया तथा मिशनरियो ने जब उनके उज्ज्वल चरित्र पर काले धब्बे लगाने चाहे, तब ऐसी स्थिति मे भी अमरीकी महिलाए उन्हे सहारा देती रही, उनकी मित्र बनी रही. ये स्त्रियाँ उनकी निराशापूर्ण प्रवास की अवधि मे आशा की किरण बन कर आयी. फिर भला स्वामी के हृदय मे अमरीकी महिलाओ के प्रति क्यो न कोमल स्थान हो ? क्यो न वे उनकी प्रशसा करते-करते नही थकें ? खेतरी के महाराजा को पत्र मे स्वामीजी ने अमरीकी महिलाओ के विषय मे इस प्रकार लिखा—'अमरीका के पारिवारिक जीवन के सम्बन्ध मे मुझे अनेक निरर्थक कहानियाँ सुनने को मिलीं मैंने सुना कि वहाँ अनर्गलता की सीमा तक स्वच्छन्दता है, कि वहाँ की नारियो की चाल-चलन नारियो जैसी नही है, स्वतन्त्रता की उन्मत्तता मे आकर वे अपने पारिवारिक जीवन की सुख-शांति को पद-दलित कर चूर्ण-चूर्ण कर देती हैं और भी इसी प्रकार की बकवास सुनने मे आयी. किन्तु अब एक वर्ष बाद अमरीकी परिवार तथा अमरीकी स्त्रियो के सम्बन्ध मे मुझे जो अनुभव प्राप्त हुआ है, उससे यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि उक्त प्रकार की धारणाए कितनी भ्रात और निर्मूल हैं. अमरीकी महिलाओ ! सौ जन्म मे भी मैं तुमसे उऋण न हो सकूगा मेरे पास तुम्हारे प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करने की भाषा नही है. 'प्राच्य अतिशयोक्ति' ही

प्राच्यवासी-मानवो की आंतरिक कृतज्ञता प्रकट करने की एकमात्र भाषा है : 'यदि समुद्र मसि-पात्र, हिमालय पर्वत मसि, पारिजात वृक्ष की शाखा लेखनी तथा पृथ्वी पत्र हो तथा स्वय सरस्वती लेखिका बन कर अनन्तकाल तक लिखती रहे, फिर भी तुम्हारे प्रति मेरी कृतज्ञता प्रकट करने मे ये सब समर्थ न हो सकेंगे.

'कितने ही सुन्दर पारिवारिक जीवन मैंने यहां देखे हैं, कितनी ही ऐसी माताओ को मैंने देखा है, जिनके निर्मल चरित्र तथा नि स्वार्थ सतान-स्नेह का वर्णन भाषा के द्वारा नही किया जा सकता कितनी ही ऐसी कन्याओ तथा कुमारियो को देखने का अवसर मिला है जो कि डायना देवी के मन्दिर पर स्थित तुषार कणिकाओ के समान निर्मल, असाधारण शिक्षिता तथा मानसिक तथा आध्यात्मिक, हर दृष्टि से उन्नत है. तब क्या अमरीका की सभी नारियां देवी स्वरूपा हैं ? यह बात नही, भले-बुरे सभी स्थानो मे होते है.'

एक दूसरे पत्र मे, अपने शिष्य 'हरिपद' के पास अमरीकी स्त्रियो के विषय मे स्वामी इस प्रकार लिखते हैं—'· ··· · मैंने यहा हजारो महिलाए देखी, जिनके हृदय हिम के समान पवित्र और निर्मल हैं. अहा ! वे कैसी स्वतन्त्र होती हैं. सामाजिक और नागरिक कार्यों का वे ही नियन्त्रण करती हैं. पाठशालाए और विद्यालय महिलाओ से भरे हैं और हमारे देश मे महिलाओ के लिए राह चलना भी निरापद नही ! और ये कितनी दयालु हैं. जब से मैं यहाँ आया हूं, अपने घरो मे मुझे स्थान दिया है, मेरे भोजन का प्रबन्ध करती हैं, व्याख्यानो का प्रबन्ध करती है, मुझे बाजार ले जाती हैं, और मेरे आराम और सुविधा के लिए क्या नही करती. मैं किस प्रकार वर्णन करूं ! मैं सौ जन्मो मे भी इस महान कृतज्ञता के ऋण को थोडा सा भी चुकाने मे सर्वथा असमर्थ रहूँगा ··· यहाँ की नारियाँ कैसी पवित्र हैं. २५ या ३० वर्ष की आयु के पहले बहुत कम विवाह होता है. गगनचारी पक्षी की भांति ये स्वतत्र हैं हाट-बाजार, रोजगार, दूकान, कालेज, प्रोफेसर, सर्वत्र सब धधा करती हैं, फिर भी कितनी पवित्र हैं जिनके पास पैसे है, वे गरीबो की भलाई मे तत्पर रहती हैं और हम क्या कर रहे है ? हम लोग नियमपूर्वक अपनी कन्याओ का विवाह ११ वर्ष की आयु मे कर देते हैं, जिससे वे भ्रष्ट और दुश्चरित्र न हो. हमारे मनु जी हमे क्या आज्ञा दे गये हैं ? 'पुत्रियो का पुत्रो के समान सावधानी और ध्यान से पालन और शिक्षण होना चाहिए'—कन्याप्येवं पालनीया शिक्षणीयातियत्नत.. जैसे ३० वर्ष तक ब्रह्मचर्य-पालन पूर्वक पुत्रो की शिक्षा होनी चाहिए, उसी तरह माता-पिता को पुत्रियो को भी शिक्षा देनी चाहिए और उनसे ब्रह्मचर्य व्रत धारण कराना चाहिए. परन्तु हम क्या कर रहे है ? क्या तुम अपने देश की महिलाओ की दशा सुधार सकते हो ?'

इसका यह अर्थ कदापि नही है कि भारतीय महिलाओ के प्रति स्वामी के हृदय मे आदर की कमी थी. बल्कि उनका विचार था कि जब तक भारत मे महि-

लाओ की दशा मे सुधार नही होगा तब तक हमारा समाज उन्नत नही हो सकता. एक शिक्षित नारी अपने बच्चे को सफल नागरिक बना सकती है और यह सफल नागरिक ही समाज का मजबूत अंग बनता है. स्वामी ने अमरीका मे 'भारतीय नारी' पर व्याख्यान दिया. स्वदेश प्रेम तथा स्वदेशाभिमान की भावनाओ से ओत-प्रोत अपने भाषण मे वे भारतीय नारी का गुणगान करते हुए नही थके. वे अपने यहाँ की स्त्रियो के रीति-रिवाज, उनकी शिक्षा तथा पारिवारिक जीवन मे उनके स्थान की बडे ही विशिष्ट रूप से व्याख्या करते. स्त्री के इन चार रूपो—माता, पत्नी, कन्या, और बहन, के शब्द-चित्र अपने भाषण के द्वारा उन्होने प्रदर्शित किये भारतीय माता का चित्र प्रदर्शित करते हुए उन्होने कहा—'भारत मे स्त्री-जीवन के आदर्श का आरम्भ और अन्त मातृत्व मे होता है' उन्होने समझाया कि भारत मे स्त्री पहले माता है, फिर पत्नी. किन्तु अमरीका मे स्थिति ठीक इसके विपरीत है यहाँ स्त्री पहले पत्नी है फिर माता

शिकागो धर्म महासभा के समाप्त होने के ढाई माह बाद स्वामी विवेकानन्द को एक प्रमुख व्याख्यान सस्था के द्वारा निमत्रण मिला कि वे अमरीका के प्रधान नगरो का भ्रमण करें और वेदान्त दर्शन तथा भारतीय सस्कृति पर भाषण दें जगत्प्रभु का आदेश समझ कर स्वामी ने इस निमन्त्रण को स्वीकार कर लिया इस निमत्रण ने स्वामी के जीवन की एक बहुत बडी अभिलाषा को पूर्ण किया भारतीय सभ्यता और सस्कृति के सबध मे पाश्चात्य जगत के सामने जो एक भ्रमात्मक विचार का गाढा पर्दा पडा हुआ था, उसे स्वामी को हटाना ही था बिना इसके हटे भारत का वास्तविक रूप वे लोग नही देख सकते थे, उसे ठीक तरह से नही समझ सकते थे और बिना सच्ची स्थिति की जानकारी हासिल किये उन लोगो से किसी प्रकार की सहायता की आशा नही की जा सकती थी स्वामी की प्रसन्नता का दूसरा कारण यह था कि इन भाषणो मे वे अच्छा खासा पारिश्रमिक सचय कर सकते थे. उन्हे धन की अति आवश्यकता थी. इससे उन्हे भारत के धार्मिक एव लोक-हितैषी कार्यों मे सहायता प्रदान करने की शक्ति मिलती.

सन् १८९३ के नवम्बर के मध्य मे जब शरद ऋतु पूर्णरूप से अपना गौरव जमा चुकी थी, उन्ही दिनो स्वामी के भ्रमण-भाषण का कार्यक्रम शुरू हुआ. शिकागो शहर से वे सर्वप्रथम मैडिसन, मिनिएपोलिस तथा आयोवा गये जहा-जहाँ वे जाते वहाँ जनता के द्वारा उनका हार्दिक स्वागत होता था. वक्तृत्व सस्था के द्वारा निर्देशित किये हुए नगर के किसी प्रमुख व्यक्ति के यहाँ उन्हे ठहराया जाता आम-सभा मे भाषण के अतिरिक्त, कई छोटी-मोटी वैयक्तिक विचार-गोष्ठियो का भी आयोजन किया जाता था इसी तरह इसके बाद स्वामी जी सेंट लुई, हार्टफोर्ड, बुफैलो, बोस्टन, केम्ब्रिज तथा बाल्टिमूर गये. वक्तृत्व सस्था ने स्वामी को कही भी चैन नही लेने दिया—लगातार भ्रमण और भाषण—आज की रात यहाँ और कल को

रात कही और. श्री रोम्या रोलाँ के शब्दो मे स्वामी सस्था के द्वारा विज्ञापन के पृष्ठो पर 'नवीन भारत के भविष्य-द्रष्टा' के रूप मे दिखाये जाते थे. जान पडता था जैसे भारत की किसी अजनबी चीज को दिखाने के लिए जनता को एकत्र किया जा रहा हो. छोटी-छोटी जगहो, गांवो और कस्बो की भोली-भाली जनता, जिसका मानसिक स्तर जीवन की दैनिक आवश्यकताओ की पूर्ति से कभी ऊपर उठा ही नही, जो आध्यात्मिकता के शब्दो से बिलकुल अपरिचित थी, स्वामी के भाषणो के समय प्रस्तरमूर्ति बनी रहती थी. यहाँ भैस के आगे बीन बजाया जा रहा था. पता नही स्वामी ऐसी स्थिति मे अपने को कैसे सभाल पाते थे उन्हे भारत के लिए धन की बहुत आवश्यकता थी शायद इसीलिए वे इस तरह की मानसिक यातनाए सहन करते गये पतझड की ओट मे मधुमास छिपा रहता है, निराशा के काले परदे के पीछे आशा की किरणें जगमगाती रहती हैं भ्रमण के दौरान ऐसी कारुणिक स्थिति स्वामी को कम ही मिली अधिकतर उनका सम्बध विद्वानो और बुद्धिमानो के ही साथ रहा सन् १८९४ के फरवरी महीने के अन्त मे स्वामी डिट्राएट गये. वहां वे टामस डब्ल्यू पामर के यहाँ, जो शिकागो धर्म महासभा के आयोग के सभापति थे, दो सप्ताह अतिथि के रूप मे रहे यहाँ इनका बडा शानदार स्वागत हुआ. हेल बहनो को स्वामी ने यहां से एक पत्र मे लिखा था :

डिट्राएट, १५ मार्च १८९४

प्रिय बच्चियो,

मैं बूढ़े पामर के साथ सानन्द हूँ. वे बड़े विनोदी और भले वृद्ध हैं. पिछले व्याख्यान से मुझे १२६ डालर मिले. मैं सोमवार को फिर डिट्राएट मे भाषण देने जा रहा हूँ. मेरे विषय मे यहाँ के एक समाचार पत्र ने सबसे अजीब बात यह लिखी है, 'तूफानी हिन्दू' यहाँ आ धमका है, और वह श्री पामर का अतिथि है. श्री पामर हिन्दू हो गये हैं और भारत जा रहे हैं.·· ·· मैं वास्तव मे 'तूफानी' कतई नही हूँ, इससे बिल्कुल दूर जिस वस्तु को मैं चाहता हूँ वह यहाँ नही है, और मैं इस 'तूफानी' वातावरण को और अधिक काल तक सहन करने मे असमर्थ हूँ. पूर्णता का मार्ग यह है कि स्वय पूर्ण बनने का प्रयत्न करना तथा कुछ थोडे से स्त्री-पुरुषो को पूर्ण बनाने का प्रयत्न करना. भला करने का मेरा यह अर्थ है कि कुछ असाधारण योग्यता के मनुष्यो का विकास करूँ, न कि 'भैस के आगे बीन' बजा कर समय, स्वास्थ्य और शक्ति का अपव्यय करूँ.

चिर कृतज्ञ तुम्हारा भाई, **विवेकानन्द**

इसके बाद स्वामी मिशिगन के भूतपूर्व गवर्नर की विदुषी पत्नी श्रीमती जॉन जे बैग्ले के घर अतिथि बने श्रीमती बैग्ले डिट्राएट की प्रमुख महिलाओ मे

अग्रगण्य स्थान रखती थी. श्री पामर के यहा से ये स्वामी को अपने घर लायी और उनके स्वागत मे नगर के विख्यात लोगो के प्रीति भोज का आयोजन अपने घर पर किया 'डिट्राएट ट्रिब्यून' मे दूसरे दिन एक बडा सा लेख निकला. उसमे लिखा था—'श्रीमती बैग्ले के विशाल बगले की प्रकाशयुक्त बैठक मे स्त्री-पुरुषो के बीच, कोई भी स्वामी को अपनी पगडी और चोगे मे चमकता हुआ देख सकता था ' इस प्रकार का स्वागत समारोह डिट्राएट मे बहुत सालो के बाद देखा गया. श्रीमती बैग्ले शिकागो की धर्म महासभा मे उपस्थित थी उसी समय से उनकी बडी तमन्ना थी कि स्वामी एक बार उनके यहाँ आयें. यहाँ के यूनिटैरियन चर्च मे तीन दिनो तक लगातार रात्रि के समय स्वामी के भाषण होते रहे यहा वेदान्त दर्शन के अतिरिक्त 'भारत के रीति-रिवाज' भी उनके भाषण के विषय थे. यहाँ के समाचार पत्रो मे उनका बडा सुन्दर विवरण छपा श्रीमती बैग्ले की सम्पत्ति और स्नेह का, जो सोने मे सुगन्ध था, डिट्राएट की जनता पर बडा प्रभाव था. श्रीमती बैग्ले की मध्यस्थता से वहाँ की जनता भी स्वामी को निकट से देख और समझ सकी

स्वामी ने यहाँ से कुमारी ईसाबेल मेकिंडले को पत्र लिखा था. इस पत्र से उनकी उन दिनो की भावनाओ का अच्छा चित्र मिलता है.

डिट्राएट, १७ मार्च १८९४

प्रिय बहन,

तुम्हारा पैकेट मुझे कल मिला. तुमने मोजे नाहक भेजे, वे तो मैं यहाँ स्वयं ही कही ले लेता. पर हर्ष की बात है कि यह तुम्हारा स्नेह व्यक्त करता है मेरा थैला तो पहले ही से मास भरे जाने वाले चमडे के थैले से भी अधिक कडा हो गया है समझ मे नही आता कि अब मैं उसे कैसे ले जाऊँ

आज श्रीमती बैग्ले के यहाँ लौट आया. श्री पामर के यहाँ अधिक दिन रुकने के कारण वह नाराज थी निश्चय ही पामर के घर मे दिन बडी 'तफरीह' से कटे वह बहुत ही मौजी और हँसमुख आदमी है, जरूरत से जरा ज्यादा, और फिर उनकी 'गरम स्कॉच'. लेकिन है वे एकदम अकलक और बच्चो जैसे सरल.

मेरे चले आने से वे बहुत दुःखी थे, लेकिन मैं विवश था. यहा एक बहुत सुन्दर लडकी है. मैं उनसे दो बार मिला नाम मैं उसका भूल रहा हूँ. लेकिन इतनी तेज, सुन्दर, आध्यात्मिक एव असासारिक, ईश्वर उस पर कृपा रखे आज सवेरे वह श्रीमती मैक्ड्यूवेल के साथ आयी और इतनी सुन्दरता और आध्यात्मिक गम्भीरता से उसने बातें की कि मैं तो चकित रह गया वह योग के बारे मे सभी बातें जानती है और साधना मे काफी आगे बढ़ चुकी है.

'तेरा ढग खोज से परे है ' ईश्वर उस जैसी भोली, पवित्र और निर्मल लडकी को प्रसन्न रखे. यह मेरे कठोर और कष्टप्रद जीवन का महान् प्रतिफल है कि समय

समय पर तुम जैसी पवित्र और आनन्दित लोगो के दर्शन मुझे हो जाया करते हैं. बौद्धो की एक प्रमुख प्रार्थना है—'पृथ्वी पर समस्त पवित्र मनुष्यो के समक्ष मैं नत-मस्तक हूँ' उस प्रार्थना के सही अर्थ का अनुभव मुझे तभी होता है, जब मैं ऐसी आकृति देखता हूँ, जिस पर परमात्मा अपनी अंगुली से 'मेरा' शब्द स्पष्ट रूप से अकित कर देता है ईश्वर सदा-सदा के लिए तुम सबको पवित्र एव निर्मल बनाये रखे इस भयावह ससार के पक और धूल तुम्हारे चरणों को स्पर्श न करें. तुम्हारे भाई की यही प्रार्थना है कि तुम पुष्पो की तरह जीओ, जिनके समान तुमने जन्म लिया है.

तुम्हारा भाई, विवेकानन्द

चाहे वह पुरुष हो या नारी, जिसके जीवन मे पवित्रता और आध्यात्मिकता की आभा होती थी, वह स्वामी को सहज मे आकर्षित कर लेता था. मार्च, अप्रैल और मई महीने मे स्वामी प्राय: शिकागो, न्यूयार्क और बोस्टन मे घूमते रहे और अविराम व्याख्या न देते रहे. जून महीने मे न्यू इंगलैण्ड के अन्तर्गत 'ग्रीन एकर' मे ये व्याख्यान देने के लिए कुमारी सारा फारमर के द्वारा आमन्त्रित किये गये कुमारी सारा फारमर, धर्म महासम्मेलन मे स्वामी से मिली थी और तभी उन्होने ग्रीन एकर मे धार्मिक सभा आयोजित करने तथा उसमे स्वामी को आमंत्रित करने की योजना बनायी थी. ग्रीन एकर प्राकृतिक दृष्टि से बहुत रमणीय स्थान था, एक छोटी सी नदी के तट पर बसा हुआ स्वभावत: यहाँ न्यूयार्क की तपाने वाली गर्मी नहीं थी यहा एक बहुत बडी सराय थी तथा 'फार्म हाउस' था सम्मेलन के धनीमानी लोग तो यहाँ ठहराये गये और कुछ साधारण लोगो के लिए नदी-तट पर तम्बू ताने गये.

हेल बहनो के पत्र मे ग्रीन एकर के जीवन के विषय मे स्वामी ने इस प्रकार लिखा है—'यह स्थान अत्यत सुन्दर और मनोरम है. नहाने की यहाँ बडी सुविधा है श्री कोरा स्टॉकहम ने मेरे लिए नहाने की एक पोशाक बनवा दी है और मैं बत्तख की तरह जल का आनन्द ले रहा हूँ.' यहाँ स्वामी को सुन्दर सरायगृह मे ठहराया गया था. शिकागो के उनके अनेक मित्र और परिचित लोग भी वही ठहरे थे. ग्रीन एकर के सम्मेलन में स्वामी ने पहले पहल वेदान्त के अद्वैत दर्शन पर धारावाहिक रूप से कई भाषण दिये. इस सम्मेलन मे ग्रीन एकर के धनी-निर्धन सभी तरह के व्यक्ति सम्मिलित थे. सभी लोगो के हृदय मे अपूर्व श्रद्धा तथा ज्ञानर्धन करने की अभिलाषा थी स्वामी ने सभी को 'शिवोऽहं' का अर्थ समझाया. स्वामी के आदे-शानुसार सभी लोग पवित्र भाव से इस शब्द की अनेकानेक बार आवृत्ति करते रहे. ऐसे व्यक्तियो को शिक्षा प्रदान कर स्वामी बडे ही आनन्द और गौरव का अनुभव करते थे.

यहाँ कुछ उत्साही छात्रगण स्वामी से वेदान्त दर्शन की नियमित रूप से शिक्षा प्राप्त करने के लिए एकत्र हुए. ये लोग भारतीय रीति के अनुसार गुरु के

प्रति श्रद्धा और सम्मान प्रदर्शित करने के विचार से एक घने वृक्ष की छाया मे कक्षा जमाते. स्वामी को बीच मे आसन दिया जाता और उनके सामने अर्द्धगोलाकार रूप से छात्रगण भूमि पर बैठते और उनके उपदेश सुनते एक बार छावनी के सभी लोगो की इच्छा हुई खुले आकाश के नीचे सोने की स्वामी भी सभी लोगो के साथ बाहर आये नक्षत्रजटित नभमडल के नीचे जननी धरित्री की गोद मे सभी लोगो ने सोकर बडे आनन्द के साथ रात बितायी स्वामी को विदेश मे इस प्रकार खुले नीलाम्बर के नीचे भूमि पर सोकर रात बिताने का यह प्रथम अवसर था. इस प्रकार उन्होने और भी कई रातें धरती पर सोकर बितायी. पृथ्वी पर सोना, जगल मे वृक्ष के नीचे बैठ कर ध्यान लगाना ये सब कितने आनदायक अवसर उन्हे ग्रीन एकर मे प्राप्त हुए वेदातदर्शन तथा योग के चितन-मनन मे रमने वाला स्वामी का प्रशात गम्भीर स्वभाव कभी-कभी बहुत ही विनोदशील हो जाया करता था उनकी इस प्रकृति से दूसरो का बहुत मनोरंजन होता था

कुमारी सारा फारमर, जिन्होने स्वामी को ग्रीन एकर मे निमन्त्रित किया था, उनके जाने के बाद भी उनके धार्मिक उपदेशो का प्रचार करती रही तथा उन्होने जनसाधारण के जीवन मे स्वामीजी के उपदेशो का व्यावहारिक रूप से समावेश कराने का यथोचित प्रयत्न किया. स्वामीजी के ग्रीन एकर से बोस्टन, वाशिगटन आदि नगरो मे व्याख्यान देते हुए सितम्बर मे न्यूयार्क पहुँचते ही उन्हे एक निमत्रण मिला, चार्ल्स हिगिन्स का. हिगिन्स न्यूयार्क स्थित 'ब्रुकलिन नैतिक सभा' के नामी सदस्य थे. इन्होने स्वामी के न्यूयार्क पहुँचने के पहले ही प्रचार के हेतु एक दस पृष्ठो की पुस्तिका, ब्रुकलिन नैतिक सभा' के सदस्यो तथा अन्य विद्वतसमाज के लोगो मे वितरित करवा दिया इस पुस्तिका मे स्वामी के विषय मे अनेक प्रमुख समाचार पत्रो के प्रकाशित लेखाशो को एकत्रित किया गया था, जिससे लोगो को उनकी योग्यता और प्रतिभा का पूर्व ज्ञान हो जाये ब्रुकलिन नैतिक सभा के सभापति, सुप्रसिद्ध विद्वान डा० लुइस जी जेम्स ने पहले भी स्वामी का भाषण सुन रखा था. वे उनसे इतने अधिक प्रभावित हुए कि तभी से वे स्वामी को ब्रुकलिन निमन्त्रित करने के लिए आतुर थे इस ब्रुकलिन नैतिक सभा की ओर से 'पाच मैशन' नामक विशाल भवन मे स्वामी के भाषण का प्रबध किया गया. सन् १८९४ साल की अतिम सध्या को पांच मैशन भवन के वृहद् कक्ष मे स्वामी ने हिन्दू धर्म के सम्बध मे व्याख्यान दिया. कक्ष का कोना-कोना हजारो दर्शको और श्रोताओं मे भरा हुआ था. भाषण बहुत ही सफल रहा लोग इतने मुग्ध थे कि सभापति डा० लुई जेम्स के आग्रह पर स्वामी ने कई दिन तक लगातार इस सभा मे व्याख्यान देना स्वीकार कर लिया प्राच्य धर्मों की विवेचना के अतिरिक्त स्वामी ने भारतीय समाज और सस्कृति पर भी भाषण दिये. समाज मे स्त्रियो के स्थान पर जब चर्चा चली तो वहाँ के पुरुषो ने उसमे कुछ खास दिलचस्पी नही ली इस सम्बध मे स्वामी दुखी

ईसाबेल मेकिंडले को पत्र मे इस प्रकार लिखते हैं—'पुरुषो ने मेरे पिछले व्याख्यान की बहुत प्रशसा नहीं की, किन्तु स्त्रियो ने उसे आशातीत रूप से पसद किया. तुम जानती हो, ब्रुकलिन स्त्री अधिकारों के आदोलन के प्रतिकूल विचारो का केंद्र है, और जब मैंने कहा कि स्त्रियाँ योग्य होती हैं और प्रत्येक काम के लिए उपयुक्त हैं तो निश्चय ही यह लोगो को पसद नहीं आया होगा कोई बात नही, स्त्रियाँ विभोर थीं.' ब्रुकलिन भाषणमाला ने स्वामी के मन मे पूर्ण विश्वास जमा दिया कि अमरीका मे वेदांत का प्रचार अवश्य ही सुचारू रूप से होगा यहाँ उन्हे बहुत से विश्वासी और श्रद्धालु व्यक्ति मिले जो वेदात की पूर्ण शिक्षा लेकर लोकहित के लिए उसका प्रचार करना चाहते थे

व्याख्यान कम्पनी के द्वारा आयोजित भ्रमण और भाषण से स्वामी को अमरीका की जनता को देखने और समझने का बडा अच्छा अवसर मिला साथ ही भारत के लोकहितैषी कार्यों के लिए पर्याप्त धन भी मिला. जीवन की नित नूतन अनुभूतियो, मान-सम्मान, यश-प्रतिष्ठा इन सबने उनके हृदय को उत्साह से भर दिया था परन्तु अविराम व्याख्यान और परिश्रम से उनका शरीर थक कर टूट रहा था. फिर भी जब वे भविष्य की ओर दृष्टि डालते तो कामो का अम्बार दिखाई देता. आराम करते तो भी कैसे ? व्याख्यान सस्थान की ओर से इधर-उधर व्याख्यान देते चलने से पैसे तो काफी इकट्ठे होते जा रहे थे, किन्तु उनका सारा समय इसी कार्य मे लगा रहे, यह उन्हे पसद नही था. भारत मे अभीष्ट कार्य-क्रम के प्रारम्भ के लिए धन की आवश्यकता को स्वामी अच्छी तरह समझते थे, परन्तु जैसे-जैसे अमरीका छोड़ने का समय निकट आने लगा, उन्हें इसकी भी चिंता होने लगी कि यहाँ वेदात दर्शन के प्रचार का प्रबध कैसे हो. वे यह चाहते थे कि उनके यहां नही रहने पर भी यह कार्य स्थायी रूप से चलता रहे इसके लिए कुछ लोगो को व्यवस्थित ढग मे प्रशिक्षित करना आवश्यक था. इसके अतिरिक्त पैसे लेकर भाषण देने के काम से उन्हें अरुचि हो गयी थी. धन लेकर धर्म की शिक्षा देना उन्हें अनुचित जान पडने लगा. अत. उन्होने व्याख्यान सस्थान से अपना सम्बध-विच्छेद कर लिया और न्यूयार्क मे स्थायी रूप से वेदात और योग की नि.शुल्क शिक्षा देने के लिए एक कक्षा खोलने का निश्चय किया. इस कक्षा का पाठ्यक्रम स्वामी ने अपने मन मे तैयार कर लिया था. न्यूयार्क में जब इस प्रकार की नि शुल्क शिक्षा की कक्षा शुरू हुई तो ग्रीन एकर तथा ब्रुकलिन से उनके अनेक शिष्य वहाँ स्थायी रूप से शिक्षा ग्रहण करने आ गये. इसके अतिरिक्त अन्य लोग भी उनका उपदेश सुनने के लिए नियमित रूप से आन लगे. बहुत से अमरीकी लोगो को यह बात समझ मे नही आ रही थी कि स्वामी ने भाषण के द्वारा धन-प्राप्ति का पथ क्यो छोड दिया ! वे लोग इसे स्वामी की एक बड़ी भूल समझते थे. मगर स्वामी अपने निश्चय पर अटल रहे.

यहाँ न्यूयार्क की कक्षा मे अधिकतर ज्ञानयोग और राजयोग पर ही व्याख्यान होते थे. गुरु और शिष्यो के कक्षा मे बैठने की रीति विशुद्ध भारतीय थी. छात्र-छात्राएँ गुरु के सामने भूमि पर पैर मोड कर बैठते थे. वेदात के सिद्धातो के साथ-साथ छात्र-छात्राओ की आध्यात्मिक जीवन जीने की कला पर भी स्वामी जोर देते थे. वहाँ योगशास्त्र के नियमानुसार ब्रह्मचर्य और सात्विक आहार, चरित्र निर्माण की पहली सीढी थी. स्वामी प्रत्येक छात्र और छात्रा के दैनिक कार्यक्रम, उनकी चालढाल, तौर-तरीके, बातचीत, तर्क-वितर्क व उनकी प्रकृति पर अपनी कडी दृष्टि रखते. आध्यात्मिक मानदण्ड से कही भी चूक होने पर उन्हे सचेत करते. स्वामी के शब्दो मे —'राजयोग विद्या पहले मनुष्य को उसकी अपनी आभ्यतरिक अवस्थाओ के पर्यवेक्षण का उपाय दिखाती है. मन ही उस पर्यवेक्षण का यत्र है.·· इस ज्ञान की प्राप्ति का एकमात्र उपाय है एकाग्रता. ' मन की शक्तियाँ इधर-इधर बिखरी हुई प्रकाश की किरणो के समान है. जब उन्हे केन्द्रीभूत किया जाता है, तब वे सब कुछ आलोकित कर देती हैं ' किसी भी प्रकार के ज्ञान की प्राप्ति का यह प्रथम सोपान है

इस प्रकार राजयोग की व्याख्या करते हुए स्वामी ने कई व्याख्यान दिये. उनके इन वक्तव्यो की ख्याति काफी दूर-दूर तक फैली इन व्याख्यानो के समय नगर के कई प्रसिद्ध दार्शनिक, वैज्ञानिक एव अध्यापकगण भी उपस्थित होते आवश्यकतानुसार कक्षा मे प्रश्नोत्तर भी चलता रहता. इस कक्षा के काम मे ही स्वामी दिन-रात लगे रहते. उन्हें लगता था कि अब तक अमरीका ने जो कुछ भी उन्हें दिया—धन-सम्पति, नाम-यश, सब कुछ व्यर्थ दिया , असली महत्व का काम वे अब कर रहे थे. उसी से श्रीरामकृष्ण का सदेश चिरस्थायी बनेगा कक्षा के सामने ध्यानावस्थित होने की कला को प्रदर्शित करते-करते उनकी दृष्टि किसी एक वस्तु पर जाकर टिक जाती, शरीर पाषाणवत् हो जाता, और श्वास गति मद होते होते एकदम बन्द हो जाती. वे इतने तन्मय हो जाते कि अपनी पूरी बाह्य चेतना खो बैठते. बहुत देर के बाद ध्यान खुलने पर जब उन्हें अपनी स्थिति का ज्ञान होता तो वे दुःखी हो जाते क्योकि वहाँ उनका काम था दूसरो को शिक्षा देना, न कि स्वय ध्यान मे लीन हो जाना. इस स्थिति से बचने के लिए उन्होने कुछ शिष्यों को एक तरीका बताया. अब जब भी ध्यानावस्थित होकर वे अपनी चेतना खो बैठते तो कोई शिष्य उनके कानो मे कोई विशेष मत्रोच्चारण करता. संस्कृत के उस मधुर श्लोक की ध्वनि जैसे ही उनके कर्ण कुहरो मे जाती, उनकी समाधि धीरे-धीरे टूटने लगती इस प्रकार स्वामी का अपना योगाभ्यास भी कक्षा के कार्य के साथ-साथ चलता रहा इस कक्षा मे अधिकतर राजयोग पर ही व्याख्यान हुए. अपने सभी भाषणो को क्रमानुसार सग्रह करके स्वामी ने उन्हें एक पुस्तक के रूप मे भी प्रकाशित करवाया. इस पुस्तक का नाम 'राजयोग' था. पुस्तक के परिशिष्ट मे उन्होने पातजल दर्शन का एक भाष्य भी लिख कर जोड दिया. इस पुस्तक ने

अमरीका में बहुत प्रसिद्धि प्राप्त की तथा बहुत से ज्ञान-पिपासु पाठको एव मनीषियो की तृष्णा मिटायी अमरीका के अत्यत प्रसिद्ध मनोविज्ञान के प्रोफेसर जेम्स इस पुस्तक को पढ कर स्वामीजी की प्रतिभा से इतने प्रभावित हुए कि वे उनसे मिलने उनके निवास स्थान पर गये और अत मे उनके अभिन्न मित्र बन गये.

न्यूयार्क के इस स्कूल मे कई माह तक दर्शन के तत्वो का विश्लेषण और योगाभ्यास करते-करते स्वामी बेहद थक गये थे. इस स्कूल की ख्याति बहुत फैल गयी थी. फलस्वरूप यहाँ भी स्कूल के स्थायी छात्र-छात्राओ के अतिरिक्त काफी लोग एकत्र होते रहते थे अब ग्रीष्म ऋतु भी आ गयी. न्यूयार्क की तपने वाली गर्मी से घबडा कर कुछ लोग ठढे स्थानो मे चले गये. स्वामी भी यहाँ से दूर किसी एकात स्थान मे जाकर विश्राम करने की सोचने लगे

अनुकूल परिस्थिति देख कर उनकी एक छात्रा, कुमारी डचर ने उन्हे कुछ दिनो के लिए अपने घर चलने का आग्रह किया. अपने अति व्यस्त जीवन तथा गिरते हुए स्वास्थ्य की दशा देख कर स्वामी ने स्वीकृति दे दी. उनके दस-बारह परम प्रिय शिष्य, किसी भी कीमत पर स्वामी का साथ छोड़ने को तैयार नही थे कुमारी डचर ने उन्हें भी स्वामी के साथ अपने घर आमन्त्रित किया.

कुमारी डचर का मकान न्यूयार्क नगर से ३०० मील हट कर थाउजेन्ड आइलैंड पार्क नामक द्वीप मे था. यह लघु द्वीप सेन्ट लारेन्स नदी के वक्ष पर सुशोभित था. इस द्वीप की लम्बाई नौ मील और चौडाई डेढ-दो मील से अधिक नही थी. वहा के वन-उपवन तथा पहाडियो पर प्रकृति का स्वभाविक सौंदर्य बिखरा हुआ था. कुमारी डचर का मकान एक पहाडी की ढलान पर स्थित था , पीछे सघन वन, और आगे सेन्ट लारेन्स नदी का झिलमिलाता किनारा. मकान के निचले भाग मे एक बडी सी बैठक तथा रसोईघर था. ऊपरी मजिल पर बहुत से छोटे-छोटे कमरे शयन के लिए थे. इन्ही कमरो मे से जो सबसे अत मे था, स्वामी के लिए सुरक्षित था. इसकी सीढी आम सीढी से अलग थी तथा इससे लगा हुआ एक बडा सा बरामदा भी था. यहाँ से प्रकृति का रूप निहारते ही बनता था. मकान ऊँचाई पर होने के कारण नीचे सघन वन-वृक्षो के हिलते-डुलते शिखरो की हरीतिमा का सागर लहरा रहा था. इस रमणीय द्वीप की आबादी कोई विशेष नही थी. नीचे तराई मे दूर-दूर पर बने छोटे-छोटे गृह घने वृक्षो की ओट मे छिप गये थे. चारो ओर शाति का साम्राज्य ! यह अक्षुण्ण शाति भग होती थी तो बस चिडियो के चहचहाने से और झींगुरो के झनझनाने से. इस घर के लोगो को छोड़ कर कही किसी दूसरे मानव की आवाज सुनाई पडना दुर्लभ था. एक ओर दूर पर नदी की लोल लहरो के साथ क्रीडा करती छोटी-छोटी नौकाए प्राकृतिक शोभा मे चार चांद लगा रही थी.

यहाँ आकर स्वामी ने निश्चय ही बहुत स्वच्छन्दता का अनुभव किया. जैसे पिजड़े का बन्द पक्षी अब मुक्त हो गया हो. न्यूयार्क के कोलाहलपूर्ण परिवेश के

व्यस्त जीवन से यहा का जीवन कितना भिन्न था, कितना अपना था. स्वामी का मानस आध्यात्मिकता के प्रकाश से द्युतिमान हो उठा. यहा आने के प्रथम दिन, १९ जून से ही स्वामी ने नियमित रूप से कक्षा का काम आरम्भ कर दिया. नीचे के वडे कक्ष मे सभी छात्र-छात्राएं अर्द्धगोलाकार रूप से भूमि पर वैठे, वीच मे स्वामी. स्वामी के हाथ मे वाइविल थी. उन्होने उसे खोलते हुए कहा कि चूकि यहा सभी ईसाई हैं, अत. आज सर्वप्रथम मैं वाइविल धर्मग्रन्थ से ही अपना उपदेश आरम्भ करता हूं. इसके वाद ६ अगस्त तक प्रतिदिन ब्रह्मवेला मे दो घटे तक उनकी कक्षा मे वेदान्त दर्शन, गीता तथा न्यू टेस्टामेट के ज्ञान की चर्चा होती. किन्तु इनकी शिक्षा सिर्फ कक्षा की शिक्षा तक ही सीमित नही थी. इस अध्ययन मनन के वाद गुरु-शिष्यो की टोली द्वीप-भ्रमण के लिए निकल पडती. तव ऊपा सुन्दरी के सुनहरे आचल से वालसूर्य झाकने लगता और सेन्ट लारेन्स नदी की ओर से आता हुआ शीतल मद पवन, मलयानिल के समान स्फूर्ति प्रदान करता. वह टोली वन-उपवन की ऊंची नीची धरती पार करती हुई नदी तट की ओर से अपने घर वापस आ जाती. इस भ्रमण के दौरान स्वामी का प्रवचन वरावर चलता रहता. इस मार्ग मे अपनी किसी भी बात को स्पष्ट करने हेतु वे शीघ्र ही प्रकृति के वीच से कोई उपयुक्त दृष्टान्त ढूढ लेते. नदी-निर्झर, वन-पर्वत, पेड-पौधे तथा पशु-पक्षियो जैसी साधारण चीजो के माध्यम से वे वडी-वडी आध्यात्मिक वातो को क्षण भर मे स्पष्ट कर देते थे.

स्वामी जव तक इस द्वीप पर रहे वरावर एक दो शिष्यो के साथ नदी की ओर घूमने निकलते और नितान्त शान्त वातावरण मे तट पर वैठ कर समाधि मे मग्न हो जाते उन्होने अपने शिष्यो को वता रखा था कि कठिन समाधि की स्थिति से उन्हे चेतनावस्था मे लाने के लिए किस प्रकार का मन्त्रोचारण उनके कान मे करना चाहिए. अत जव कभी समाधि टूटने मे विलम्व होता, उनके शिष्य स्थिति संभाल लेते.

कुमारी डचर के सभी अथिति सामूहिक रूप से दैनिक गृहकार्य मे हाथ वटाते. यहां तक की स्वामी भी कभी-कभी भोजन पकाने का काम अपने हाथ मे ले लेते. भारतीय पाक कला के अनुसार चिकनाई और मिर्च मसाले डाल कर वे चट-पटा व्यजन तैयार करते और वड़े चाव से खिलाते. किन्तु उस प्रकार के भोजन से कुछ शिष्यो की नाक और आंखो से पानी गिरने लगता, कण्ठ जलने लगता, परन्तु वे सब खा जाते, कुछ नही छोडते. भला स्वामी की वनाई हुई चीज को जूठा छोड़ कर उसका अपमान कैसे करें ?

भोजन के पश्चात मध्याह्न मे स्वामी छात्र-छात्राओ के साथ घर के ऊपर के वरामदे मे वैठ कर भारत की प्राचीन सभ्यता के विषय मे वातें करते. इसके साथ ही साथ वे मध्यकालीन इतिहास पर भी प्रकाश डालते और लोगो को वताते कि भारत मे मुसलमान विजेता बन कर आये थे और विजित होकर जीवन वसर कर

रहे हैं. वे मुसलमानो को बराबर 'मेरे मुसलमान भाई' कह कर ही सम्बोधित करते. उनकी दृष्टि मे भारत सिर्फ हिन्दुओ का ही देश नही था बल्कि उनके 'मुसलमान भाइयो' का भी देश था.

कभी-कभी स्वामी को अपने अतंमन की ध्वनि सुनाई पड़ती और वे एक भविष्यवक्ता बन जाते. एक बार इसी प्रकार की मन.स्थिति मे उन्होने कहा था कि कुछ समय बाद संसार मे एक बडा उथल-पुथल होगा जिससे एक नये युग का आरम्भ होगा. बडी विचित्र बात, कि स्वामी ने यह भी कहा था कि यह उथल-पुथल रूस चीन द्वारा आयेगा. कुछ देर के बाद उन्होने फिर कहा—'यूरोप ज्वाला-मुखी के मुख पर टिका है. यदि आध्यात्मिकता की बाढ से उसकी आग नहीं बुझाई गयी तो उसका विध्वंस हो जायेगा.' यह बात १८६५ ई० की है. बीस साल के भीतर, १६१४ मे प्रथम विश्व युद्ध का ज्वालामुखी फूट पडा और १६१७ मे रूस की महान् क्राति हुई जिसने सचमुच ससार मे एक बड़े उथल-पुथल को जन्म दिया.

स्वामी की एक शिष्या एस० ई० वाल्डो ने, जो उनके साथ न्यूयार्क से आयी थी, यहा के जीवन का बडा ही सुन्दर वर्णन किया है—'स्वामी यद्यपि क्रीडाशील, विनोदप्रिय, उल्लास के साथ परिहास करने के तथा बात का तुरन्त व्यग्यात्मक उत्तर देने के अभ्यस्त थे, फिर भी एक क्षण के लिए भी वे अपने जीवन के मूलतत्र से लक्ष्यभ्रष्ट नही होते थे. प्रत्येक चीज से वे कुछ न कुछ बोलने का या उदाहरण देने का विषय पा लेते थे और क्षण मे ही वे हमे आकर्षक हिन्दू पौराणिक कथाओ से एकदम गम्भीर दर्शन के बीच खीच ले जाते थे. स्वामी पौराणिक कथाओ के अशेष भडार थे वास्तव मे प्राचीन आर्यों से बढ कर अन्य किसी भी जाति मे इतनी अधिक पौराणिक कथाएँ नही हैं. वे हमे उन कहानियो को सुना कर प्रसन्न होते थे और हम भी उन्हें सुनना चाहते थे, क्योकि वे उन कहानियो के पीछे जो सत्य निहित था उसे दिखा देना तथा उससे मूल्यवान धर्म विषयक उपदेशो का आविष्कार करना नही भूलते थे.'

कहानी के साथ साथ कविता एक बार यहा अपने शिष्यो के सामने सन्यासियो के त्याग की महिमा की चर्चा करते हुए स्वामी इतने आत्म-विभोर हो गये कि एकाएक वे आसन छोड कर उठ खडे हुए और टहलने लगे. फिर कुछ ही क्षणो के बाद अपनी जगह पर बैठ गये, और 'संन्यासी के गीत' शीर्षक कविता लिखने लगे. गीत मे कडी पर कडी जुड़ती चली गयी. इस प्रकार उन्होने कई पृष्ठो को रग डाला. जब उन्होने गीत की अतिम पक्ति को पृष्ठ पर सजा लिया तो राहत की सास ली उनके चेहरे पर असीम धीरता और कोमलता उभर आयी थी. स्वामी उस कविता के पृष्ठो को दाहिने हाथ मे उठा कर मधुर स्वर मे गाने लगते हैं

छेड़ो सन्यासी, छेडो वह तान मनोहर.
गाओ वह गान जगा जो अच्युत हिमाद्रि-शिखर पर

... ...

तोडो जजीरें जिनसे जकड़े हैं पैर तुम्हारे
वे सोने की हैं तो क्या कसने मे तुमको हारे ?
अनुराग-घृणा-संघर्षण, उत्तम वा अधम विवेचन,
इस द्वन्द्व भाव को त्यागो, हैं त्याज्य उभय आलंबन.
आदर गुलाम पाये, या कोड़ो की मारें खाये,
वह सदा गुलाम रहेगा, कालिख का तिलक लगाये.

... ...

तुम चित्त-शाति मत तजना, आनंद निमाज्जत रहना,
यश कहां, कहां अपयश, इस धारा मे मत बहना.
जब निंदक और प्रशसक, जब निंदित और प्रशसित,
एकात्म एक ही हैं सब, तब कौन प्रशसित निंदित ?
यह ऐक्य-ज्ञान हृदयंगम करके हे संन्यासीवर,
निर्भय आनन्दित उर से गाओ यह गान मनोहर.

जब 'सन्यासी का गीत' समाप्त होता है, तो उन पृष्ठो को भूमि पर रख कर वे शीघ्रता से उठ खडे होते हैं ऐसा जान पडता है जैसे कोई अति आवश्यक कार्य जिसे वे भूल गये थे, अब स्मरण हो आया है फिर अपने स्वर मे मिश्री घोल कर वे बोले, मैं अब आप लोगो के लिए खाना पकाने जा रहा हूँ और बडी शाति से खडे होकर अपने शिष्यो के लिए उसी क्षण कुछ भारतीय व्यजन तैयार करने मे लग गये.

स्वामी अपने शिष्यो के छोटे से छोटे अभावो की पूर्ति करना अपना धर्म समझते थे तथा इस धर्म को कार्यान्वित कर प्रसन्न होते थे उनके शिष्यो मे बहुतो की अवस्था उनकी अपनी अवस्था से काफी बडी थी, फिर भी वे सबको पुत्रवत् स्नेह प्रदान करते थे. साथ ही जब कभी पश्चिमी शिष्टाचार के स्वरूप से वे अपने को अनभिज्ञ समझते तो बालसुलभ सरलता के साथ अपने विदेशी शिष्यो और मित्रो से पूछ बैठते कि अमुक स्थिति मे उन्हे किस प्रकार का व्यवहार करना चाहिए या अमुक अवसर पर उन्हे क्या बोलना चाहिए. और लोगो से भिन्न एक सन्यासी होने पर भी वे शिष्टाचार के सामाजिक नियमो का उल्लघन नही करना चाहते थे. लेकिन मनुष्य ही ठहरे, कभी-कभी यह उल्लघन हो भी जाता था. स्वामी की प्रिय शिष्या सिस्टर क्रिस्टीन के शब्दो मे : 'उस युग मे जब पुरुष स्त्रियो के सम्मुख सिगरेट नही पीते थे, तब वे सिगरेट का धुआ उनके मुख पर जानबूझ कर उडाया करते. यदि वह कोई और होता तो मैं उसकी ओर पीठ घुमा कर बैठ जाती और उससे कभी नही बोलती क्षण भर के लिए मैं मन मे सिमट गयी किन्तु फिर तुरन्त मैने अपने को धिक्कारा और वहा आने का कारण याद किया. मैं उन

व्यक्ति के पास आयी थी जिसमे मैंने ऐसी आध्यात्मिकता देखी थी, जिसकी मैं स्वप्न मे भी कल्पना नही कर पायी थी.'

थाउजेंड आइलैण्ड पार्क मे स्वामी करीव दो माह ठहरे. यहाँ दस-वारह छात्र-छात्राओ के वीच उन्होने जो उपदेश दिये, उन्हे एक शिष्या ने लिपिबद्ध कर लिया था. वाद मे ये 'इन्सपायर्ड टाक्स' नाम से पुस्तक के रूप मे प्रकाशित हुए 'देववाणी' उसी पुस्तक का अनुवाद है यहाँ स्वामी ने अपने दो शिष्यो को सन्यास की दीक्षा भी दी सन्यासाश्रम के अनुसार उनके नाम वदल कर स्वामी कृपानन्द और स्वामी अभयानन्द कर दिये गये. पाँच और शिष्यो ने ब्रह्मचर्य व्रत धारण करने की प्रतिज्ञा की इसके वाद जो अन्य लोग वचे उन्हे मत्र के द्वारा साधारण शिष्य के रूप मे दीक्षित किया गया स्वामी अपने इन्ही विश्वसनीय शिष्यो के द्वारा अमरीका मे वेदान्त दर्शन का प्रचार कार्य करवाना चाहते थे. सिस्टर क्रीस्टीन को उन्होने भारत मे लोक-हितैषी कार्य के लिए चुना. परन्तु एक अन्य शिष्या श्रीमती फकी की अभिलाषा मन मे ही रह गयी जव उसने अपनी इच्छा स्वामी के सामने रखी तो उन्होने कहा : 'तुम्हारा घरवार है डिट्राएट जाओ, अपने पति और परिवार की सेवा मे ही भगवान को देखो. वर्तमान के लिए तुम्हारा वही मार्ग है.'

स्वामी यहाँ यद्यपि धर्म और दर्शन के चिंतन-मनन, अध्ययन-अध्यापन मे लगे रहे फिर भी उन्हें विश्राम का अवकाश प्रचुर मात्रा मे मिलता था यहाँ के पर्याप्त विश्राम, सुहावने मौसम, उत्तम जलवायु तथा शात वातावरण ने उनके गिरे हुए स्वास्थ्य मे शनै· शनै. सुधार ला दिया. दो माह के उपरान्त वे पुन. अपने शिष्यो के साथ न्यूयार्क चले गये और नये उत्साह के साथ वेदान्त-प्रचार के काम मे संलग्न हो गये

इस तरह अमरीका मे पूर्णत. व्यस्त रहते हुए भी स्वामी का ध्यान वरावर भारत की ओर रहता था विशेषकर उनकी विश्व धर्म महासभा मे जो शानदार विजय हुई उसकी भारत मे कोई प्रतिध्वनि हुई या नही, यह जानने के लिए वे अत्यधिक व्यग्र थे

शिकागो की विश्व धर्म महासभा का वृतान्त भारत की पत्र-पत्रिकाओ मे वड़े भव्य रूप से छपा उसमे अमरीकी समाचार पत्रो से उद्धृत स्वामी के विपय में प्रशंसात्मक पक्तियाँ भी छपी स्वामी ने अमरीका जैसे देश में हिन्दू धर्म का मान वढाया, वेदान्त की ध्वजा फहरायी, यह जान कर भारतवासी फूले नही समाये परन्तु जव धर्म महासभा मे स्वामी ने भारत स्थित ईसाई मिशनरियो के प्रचार कार्य की वुरी तरह निंदा की, तो अमरीका के साथ-साथ भारत के ईसाई मिशनरी भी आग-ववूला हो उठे और स्वामी के विरुद्ध अफवाहें फैलाने लगे स्वामी की अपरिमित ख्याति से ईर्ष्याग्रस्त ब्रह्मसमाजी प्रतापचन्द्र मजूमदार भारत लौट आये थे और अव

ईसाई मिशनरियो की आग मे घी डाल रहे थे स्वामी विवेकानन्द के नाम-यश का पवित्र वातावरण कुछ सीमा तक दूषित होने लगा इस दूषित वातावरण की दुर्गन्ध अमरीका के वायुमण्डल को भी विषाक्त करने लगी थी, यद्यपि अमरीका मे स्वामी को निकट से देखने-परखने वाले लोग इसके प्रभाव से अलग थे स्वामी जानते थे कि उनके पीछे एक अदृश्य शक्ति काम कर रही है. अत उन्हे घोर आत्मविश्वास था कि अमरीकी जनता पर इन अफवाहो का कोई चिरस्थायी प्रभाव नही पडेगा

फिर भी वे भाग्य के सहारे हाथ पर हाथ धरे रहने वाले संन्यासी नही थे. वे कर्मठ योगी थे उनमे कुशल राजनीतिज्ञ की प्रतिभा थी किसी काम मे सफलता प्राप्त करने के लिए सचाई के साथ कौन सा मार्ग अपनाना चाहिए, यह उन्हे अच्छी तरह ज्ञात था. अमरीका मे फैलती हुई अपनी इस अफवाह से मुक्ति पाने के लिए स्वामी ने अपने एक भारत के शिष्य अलासिगा के पास ९ अप्रैल १८९४ को एक पत्र मे लिखा कि वह किसी प्रभावशाली व्यक्ति की अध्यक्षता मे एक सभा आयोजित करे जिसमे विश्व धर्म सभा मे हिन्दू धर्म का प्रतिनिधित्व करने के लिए विवेकानन्द का जोरदार समर्थन किया जाये और उस पारित प्रस्ताव को अमरीका के कई मुख्य पत्र-पत्रिकाओ के कार्यालयो मे भेज दिया जाये उन्होने यह भी लिखा कि इसकी प्रतियां विश्व धर्म महासभा के सभापति तथा और कई प्रमुख व्यक्तियो के पास भेज दी जायें स्वामी ने इन प्रमुख व्यक्तियो तथा सभापति के नाम-पते अलासिगा को लिख भेजे इसके साथ-साथ स्वामी ने अलासिगा को यह भी लिखा 'इस सभा को जितना अधिक बडा बना सकते हो, बनाओ धर्म एव देश के नाम पर सभी बडे आदमियो को उसमे भाग लेने के लिए पकडो. मैसूर के महाराजा तथा दीवान से इस सभा और उसके उद्देश्यो का समर्थन करने वाला पत्र प्राप्त करने की चेष्टा करो ऐसा ही एक पत्र खेतरी नरेश से भी प्राप्त करो मतलब यह कि जितनी बडी सभा और उसका शोर उठा सको, उतना ही अच्छा. प्रस्ताव कुछ इस प्रकार के आशय का होगा, कि मद्रास की हिन्दू जनता मेरे यहां के कार्यो के प्रति अपना पूर्ण सन्तोष प्रकट करती है, आदि. · ·· इसमे जितनी जल्दी हो उतना ही ठीक इसका बहुत व्यापक परिणाम होगा. मेरे भाई, ब्रह्म समाज के लोग यहां मेरे विरुद्ध हर तरह की बकवास कर रहे हैं हमे जितना शीघ्र हो सके, उनका मुंह बन्द करना होगा '

लेकिन यह काम शीघ्र नही हो सका अप्रैल बीता, मई बीता और जून भी बीतने को आ गया. भारत मे कोई वांछित समाचार नहीं मिला. उधर अमरीका मे उन पर बौछारें पडती ही रहीं ऐसी स्थिति मे कोई आश्चर्य नही कि स्वामी निराश और क्षुब्ध हो उठे. २८ जून को उन्होने पुन अपने एक मद्रास के शिष्य के पास लिखा—'मैंने हिन्दुओ को काफी परख लिया है. अब जो कुछ प्रभु की इच्छा है वही होगा नतमस्तक होकर सब कुछ स्वीकारने को प्रस्तुत हूं मुझे गलत न

समझना, मद्रासियो ने मेरे लिए जो कुछ किया है, मैं उसके योग्य नही था और उन्होने अपनी शक्ति से अधिक मेरी सहायता की है. यह मेरी ही मूर्खता थी कि क्षण-भर के लिए भी मुझे यह ख्याल नही हुआ कि हम हिन्दू लोग अभी मनुष्यता हासिल नहीं कर पाये हैं और मैं अपनी आत्मनिर्भरता खोकर उन पर निर्भरशील हो चुका था, इसलिए मुझे इतना कष्ट उठाना पडा. प्रतिक्षण मैं यही आशा लगाये बैठा था पर भारत से एक समाचार पत्र तक मुझे प्राप्त नही हुआ मेरे मित्र महीनों तक प्रतीक्षा करते रहे, करते रहे, जब कुछ भी समाचार नही मिला, एक आवाज तक सुनाई नही दी, तब बहुतो का उत्साह भग हो गया और उन लोगो ने मुझे त्याग दिया. मनुष्यो पर, पशुधर्मियो पर निर्भर रहने का दण्ड मुझे मिला, क्योंकि मेरे देशवासियो मे अभी तक मनुष्यता का विकास नही हुआ है. अपनी प्रशसा सुनने के लिए वे अत्यन्त उत्सुक रहते हैं, पर जब दूसरो की सहायता के लिए कुछ कहने का अवसर आता है, तब उनकी चुटिया तक का पता नही चलता.'

स्वामी के अनुयायी अधिक दिनो तक निष्क्रिय नही रहे. स्वामी का नाम तो भारत के बडे-बडे नगरो मे फैल ही चुका था. अब कई जगह सभाओ का आयोजन किया गया और स्वामी विवेकानन्द के कार्यों की बडे जोरदार शब्दो मे सराहना की गयी मद्रास मे राजा सर रामास्वामी मुदालियर और दीवान बहादुर सर सुब्रह्मण्य अय्यर, सी० आई० ई० महोदय के नेतृत्व मे विराट सभा आयोजित हुई. नगर के विख्यात विद्वान और प्रसिद्ध सज्जनो ने उपस्थित होकर स्वामी के प्रचार कार्य का समर्थन किया और सभा की कार्यविधियो के विवरण के साथ स्वामी के पास उत्साहवर्धक पत्र लिखे. इसके साथ-साथ शिकागो के विश्व धर्म सम्मेलन मे स्वामी विवेकानन्द द्वारा हिन्दू धर्म के प्रतिनिधित्व का समर्थन करते हुए अमरीका की मुख्य पत्र-पत्रिकाओ मे भी इन लोगो ने प्रस्ताव पत्र भेजे. रामनद के राजा भास्कर सेतुपति तथा खेतरी महाराज श्री अजीतसिंह बहादुर दोनो राजशिष्यो ने अपने-अपने दरबार मे बडी ही शान के साथ, अपनी प्रजा को बुला कर, हिन्दू जाति का मान बढाने वाले अपने गुरुदेव स्वामी विवेकानन्द के कार्यों की प्रशंसा की. इसके साथ ही उन्होने विश्व धर्म महासम्मेलन मे सनातनधर्म की श्रेष्ठता प्रतिपादन करने के लिए धन्यवाद देते हुए उनके पास बहुत ही सुन्दर पत्र लिखे

सबसे बडा समारोह कलकत्ते मे हुआ. क्यो न हो, आखिर स्वामी विवेकानन्द यहीं के तो थे. यहाँ के कितने लोग उन्हे व्यक्तिगत रूप से जानते थे. विशेषकर उनके गुरुभाई तो आनन्द और उत्साह से फूले नही समा रहे थे. शुरू में जब उन्होने समाचार पत्रो के द्वारा अमरीका में स्वामी विवेकानन्द की सफलता और ख्याति की सूचना पायी तो उन्हें विश्वास ही नही हुआ कि यह स्वामी विवेकानन्द के रूप मे उन्ही का साथी, उन्ही का गुरुभाई 'नरेन' है. मगर उन्होने अपने हृदय की आवाज सुनी उनका हृदय चिल्ला-चिल्ला कर कह रहा था कि यह व्यक्ति और कोई नही,

उनका 'नरेन' ही है. उसमे ऐसी शक्ति है जो भूमण्डल को हिला दे. फिर शिकागो की धर्म सभा के समाप्त होने के छ: महीने बाद उन्हें विवेकानन्द का एक पत्र मिला, जिससे उनकी धारणा सही साबित हुई. कलकत्ते की सभा की सफलता मे उनका भी हाथ था यह सहज मे अनुमान किया जा सकता है. ५ सितम्बर १८९४ को राजा प्यारामोहन मुखर्जी, सी० एस० आई० के सभापतित्व मे टाउन हाल मे एक बहुत बडी सभा हुई. सभा आरम्भ होने के बहुत पहले ही यह टाउन हाल हजारो श्रोताओ से ठसाठस भर गया सभा का आयोजन हिन्दू जाति के अनेक प्रमुख और प्रभावशाली व्यक्तियो के द्वारा किया गया. इनमे कई सुविख्यात विद्वान, जमीदार, रईस, उच्च न्यायालय के न्यायाधीश, प्रसिद्ध समाज सेवक, विश्वविद्यालय के आचार्य, अध्यापक, वकील और राजनीतिज्ञ आदि तथा कलकत्ता नगर के प्रतिष्ठित सज्जन थे. उपस्थित सज्जनो ने विवेकानन्द के गौरव के गर्व से उत्साहित होकर ओजस्वी भाषणो द्वारा स्वामीजी के कार्यों की प्रशसा की सारी सभा ने स्वर मे स्वर मिला कर हिन्दू समाज की ओर से स्वामी विवेकानन्द को धन्यवाद देने के लिए प्रस्तुत किये हुये प्रस्ताव का समर्थन किया. इस सभा के सभापति ने सर्वसम्मति से शिकागो धर्म महासभा के सभापति के पास धन्यवाद का पत्र भेजा राजा प्यारीमोहन मुखर्जी सी० एस० आई० के पत्रोत्तर मे शिकागो धर्म महासभा के अध्यक्ष डा० बैरोज ने इस प्रकार लिखा 'शिकागो धर्म महासभा मे आप के मित्र स्वामी विवेकानन्द बडे सम्मान के साथ लिये गये थे. उन्होने अपने भाषणबल से चुम्बक के आकर्षण के सदृश सभी को आकृष्ट कर लिया था. वे अपने व्यक्तिगत प्रभाव को भली-भाँति विस्तारित करने मे समर्थ हुए थे. उनके यत्न से यहाँ के लोगो मे धर्म-अनुशीलन की विशेष रूप से प्रवृत्ति उत्पन्न हुई है प्रधान-प्रमुख विश्वविद्यालयो मे उनके भाषण तथा अध्यापन की व्यवस्था हो रही है अमरीका की जनता के हृदय मे भारतवर्ष के प्रति विशेष कृतज्ञता एव प्रेम है हमारा विश्वास है कि आप के प्राचीन एवं पवित्र साहित्य से हमे अनेक विषयो को ग्रहण करना होगा.'

भारत मे स्वामी विवेकानन्द के कार्यों की जो सराहना हुई, उसका पूरा विवरण उन्हे भी मिला. अब उनकी मानसिक व्यग्रता शात हो गयी. देर से ही सही, उनके देशवासियो ने उनके कार्य का महत्व तो समझा, इसे सोच कर उन्हे काफी सतोष हुआ उन्होने न्यूयार्क से नवम्बर १८९४ ई० को अपने अभिनन्दन पत्र के उत्तर मे श्री राजा प्यारी मुखर्जी, सी० एस० आई० को बडा ही स्नेहपूर्ण पत्र लिखा. उस पत्र का एक छोटा सा अश यहाँ उद्धृत है 'कलकत्ता टाउन हाल की जनसभा मे स्वीकृत प्रस्ताव मुझे प्राप्त हुआ. मैं अपनी जन्मभूमि के निवासियो के स्नेहपूर्ण वाक्यो तथा मामूली से कार्य के प्रति उनके सहृदय अनुमोदन के लिए हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करता हूँ' मद्रास के अपने शिष्य अलासिगा के पास उन्होने लिखा · 'अभी तक तुमने अद्भुत कार्य किया है मेरे बच्चे, कभी-कभी घबडा कर मैं कुछ

लिख देता हूँ, उसका कुछ ख्याल न करना अपने देश से पन्द्रह हजार मील दूरी पर अकेला रहने और कट्टरपथी शत्रुभावोपन्न ईसाईयो के साथ एक-एक इच जमीन के लिए लडते रहने पर कभी-कभी घवड़ा उठना स्वाभाविक है मेरे साहसी बच्चे, तुम्हे इन वातो को ध्यान मे रख कर ही कार्य करते रहना चाहिये.'

स्वामी के भारतीय मित्र, शिष्यगरा तथा उनके प्रशसक चाहते थे कि वे शीघ्र भारत लौट आयें और नवभारत निर्माण के लिए उनके पथ-प्रदर्शक बनें. लेकिन स्वामी अभी तुरत भारत लौटने के लिए नही तैयार थे इन पत्रो के उत्तर में मे उन्होने लिखा . 'मेरे भारत लौटने के बारे मे वात इस प्रकार है. जैसा कि तुम अच्छी तरह जानते हो, मैं अपनी धुन का पक्का हूँ मैंने इस देश मे एक वीज वोया है, वह अभी पौधा बन गया है और मैं अब आशा करता हूँ कि शीघ्र ही वह वृक्ष हो जायेगा. मेरे दो चार सौ अनुयायी हैं. मैं यहा कइयो को सन्यासी वनाऊँगा. तब उन्हे काम सौंप कर भारत आऊंगा. जितना ही ईसाई पादरी मेरा विरोध करते हैं, उतना ही मैंने ठान लिया है कि उनके देश मे स्थायी चिह्न छोड जाऊँगा' स्वामी चाहते थे कि भारत लौटने के पहले वे अमरीका मे वेदान्त प्रचार के लिए जगह-जगह कई समितिया स्थापित कर दें किसी मत का प्रचार करने के लिए अमरीका विश्व मे सवसे उपयुक्त स्थान है ऐसा वे अनुभव करते थे. एक स्थान पर अपने शिष्यो को वे लिखते है 'ये विदेशी लोग मेरा इतना आदर करते हैं, जितना कि भारत मे आज तक कभी नही हुआ. यदि मैं चाहूँ तो अपना सारा जीवन ऐशो-आराम मे विता सकता हूँ. परन्तु मैं सन्यासी हूँ, और हे भारत, तुम्हारे सारे अव-गुणो के होते हुए भी मैं तुमसे प्यार करता हूँ इसलिए कुछ महीनो बाद मैं भारत वापस आऊँगा'

अमरीका का काम अभी पूरा नही हुआ था कि इगलैंड से बुलावा आने लगा. वहुत दिनो से स्वामी के हृदय मे इगलैंड जाने और वहाँ हिन्दू धर्म का प्रचार करने की लालसा हिलोरे ले रही थी. कुमारी हेनरीएटा मुलर ने, जिन्हे भारतीय दर्शन शास्त्र से विशेष अनुराग था, स्वामी को कई वार इगलैंड वुलाया था, परन्तु स्वामी उनकी इच्छा पूरी न कर सके थे. स्वामी के थाउजेंड आइलैंड पार्क से न्यूयार्क लौटने पर श्री इ० टी० स्टर्डी स्वामी को लदन बुलाने के लिए वार-वार पत्र लिखने लगे ये स्वामी के वडे भक्त थे. इन्होने अपने पत्रो मे स्वामी को वहुत आश्वासन दिये कि वे स्वामी के प्रचार कार्य मे यथासम्भव सहायता करेंगे. किंतु स्वामी अभी तक ठीक निश्चय नही कर पाये थे कि किस समय इगलैंड जाना उचित होगा. ठीक इसी समय न्यूयार्क के एक धनी मित्र ने स्वामी को अपने साथ फ्रास और इगलैंड चलने के लिए आग्रह किया इतनी सरलता से मन की अभिलाषा पूरी होती देख स्वामी ने अपनी सहमति दे दी.

अमरीका मे दो साल के अनवरत परिश्रम से स्वामी वुरी तरह थक गये थे.

वैसे थाउजेंड आइलैंड पार्क मे उन्हे काफी कुछ विश्राम मिला था. परतु कक्षा, भाषण, गोष्ठी, मनन-चिंतन तथा समाधि आदि से पूर्ण रूप से छुटकारा नही मिला था उन्होने सोचा कि समुद्र की शात यात्रा से उनके शरीर और मस्तिष्क को पूर्ण आराम मिलेगा फिर इगलैंड पहुँच कर वे दूने उत्साह से वहाँ के लोगो के सामने अपने सनातन धर्म का सदेश फैलाने मे लग जायेंगे.

अगस्त के मध्य मे स्वामी ने अपने मित्र के साथ इगलैंड के लिए प्रस्थान किया. वहाँ वे करीब साढे तीन महीने रहे. उनका इगलैंड-प्रवास कई दृष्टियो से अत्यत महत्वपूर्ण था लेकिन इसका विवरण अगले अध्याय मे दिया जायेगा. इगलैंड के काम के महत्व को स्वामी भलीभाति समझते थे, किन्तु उनका अमरीकी कार्यक्रम अभी पूरा नही हुआ था, इसलिए ६ दिसम्बर १८९५ को वे पुन न्यूयार्क पहुँच गये अपने शिष्य स्वामी कृपानन्द के साथ उन्होने न्यूयार्क मे ही दो बडे कमरे, जिनमे करीब १५० व्यक्तियो की कक्षा लिया जा सके, किराये पर लिये यहाँ कर्म योग पर नियमित रूप से कक्षा चलने लगी कर्मयोग पर क्रमबद्ध व्याख्यान पीछे जाकर 'कर्मयोग' नामक पुस्तक के रूप मे प्रकाशित हुए इस पुस्तक को बहुत प्रसिद्धि मिली 'कर्मयोग' के व्याख्यान के अतिरिक्त १५ दिनो मे स्वामी ने और भी अनेक विषयो पर तथ्यपूर्ण भाषण दिये इनमे से मुख्य विषय थे—धर्म के दावे इसकी विधियाँ और प्रयोजन, सार्वभौमिक धर्म का आदर्श विश्व, वृहत् ब्रह्माड विश्व, सूक्ष्म ब्रह्माड. स्वामी के इन बहुमूल्य व्याख्यानो को लिपिबद्ध करना आवश्यक था इसके लिए क्रमश दो व्यक्तियो को नियुक्त किया गया परन्तु इन दोनो मे से एक भी ठीक काम नही कर सका. स्वामी के प्रवाह के साथ वे नही चल सके ठीक इसी समय इगलैंड से स्वामी के एक परिचित साकेतिक लिपिक, जे० जे० गुडविन, न्यूयार्क आये स्वामी के शिष्यो के आग्रह पर वह स्वामी के व्याख्यानो को लिपिबद्ध करने लगे. गुडविन को इस कार्य के लिए बराबर स्वामी के साथ रहना पडता था अत वे स्वामी की विचारधारा से शीघ्र ही परिचित हो गये स्वामी के सयमित जीवन और कर्म का उन पर बहुत अधिक प्रभाव पडा. वे स्वामी के वैयक्तिक कामो मे भी सहायता देने लगे और मन-वचन-कर्म मे उनके निकटतम् शिष्य बन गये. स्वामी का भी उन पर बडा स्नेह था. वे अक्सर उन्हे 'मेरे विश्वासी गुडविन' कहकर सम्बोधित करते थे वे स्वामी के साथ भ्रमण करते हुए भारत आये और यही पर उनका देहावसान हुआ. उस समय स्वामी के मुँह से अनायास निकल पडा . 'अब मेरा दाहिना हाथ नष्ट हो गया.' स्वामी के बहुमूल्य व्याख्यान जो पुस्तको के रूप मे प्राप्य है उनमे सिर्फ 'राजयोग' पुस्तक को छोड सभी गुडविन के अथक परिश्रम के परिणाम है

इगलैंड से स्वामी के लौटने के कुछ ही समय बाद हिमकणो से आच्छादित, सिहरता हुआ अमरीका क्रिसमस पर्व की चहल-पहल से रग गया. इस अवसर पर

वोस्टन से श्रीमती श्रोली के निमत्रण पर स्वामी वोस्टन पहुच गये. वहाँ केम्ब्रिज विश्वविद्यालय की महिलाश्रो ने स्वामी के भाषण सुनने की इच्छा प्रकट की 'भारतीय नारी जाति का श्रादर्श' को विषय बना कर स्वामी ने एक रोचक व्याख्यान दिया. उपस्थित विदुषी महिलाश्रो पर इसका वडा प्रभाव पडा. उनका हृदय इतना मुग्ध हो गया कि उन्होने स्वामी की माता के पास धन्यवाद का एक पत्र लिखने का निश्चय किया. क्रिसमस पर्व के श्रवसर पर उन्होने वर्जिन मेरी की गोद मे स्थित वालक ईसा के एक सुदर चित्र के साथ वह पत्र स्वामी विवेकानद की माता के पास भारत भेज दिया पत्र इस प्रकार था :

'स्वामी विवेकानन्द की माता के पास,

'प्रिय महाशया,

'माता मेरी के दानस्वरूप ईसा मसीह के श्राविर्भाव का दिन हम श्राज उत्सव के श्रानन्द मे विता रही हैं. इस समय स्मृति जाग उठती हैं. श्रपने वीच श्राप के पुत्र को पाकर, हम श्राप का श्रद्धापूर्वक श्रभिवादन करती हैं. श्राप के श्राशीर्वाद से पिछले दिन, 'भारत मे मातृत्व का श्रादर्श' के सम्वंध मे भापण देकर उन्होने हमारे नर-नारियो श्रौर वच्चो का वडा उपकार किया है उनकी मातृपूजा, श्रोताश्रो के हृदय मे प्रेरणा भरेगी श्रौर उन्हें उन्नत करेगी

'श्राप के इस पुत्र मे श्राप के जीवन श्रौर कार्य का जो प्रभाव प्रकट हुश्रा है, उसके लिए हम श्राप की सेवा मे श्रपनी श्रातरिक कृतज्ञता व्यक्त करती हैं मातृभाव श्रौर एकता के जो नियता हैं, उस ईश्वर का मगल श्राशीर्वाद सम्पूर्ण पृथ्वी पर फैल जाये हृदय मे इस श्राकाक्षा को लेकर श्राप का जीता-जागता श्रादर्श उन्हें कार्यक्षेत्र की श्रोर श्रग्रसर करे, इस स्मरण के साथ हमारी कृतज्ञता श्राप स्वीकार करें'

वोस्टन से लौटने के वाद स्वामी ने न्यूयार्क मे हार्डिमैन हॉल मे ५ जनवरी १८९६ से, प्रतिदिन सार्वजनिक व्याख्यान देना शुरू कर दिया. व्रुकलिन मेटाफिजिकल सोसायटी श्रौर न्यूयार्क पीपल्स चर्च मे दिये गये भाषणो को सुनने के लिए श्रपार जनसमूह इकट्ठा होने लगा. स्वामी के शरीर मे जाने कहाँ की शक्ति एकत्र हो गयी कि वे इन व्याख्यानो के श्रतिरिक्त प्रतिदिन दो वार प्रश्नोत्तर कक्षा का समय श्रलग से निकाल लेते श्रौर जिज्ञासु श्रोताश्रो का भ्रम निवारण करते थे. इसके साथ कुछ व्यक्तियो को साधना का प्रशिक्षण भी दिया करते थे. स्वामी के व्याख्यान से लोग दिन-प्रतिदिन श्रधिकाधिक सख्या मे श्राकृष्ट होने लगे. कुछ ही समय मे लोग इतनी वडी सख्या मे श्राने लगे कि यहाँ उन सभी के खड़े होने की जगह की भी कमी पडने लगी. श्रत. फरवरी माह मे मैडिसन स्क्वायर गार्डेन को, जहाँ करीव पन्द्रह सौ लोगो को वैठने की जगह मिल सकती थी, इनके भाषण के लिए ठीक किया गया किन्तु स्थिति यह हो गयी थी कि वहाँ भी सभी लोगो को वैठने की जगह नहीं मिल सकी फिर भी लोग करीव दो घंटे तक मत्रमुग्ध हो, खडे होकर

व्याख्यान सुन कर ही घर लौटते. इसी माह मे स्वामी ने हार्टफोर्ड मेटाफिजिकल सोसायटी मे 'आत्मा और ईश्वर' पर भाषण दिया तथा इसके बाद ब्रुकलिन नैतिक सभा मे भी कई उच्चकोटि के व्याख्यान दिये. इन भाषणो से प्रभावित होकर 'हार्टफोर्ड डेली टाइम्स' तथा 'न्यूयार्क हेरल्ड' जैसे प्रमुख समाचारपत्रो ने स्वामी विवेकानन्द के विषय मे बडे उत्साहवर्द्धक लेख निकाले. ब्रुकलिन के एक प्रसिद्ध विद्वान हेलेन हटिंग्टन ने 'ब्रह्मवादिन' पत्रिका मे लिखा :

'... ईश्वर की यह कृपा है कि उन्होने भारत से हमारे लिए एक आध्यात्मिक पथप्रदर्शक भेजा है. इस शिक्षक का सुन्दर दार्शनिक दृष्टिकोण शनैः शनैः किन्तु निश्चित रूप से इस देश के नैतिक जीवन मे प्रवेश करता जा रहा है. असाधारण शक्ति और पावन चरित्र युक्त इस व्यक्ति ने एक उन्नत आध्यात्मिक जीवन व्यतीत करने की प्रणाली दी है; सार्वभौमिक धर्म, अचूक दया, आत्मत्याग तथा मानव बुद्धि के द्वारा समझने योग्य पवित्र भावो की व्याख्या की है स्वामी विवेकानन्द ने हम लोगो के सामने ऐसे धर्म का प्रचार किया है जो सम्प्रदाय या मतवाद के बधनो से पूर्णरूप से मुक्त है, आत्मोन्नति, पवित्रता एव स्वर्गीय आनन्द को देने वाला है तथा सभी तरह से निष्कलक है' आगे चल कर उन्होने इसी लेख मे लिखा : 'स्वामी विवेकानन्द ने अपने शिष्यो और अनुयायियो की सीमा के बाहर भी अनेक मित्र प्राप्त किये हैं, उन्होने मित्रता और भ्रातृत्व की भावना से समाज के सभी स्तरो मे प्रवेश किया है, उनके भाषण और कक्षा की बातचीत सुनने के लिए नगर के श्रेष्ठ चिंतनशील और विद्वान व्यक्ति उपस्थित होते थे; और उनका प्रभाव आध्यात्मिक जागृति के प्रबल प्रवाह के रूप मे फैल गया है किसी प्रकार की प्रशसा एव निन्दा, किसी बात का अनुमोदन या प्रतिवाद उन्हें उत्तेजित नही कर सका. धन अथवा सम्मान भी उन पर अपना कोई प्रभाव नही छोड सका और न किसी भी विषय मे पक्षपाती बना सका.'

२८ फरवरी को स्वामी ने मैडिसन स्क्वैयर गार्डेन मे सार्वजनिक सभा करना समाप्त कर दिया. इसके पूर्व उन्होने 'भक्तियोग', 'ज्ञान योग' तथा 'साख्य और वेदान्त' जैसे दार्शनिक विषयो पर भाषण दिये थे इसी माह श्रीरामकृष्ण के जन्म दिवस का उत्सव भी मनाया गया. इस अवसर पर 'मेरे गुरुदेव' शीर्षक से उन्होने बहुत ही कवित्वमय भाषा मे व्याख्यान दिया जिसकी लोगों ने बहुत प्रशसा की. स्वामी ने इसी समय तीन व्यक्तियो को सन्यास की दीक्षा दी इन सन्यासी शिष्यो के अतिरिक्त कई साधारण गृहस्थ भी स्वामी के शिष्य बन गये. ऐसे शिष्यो मे विल्काक्स दम्पति विशेष तौर से उल्लेखनीय हैं. श्रीमती विल्काक्स पहले पहल अपने पति के साथ कौतूहलवश स्वामी का भाषण सुनने गयी थी. कई साल बाद १९०७ मे उन्होने अपने उस समय के अनुभव के सम्बन्ध मे 'न्यूयार्क अमेरिकन' नामक पत्रिका मे लिखा : '' दस मिनट बीतने के पहले ही मैं अनुभव

करने लगी कि हम लोगो को एक सूक्ष्म जीवनदायक रहस्यपूर्ण भावलोक में ले जाया जा रहा है. भाषण का अंत होने पर हम नवीन साहस, नवीन आशा, नवीन शक्ति और नवीन विश्वास लेकर घर आये. मेरे पति ने कहा, 'यही दर्शन शास्त्र है, यही ईश्वर की धारणा है. मैं अनेक दिनो से जिसका अन्वेषण कर रहा हूँ, वह यही धर्म है'

न्यूयार्क मे अपना काम समाप्त कर स्वामी १५ दिनो के लिए डिट्राएट चले गये. उनके साथ उनके संकेत लेखक, 'विश्वासी गुडविन' थे उन्होने 'रिशलू' नामक एक छोटे परिवारिक होटल मे दो कमरे किराये पर ले लिये. यहाँ के वृहत् बैठक कक्ष को वे कक्षा की बैठक तथा भाषण के लिए व्यवहार करते थे. परन्तु वह इतना बडा नही था कि उसमे बहुत से लोग इकट्ठे हो सकें अनेक लोगो को निराश लौट जाना पडता था. बैठक कक्ष, बरामदा, सीढी एवं पुस्तकालयकक्ष सब इतने भर जाते थे कि वहाँ एक आदमी के बैठने की भी जगह नही बची रहती. इतने लोगो के बीच रहते हुए तथा उनसे बातचीत करते हुए भी स्वामी उन दिनो सभी सासारिक कोलाहल से दूर भावना लोक मे विचरण करते हुए जान पडते थे. श्रीमती फूंकी के शब्दो मे : 'उस समय वे भक्ति से ओत-प्रोत रहते थे. ईश्वर प्रेम ही उनकी भूख-प्यास थी एक प्रकार के दैवी उन्माद से वे ग्रस्त जान पडते थे. जान पडता था जैसे जगत् जननी के तीव्र प्रेम से उनका हृदय विदीर्ण हो रहा है.' डिट्राएट मे जन-साधारण के सामने उनकी अतिम उपस्थिति 'बेथेल' मदिर मे हुई. एक श्रद्धालु भक्त श्री रावी लुई ग्रोसमैन उस मदिर मे पुजारी थे. उस रविवार की सध्या को वहां इतनी अधिक भीड थी कि सैकड़ो व्यक्तियो को लौट जाना पड़ा. स्वामी ने अपने भाषण से उस वृहत् श्रोता समूह को मत्र मुग्ध कर दिया. विषय था—'पाश्चात्य जगत् मे भारत का सदेश' और 'विश्व धर्म का आदर्श'. भाषण देते समय स्वामी का स्वाभाविक तेज ऊपर आ जाता था, लेकिन उस दिन उस तेज के भीतर कुछ लोगो ने उनका एक दूसरा रूप भी देखा. इसकी कुछ झलक हमे श्रीमती फकी के वर्णन मे मिलती है—'मैंने उस रात स्वामी को जिस प्रकार देखा, वैसा फिर कभी नही देखा. उनके सौन्दर्य मे कुछ ऐसी चीज थी जो इस पृथ्वी की नही थी. ऐसा लगता था जैसे आत्मा शरीर के बधन को तोड़ कर भाग निकलने का प्रयत्न कर रही हो. और उसी समय पहले पहल मुझे उनके आसन्न देहावसान का पूर्वाभास मिला. अनेक वर्षों के अथक परिश्रम से वे श्रान्त हो गये थे. इसी कारण ऐसा लग रहा था कि वे अधिक दिनो तक इस पृथ्वी पर नही रहेंगे. मैंने अपने मन को समझाने का प्रयत्न किया. किन्तु मेरी अन्तरात्मा सच्चाई को पहचानती थी. उन्हें विश्राम की आवश्यकता थी. परन्तु वे समझ रहे थे कि उन्हें कार्य करते ही रहना है.'

वे डिट्राएट मे अक्सर ही अपने शिष्यो से ऐसा कहते हुए सुने गये, 'ओह, यह

शरीर एक महाबंधन है.' कभी-कभी उनके मुँह से निकल पडता : 'काश, मैं अपने आप को सदा के लिए छिपा लेता.'

यह सम्भव है कि डिट्राएट मे विवेकानन्द कुछ विशेप थके दिखाई पड रहे हो, लेकिन वास्तविकता तो यह थी कि सदा ही उनके भीतर दो व्यक्तित्व निवास करते थे—एक कार्यक्षेत्र मे रत और दूसरा मनन-चिंतन मे. प्रायः रोज ही उनके ये दोनो रूप दिखाई पड सकते थे जहाँ एक ओर वे भापणो, कक्षाओ आदि मे व्यस्त रहते वहाँ दूसरी ओर अवसर मिलने पर गहरे चिंतन मे डूब जाते, लगता सब कुछ छोड कर वे चिर शाति मे लीन हो जाना चाहते है उनके इस स्वरूप की झाकी उनके १८९५ के वसन्तकाल मे न्यूयार्क मे लिखी गयी कविता—'मेरा खेल समाप्त हुआ'—मे मिलती है

समय की लहरो के साथ,
निरन्तर उठते और गिरते
मै चला जा रहा हूँ
जिन्दगी के ज्वार-भाटे के साथ-साथ
ये क्षणिक दृश्य एक पर एक आते-जाते हैं
आह, इस अप्रतिहत प्रवाह से
कितनी थकान हो आयी है मुझे,
ये दृश्य बिलकुल नहीं भाते,
यह अनवरत बहाव और पहुँचना कभी नहीं,
यहां तक कि तट की दूर की झलक भी नहीं मिलती.
जन्म जन्मान्तरो मे, उन द्वारो पर व्याकुल प्रतीक्षा की,
किन्तु, हाय, वे नहीं खुले
प्रकाश की एक किरण भी पाने मे असफल ये आंखें
पथरा गयीं
जीवन के ऊँचे और सकरें पुल पर खड़े हो
नीचे झाकता हू और देखता हूँ—
सघर्परत, क्रन्दन करते और अट्टहास करते लोगों को.
किसलिए ?
कोई नहीं जानता.
वह देखो सामने—
अन्धकार त्योरी चढाये खड़ा है, और कहता है—
'आगे कदम न रखो, यही सीमा है,
भाग्य को ललचाओ मत, सहन करो, जितना कर सको !
जाओ, उन्हीं मे मिल जाओ

और यह जीवन का प्याला पीकर
उन जैसे ही पागल बन जाओ !
जो जानने का साहस करता है,
दुःख भोगता है;
तब रुको और उन्हीं के साथ ठहरो,'
आह, मुझे विश्राम भी नहीं !
यह बुलबुले सी भटकती धरती—
इसका खोखला रूप, खोखला नाम,
इसके खोखले जन्म-मरण,
ये निरर्थक हैं मेरे लिए.
पता नहीं, नाम-रूप की पर्तों के पार
कब पहुंचूंगा.
खोलो, द्वार खोलो, मेरे लिए उन्हें खुलना ही होगा.
ओ मां, प्रकाश के द्वार खोलो !
मां ! तुम्हारा थका हुआ बालक हूं मैं.
मैं घर आना चाहता हूं मां ! घर आना चाहता हूं !
अब मेरा खेल समाप्त हो चुका
तुमने मुझे अंधियारे मे खेलने को भेज दिया,
और भयानक आवरण ओढ़ लिया,
तभी आशा ने संग छोड़ दिया,
भय ने आतंकित किया
और यह खेल एक कठिन कर्म बन गया
इधर से उधर, लहरों के थपेड़े झेलना,
उद्दाम लालसाओ और गहन पीड़ाओं के उफनते हुए,
उत्ताल तरगो से पूर्ण महासमुद्र मे
सुखों की आशा मे
जहां जीवन मृत्यु सा भयानक है और जहां
मृत्यु फिर नया जीवन देकर उसी समुद्र की लहरों मे
सुख-दुख के थेपेड़े सहने को ढकेल देती है.
जहां बच्चे सुन्दर, सुनहले, चमकीले स्वप्न देखते हैं
और जो धूल मे ही मिलते हैं,
जरा पीछे मुड़ कर देखो—
खोया हुआ जीवन, जैसे जंग की ढेरी.
बहुत देर से उम्र को ज्ञान मिलता है

जब पहिया हमे दूर पटक देता है,
नये स्फूर्त जीवन अपनी शक्तियां इस चक्र को पिला देते हैं,
जो चलता रहता है अनवरत, दिन पर दिन, वर्ष पर वर्ष
यह केवल है माया एक खिलौना !
झूठी आशाओं, इच्छाओं और सुख-दुख के अरों से बना
यह पहिया !
मैं भटका हूं, पता नहीं, किधर चला जाऊँ,
मुझे इस आग से बचाओ !
रक्षा करो दयामयी मा ! इन इच्छाओ मे बहने से बचाओ.
अपना भयावना रौद्र मुख न दिखाओ मां !
यह मेरे लिए असह्य है,
मुझ पर कृपा करो, दया करो,
मां मेरे अपराधो को सहन करो
मां मुझे उस तट तक पहुँचाओ
जहां सघर्ष न हो,
इन पीड़ाओ, इन आसुओं और भौतिक सुखो के परे,
जिस तट की महिमा को
ये रवि, शशि, उडुगन और विद्युत भी अभिव्यक्ति नहीं देते
महज उसके प्रकाश का प्रतिबिम्ब लिये फिरते हैं
ओ मां ! मृग-पिपासा, मेरे स्वप्नो के आवरण
तुम्हें देखने से मुझे न रोक सकें,
मेरा खेल अब खत्म हो रहा है मा !
ये शृंखला की कड़ियां तोड़ो,
मुक्त करो मुझे !

डिट्राएट से न्यूयार्क लौटने के कुछ समय बाद स्वामी फिर हारवर्ड गये. वहां २५ मार्च १८९६ को उनका वेदान्त दर्शन पर बहुत ही तत्वपूर्ण भाषण हुआ वहां के प्राध्यापकों तथा छात्रों पर इसका बहुत गहरा असर पड़ा उनके वहां दिये गये भाषणों को बाद मे पुस्तकाकार रूप मे प्रकाशित किया गया उस विश्वविद्यालय के प्राध्यापक श्री सी० सी० एवरेट ने बड़े हर्ष के साथ उस पुस्तक की विस्तृत भूमिका लिखी इसमें एक स्थान पर उन्होंने लिखा है—' स्वामी विवेकानन्द ने अपने व्यक्तित्व और अपने कार्यों मे लोगों मे बहुत बड़ी रुचि उत्पन्न की है. हिन्दू विचारधारा से बढ़ कर वास्तव मे और कोई विषय नहीं है ' स्वामी को हारवर्ड मे 'प्राच्य दर्शन शास्त्र' के प्राध्यापक का पद भी प्रदान करने की इच्छा प्रगट की गयी परन्तु उन्होंने एक सन्यासी होने के नाते इसे अस्वीकार कर दिया.

अमरीका छोडने से पहले स्वामी विवेकानन्द वहा एक ऐसी संस्था की नीव देना चाहते थे, जो वेदान्त प्रचार के कार्य को बराबर जारी रखे. उनके हारवर्ड लौटने पर यह काम पूरा हो गया इसे चलाने का भार लिया विवेकानन्द द्वारा दीक्षित अमरीकी सन्यासियो ने, जिनमे मुख्य थे : स्वामी कृपानन्द, स्वामी अभयानन्द, स्वामी योगानन्द और बहन हरिदासी. सस्था का नाम 'वेदान्त सोसायटी' पडा. इसके अतिरिक्त स्वामी के अन्य कई सम्पन्न मित्र, भक्त और शिष्य लोगो ने उनके वेदान्त दर्शन के प्रचार कार्य मे योग देने का वचन दिया. श्री एच० लिगेट को जो वहाँ के एक सम्पन्न व्यक्ति थे, उस वेदान्त सोसायटी का सभापति बनाया गया. इस प्रकार इस समिति का काम सुचारू रूप से चलना आरम्भ हो गया स्वामी को अपने मित्रो, भक्तो और शिष्यो पर काफी भरोसा था. इसलिए १५ अप्रैल १८९६ को अमरीका से विदा लेने के अवसर पर उनका मन काफी शात और प्रसन्न था

जैसा कि स्वाभाविक था, अमरीका छोडते समय उन्होने वहाँ के अपने जीवन पर बार-बार सोचा. इधर-उधर दौडते-दौडते भाषण देते, कक्षाए लेते वे काफी थक गये थे और थोडी शान्ति और विश्राम का अवसर पाने के लिए व्यग्र थे. परन्तु अमरीका मे जो कुछ उन्होने किया था उससे उन्हें सन्तोष था अमरीका छोडने के कुछ समय पहले २५ जनवरी १८९६ को श्रीमती ओली बुल के नाम पत्र मे उन्होने लिखा—'मैंने अपनी शक्ति भर काम किया है. यदि उसमे सत्य का कोई बीज है, तो वह यथाकाल अकुरित होगा. इसलिए मुझे कोई चिन्ता नही है. व्याख्यान देते-देते और कक्षाए लेते-लेते मैं अब थक भी गया हूँ. ·· मेरा यह विश्वास अधिकाधिक बढता जा रहा है कि कर्म का ध्येय केवल चित्त की शुद्धि है, जिससे वह ज्ञान प्राप्त करने का अधिकारी हो सके यह ससार अपने गुण-दोष सहित अनेक रूपो मे चलता रहेगा. पुण्य और पाप केवल नये नाम और नये स्थान बना लेंगे. मेरी आत्मा निरवच्छिन्न एव अनश्वर, शाति और विश्राम के लिए लालायित है.' इसी पत्र मे आगे चल कर विवेकानन्द ने लिखा है · 'आह ! मैं तरसता हूँ—अपने चिथडो के लिए, अपने मुंडित मस्तक के लिए, वृक्ष के नीचे सोने के लिए और भिक्षा के भोजन के लिए सारी बुराइयो के बावजूद भी भारत ही एकमात्र स्थान है जहाँ आत्मा अपनी मुक्ति, अपने ईश्वर को पाती है. यह पश्चिमी चमक-दमक निस्सार है, केवल आत्मा का बधन है. ससार की निस्सारता का मैंने अपने जीवन मे पहले कभी ऐसी दृढता से अनुभव नहीं किया था'

अमरीका छोडने से पहले सबसे अधिक भाव भीने पत्र स्वामी ने कुमारी मेरी हेल को लिखे. १० फरवरी १८९६ को 'चिर स्नेही भाई' के अपनी 'प्रिय बहन' को लिखे गये पत्र के निम्नलिखित उद्धरण न केवल दोनो के पवित्र मधुर

वचन के स्वरूप की झांकी देते हैं, बल्कि अमरीका प्रवास के अन्तिम दिनों में विवेकानन्द की मनोदशा का भी मार्मिक चित्र उपस्थित करते हैं.

'लगातार काम करने के कारण मेरा स्वास्थ्य इस वर्ष बहुत टूट गया है. मैं बहुत घबड़ा रहा हूं इस जाड़े में एक भी रात मैं ठिकाने से नहीं सो पाया हूं. मुझे लगता है, मैं काम तो खूब कर रहा हूं, फिर भी इंग्लैंड में बहुत अधिक काम मेरी प्रतीक्षा कर रहा है

'मुझे यह झेलना ही पड़ेगा और तब, मैं आशा करता हूं कि भारत पहुंच कर विश्राम लूंगा जीवन भर मैंने संसार की भलाई के लिए शक्ति के अनुसार चेष्टा की है. फल भगवान के हाथ में है

'अब मैं विश्राम करना चाहता हूं. आशा करता हूं मुझे विश्राम मिलेगा और भारत के लोग मुझे छुट्टी देंगे. मैं कितना चाहता हूं कि कई वर्षों तक गूंगा हो जाऊं और एक शब्द भी न बोलूं.

'मैं संसार के इन झमेलों और संघर्षों के लिए नहीं बना था. वास्तव में मैं स्वप्न-विलासी और आरामतलब हूं. मैं जन्मजात आदर्शवादी हूं, सिर्फ सपनों की दुनियां में रह सकता हूं वास्तविकता का स्पर्शमात्र मेरी दृष्टि धुंधली कर देता है और मुझे दुखी बना देता है तेरी इच्छा पूर्ण हो.

'मैं तुम चारों बहनों का चिर कृतज्ञ हूं इस देश में मेरा जो कुछ भी है, सब तुम लोगों का है. भगवान तुम्हारा सर्वदा मंगल करें और सुखी रखें. मैं जहां भी रहूंगा, तुम्हारी याद, प्यार तथा हार्दिक कृतज्ञता के साथ आती रहेगी. सारा जीवन सपनों की माला है. मेरी आकांक्षा, जागते हुए स्वप्न देखते रहने की है. बस ! मेरा प्यार जोसेफिन को भी.'

कैसी विडम्बना ! बार-बार विवेकानन्द सोचते हैं; काफी दौड़-धूप हो चुकी. अब भारत पहुंच कर शान्ति मिलेगी, भारत पहुंच कर चैन मिलेगा. दूसरी तरफ वे अच्छी तरह जानते थे कि सबसे अधिक काम, सबसे बड़ा काम तो उन्हें भारत पहुंच कर ही करना है.

वास्तव में अमरीका में घूमते समय वे अपने भारत के कार्यक्रम के सम्बन्ध में बराबर सोचते रहते थे. धीरे-धीरे इसका स्वरूप उनके मानस-पटल पर उभरता जा रहा था और अपने भारतीय शिष्यों और अनुयायियों के पास लिखे गये पत्रों में वे उसका निरूपण करते जाते थे. सबसे पहले वे यह आवश्यक समझते थे कि उनके अनुयायी धर्म के वास्तविक स्वरूप को समझ जायें. उनके भगवान ग्रंथों और मन्दिरों तक ही सीमित नहीं थे. शिष्य आलसिंगा के नाम पत्र में वे लिखते हैं. 'मैं उस भगवान या धर्म का विश्वास नहीं करता, जो न विधवाओं के आंसू पोंछ सकता है और न अनाथों के मुंह में एक रोटी का टुकड़ा ही पहुंचा सकता है. किसी धर्म के सिद्धांत कितने ही उदात्त एवं उसका दर्शन कितना ही सुगठित क्यों न हो, जब

तक वह कुछ ग्रथो और मतो तक ही परिमित है, मैं उसे नही मानता. हमारी आँखें सामने हैं. पीछे नही. सामने बढ़ते रहो. जिसे तुम अपना धर्म कह कर गौरव का अनुभव करते हो, उसे कार्य रूप मे परिणत करो. ·· यदि भलाई चाहते हो, तो घण्टा आदि को गगाजी मे सौप कर साक्षात् भगवान नारायण की विराट और स्वराट की, मानव देहधारी प्रत्येक मनुष्य की पूजा मे तत्पर हो. यह जगत् भगवान का विराट रूप है एव उसकी पूजा का अर्थ है उसकी सेवा. वास्तव मे कर्म इसी का नाम है, निरर्थक विधि उपासना के प्रपच का नही. घण्टे के बाद चमर लेने का अथवा भोजन की थाली भगवान के सामने रख कर दस मिनट बैठना है या आधा घण्टा, इस प्रकार के विचार विमर्श का नाम कर्म नही है, यह तो पागलपन है. लाखो रुपये खर्च कर काशी तथा वृन्दावन के मदिरो के कपाट खुलते है और बन्द होते हैं. कहीं ठाकुर जी वस्त्र बदल रहे हैं तो कही भोजन अथवा और कुछ कर रहे हैं जिसका ठीक तात्पर्य हम नही समझ पाते. किन्तु दूसरी ओर जीवित ठाकुर भोजन तथा विद्या के बिना मरे जा रहे हैं बम्बई के बनिया लोग खटमलो के लिए अस्पताल बनवा रहे है किन्तु मनुष्यो की ओर उनका कुछ भी ध्यान नही है, चाहे वे मर ही क्यो न जायें तुम लोगो मे इन बातो को समझने तक की भी बुद्धि नही है. यह हमारे देश के लिए प्लेग के समान है और पूरे देश मे पागलो का अड्डा.'

श्रीमती एनी बेसेन्ट की दृष्टि मे स्वामी विवकानन्द एक 'सन्यासी योद्धा' थे. यह उन्होने विवेकानन्द के अमरीका मे वेदान्त-प्रचार के काम को ध्यान मे रख कर लिखा था. इसी अर्थ मे कुछ लोग उन्हें 'हिन्दू नैपोलियन' भी कहते हैं लेकिन उनके योद्धा रूप की सबसे सबल झाँकी तो उनके भारत के भीतर के कामो मे मिलती है. अमरीका से वे अपने भारतीय अनुयायियो को बराबर आगे बढते रहने का आह्वान करते रहते, जिससे वे धर्म के नये स्वरूप को साकार बनाने के काम मे अविलम्ब जुट जायें. अमरीका से लिखे गये न जाने कितने पत्रों मे उनकी यह झाँकी उपलब्ध होती है—यह झाँकी है एक कमाण्डर की, जिसे सेना का नेतृत्व करना है . 'मेरी ओर मत देखो, अपनी ओर देखो, सामने बढते रहो.··· · तुम्हारे सामने विस्तृत कार्यक्षेत्र है बढे चलो, सब ठीक हो जायेगा ···यदि वास्तव मे तुम सब मेरे बच्चे हो तो तुम किसी चीज से नही डरोगे, कही पर नही रुकोगे. तुम सिंह सदृश बन जाओगे '

स्वामी की दृष्टि मे मुख्य काम भारत की गरीबी और अज्ञान से युद्ध था. वे चाहते थे कि भारत के अनगिनत साधु सन्यासी स्वमुक्ति की कामना लिये निष्क्रिय बन कर इधर-उधर भटकते फिरें, वरन् समाज सेवा के काम मे लग जाये इसी सदर्भ मे उनका एक और पत्र गुरुभाई के नाम. 'भाई, ······देश का दारिद्रय और अज्ञता देख कर मुझे नीद नही आती. मैंने एक योजना सोची, उसे कार्यान्वित करने का मैंने दृढ सकल्प किया कन्याकुमारी के माता कुमारी के मदिर मे बैठ कर,

भारत की अंतिम चट्टान पर बैठ कर मैंने सोचा कि हम जो इतने सन्यासी घूमते फिरते हैं और लोगों को दर्शन शास्त्र की शिक्षा देते रहते हैं, यह सब निरा पागलपन है. क्या हमारे गुरु नहीं कहा करते थे कि खाली पेट धर्म नहीं होता ? वे जो गरीब जानवरों का सा जीवन व्यतीत कर रहे हैं, उसका कारण अज्ञानता है. पाजियों ने युग-युग से उनका खून चूस कर पिया है और उन्हें पैरों से कुचला है.

'सोचो, गांव-गांव में कितने ही सन्यासी घूमते हैं, वे क्या काम करते हैं ? यदि कोई निःस्वार्थ परोपकारी सन्यासी गांव-गांव विद्या दान करता फिरे और भांति-भांति के उपाय से, मानचित्र, कैमरा, भू-गोलक आदि के सहारे चाण्डाल तक सबकी उन्नति के लिए घूमे तो क्या इससे समय पर मंगल नहीं होगा ? (ये सभी योजनाएं मैं इस छोटे से पत्र में नहीं लिख सकता.) बात यह है कि 'यदि पहाड़ मुहम्मद के पास न जाये, तो मुहम्मद ही पहाड़ के पास जायेगा'. (अर्थात् यदि गरीब लड़के विद्यालयों में न आ सकें तो उनके घर जाकर ही उन्हें सिखाना होगा.) गरीब लोग इतने बेहाल हैं कि वे स्कूलों और पाठशालाओं में नहीं आ सकते. और कविता आदि पढ़ाने से कोई लाभ नहीं हमने राष्ट्र की हैसियत से अपना व्यक्तित्व खो दिया है और यही सारी खराबी का कारण है हमें राष्ट्र को, उनके खोये हुए व्यक्तिभाव को वापस लाना है और जन-समुदाय को उठाना है हिन्दू, मुसलमान, ईसाई सभी ने उन्हें पैरों तले रौंदा है उनको उठाने वाली शक्ति भी अंदर से अर्थात् हिन्दुओं से ही आयेगी'

अमरीका के अति उच्च सामाजिक स्तर को देख कर उनका हृदय अपने भारत के दीन-दुखी-अशिक्षित व्यक्तियों की उन्नति के लिए और भी विकल हो जाता था. भारत के दीन दुखी एवं पिछड़े हुए लोगों की दशा में स्थायी सुधार लाने का एक ही मार्ग उनकी दृष्टि में श्रेयस्कर था यह मार्ग था शिक्षा का उन्होंने अपने मित्रों और शिष्यों के पत्रों में बारम्बार उन लोगों के ध्यान इस ओर आकर्षित किये. उनके ऐसे ही एक पत्र के कुछ अंश : 'जीवन में मेरी सर्वोच्च अभिलाषा यही है कि एक ऐसा चक्र प्रवर्तित कर दूं जो उच्च एवं श्रेष्ठ विचारों को सबके द्वार पहुंचा दे और फिर स्त्री-पुरुष अपने भाग्य का निर्णय स्वयं कर लें हमारे पूर्वजों तथा अन्य देशों ने भी जीवन के महत्वपूर्ण प्रश्नों पर क्या विचार किया है, यह सर्वसाधारण को जानने दो विशेषकर उन्हें यह देखने दो कि और लोग इस समय क्या कर रहे हैं और तब उन्हें अपना निर्णय करने दो. रासायनिक द्रव्य इकट्ठे कर दो और फिर प्रकृति के नियमानुसार वे कोई विशेष आकार धारण कर लेंगे. परिश्रम करो, अटल रहो और भगवान पर श्रद्धा रखो. काम शुरू कर दो देर-सबेर, मैं आ ही रहा हूं. 'धर्म को बिना हानि पहुंचाये जनता की उन्नति' इसे अपना आदर्श वाक्य बना लो.

'याद रखो, कि राष्ट्र झोपडी मे वसा हुआ है. परन्तु शोक ! उन लोगो के लिए कभी किसी ने कुछ नही किया. हमारे आधुनिक सुधारक विधवाओ का पुनर्विवाह कराने मे बड़े व्यस्त हैं निश्चय ही मुझे प्रत्येक सुधार से सहानुभूति है परन्तु राष्ट्र की भावी उन्नति विधवाओ को अधिकाधिक पति मिलने पर नही वरन् 'आम जनता की अवस्था' पर निर्भर है क्या तुम जनता की उन्नति कर सकते हो ? उनका खोया हुआ व्यक्तित्व, विना उनकी स्वाभाविक आध्यात्मिक वृत्ति नष्ट किये, उन्हे वापस दिला सकते हो ? क्या समता, स्वतत्रता, कार्यकौशल और पौरुष मे तुम पाश्चात्यो के गुरु वन सकते हो ?'

पाश्चात्य जगत् से जो सवसे वडी शिक्षा स्वामी विवेकानन्द ने ग्रहण की, वह थी संगठन की शिक्षा. जव स्वामी डिट्राएट मे लीन परिवार के साथ ठहरे हुए थे तो एक वार उन्होने श्रीमती लीन से कहा कि अमरीका मे उन्हें अपने जीवन के सवसे वडे प्रलोभन से सामना हुआ. श्रीमती लीन ने उन्हें छेडने के विचार से पूछा कि वह कौन युवती है जिसके प्रति स्वामी को इतना वड़ा प्रलोभन है स्वामी ठठाकर हँस पडे और वोले—'अरे यह युवती नही, सगठन है' अमरीका मे उन्होने जो कुछ देखा उससे वे स्पष्ट समझ गये कि सगठन-शक्ति के द्वारा समाज का कितना कल्याण किया जा सकता है. भारत मे उनके कितने गुरुभाई अलग-अलग देहातो मे समाज सेवा के काम मे लगे हुए थे लेकिन सगठन के विना वे वहुत अधिक उपलब्धि नहीं कर पाते थे यदि वे सव सगठित होकर काम करें तो उनकी उपलब्धि कितनी वढ जाये अभी उनके मस्तिष्क मे यह स्पष्ट नही था कि इस संगठन का क्या रूप होगा परन्तु सगठन का महत्व वे स्पष्ट रूप से समझ गये थे इसी विचारधारा ने आगे चल कर रामकृष्ण मिशन का रूप ग्रहण किया.

९

ब्रिटेन तथा अन्य देशों में

एक

अगस्त १८९५ मे जब पेरिस होते हुए अपने अमरीकी मित्र के साथ स्वामी विवेकानन्द पहली बार ब्रिटेन पहुँचे तब उनका मन तरह-तरह की शकाओ से ग्रस्त था. अभी उन्होने उस देश की भूमि पर पाव रखे थे, जो प्रभुत्व के अहकार मे, साम्राज्य के गर्व मे फूला हुआ था यह वह देश था जिसने भारत का स्वाभिमान छीन रखा था, उसके पैरो मे बेडियां डाल दी थी, उसे अपना दास बना रखा था. ऐसे देश की देहली पर कदम रखने के समय स्वाभिमानी स्वामी के हृदय मे सशय का जन्म होना स्वाभाविक था पता नही स्वामित्व के मद से गर्वित यह अग्रेज जाति अपने गुलाम देश से आये हुए एक सन्यासी धर्म प्रचारक को किस भाव से ग्रहण करेगी परन्तु उनके मन से सशय का बादल शीघ्र ही उड गया लदन स्टेशन पर स्वागतार्थ आये हुए श्रीमान् स्टर्डी और कुमारी हेनरीएटा मुलर, जिनसे वे अमरीका मे मिल चुके थे, तथा अन्य कई अग्रेज भाइयो से उन्होने अपने को घिरा हुआ पाया कई लोगो ने उन्हे अपना अतिथि बनाने की इच्छा प्रकट की स्वामी ने कभी एक कभी दूसरे के यहा रह कर उनकी लालसा पूरी की प्रथम दो चार दिनो तक दिन मे वे लदन के ऐतिहासिक तथा कलात्मक स्थानो को देखा करते तथा सुबह और शाम को विचारगोष्ठी करते थे. बहुत शीघ्र ही उनकी ख्याति चारो ओर फैल गयी उच्च, मध्य तथा साधारण श्रेणी, हर तरह के अग्रेज इनके पास आने लगे

करीब तीन सप्ताह के अन्दर ही स्वामी अपने कार्य जाल मे बुरी तरह फँस गये कई प्रमुख पत्रो के पत्रकारो ने उनसे साक्षात्कार किया 'द वेस्ट मिनिस्टर गजट' तथा 'द स्टैन्डर्ड' ने तो उनका काफी गुणगान किया. लदन के पिकैडली नामक भव्य स्थान के प्रिसेज हॉल मे २२ अक्टूबर की सध्या वेला मे स्वामी ने हजारो श्रोताओ के सम्मुख भारतीय दर्शन पर भाषण दिया विषय था—आत्म ज्ञान. उस समय लदन के हर क्षेत्र से लोग प्रिसेज हॉल मे उमड पडे थे यहां तक कि हॉल के बाहर भी लोगो की भीड लगी हुई थी दूसरे दिन प्रमुख समाचार पत्रो मे इस भाषण की सविस्तार समालोचना प्रकाशित हुई. 'द लदन डेली क्रानिकल' ने लिखा—'प्रसिद्ध हिन्दु सन्यासी विवेकानन्द ने, जिनकी मुखाकृति बुद्ध की भव्य

मुखाकृति से बहुत कुछ मिलती जुलती है, हमारी व्यावसायिक समृद्धि को, हमारे रक्त पिपासु युद्धो को, हमारी धार्मिक असहिष्णुता को दोषपूर्ण बताया और कहा कि इस मूल्य पर कोमल प्रकृति हिन्दू लोग हमारी बहुप्रशसित सभ्यता को कभी नहीं अपनाना चाहेगे.' 'द वेस्ट मिनिस्टर गजट' नामक पत्रिका के सवाददाता ने स्वामी से साक्षात्कार किया और अपने पत्र मे उन पर एक वृहत् लेख प्रकाशित किया. उसके अनुसार, '· ·· स्वामी विवेकानन्द अपनी पगडी तथा अपने प्रशांत, किंतु सदय व्यक्तित्व मे एक चित्ताकर्षित करने वाले मनुष्य हैं उनका एक बालक के समान दीप्तिमान मुखमडल, बहुत ही सरल, स्पष्ट एव निष्कपट है.' इस पत्रकार से वार्तालाप के सिलसिले मे स्वामी ने कहा कि वे अपने गुरु श्री रामकृष्ण परमहस के सदेश को ससार मे फैलाना चाहते हैं उनका उद्देश्य न किसी नवीन सम्प्रदाय की स्थापना करना है और न किसी विशेष धर्ममत का प्रचार करना है वे सिर्फ वेदान्त का प्रचार करना चाहते हैं इसके ज्ञान से जगत का कल्याण होगा. इसे सभी धर्म सम्प्रदाय के व्यक्ति अपनी-अपनी धार्मिक स्वतत्रता बनाये रखते हुए भी ग्रहण कर सकते है '

'द स्टैंडर्ड' ने उनके सम्बध मे इस प्रकार लिखा—'केशवचन्द्र सेन को छोड कर राममोहन के बाद, प्रिसेज हॉल मे इस हिन्दू वक्ता की तरह कोई भी दिलचस्प भारतीय व्यक्ति लदन के व्याख्यान मच पर उपस्थित नही हुआ उन्होने अपने व्याख्यान मे बुद्ध या ईसा के आधे दर्जन शब्दो की तुलना मे हमारे कारखानो, इजिनो, वैज्ञानिक आविष्कारो तथा पुस्तको ने मानव जाति के लिए जो कुछ किया है, उसकी अत्यत तीव्र एव उपेक्षापूर्ण आलोचना की व्याख्यान देते समय उन्होने कागज पर लिखे हुए किसी प्रकार के स्मरण सकेत की सहायता नही ली. उनका सुन्दर कण्ठस्वर स्पष्ट एव द्विविधाहीन था.'

इस तरह करीब महीने भर मे ही स्वामी ने लदन मे काफी ख्याति प्राप्त कर ली. वे जहाँ भी जाते वही लोग तुमुल हर्षध्वनि करने लगते और उन्हें चारो ओर से घेर लेते. वहां के लोग उन्हें 'तूफानी हिन्दू' कहा करते थे. प्रिसेज हॉल के सार्वजनिक व्याख्यान के पूर्व स्वामी का अधिक समय वेदान्त पर कक्षा तथा विचार-गोष्ठी मे व्यतीत होता था. सार्वजनिक सभा के लिए अक्सर लोग आग्रह किया करते, लेकिन स्वामी ने अमरीका मे ही समझ लिया था कि सार्वजनिक सभा में भाषण पटुता और पाडित्य प्रदर्शन से ख्याति भले ही मिले किन्तु वेदात के सिद्धातो के प्रचार मे उससे कोई स्थायी लाभ नही होता है इसीलिए उन्होने कक्षा लेने के कार्य पर ही अधिक जोर देना ठीक समझा जो लोग वेदात दर्शन से आकृष्ट होकर इनकी कक्षा मे उपस्थित होते, उन्हें वे नियमित ढग से प्रशिक्षित करते 'इडियन मिरर' नामक पत्रिका ने स्वामी के इस कार्य की इस प्रकार चर्चा की—'हमे यह लिखते हुए बडी खुशी हो रही है कि स्वामी विवेकानन्द ने लदन के अनेक भद्र

स्त्री-पुरुषों की दृष्टि आकर्षित की है. उनकी हिन्दू-दर्शन और योग सम्बधी कक्षाओं में अनेक उत्साही और श्रद्धालु श्रोतागण उपस्थित होते हैं.' लदन के एक दैनिक पत्र के सवाददाता ने, जो स्वामी की अनेक कक्षाओं मे उपस्थित था, इस प्रकार लिखा—'लदन की कुछ फैशनपरस्त उच्च घरानो की महिलाएँ कुर्सियो के अभाव मे भूमि पर पैर मोड कर बैठी हुईं, भारतीय शिष्य की भक्ति के साथ स्वामी के उपदेश सुन रही हैं. ये वास्तव मे विरले दृश्य हैं.'

नवम्बर के मध्य मे स्वामी ने अपने एक मद्रास के शिष्य के पास अपने कार्य के सम्बध मे लिखा—'इगलैड मे मेरे कार्य को आशातीत सफलता मिली है.··· जत्थे के जत्थे लोग आते हैं कि मेरे पास इतने लोगो के लिए स्थान नही रहता, इसलिए वे स्त्रियाँ और सभी लोग भूमि पर सट कर बैठते है · यह सुन कर कि अगले सप्ताह मैं चला जाऊँगा, कई व्यक्ति बडे दु खी हुए हैं. कई लोग तो इस प्रकार सोचते हैं कि मेरे चले जाने पर जो कार्य यहाँ हुआ है उसमे क्षति होगी, परन्तु मैं ऐसा नही समझता मैं मनुष्य या किसी वस्तु पर निर्भर नही करता. ईश्वर ही मेरा सहारा है वे ही मुझे यत्र बना कर कर्म करवा रहे हैं.'

अमरीका की तरह यहाँ भी कभी-कभी अपनी कक्षा मे या आम सभा मे कुछ लोग ऐसे मिलते जो स्वामी के द्वारा दिये गये आग्ल जाति के विरुद्ध कोई भी कटु सत्य स्वीकार नही करते, बल्कि उसे अपनी निंदा समझ कर उसके विपक्ष मे आवाजें उठाते या सभा स्थल छोडकर चले जाते. ऐसी स्थिति मे स्वामी का रूप देखने योग्य हो जाता. अपने धर्म और अपनी जाति के समर्थन मे जब वे छाती तान कर मच पर खडे होते तब उनकी आँखो मे बिजली की चमक और वाणी मे बादल की गर्जन होती एक अभिमान शून्य विनीत सन्यासी का व्यक्तित्व जाने कहाँ लोप हो जाता एक दिन एक सभा मे स्वामी भारत के गौरव का वर्णन कर रहे थे, इसी समय एक समालोचक ने प्रश्न किया—'भारत के हिन्दुओ ने क्या किया है ? वे आज तक किसी जाति पर विजय प्राप्त नही कर सके' तत्क्षण तीक्ष्ण उत्तर मिला—'नही कर सके, नही , कहिए कि उन्होने की नही और यही हिन्दू जाति का गौरव है कि उसने कभी दूसरी जाति के रक्त मे पृथ्वी को रजित नही किया वे दूसरो के देश पर अधिकार क्यो करेंगे ? तुच्छ धन की लालसा से ? भगवान ने सदैव भारत को दाता के रूप मे प्रतिष्ठित किया है भारतवासी संसार के धर्म गुरु रहे हैं वे दूसरो के धन को लूटने वाले रक्त पिपासु दस्यु न थे. और इसलिए मैं अपने पूर्वजो के गौरव से गर्व का अनुभव करता हूँ' अपनी जाति की इतनी भर्त्सना सुन कर भला कौन व्यक्ति चुप रह सकता था किसी दूसरे व्यक्ति ने प्रश्न किया—'आप के पूर्वज यदि मानव समाज को धर्मदान देने के लिए इतने व्यग्र थे तो वे इस देश मे धर्म प्रचार करने क्यो नही आये ?' स्वामी के होठो पर मुस्कान की लहर दौड गयी उन्होने कहा—'उस समय तुम्हारे पूर्वज तो जगली

वर्बर थे, पत्तो के हरे रग से अपने शरीर को रग कर पर्वतो की गुफाओ मे निवास करते थे तो क्या वे जगल मे धर्म प्रचार करने आते ?' इसी प्रकार कितने व्यक्ति ईसा मसीह या ईसाई धर्म के प्रति स्वामी के विचार सुन कर, इसे उनकी अनधिकार चेष्टा समझ कर पूछा करते थे—'स्वामी, आप जब ईसाई नही हैं तो ईसाई धर्म के आदर्श को कैसे समझेंगे ?' स्वामी ने कहा—'वे पूर्व देश के सर्वत्यागी सन्यासी थे, मैं भी पूर्व देशीय सन्यासी हूँ मैं समझता हूँ, पाश्चात्य जगत अभी उन्हें नही पहचान सका है उनके द्वारा प्रचारित धर्म को ठीक तरह नही समझ सका है. क्या उन्होने यह नही कहा था 'जाओ तुम अपना सब कुछ बाँट दो और उसके बाद मेरा अनुसरण करो.' तुम्हारे देश के कितने विलासी लोग ईसा की इस उक्ति को सत्य मान कर सर्वत्यागी हुए हैं ?' इस प्रकार जब स्वामी कठोर सत्य को उभारते तो प्रश्नकर्ता मूक बन जाता और अपना सा मुँह लेकर घर लौट जाता इसके साथ-साथ इगलैंड की जनता, जिसमे अधिक सख्या मे शिक्षित लोग थे, इस भारतीय सन्यासी के प्रति श्रद्धा भक्ति के साथ आकृष्ट हुए इन्हें यथोचित सम्मान और ख्याति दी स्वामी ने आशा के विपरीत अग्रेजो के इस नूतन चरित्र का अन्वेषण किया. आग्ल जाति के प्रति उनकी धारणा परिवर्तित हो गयी. एक स्थान पर उन्होने कहा—'अग्रेज जाति के प्रति मुझसे अधिक घृणा के भाव लेकर और किसी व्यक्ति ने ब्रिटिश भूमि पर पदार्पण नहीं किया है · पर आज यहाँ पर ऐसा कोई व्यक्ति नहीं है जो अग्रेज जाति को मुझसे अधिक चाहता हो '

अमरीका की तरह इगलैंड मे भी धर्म प्रचार के काम मे स्वामी को वहाँ के लोगो से यथेष्ट सहायता मिली प्रथम आगमन मे ही इतनी सफलता, इतना मान-सम्मान मिलेगा, इसकी उन्हे आशा नही थी. वे तो वहाँ की स्थिति परखने आये थे कि वेदान्त के प्रचार के लिए वहा उन्हे किस प्रकार कदम उठाना चाहिए दो माह मे ही उन्हें अमरीका और इगलैंड के लोगो के मानसिक दृष्टिकोण का भेद स्पष्ट हो गया अमरीकी जनता इनके वक्तव्य की नवीनता पर अतिशीघ्र मत्रमुग्ध हो जाती थी. इसके विपरीत इगलैंड की परम्परावादी जनता किसी नूतन विचारधारा की प्रशसा मे अत्यंत ही कृपण थी, ऐसी स्थिति मे उसके लिए उस विचारधारा को आत्मसात करने की बात बहुत आसान नही थी लेकिन इस विषम परिस्थिति मे जो लोग अनेक वाद-विवाद, उत्तर-प्रत्युत्तर के बाद स्वामी की विचारधारा से एक बार सहमत हो गये, वे बाद मे उनके अतरग मित्र ही नही बल्कि अति गम्भीर, विश्वसनीय शिष्य भी बन गये.

इन शिष्यो मे कुमारी मार्गरेट नोबल अग्रगण्य हैं स्वामी विवेकानन्द से मिलने के पूर्व यह असाधारण विदुषी महिला एक विद्यालय की प्राचार्या थीं विद्वत् समाज मे उनकी बडी प्रतिष्ठा थी वे सुविख्यात सीसेम क्लब की जिसका शिक्षा-प्रचार कार्य मे बहुत महत्वपूर्ण स्थान था, एक सम्मानित सदस्या थी शिक्षा के मार्ग

मे आधुनिक विचारधारा तथा उसके प्रभाव के विश्लेषण मे उन्हें विशेष रुचि थी. स्वामी विवेकानन्द की चर्चा इन्होने कई शिक्षा शास्त्रियो तथा विद्वानो मे सुन रखी थी. उनके मन मे भी जिज्ञासा ने जन्म लिया—भला यह कैसा भारतीय सन्यासी है जिसके ज्ञान और व्यक्तित्व की प्रशसा करते लोग नही थकते ? इस सन्यासी के दर्शन और समापण से तो एक बार अपने को अवगत करना ही होगा—भले ही उसमे कोई सार हो या न हो

नवम्बर मास की शरद ऋतु, हड्डियो को छेदने वाली वर्फीली हवा, शीत के प्रकोप से व्याकुल लदन नगर इन्ही दिनो एक रविवार को, दोपहर के समय कुमारी नोवल, स्वामी विवेकानन्द से मिलने चल पडी लेडी इसावेल मारगेसन का भवन आज यही स्वामी का भाषण था पाश्चात्य ढग से सुसज्जित वैठक मे काषाय वस्त्र पहने हुए स्वामी, पूर्ण भारतीय पद्धति के अनुसार भूमि पर वैठे थे उनके सामने अर्धगोलाकार रूप से श्रद्धायुक्त करीव पन्द्रह-सोलह सज्जन श्रोतागण वैठे हुए थे उनके पीछे अग्निस्थल पर लाल-लाल अगारे धधक रहे थे स्वामी अपने दूर देश का सदेश श्रोताओ को सुना रहे थे सदेश सुनाते-सुनाते, वीच-वीच मे वे 'शिवम्-शिवम्' वोल उठते. श्रोतागण एक के वाद एक प्रश्नो की झडी लगाये हुए थे

उधर स्वामी धीर भाव से सवके अविराम उत्तर दे रहे थे अपने उत्तर की पुष्टि लिए वीच-वीच मे सस्कृत के श्लोको एव उद्धरणो का समावेश कर देते थे आज का उनका विषय था आध्यात्मिक विकास के तीन मार्ग—कर्म, भक्ति और ज्ञान. जाने कव दोपहर शाम मे ढल गयी और शाम रात मे, किसी ने नही जाना अग्नि स्थल की अनल-शिखा रात्रि के धुधलके मे और भी चमकने लगी लदन की उस वैठक मे भारत के किसी गाँव का दृश्य दिखाई पडने लगा—मानो जाडे की ठिठुरन से वचने के लिए वगल मे घास-फूस जला कर, चांदनी रात मे, कोई साधु किसी पेड के नीचे नदी तट पर या कुएँ के पास, अपने शिष्यो से घिरा हुआ वैठा उपदेश दे रहा हो कुछ देर के वाद वैठक मे हल्की सी रोशनी जला दी गयी इस मद प्रकाश के जादू ने क्षण भर मे उस भारतीय परिवेश को जाने कहाँ लुप्त कर दिया. अव वहाँ रह गया सिर्फ वह भारतीय साधु और उसकी शाश्वत् वाणी. वाकी सभी चीजें पाश्चात्य रंग मे पूर्ववत् डूव गयी प्राच्य और पश्चिम का ऐसा मिलन दर्शनीय था.

कुमारी नोवल ने धीरे से वैठक मे कदम रखा और श्रोताओ के वीच सिमट कर वैठ गयी आंखो मे विनम्रता किन्तु मुखमडल पर स्वाभिमान की चमक वे धीर भाव से स्वामी को सुनती रही विषय समाप्त होने पर जव सव लोग जाने लगे, इन्होने भी विदा ली लेडी मारगेसन ने इन्होने कई श्रोताओ को कहते सुना कि स्वामी के भाषण मे कोई विशेष तत्व नही था, कोई नयी वात नही थी लगता था जैसे उन्होने पहले से यह निश्चय कर रखा था कि स्वामी चाहे कुछ भी कहें, उन्हें उसे नही मानना है कुमारी नोवल ने स्वामी के द्वारा कही गयी वातो को कोई

विशेप महत्व नही दिया. घर लौट कर वे अपने कामकाज मे व्यस्त हो गयी, परन्तु स्वामी की बातें इतने सहज रूप से वे नही भूल सकी. बार-बार उन्हें अतरात्मा की आवाज सुनाई पडने लगी 'किसी भी अजनवी सस्कृति की अजनबी बातो को इतने महज रूप से ठुकरा देना ठीक नही है, सत्य के पुजारी का मानसपट सर्वदा खुला होना चाहिए. वहाँ किसी भी प्रकार के पक्षपात का प्रश्रय अनुचित है.' स्वामी की बातो को वे जितनी गहराई से सोचती उन्हें उतना ही उसमें सत्य का आभास लक्षित होता. नवम्बर महीने के अंतिम दिनो मे उन्होने स्वामी के दो और भापणो को सुना इस बार वे यह सोचकर गयी थी कि स्वामी की बातो को वे ठीक तरह से समझने को कोशिश करेंगी, अपने देश, अपनी जाति और अपने धर्म की परिधि से अपने को दूर खीच ले जायेंगी. किन्तु उनके सशयात्मक हृदय ने उनका साथ नही छोडा फलस्वरूप स्वामी की प्रश्नोत्तर कक्षा मे हमेशा 'लेकिन', 'क्यो' और 'कैसे' उनके होठो पर फडकते रहे स्वदेशाभिमान और आत्मविश्वास उनकी रक्त-मज्जा के अंश थे. स्वामी के होठो से निकली हुई बातो को वे ज्यो की त्यो कैसे आत्मसात कर जाती ? वे उनकी सभी बातो को, उपदेशो को अपने मापदड से तौलती और उनसे तर्क-वितर्क करती जब स्वामी उन्हें पूरी तरह समझा देते, तब उनके विचारो को हृदयगम करती थीं.

कुमारी नोवल के प्रश्नो को सुन कर स्वामी की आँखो के सामने उनका अपना अतीत सजग हो उठा—गुरुदेव श्री रामकृष्ण के सामने बैठा हुआ नास्तिक, हठीला स्वाभिमानी 'नरेन' मानो गुरुदेव की कही हुई बातो को निर्ममता से काटने के ध्येय से ही वह वहा बैठा हो किन्तु गुरुदेव के दो विश्वासयुक्त अर्धनिमीलित नेत्रो और मुखमडल के भोलेपन मे जाने कैसा जादू था जिसने विद्रोही 'नरेन' को वश मे कर लिया, अपना दास बना लिया नरेन के होठो से भी उन दिनो इसी प्रकार 'लेकिन' 'क्यो' और 'कैसे' शब्द बहकते रहते. आज मानो उसी घटना की पुनरावृत्ति हो रही थी यह दूसरा 'नरेन' 'कुमारी मार्गरेट नोबल' के रूप मे उपस्थित था. कुमारी नोवल के हृदय मे अपने किसी भी विचार की छाप छोडने मे स्वामी को काफी परिश्रम करना पडता था परन्तु वे समझ चुके थे यह छाप सदैव अमिट रहेगी स्वामी विवेकानन्द के विचारो के लिए कुमारी नोवल से बढ़ कर कोई दूसरा व्यक्ति नही होगा. एक बार भापण देते समय स्वामी ने एक महिला श्रोता को कुमारी नोवल से कहते हुए सुना कि वह स्वामी की कही हुई बातो को शीघ्र समझ जाती है तथा उन सभी बातो से वह सहमत है. स्वामी ने उस समय तो इस विपय पर कुछ नही कहा, किन्तु बाद मे वे कुमारी नोवल से बोले—'किसी को इसका पश्चाताप नहीं होना चाहिए कि उन्हें समझाना कठिन है. मैं अपने गुरुदेव के साथ छ वर्षों तक लडता रहा, वाद-विवाद करता रहा, फल यह मिला कि मैं अपने मार्ग का चोबा-चोबा जानता हूँ, अंगुल-अंगुल पहचानता हूँ' स्वामी के लदन छोडने के

पहले कुमारी नोबल ने उन्हें गुरुदेव कह कर सम्बोधित करना आरम्भ कर दिया. बाद मे अपनी पुस्तक 'द मास्टर एज आइ सा हिम' मे अपने इस निर्णय के सम्बन्ध मे उन्होने लिखा 'मैंने उनके उदात्त रूप को पहचान लिया और उनके स्वजनो के प्रति उनके प्रेम की दासी बन जाने की इच्छुक हो गयी ' यही कुमारी मार्गरेट नोबल आगे चल कर बहन निवेदिता के नाम से स्वामी विवेकानन्द की सबसे प्रसिद्ध शिष्या बनी

दो

ब्रिटेन मे वेदान्त-प्रचार का कार्य आरम्भ ही हुआ था कि अमरीका से बुलाहट पर बुलाहट आने लगी अभी वहाँ कुछ काम बाकी था ऐसी स्थिति मे स्वामी ने कुछ समय के लिए वहाँ हो आने का निश्चय किया. इस तरह नवम्बर, १८९५ के अन्त मे उनकी ब्रिटेन की पहली यात्रा समाप्त हुई.

अमरीका मे अपना काम समेट कर १५ अप्रैल, १८९६ को स्वामी विवेकानन्द ने इगलैंड की भूमि पर दूसरी बार पैर रखे लदन मे जब ये अपने मित्र एव शिष्य, स्टर्डी, के घर पहुँचे तो उनकी खुशी का पारावार नही रहा. कलकत्ते से स्वामी शारदानन्द वहाँ पहले से ही अतिथि के रूप मे विराजमान थे अनेक वर्षों बाद इन दोनो गुरुभाइयो का मिलन देखने योग्य था. दोनो के भावविह्वल नेत्रो मे आनन्दाश्रु छलछला गये. स्वामी शारदानन्द के पास कलकत्ते की खबरो का पिटारा था उन्होने अपने गुरुभाई को अनेक प्रकार के समाचारो (जिसमे आलम बाजार का मठ तथा गुरुभाइयो की चर्चा थी) से अवगत कराया लदन मे स्वामी विवेकानन्द के फिर आ जाने का समाचार बिजली की तरह फैल गया. फलस्वरूप अनेक स्त्री-पुरुष उनके दर्शन और उपदेश से लाभान्वित होने के लिए दल के दल आने लगे स्वामी का कार्यक्रम बहुत ही व्यस्त हो गया घर पर कुछ चुने हुए लोगो की कक्षा लेने के अतिरिक्त सार्वजनिक सभाओ मे भाषण देना तथा ज्ञानपिपासु विद्वानो के साथ भारतीय दर्शन पर बातचीत के दौरान उनकी शकाओ का समाधान करना उनका प्रधान काम था भारतीय दर्शन और आधुनिक जीवन मे उसकी उपयोगिता पर उन्होने बहुत अच्छा व्याख्यान दिया. इसके साथ ही साथ उन्होने आधुनिक जीवन मे योग का स्थान जैसे गम्भीर विषय को बड़े ही रोचक ढग से लोगो के सामने रखा. मई माह के प्रारम्भ से वे ज्ञान योग पर नियमित रूप से कक्षा लेने लगे मई के अन्त होते-होते उन्होने लदन मे पिकेडली के 'रायल इन्स्टिट्यूट आफ पेन्टर्स' के भवन मे 'धर्म की आवश्यकता' 'सार्वभौमिक धर्म' तथा 'मनुष्य का यथार्थ स्वरूप' पर तीन बड़े ही उच्च कोटि के भाषण प्रति रविवार को क्रमानुसार दिये. इनसे इनकी बड़ी ख्याति फैली. लोगो के हृदय मे बड़ा जोश उमड़ा. जन लोगो ने प्रिसेज हाल मे फिर इनके व्याख्यान का आयोजन किया. वहाँ स्वामी

ने 'भक्ति' और 'कर्म योग' के सम्बन्ध मे लोगो को बताया. इसके अतिरिक्त क्लब तथा ड्राइगरूम मे वार्तालाप और व्याख्यान के लिए लोग इन्हें बार-बार आमन्त्रित करते रहे श्रीमती एनी बेसेन्ट और श्रीमती मार्टिन के बगले पर आमन्त्रित होकर उन्होने 'भक्ति' तथा 'आत्मा सम्बन्धी हिन्दू विचार' पर क्रमश भाषण दिये. अब वे प्रतिदिन की कक्षाओ मे दर्शन सम्बन्धी विषयो के अलावा वे आर्य जाति का इतिहास भी पढाते थे जहाँ जिस स्थिति मे स्वामी जी होते, उनके 'विश्वासी गुडविन' बार बार उनके साथ होते और उनकी सुविधाओ का ध्यान रखते हुए इनके भाषणो को लिपिबद्ध करते जाते

शारदानन्द ने ६ जून को 'ब्रह्मवादिन' पत्रिका मे स्वामी विवेकानन्द के प्रचार-कार्य के सम्बन्ध मे इस प्रकार लिखा : 'स्वामी विवेकानन्द ने बड़े सुन्दर ढग से अपना कार्य आरम्भ किया. उनकी कक्षाओ मे, नियमित रूप से बहुत बडी सख्या मे लोग उपस्थित हो रहे हैं उनके व्याख्यान बहुत ही मनोरजक होते हैं पिछले दिन ऐंग्लिकन चर्च के नेता श्री कैनन हैरिस वहा आये और उनका भाषण सुन कर बडे मुग्ध हुए. इन्होने शिकागो महामेला मे ही स्वामी को देखा था और उसी समय से स्वामी से इनका स्नेह था. गत मगलवार को स्वामी ने सीसेम क्लब मे शिक्षा पर भाषण दिया. स्त्री शिक्षा के विस्तार के लिए यहाँ की महिलाओ ने इस महत्वपूर्ण क्लब की स्थापना की है इस भाषण मे उन्होने (स्वामीजी) प्राचीन भारतीय शिक्षा पद्धति के साथ आधुनिक शिक्षा पद्धति की तुलना करते हुए यह पूर्णत स्पष्ट कर दिया कि मनुष्य को मनुष्य बनाना ही शिक्षा का उद्देश्य होना चाहिए न कि अनेक प्रकार के विषयो को मस्तिष्क मे ठूम देना.'

श्रीमती मार्टिन के बगले पर 'आत्मा सम्बन्धी हिन्दू विचार' पर जो भाषण स्वामी ने दिया था, उस पर 'द लदन अमेरीकन' नामक पत्रिका मे एक बहुत सुन्दर आलोचनात्मक निबन्ध प्रकाशित हुआ था अपने इस मान-सम्मान, प्रशसा और प्रशस्ति से बोझिल वातावरण मे स्वामी ने बार बार ही अपने गुरुदेव श्री रामकृष्ण को याद किया और अनेक अवसरो पर बडी विनम्रता से कहा कि वे जो कुछ हैं या जो कुछ कर रहे हैं सब अपने गुरुदेव के ही कारण. अपने गुरु के गुणो की चर्चा करते-करते वह अक्सर भाव विह्वल हो जाया करते थे.

इस समय स्वामी विवेकानन्द का जीवन अत्यन्त ही व्यस्त था लगता था जैसे वे अपने जीवन के कार्यो को शीघ्रातिशीघ्र समाप्त करना चाहते थे लगता था जैसे उन्हे इस जीवन पथ पर कही भी विश्राम नही करना है. इस बार उन्होने आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय के प्रसिद्ध सस्कृतज्ञ प्रोफेसर मैक्समूलर का भी दर्शन किया. प्राच्य दर्शन के प्रेमी इस सज्जन के विषय मे स्वामी ने बहुत पहले ही सुन रखा था और तबसे इनके हृदय मे उनसे मिलने की इच्छा जग पड़ी थी. फिर बाद मे 'नाइटिन्थ सेंचुरी' नामक पत्रिका में स्वामी ने श्री रामकृष्ण के सम्बन्ध मे एक प्रशसात्मक

लेख पढा. यह लेख मैक्समूलर का ही लिखा हुआ था. लेख पढने के बाद स्वामी उनसे मिलने की उत्कण्ठा को रोक नही सके ठीक इसी समय मैक्समूलर ने स्वामी को अपने निवास स्थान पर आमन्त्रित किया. विभिन्न प्रकार के हरे-भरे पेड़-पौधो, एव लता-वितानो से घिरा छोटा सा सुन्दर आवास. सत्तर वर्ष के सुख-दुख की अनुभूतियो को अपनी स्मृति के दामन मे छिपाये मैक्समूलर एक सच्चे दार्शनिक लग रहे थे सर पर रजत केश राशि, भोला-भाला मुखमण्डल. किन्तु आखें ? आखें तो दर्पण थी इनमे जीवन की चिरसाधना एव गहरी आध्यात्मिकता की झलक दिखाई पडती थी

इन्होने स्वामी का स्वागत बडे प्यार से किया बातचीत के सिलसिले मे भारतवर्ष के सम्बन्ध मे मैक्समूलर के असीम ज्ञान का परिचय पाकर स्वामी आश्चर्यचकित रह गये भारतवर्ष के प्रति वृद्ध प्रोफेसर के हृदय के अनुराग को देख कर स्वामी मुग्ध हो गये. स्वामित्व के मद से गर्वित देश के नागरिक के हृदय मे भारत के लिए इतना असीम प्यार ? ऐसे व्यक्ति विरले ही होते है मैक्समूलर श्री रामकृष्ण के सम्बन्ध मे स्वामी से बातें करते रहे उन्होने कहा 'श्री रामकृष्ण के सम्पर्क मे आकर केशवचन्द्र के एकाएक धर्ममत के परिवर्तन से ही पहले पहल उनकी ओर मेरा ध्यान गया उस समय से ही उस महात्मा की जीवनी या उपदेश के सम्बन्ध मे जो कुछ मिला, उसे मैं श्रद्धा भक्ति के साथ पढता आया हूँ.' प्रोफेसर ने और भी कहा 'यदि आप मेरे लिए आवश्यक साधन जुटा दें तो मैं श्री रामकृष्ण की जीवनी लिखने के लिए तैयार हूँ' स्वामी उनके विचार सुन कर बडे खुश हुए उन्होने स्वामी शारदानन्द को यह काम सौंपा कि वे भारत से श्री रामकृष्ण से सम्बन्धित सभी प्रकार की आवश्यक वस्तुए इकट्ठा कर प्रोफेसर महोदय को दें. फलस्वरूप कुछ दिनो के बाद मैक्समूलर ने 'श्री रामकृष्ण की जीवनी और उपदेश' नामक प्रसिद्ध पुस्तक की रचना की. इस पुस्तक के द्वारा स्वामी के भारतीय दर्शन के प्रचार कार्य मे काफी सहायता मिली स्वामी ने प्रोफेसर को बताया कि अभी भी श्री रामकृष्ण भारत मे हजारो, लाखो व्यक्तियो द्वारा पूजे जाते हैं प्रोफेसर ने इसे सुन कर कहा 'यदि इस प्रकार के महापुरुष की पूजा न होगी तो फिर किसकी पूजा होगी ?' उन्होने स्वामी से फिर पूछा "ससार को उनका परिचय प्राप्त करवाने के लिए आप लोग क्या कर रहे हैं ?' स्वामी ने उन्हें अपने वेदान्त के प्रचार-कार्य के विषय मे समझाया प्रोफेसर ने स्वामी के इस प्रचार कार्य की खूब सराहना की बात-बात मे स्वामी ने उनसे पूछा कि 'आप भारत कब आयेंगे ? जिन्होने हमारे पूर्वजो के चिंतन की श्रद्धा से और सचाई से चर्चा की है, उनके स्वागत के लिए वहाँ का प्रत्येक व्यक्ति तैयार होगा, इसमे सदेह नही ' स्वामी की इस बात को सुन कर वृद्ध मनीषी का मुखमण्डल दमक उठा. नेत्रों मे आसू छलछला उठे. नकारात्मक रूप से सर हिला कर धीरे से उन्होने कहा : 'फिर मैं वहा से लौटूंगा नही. मेरे शरीर

का अतिम सस्कार आप को वही करना पड़ेगा ' ·· उस दिन प्रोफेसर महोदय उनसे वातचीत करते हुए उन्हें आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय घुमाने के लिए ले गये रात मे जब स्वामी स्टेशन पर रेलगाडी की प्रतीक्षा कर रहे थे, उस समय घोर आंधी-पानी मे शिष्यो ने प्रोफेसर के साथ चाय पी और फिर उन्ही के साथ नगर मे आयोजित एक औद्योगिक प्रदर्शनी देखने चल पडे विद्युत के झिलमिलाते प्रकाश मे स्वामी ने जर्मनी के वैज्ञानिक अभ्युत्थान के अनेक रूप देखे. दूसरे दिन प्रोफेसर ने उन लोगो को कील नगर के तथा नगर के वाहर आस-पास के प्रसिद्ध स्थानो को दिखाया डायसन की इच्छा थी कि स्वामी कुछ दिन उनके साथ रहें जिससे दर्शन, अध्यात्म आदि पर पूरी तरह विचार-विनिमय हो सके किन्तु इस यात्रा मे करीव डेढ माह का समय निकल चुका था और स्वामी लदन जाकर अपने प्रचार कार्य मे शीघ्र जुट जाना चाहते थे स्वामी की असमर्थता को प्रोफेसर समझ गये अत. उन्होने स्वय लदन जाकर स्वामी के सम्पर्क से लाभान्वित होने की योजना वनायी हैम्बर्ग से स्वामी की यात्रा मे शामिल होने का वचन देकर डायसन ने स्वामी तथा उनके शिष्यो को विदा किया

जून माह के अत मे स्वामी ने शारदानन्द को अमरीका भेज दिया और लदन के कार्य मे सहायता पहुँचाने के लिए भारत से अपने दूसरे गुरुभाई अभेदानन्द को वुला लिया आगे चलकर अभेदानन्द को लदन मे वेदान्त प्रचार का कार्यभार ग्रहण करना होगा यह विचार कर स्वामी इन्हें विविध प्रकार से प्रशिक्षित करने लगे. कुछ ही दिनो मे अभेदानन्द भी वेदान्त पर कक्षा लेने लगे तथा योग साधना मे भी लोगो को प्रशिक्षित करने लगे

यूरोपीय देशो की यात्रा के वाद लदन मे स्वामी विवेकानन्द ने 'ज्ञानयोग' पर कई सार्वजनिक भाषण दिये दिनो दिन जनता की वढती सख्या देखकर उनके शिष्य स्टर्डी ने विक्टोरिया स्ट्रीट पर सभा करने के लिए एक वडा सा कमरा ठीक कर दिया इसी के पास स्वामी और उनके गुरुभाई अभेदानन्द के रहने के लिए सेवियर दम्पत्ति ने एक छोटा सा फ्लैट किराये पर ले लिया. जर्मनी से प्रोफेसर डायसन स्वामी के साथ ही लदन आये थे. ये प्रतिदिन स्वामी से मिलते रहे और वेदान्त के सिद्धान्त पर वातचीत करते रहे. स्वामी के सम्पर्क से उन्होने वेदान्त दर्शन के सूक्ष्म तत्वो को वडी आसानी से ग्रहण किया. डायसन ने स्वामी से कहा कि मानव-मस्तिष्क ने सत्य की खोज मे जिन वस्तुओ का आविष्कार किया है, उनमे उपनिषद्, वेदान्त दर्शन और शाकर भाष्य सर्वश्रेष्ठ हैं डायसन को भारतीय दर्शन शास्त्र मे इतनी रुचि थी कि लगता था वेदान्त की चर्चा ही इनके जीवन का एकमात्र ध्येय था

अक्टूबर और नवम्बर महीने मे स्वामी ने लदन की सार्वजनिक सभाओ मे अनेक उच्च कोटि के भाषण दिये व्याख्यान-माला का सबसे पहला विषय था 'माया'. 'माया' के सिद्धान्तो के विभिन्न पहलुओ का विवेचन इन्होने वडी ही कुशलता से किया.

इसके बाद माया और भ्रम, माया और ईश्वर-धारणा का क्रम विकास, माया एवं मुक्ति, बहुत्व मे एकत्व, सभी वस्तुओं मे ब्रह्म दर्शन, अपरोक्षानुभूति, आत्मा की मुक्ति तथा व्यावहारिक वेदान्त पर इन्होने व्याख्यान दिये. स्वामी की यह एक बडी विशेषता थी कि विषय चाहे कितना भी गहन या सूक्ष्म क्यो न हो, वे उसे जनता के सामने इतने सरल रूप मे रखते थे कि सर्वसाधारण भी उसे अच्छी तरह समझ सकते थे. लोगो के जीवन की कार्य प्रणाली से, आस पास के प्राकृतिक दृश्यो से वे अनेक दृष्टान्त ढूंढ लेते थे. ज्ञानयोग के इन भाषणो से उन्हें आशातीत सफलता मिली. 'व्यावहारिक जीवन मे वेदान्त का प्रयोग' शीर्षक वाले व्याख्यान मे उन्होने सर्वप्रथम वेदान्त के अद्वैतवाद के सिद्धान्त का विस्तृत विवेचन किया. जगत मे वही एक 'असीम सत्ता' है जिसे हम 'सत्-चित्-आनन्द कहते हैं यही सत्य है, यही ज्ञान है और यही परमानन्द है यही मानव की आतरिक प्रकृति है, यही मनुष्य को आत्मा है, यही मनुष्य का सार है यह पूर्णरूपेण मुक्त है, दिव्य है. ससार की चाहे जितनी भी वस्तुएँ हैं, उनमे बस इसी आत्मा की अभिव्यक्ति है. अद्वैतवाद की व्याख्या के बाद जीवन मे उसके प्रयोग की चर्चा छिडी. स्वामी ने इस बात को बार बार दुहराया कि अधे की तरह जड विज्ञान का पुजारी पश्चिमी जगत् यदि वेदान्त दर्शन का अनुगामी नही हुआ तो भविष्य मे एक न एक दिन वह अपने ही विज्ञान के चमत्कारो के द्वारा विनष्ट हो जायेगा. वे यह स्पष्ट देख रहे थे कि उस समय पश्चिमी जगत अदम्य आकाक्षा और अतृप्ति की ज्वालामुखी के ऊपर खड़ा हुआ था.

अक्टूबर और नवम्बर महीनो मे स्वामी को अनेक क्लबो तथा विद्वानो की ओर से व्याख्यान देने के निमत्रण मिले. स्वामी के पास अब बहुत ही कम समय था. अत. कुछ निमंत्रण तो उन्होने स्वीकृत कर लिये और कुछ अस्वीकृत करते हुए क्षमा माग ली स्वामी अब शीघ्र भारत लौटना चाहते थे. फिर भी उनकी बड़ी लालसा थी कि भारत लौटने के पहले हिन्दू दर्शन पर उनकी एक पुस्तक प्रकाशित हो जाये परन्तु उन्हे दो पल भी बैठ कर लिखने का अवकाश नही मिल रहा था. आखिर 'राजयोग' पर दिये गये सार्वजनिक भाषणो तथा कक्षा के वक्तव्यो का एक सुन्दर सकलन लदन मे अक्तूबर माह मे प्रकाशित हुआ और हाथो हाथ बिक गया नवम्बर मे जब इसका दूसरा संस्करण प्रकाशित होने लगा तो कई सौ व्यक्तियो ने पहले से ही इसकी माँग कर रखी थी.

स्वामी अभेदानन्द अब वेदान्त प्रचार कार्य मे काफी योग्यता दिखाने लगे थे. वेदान्त कक्षा के छात्रो द्वारा वे सम्मान और भक्ति के साथ ग्रहण किये गये. एक बार ब्लूम्सबरी स्क्वायर मे स्वामी विवेकानन्द के भाषण का आयोजन हुआ. परन्तु किसी कारणवश स्वामी वहा नही जा सके. अत. उनके स्थान पर अभेदानन्द ने वेदान्त दर्शन के विषय मे व्याख्यान दिया. बडी सख्या मे जनता उपस्थित थी. सभी लोगो ने शान्तभाव से भाषण सुना और वक्ता की प्रशसा की. स्वामी अभेदा-

नन्द की बढती हुई लोकप्रियता से स्वामी को बडी प्रसन्नता और शान्ति मिली. अब उन्हे पूर्ण विश्वास हो गया कि उनकी अनुपस्थिति मे अभेदानन्द वेदान्त प्रचार का कार्य भार अच्छी तरह संभाल लेंगे इसी तरह अमरीका मे वेदान्त प्रचार का कार्य भार उन्होने स्वामी शारदानन्द को सौप रखा था. न्यूयार्क पहुच कर स्वामी शारदानन्द अपने काम मे कमर कस कर जुट गये थे. अमरीकी जनता उन्हें स्वामी विवेकानन्द के समान ही मान सम्मान दे रही थी.

अमरीका मे जब यह समाचार श्रीमती ओलीबुल को मिला कि स्वामी शीघ्र ही लंदन से भारत लौटने वाले हैं तब उन्होने स्वामी को सूचित किया कि वे भारतीय जन कल्याण कार्य के लिए आवश्यकतानुसार धन देने को तैयार है. अमरीका मे श्रीमती बुल के साथ स्वामी की 'रामकृष्ण सन्यासी संघ' के लिए एक मठ बनवाने के विषय मे बातचीत हुई थी. श्रीमती बुल ने अपने पत्र मे इस मठ के निर्माण की भी चर्चा की थी. स्वामी श्रीमती बुल के इस पत्र को पाकर बडे खुश हुए. कलकत्ता, मद्रास और हिमालय की गोद मे श्री रामकृष्ण के नाम पर सन्यासियो के लिए मठ बनवाने की इच्छा बहुत दिनो से उनके हृदय मे जड पकड चुकी थी. फिर भी इतनी हडबडी मे और बिना किसी पूर्वकल्पना के वे इस काम को आरम्भ करना नही चाहते थे. किसी भी कार्य को धीर भाव से प्रारम्भ करना ही उनकी प्रकृति के पक्ष मे था. अत. उन्होने श्रीमती बुल के पत्र के उत्तर मे लिखा कि भारत जाकर वे इसके विषय मे लिखेंगे कि कब उन्हे धन की आवश्यकता है. इस समय अपने साथ उन्हें धन की जरूरत नही है.

स्वामी ने दिसम्बर के अत मे भारत लौटने का निश्चय किया. सेवियर दम्पति ने भारत लौटने के लिए टिकट खरीदे. स्वामी ने इटली की यात्रा करते हुए भारत लौटने का विचार किया था इसीलिए नेपल्स से समुद्री जहाज मे स्थान सुरक्षित करवाया गया श्री और श्रीमती सेवियर ने भारत मे सेवा कार्य के लिए अपना जीवन दान किया था इसलिए ये लोग भी स्वामी के साथ ही भारत लौटने वाले थे.

लदन मे जब लोगो को स्वामी के भारत प्रस्थान का समाचार मिला तो वे लोग बड़े दुखी हुए उनके मित्रो और शिष्यो ने उन्हे विदाई का अभिनन्दन देने के लिए स्टर्डी महोदय की अध्यक्षता मे पिकेडली के 'रायल सोसायटी ऑफ पेन्टर्स' के वृहत् हॉल मे एक सभा का आयोजन किया. उस दिन १३ दिसम्बर का रविवार था. नगर की दुकानें बद थीं. व्यवसाय और रोजगार सभी थम गये थे. सवारियो की सरसराहट और हडहडाहट से सडकें सूनी थीं. चारो ओर शरदऋतु का साम्राज्य. लदन कोहरे के दामन मे लिपटा हुआ अति वीरान दीख रहा था. सड़को और गलियो पर कुछ नागरिक अपनी रविवारीय पोशाक मे शान्तभाव से चर्च की ओर जा रहे थे. बस इन्ही से लगता है कि नगर मे कुछ प्राण शेष है. इसी दिन अपराह्न मे स्वामी के शिष्य, मित्र और शुभेच्छु लोग उन्हे विदा का अभिनन्दन देने वाले थे. कलाकारो का

वह वृहत् कक्ष स्वामी के लिए लतापुष्पो से सजाया गया था. भाषण मंच भी विशेष रूप से सुसज्जित था. वहा वाद्यसगीत वादको तथा गायको की पूरी मडली सभी तरह के वाद्य यन्त्रो के साथ विद्यमान थी स्वामी का आज इगलैंड की भूमि पर अतिम व्याख्यान होने वाला था. कक्ष सैकडो नर-नारियो से खचाखच भरा हुआ था. स्वामी के मच पर आने के बाद विशाल जनसमूह ने नीरव भाषा मे गम्भीर भाव से अपना विषाद व्यक्त कर स्वामी के विदाई समारोह मे भाग लिया. कई व्यक्ति स्वामी से कुछ बातें करना चाहते थे परन्तु भावाधिक्य के कारण उनके कठ रुंधे हुए थे असख्य अश्रुपूर्ण नयन और विह्वल हृदय, मूक भाव से स्वामी को विदा दे रहे थे. मृदु हृदय स्वामी विवेकानन्द भी इस दृश्य को देख कर द्रवित हो गये कारुणिक भाव से बडी ही मधुर भाषा मे उन्होने बृटिश जनता को धन्यवाद देते हुए अपने और उनके बीच के शाश्वत प्रेम सम्बन्ध की चर्चा की. अत मे उनके होठो से सहसा यह बात निकल पडी—'सभव है कल्याण समझ कर मैं शरीर त्याग दू, इसे कटे वस्त्र की तरह त्याग दू परन्तु जब तक ससार का प्रत्येक व्यक्ति उच्चतम सत्य की उपलब्धि न कर लेगा तब तक मैं मानवता के कल्याण की कामना से धर्म-प्रचार बद नही करूंगा.' हां, सचमुच मृत्योपरान्त भी उनका धर्म प्रचार कहां बन्द हुआ ? अमरीका, इगलैंड या भारत के अपने भारतीय शिष्यो के हृदय मे उन्होने धर्म-प्रचार और मानव सेवा के जो बीज उगाये थे वे समय के अनुसार फले फूले. मानव जाति का कल्याण करते हुए उनके शिष्यो ने पुनः नये बीजो का निर्माण किया, नये रक्त मे मानव सेवा के उत्साह भरे. यह क्रम आज तक जारी है. आज तक अपने अनुयायियो के द्वारा स्वामी विवेकानन्द का धर्म प्रचार चल ही तो रहा है.

इसमे कोई सदेह नही कि ब्रिटेन मे स्वामी विवेकानन्द के भाषणो का काफी प्रभाव पडा. वहा से प्रसिद्ध राजनीतिक नेता श्री विपिन चन्द्र पाल ने १५ फरवरी सन् १८९८ के इडियन मिरर मे लदन से लिखा था—'भारत मे कुछ लोग सोचते हैं कि इगलैंड मे स्वामी विवेकानन्द के भाषणों का कोई विशेष फल नही हुआ और उनके मित्र तथा प्रशसकों ने उनके काम को अतिरजित करके व्यक्त किया है परन्तु मैं यहां आकर उनका असाधारण प्रभाव देख रहा हूं इगलैंड के अनेक स्थानो मे मैंने अनेक व्यक्तियो से वातचीत की है जो वास्तव मे विवेकानन्द के प्रति गहरी श्रद्धा भक्ति रखते हैं. यद्यपि मैं उनके समाज का नही हू और यद्यपि यह भी सत्य है कि उनके विचारो से मेरा मतभेद है, फिर भी मुझे यह अवश्य कहना चाहिए कि विवेकानन्द ने यहा अनेक लोगो की आंखें खोल दी हैं और उनके हृदय को विशाल बनाया है. उनके उपदेशों से, यहा के अनेक लोगों को यह विश्वास हो गया है कि प्राचीन हिन्दू शास्त्रो मे अनेक आध्यात्मिक सत्य छिपे हुए हैं उन्होने सिर्फ यहां के लोगों के हृदय मे इन भावों को ही नही जगाया है, बल्कि भारत और इगलैंड के बीच सुनहरे सबध स्थापित करने मे सफल हुए हैं'

स्वामी के लदन छोड़ने की सारी तैयारी हो चुकी थी. वे अपने मद्रास के शिष्यो के पास इगलैंड, अमरीका के कार्यों के सम्बन्ध मे वरावर लिखते रहते थे लदन से चलने के पूर्व भी उन्होने अपना भावी कार्यक्रम अपने शिष्य आलासिगा के पास लिखा :

'मैं लदन से इटली के लिए १६ दिसम्बर को रवाना होऊँगा और नेपल्स से 'नार्थ जर्मन लॉयड एस एस प्रिन्स रीजेंट लियोपोल्ड' नामक जहाज से प्रस्थान करूँगा ·· मेरे साथ तीन अग्रेज मित्र हैं—कैप्टन, श्रीमती सेवियर तथा गुडविन. श्री सेवियर और उनकी पत्नी अल्मोडा के पास हिमालय मे एक आश्रम वनाने को सोच रहे हैं, जिसे मैं अपना हिमालय केन्द्र वनाना चाहता हूँ और वही पाश्चात्य शिष्यो को ब्रह्मचारी सन्यासी के रूप मे रखूँगा. गुडविन अविवाहित नवयुवक है वह मेरे साथ भ्रमण करेगा और मेरे ही साथ रहेगा. वह सन्यासी जैसा है

'मेरी तीव्र अभिलाषा है कि श्री रामकृष्ण के जन्मोत्सव से पहले मैं कलकत्ता पहुँच जाऊँ.·· मेरी वर्तमान कार्य योजना यह है कि युवक प्रचारको के प्रशिक्षण के लिए कलकत्ता और मद्रास मे दो केन्द्र स्थापित करूँ. कलकत्ते के केन्द्र के लिए मेरे पास पर्याप्त धन है. कलकत्ता श्री रामकृष्ण के कर्मजीवन का क्षेत्र रह चुका है, इसलिए वह मेरा ध्यान पहले आकर्षित करता है. मैं आशा करता हू कि मद्रास के केन्द्र के लिए मुझे धन मिल जायेगा.

'हम काम इन तीन केन्द्रो से आरभ करेंगे. फिर इसके वाद बम्बई और इलाहावाद मे भी केन्द्र वनायेंगे. इन तीन स्थानो से यदि भगवान की कृपा हुई तो, हम भारत भर मे ही नही, परन्तु ससार के प्रत्येक देश मे प्रचारको का दल भेजेंगे. ·· ···तुम्हे यह नही भूलना चाहिए कि मेरे कार्य अतर्राष्ट्रीय हैं, केवल भारतीय नही.'

१६ दिसम्बर १८९६ को स्वामी ने सेवियर दम्पति के साथ लंदन से विदा लिया. श्री गुडविन साउथ हैम्पटन से और स्वामी नेपल्स से जहाज मे चढने वाले थे.

करीव चार वर्षों तक अमरीका और इगलैंड मे अविराम कार्य करने के वाद स्वामी अपनी मातृभूमि की ओर जा रहे थे. लगता था जैसे कधो पर से अचानक कार्य का वोझ हट गया है और वे विल्कुल निश्चिन्त हो गये हैं स्वामी शारदानन्द और स्वामी अभेदानन्द के द्वारा क्रमश: अमरीका और इंगलैंड मे वेदात प्रचार का कार्य सुचारू रूप से चलता रहेगा, इस पर उन्हें पूर्ण विश्वास था. श्री और श्रीमती सेवियर से वे हर्ष मिश्रित स्वर मे वोले—'अव मेरे मस्तिष्क मे वस एक ही विचार है, और वह है भारत का. मैं अपने सामने भारत को देख रहा हूँ.'

लदन से विदा के समय एक अग्रेज मित्र ने उनसे पूछा था : 'स्वामी, चार वर्षों तक इस भव्य शक्तिशाली और विलासपूर्ण पश्चिम की भूमि पर रहने के बाद

आप को अपनी मातृभूमि कैसी लगेगी ?' स्वामी तत्क्षण बोल उठे 'यहाँ आने के पूर्व मैं भारत से प्यार करता था इस समय भारत का एक-एक धूलि कण मेरे लिए पवित्र है, उसकी वायु पावन है, अब वह पुण्यभूमि है, एक तीर्थस्थान है.'

फ्रास की धरती और आल्प्स पर्वतमाला को पार करते हुए स्वामी की ट्रेन मिलान नगर पहुँची. यहाँ वे अपने शिष्यो के साथ एक होटल मे ठहरे. यहाँ लियानार्दो द विंची का 'अतिम भोज' नामक चित्र देख कर बडे प्रभावित हुए इसके बाद उन्होने पीसा नगर की झुकी हुई मीनार तथा कई इतिहास प्रसिद्ध स्थानो को देखा. पीसा के बाद ये लोग फिरेंजे गये. यहाँ की चित्रशाला तथा दर्शनीय स्थानो ने स्वामी को मुग्ध कर लिया.

एक उद्यान मे घूमते हुए सयोगवश शिकागो के हेल दम्पति से भेंट हो गयी. इनसे स्वामी का बडा लगाव था. इन लोगो ने स्वामी को पुत्रवत् स्नेह दिया था. अमरीका के किसी भी कोने से वे जब भी शिकागो आते थे तो इन्ही लोगो के यहाँ ठहरते थे. फिरेंजे मे इस अप्रत्याशित मिलन से स्वामी बेहद प्रसन्न हुए. ये पति-पत्नी इटली भ्रमण के लिए आये हुए थे और इन्हे स्वामी की उपस्थिति की कोई भी जानकारी नही थी स्वामी ने इन लोगो के साथ काफी समय बिताया. फिरेंजे के बाद वे सेवियर दम्पति के साथ रोम पहुँचे यहाँ ये लोग एक सप्ताह ठहरे और ऐतिहासिक दर्शनीय स्थानो को देखा सुना इन दिनो रोम मे चारो ओर खूब चहल पहल थी क्रिसमस उत्सव की तैयारी मे सम्पूर्ण नगर एक मेले के समान सुसज्जित था. सडको और दूकानो पर लोगो की अपार भीड थी. गिरजाघर विशेष रूप से सजाये गये थे. स्वामी छ सात दिनो तक यहाँ खूब घूमे और खूब प्रसन्न रहे

अत मे ३० दिसम्बर को इन लोगो ने नेपल्स से वह जहाज पकडा जो साउथहैम्पटन से चला था और जिस पर गुडविन पहले से ही सवार थे जहाज पर गुडविन को देख स्वामी को बडा हर्ष हुआ कुछ दिनो मे यह जहाज अदन पहुँचा. वहा इसे कुछ घटे रुकना था. कई यात्री जहाज से उतर कर अदन घूमने गये. स्वामी भी अपने हमजोलियो के साथ उतरे और नगर देखने गये ऊँचे-नीचे पहाडी मार्ग के दोनो ओर छोटी दूकानें बडी भली मालूम पड रही थी

स्वामी अपने शिष्यो के साथ बातें करते हुए टहल रहे थे कि अचानक दूर पान की दूकान पर बैठे एक व्यक्ति पर उनकी नजर टिक गयी. भारतीय दिखने वाला वह व्यक्ति हुक्का पी रहा था स्वामी अपने शिष्यो को पीछे छोड शीघ्रता से उसकी ओर बढ़ गये वहाँ पहुँचते ही बाल सुलभ सरलता से उन्होने कहा, कृपा करके आप अपना हुक्का मुझे दीजिए. वह अपरिचित व्यक्ति अपने सम्मुख गेरुआ वस्त्र पहने एक भारतीय सन्यासी को इस तरह अपने जूठे हुक्के की मांग करते हुए देख कर कुछ विस्मित हुआ और फिर हुक्का उनके हाथ मे थमा दिया. स्वामी ने आनद के साथ कई फूंकें लगायी श्री सेवियर यह दृश्य बडे आश्चर्य के साथ देख रहे

थे. जब ये लोग स्वामी के पास पहुचे तो श्री सेवियर ने कहा : 'अब हम लोग समझे. यही वह चीज है जिसके लिए आप हम लोगो को छोड अकस्मात दौड पड़े.' स्वामी ने मुस्कराते हुए हुक्का वापस दिया और शिष्यो के साथ चल पड़े. जब उस व्यक्ति को मालूम हुआ कि यह सन्यासी कौन है तब दौड़ता हुआ आकर स्वामी के चरणों मे गिर पडा. अदन की इस घटना ने सेवियर दम्पति तथा गुडविन के हृदय पर बडा प्रभाव डाला. कुछ घटे अदन की सडको पर घूमने के बाद ये लोग जहाज पर वापस चले आये. जहाज का भोपू बजने लगा. यात्रियो के आने-जाने का शोर-गुल धीरे-धीरे शात हो गया. जहाज के गतिमान होने के साथ ही चचल लहरो की छप्-छप् ध्वनि सुनाई पडने लगी गम्भीर सागर की छाती को चीरता हुआ जहाज बड़ी शीघ्रता से आगे बढ़ रहा था. १५ जनवरी को इसे श्रीलका पहुँचना था.

दिन बीतते देर नही लगी. १५ जनवरी १८६७ की सुबह, स्वामी जहाज के छज्जे पर खडे, प्रतिपल समीप होती हुई श्रीलका की तट भूमि को निहार रहे हैं यह लका, जान पड़ता है, जैसे भारत का एक अग है. यहाँ के लोग भारत के से हैं यहां की धरती ! आह ! इस समय इसकी शोभा कितनी मनमोहक है. पीत बालुका-मय सागर तट के पीछे हवा मे झूमते हुए नारियल के वृक्षो की कतारें. सुनहली चादर मे लिपटी, ललाट पर लाल सूर्य की बिंदी लगाये, ऊषा सुदरी भी क्षितिज के झरोखे से धरती का सौंदर्य निहारने आ गयी है तट समीप आ गया है जहाज के भोपू की गम्भीर आवाज मे सागर की उत्ताल तरगो का कल्लोल मानो डूबने लगा है स्वामी की खुशी का पारावार नही जहाज के छज्जे पर से ही उन्होने स्वागतार्थ आये हुए गुरुभाइयो और कुछ मद्रासी शिष्यो को पहचान लिया. इनके साथ ही वहाँ न जाने कितने लोगो की भीड थी स्वामी के जहाज के बाहर आते ही कोलम्बो का वह समुद्र तट तालियो की गडगड़ाहट से गूंज उठा. उनके भक्तो और शिष्यो ने पुष्पहारो से स्वामी का स्वागत किया स्वामी का निवास सिनेमन गार्डेन के डाक बँगले मे ठीक किया गया था फूलमालाओ से सुसज्जित घोडागाडी पर स्वामी को बैठाया गया सडकें विशेष रूप से सजायी गयी थी जगह-जगह पर फूल पत्रो से मडित स्वागत द्वार बने हुए थे स्वामी की मद गति से चलती हुई गाडी के साथ-साथ भारतीय वाद्य सगीत मडली भी चल रही थी गाड़ी के दोनो ओर अपार जन समूह. स्वामी की गाडी धीरे-धीरे चलती हुई सिनेमन गार्डेन के सामने एक विराट मडप के नीचे आकर रुक गयी स्वामी के गाडी से उतरने के साथ ही सैकडो व्यक्ति पदधूलि लेने लगे.

सध्याकाल स्वामी मडप पर आये कोलम्बो के हिन्दू जन समुदाय की ओर से उन्हें अभिनदन पत्र समर्पित किया गया अभिनंदन समाप्त होने पर, स्वामी अभिनदन पत्र का उत्तर देने के लिए खड़े हुए स्वामी के खड़े होते ही उत्साहपूर्ण जनता की करतल ध्वनि से कान बहरे होने लगे. स्वामी ने अभिनदन का उत्तर देते

हुए कहा : 'मैं कोई श्रेष्ठ राजनीतिज्ञ या कोई महान सैनिक या करोडपति नही हूँ बल्कि भिक्षाजीवी सन्यासी हूँ आप लोगो ने जो मेरा यह राजसी स्वागत किया है इससे यह प्रमाणित होता है कि हिन्दुओ मे आध्यात्मिकता अभी पूर्ण रूप से वर्तमान है. तभी तो एक निर्धन सन्यासी का इतना भव्य स्वागत हुआ अपने भाषण मे स्वामी ने इस बात पर जोर दिया कि आध्यात्मिकता हिन्दुओ की जातीय विशेषता है इसे कभी भी नष्ट नही होने देना चाहिए हिन्दुओ को नाना प्रकार की प्रतिकूल स्थिति मे भी धर्म के आदर्श पर डटे रहना चाहिए.

दूसरे दिन १६ जनवरी को उन्होने फ्लोरल हाल मे पुण्य भूमि भारतवर्ष पर एक भाषण दिया. शाम को वे स्थानीय शिव मदिर गये. मार्ग मे अनेकानेक व्यक्ति उन्हे पुष्पमालाओ तथा फलो के उपहार देते रहे. मार्ग के दोनो ओर के महलो से नारिया पुष्प और गुलाबजल की वृष्टि कर रही थी. मदिर के द्वार पर सैकडो व्यक्तियो ने जय महादेव के नारे लगा कर उनकी अभ्यर्थना की. मदिर मे शिव-पूजन के बाद उन्होने वहाँ के पुरोहितो से बातचीत की फिर निवास स्थान पर लौटने के बाद करीब दो बजे रात तक कुछ लोगो के साथ धर्म चर्चा करते रहे. अगले दिन कोलम्बो के पब्लिक हाल मे वेदात दर्शन पर इनका व्याख्यान हुआ. भाषण का विषय मुख्यत: वेदो मे चर्चित सार्वभौमिक धर्म पर आधारित था. श्रोता समूह मे एक मडली उन भारतीय नवयुवको की भी थी जो पूर्णरूपेण अंग्रेजी लिबास मे थे तथा अपने आचार-व्यवहार से यह प्रदर्शित कर रहे थे कि अग्रेजी रंग मे डूबे वे और लोगो से हर बात मे विशिष्ट हैं उनकी पोशाक और भावभंगी मे अग्रेजो का अनुकरण देख कर स्वामी का मन दुखी हो उठा भाषण के दौरान उन्होने कहा कि दूसरो के मूढ अनुकरण की प्रवृत्ति बुरी होती है अपनी जातीयता, अपनी सस्कृति को बनाये रखना ही हर राष्ट्र का ध्येय होना चाहिए दूसरे राष्ट्र या दूसरे देशो के गुणो को अपना कर अपनी रीति से उसे प्रयोग मे लाना अधिक श्रेयस्कर होता है.

१६ जनवरी को स्वामी विशेष ट्रेन द्वारा यहाँ से कैंडी. फिर वहाँ से बौद्ध-कालीन प्राचीन नगर अनुराधापुरम् गये दोनो जगहो मे उनका भव्य स्वागत हुआ. सैकडो बौद्ध तथा हिन्दू उनके दर्शन के लिए आये हुए थे लोगो के अभिनदन पत्र स्वीकार करने के बाद उपासना विषय पर उन्होने एक व्याख्यान भी दिया. यहा से स्वामी की गाडी जाफना की ओर चल पडी सध्यावेला मे जब ये लोग जाफना पहुँचे तो स्वागत मे सुसज्जित राजपथ से इनकी सवारी धीरे-धीरे हिन्दू कालेज के प्रागण मे जाकर रुकी. यहा इनके स्वागत और भाषण के लिए बहुत ही सुदर मडप बनाया गया था. जनता के उत्साह की सीमा न थी. उनके स्वागत का सक्षिप्त उत्तर देने के बाद स्वामी ने वेदात के सम्बध मे भाषण दिया भाषण के बाद भी हजारो लोग स्वामी के दर्शनार्थ तथा चरण रज के लिए आते रहे.

जाफना मे स्वामी की लका यात्रा समाप्त हुई. यहा से एक छोटे जहाज पर वे भारत की ओर चल पडे शीघ्रातिशीघ्र भारत पहुँचने की कामना उनके हृदय को व्यग्र वना रही थी. ऐसा जान पडता था जैसे दीन-दुखी भारतमाता, वर्षों से विछुडे हुए अपने वेटे को पुकार रही हो, और वेटा उस पुकार को सुन कर उससे मिलने के लिए, उसकी सेवा के लिए अधीर हो उठा हो !

१०
'उत्तिष्ठत जाग्रत'

स्वामी विवेकानन्द के स्वदेश लौटने का समाचार भारत मे शीघ्र ही फैल गया. भारत की जनता उनके स्वागत की तैयारियो मे व्यस्त हो गयी. मद्रास, वगाल तथा और कई मुख्य प्रदेशो के समाचार पत्रो मे उनके व्यक्तित्व तथा कार्यों पर लेख छपने लगे. मद्रास तथा वगाल के मुख्य नगरो मे स्वागत समितिया बनायी गयी. स्वामी के दो गुरु भाई इनके स्वागतार्थ कोलम्बो गये हुए थे तथा कुछ मद्रास रुक कर स्वागत समारोह का आयोजन कर रहे थे. किन्तु स्वामी इन सभी आयोजनो से अनभिज्ञ भारत के नूतन भविष्य निर्माण की कल्पना मे लीन थे

विदेश मे चार वर्ष की लम्बी अवधि समाप्त कर स्वामी ने पाम्बन मे भारत की धरती पर पाँव रखे. रामनद नरेश भास्कर वर्मा काफी लोगो के साथ उनके स्वागतार्थ पाम्बन आ गये है और समुद्र तट पर अधीरता से उनके जहाज की प्रतीक्षा कर रहे हैं जहाज से उतर कर स्वामी रामनद नरेश की सुसज्जित नौका पर चले आये. नौका के किनारे लगते ही असीम उत्साह से उन्मत्त जनता उनका जय-जयकार करने लगी रामनद के राजा तथा और कितने ही लोगो ने भूमि पर लेट कर उनकी चरण रज ली. पाम्बन की जनता ने सुन्दर स्वागत पत्र पढा तथा स्वामी ने भी उसके ही अनुरूप धन्यवाद दिया. अपने धन्यवाद मे उन्होने रामनद नरेश के प्रति वहुत ही कृतज्ञता प्रकट की उन्होने कहा कि उन्हें शिकागो भेजने की कल्पना सर्वप्रथम इन्ही महापुरुष के मन मे आयी थी सभा समाप्त होने पर स्वामी को उनके निवास पर ले जाने के लिए सुन्दर घोडे जुती हुई, फूलमालाओ से सुसज्जित, गाडी आयी. रामनद नरेश ने गाडी से घोडो को अलग करवा दिया. स्वामी की गाडी स्वयं राजा वहादुर तथा अन्य भक्तो ने मिल कर खींची दूसरे दिन स्वामी रामेश्वरम् मदिर गये मदिर के द्वार पर वहुत वडे जुलूस ने जय-जयकार तथा मधुर वाद्य सगीत से उनका स्वागत किया रामनद मे भी इसी तरह स्वागत हुआ. रामनद नरेश ने अपना मानपत्र एक अत्यन्त सुन्दर नक्काशी किये हुए शुद्ध सोने के वड़े वक्से मे रख कर दिया.

मद्रास का स्वागत समारोह सवसे वढा-चढ़ा था. सुब्रह्मण्य अय्यर के नेतृत्व

मे स्वागत समिति गठित हुई थी. राजपथ के दोनो ओर के भवन रग-बिरगे झडो से सुशोभित थे. मार्ग के दोनो किनारे वदनवार, जगह-जगह स्वागत द्वार और उन पर स्वागत के शब्द, जुलूस और बाजे-गाजे से सारा नगर आलोडित था. बाल-युवा-वृद्ध करीव-करीव सभी लोगो के होठो पर विवेकानन्द का ही नाम था. स्कूल-कालेज हाट-बाजार, गली-सडक, कुटी-महल सभी जगह विवेकानन्द की ही चर्चा थी. स्वामी के मद्रास पहुचने के एक सप्ताह पहले से उनके अभिनन्दन के नारे लगाये जाने लगे थे. पूरे नगर मे किसी महत्वपूर्ण उत्सव की सी चहल-पहल थी. जान पडता था जैसे सम्पूर्ण नगरी एक सजी सजायी दुल्हन की तरह स्वामी के स्वागत के लिए उत्सुकता से प्रतीक्षा कर रही है

रामनद से मद्रास आते समय मार्ग के कई प्रमुख नगरो मे भी स्वामी का प्रचुर स्वागत समारोह हुआ ट्रेन से आते समय जिस स्टेशन पर ट्रेन रुकती, वहा दर्शको की भीड, फूलमाला के उपहार तथा 'स्वामी विवेकानन्द महाराज की जय' के नारे के दृश्य देखने के योग्य थे. एक जगह तो लोगो ने ट्रेन को जबर्दस्ती रुकने के लिए मजबूर कर दिया. स्वामी की ट्रेन जो उन्हे मद्रास ले जा रही थी, एक छोटे से गाव के स्टेशन पर नही रुकती थी. उस गाव के लोग स्वामी के दर्शन के लिए लालायित थे. उन लोगो ने स्टेशन मास्टर से स्वामी की ट्रेन थोड़ी देर तक रुकवाने के लिए बहुत ही अनुनय-विनय की परन्तु स्टेशन मास्टर ने उनकी एक न सुनी. इस पर भीड बहुत उत्तेजित हो गयी जिस ओर से ट्रेन आने वाली थी उसके सामने की पटरी पर सैकडो व्यक्ति लेट गये. इस दृश्य को देख कर स्टेशन मास्टर के होश उड गये. वह बहुत ही घबडा गया ट्रेन अब शीघ्रता के साथ स्टेशन पर आ चली थी किन्तु दूर से ही उसके गार्ड ने वहा की स्थिति समझ ली और तुरन्त ट्रेन रोक देने की आज्ञा दी. ट्रेन रुकते ही प्रसन्नचित्त जनता स्वामी के डब्बे के पास आयी तथा पुष्पहार एव जय-जयकार के नारे से स्वामी जी का हार्दिक अभिनन्दन किया. स्वामी ने ट्रेन के द्वार पर खडे होकर अपने दोनो हाथो से लोगो को आशीर्वाद प्रदान किया लोगो के इस भाव भीने स्वागत से उनका दिल भर आया.

मद्रास स्टेशन का प्लेटफार्म वदनवार, फूलमालाओ तथा रग-बिरगी झडियो से खूब सजा हुआ था. करीव दस हजार व्यक्ति वहाँ उपस्थित थे. स्टेशन पर कम भीड इकट्ठी होने के ख्याल से स्वागत समिति के लोगो ने स्टेशन के अदर आने के लिए टिकट लगा रखा था परन्तु इसके बावजूद वहा इतनी वृहत् सख्या मे लोग जुट गये थे. स्वामी की ट्रेन स्टेशन पर प्रात साढे सात बजे आने वाली थी लोग बडी उत्सुकता और व्यग्रता से दक्षिण दिशा की ओर आँखें बिछाये हुए थे उधर से ही गाडी आने को थी अत मे नियत समय पर गाडी की सीटी सुनाई पडी और देखते ही देखते मथर गति मे गाडी आकर स्टेशन पर रुक गयी. गाडी की गति मद होते ही वहाँ का उपस्थित जनसमूह आकाश को विदीर्ण कर देने वाले जय-जयकार के नारे

लगाने लगा स्वामी के साथ उनके दो गुरुभाई, स्वामी निरजनानन्द और स्वामी शिवानन्द, तथा उनके यूरोपीय शिष्य गुडविन भी थे. स्वागत समिति के लोगो ने उन्हें आदरपूर्वक गाडी से उतारा तथा भीड के मध्य से बड़ी कठिनाई से बाहर लाये. एक सुसज्जित घोडागाडी पर ये लोग बैठाये गये मार्ग का दृश्य देखने योग्य था पथ के दोनो ओर अपार जनसमूह—पथ के किनारे लगे हुए वृक्षो की डालियो पर, महलो के छज्जो पर और झरोखो पर तमाम लोग ही लोग सडको पर जगह-जगह स्वागत द्वारे बने हुए थे. मद गति से चलती हुई स्वामी की गाडी के साथ शहनाई की मधुर धुन और बीच-बीच मे जय-जयकार के नारे बहुत ही आनन्ददायक थे.

मद्रास की जनता मे इतनी उत्तेजना, इतना भावोद्रेक पहले कभी देखने को नही मिला उनके सामने स्वामी विवेकानन्द आज एक विश्वविजेता के रूप मे विद्यमान थे. यह विश्वविजेता कोई रण जीत कर नही आया था इसने तो पश्चिम और पूर्व के लोगो के हृदय जीत लिये थे स्वामी जी बार-बार गाडी पर खडे होकर, कभी बैठे-बैठे, जनता के स्वागत और अभिनन्दन के उत्तर मे हाथ उठा-उठा कर आश्वासन और आशीष देते रहे. कुछ दूर गाडी चलने के बाद उत्साहित नवयुवको ने स्वामी की गाडी से घोडो को अलग कर दिया और स्वय उसे खीचने लगे. बहुत सी स्त्रिया मार्ग मे ही स्वामी के लिए फल और पुष्पो के उपहार ले आयी तथा उन्होने उनकी आरती भी उतारी. इस सम्बंध मे एक दृश्य भूला नही जा सकता. स्वामी का जुलूस जब स्टेशन से उनके निवासस्थान की ओर जा रहा था तभी मार्ग मे एक स्थान पर कठिन भीड़ को चीरती हुई एक अति वृद्ध महिला स्वामी के दर्शनार्थ थाल मे नारियल, फल-पुष्प एव आरती लिये हुए स्वामी की गाड़ी के पास बढ आयी उसकी आँखो मे प्रेमाश्रु छलछला उठे थे. उसे विश्वास था कि स्वामी विवेकानन्द साक्षात् शिव के अवतार हैं और उनका दर्शन उसके सारे पापो को प्रक्षालित कर देगा. उस वृद्धा के इस पवित्र कार्य को देख कर उपस्थित सभी व्यक्ति विस्मित रह गये.

स्वागत समिति की ओर से स्वामी का कार्यक्रम निश्चित किया गया था. उसके अनुसार उन्हें मद्रास मे नौ दिन रुकना था. इन नौ दिनो तक मद्रास नगर मानो उत्सव के समारोह मे गया था स्वामी के मद्रास मे पधारने के दूसरे दिन रविवार को स्वागत समिति की ओर से अभिनन्दन पत्र प्रदान किया गया इसके बाद खेतरी नरेश के द्वारा भेजे गये अभिनन्दन पत्र को पढा गया, फिर इसके उपरान्त अनेक सम्प्रदाय एव समितियो की ओर से अनेक भाषाओ (जैसे संस्कृत, तमिल, तेलुगू, आदि) के अभिनन्दन पत्र पढ कर समर्पित किये गये. स्वामी के इस सार्वजनिक भाषण का आयोजन विक्टोरिया हाल मे किया गया था विक्टोरिया हाल पाच हजार श्रोताओ से ठसाठस भरा था. इस बृहत् कक्ष के बाहर मुख्य द्वार से लेकर सडक तक जनता की अपार भीड़ उमडी हुई थी. ये लोग हाल के अन्दर नही जा पा रहे थे. कक्ष के भीतर स्वामी जी जब अपने मान पत्र का उत्तर दे रहे थे,

उस समय कक्ष के वाहर जनता अदम्य उत्साह और असन्तोष से उन्मत्त हो रही थी, स्वामी जी के दर्शन और भाषण सुनने के लिए. उनमे एक अजीब शक्ति आ गयी और वे अन्दर आने के लिए कक्ष के मुख्य द्वार पर टूट पड़े भारी कोलाहल के कारण स्वामी का भाषण सुनना कठिन हो गया. स्वामी कक्ष के वाहर निकल आये. वाहर वह घोडागाडी अभी भी खडी थी जिस पर वे बैठ कर विक्टोरिया हॉल आये थे वे उसी गाडी के कोच वॉक्स पर खड़े हो गये और भावावेग से उत्तेजित जनता को सम्वोधित कर कहने लगे .—'मित्रो, मैं तुम्हारा जोश देख कर वहुत प्रसन्न हूँ यह परम प्रशसनीय है वस ऐसा ही अदम्य उत्साह चाहिए,- ऐसा ही जोश हो. सिर्फ इतना ही है कि इसे चिरस्थायी रखना, इसे वनाये रखना, इस आग को बुझने मत देना हमे भारत मे वहुत वडे-वडे कार्य करने हैं. ··अपना विस्तृत व्याख्यान मैं किसी दूसरे अवसर पर दूँगा. तुम्हारे उत्साहपूर्ण स्वागत के लिए पुन' धन्यवाद'

स्वामी जी के भाषण का यह दृश्य वडा ही आकर्षक था. कुरुक्षेत्र मे भगवान श्रीकृष्ण के रथ पर खडे होकर गीता के उपदेश देने का सजीव चित्र हजारो-हजार जनता की आंखो के सामने उपस्थित हो रहा था स्वामी जी का भाषण अभी विल्कुल ही सक्षिप्त किन्तु ओजपूर्ण था आज से सैकडो वर्ष पूर्व श्रीकृष्ण ने अर्जुन के हृदय की सोयी हुई भावना को जगाया था उनके हृदय के अन्धकार मे पडे हुए सत्य को प्रकाश दिखाया था यहाँ स्वामी विवेकानन्द ने अद्वैत दर्शन के सहारे भारत की निर्वल, हतोत्साह एव मृतप्राय जनता मे प्राण फूंक दिया. 'मैं द्वैतवाद पर विशेष जोर नही देता, वल्कि अद्वैतवाद का ही प्रचार किया करता हूं. द्वैतवाद के प्रेम, भक्ति और उपासना मे कैसा अपूर्व आनन्द प्राप्त होता है यह मैं जानता हूँ ..परन्तु भाइयो, हमारे आनन्द पुलकित होकर आँखो से प्रेमाश्रु वरसाने का अव समय नही है हमने वहुत-वहुत आँसू वहाये हैं. अव हमारे कोमल भाव धारण करने का समय नही है कोमलता की साधना करते-करते हम लोग रूई के ढेर की तरह कोमल और मृतप्राय हो गये हैं. हमारे देश को इस समय आवश्यकता है लोहे की तरह ठोस मासपेशियो और मजवूत स्नायु वाले शरीरो की. आवश्यकता है इस तरह के दृढ इच्छा-शक्ति-सम्पन्न होने की कि कोई उसका प्रतिरोध करने मे समर्थ न हो. ··यही हमारे लिए परम आवश्यक है और इसका आरम्भ, स्थापना और दृढीकरण अद्वैतवाद अर्थात् सर्वात्मभाव के महान आदर्श को समझने तथा उसके साक्षात्कार से ही सभव है अद्वैतवाद के सिद्धान्त मे विश्वास करने वाले व्यक्ति स्वयं और ईश्वर मे कोई भेद नही मानते वे वही हैं जो परमात्मा है अत अद्वैतवादी सर्वशक्तिसम्पन्न, आत्मवल और आत्मश्रद्धापूर्ण होते हैं' स्वामी भावावेग मे वोलते गये: 'श्रद्धा, श्रद्धा, अपने आप पर श्रद्धा, परमात्मा मे श्रद्धा—यही महानता का एकमात्र रहस्य है. यदि पुराणो मे कहे गये तैंतीस करोड देवताओ के ऊपर, और विदेशियो ने वीच-वीच मे जिन देवताओ को तुम्हारे वीच घुसा दिया है, उन सब पर

भी यदि तुम्हारी श्रद्धा हो और अपने आप पर श्रद्धा न हो, तो तुम कदापि मोक्ष के अधिकारी नही हो सकते. अपने आप पर श्रद्धा करना सीखो. इसी श्रद्धा के बल से अपने पैरो पर आप खडे हो और शक्तिशाली बनो. इस समय हमे इसी की आवश्यकता है हम तैंतीस करोड भारतवासी हजारो वर्षों से मुट्ठी भर विदेशियो के द्वारा शासित और पददलित क्यो हैं ? इसका कारण यही है कि हमारे ऊपर शासन करने वालो मे अपने आप पर श्रद्धा थी, पर हममे यह बात नही थी.· हमने अपनी आत्म-श्रद्धा खो दी है. इसीलिए वेदान्त के अद्वैतवाद के भावो का प्रचार करने की आवश्यकता है, ताकि लोगो के हृदय जाग जाये और अपनी आत्मा की महत्ता समझ सके.'

इस वाणी से सचमुच लोग जागने लगे, आत्मा की महत्ता समझने लगे. कुम्भकरणी निद्रा मे सोये हुए भारत को मानो स्वप्न मे समर का शखनाद सुनाई पडा. कसमसाकर उसने आँखें खोली. उसने अपने शरीर की ओर निहारा, अपनी शक्ति पहचानी यह शक्ति उसकी भुजाओ से बढ कर उसके हृदय की थी. स्वामी की जोशभरी ललकारें उसके हृदय को और भी उत्तेजित करने लगी इच्छा शक्ति ही जगत मे अमोघ शक्ति है यह विश्वास रखो कि प्रत्येक आत्मा मे अनन्त शक्ति है. तभी तुम सारे भारतवर्ष को पुनर्जीवित कर सकोगे. · उत्तिष्ठत् जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत—उठो जागो, जब तक अभीप्सित वस्तु को प्राप्त नही कर लेते, तव तक बराबर उसकी ओर बढते जाओ.·· हिम्मत करो, डरो मत.···निर्भय होना होगा तभी हम अपने कार्य मे सिद्धि प्राप्त करेंगे मद्रास के युवको, तुम्हारे ऊपर ही मेरी आशा है क्या तुम अपनी जाति और राष्ट्र की पुकार सुनोगे ? यदि तुम्हे मुझ पर विश्वास है तो मैं कहूँगा कि तुममे से प्रत्येक का भविष्य उज्ज्वल है. अपने आप पर अगाध-अटूट विश्वास रखो, वैसा ही विश्वास, जैसा मैं बाल्यकाल मे अपने ऊपर रखता था और जिसे मे अब कार्यान्वित कर रहा हूँ तुममे से प्रत्येक अपने आप पर विश्वास रखे यह विश्वास रखो कि प्रत्येक की आत्मा मे अनत शक्ति विद्यमान है. तभी तुम सारे भारतवर्ष को पुनरुज्जीवित कर सकोगे ···;वेदो मे कहा है—युवक, बलशाली, स्वस्थ, तीव्र मेधा वाले और उत्साहयुक्त मनुष्य ही ईश्वर के पास पहुच सकते हैं. ··तुम्हारे भविष्य को निश्चित करने का यही समय है इसलिए मैं कहता हूँ कि अभी इस भरी जवानी मे, इस नये जोश के जमाने मे ही काम करो, जीर्ण-शीर्ण हो जाने पर काम नहीं होगा काम करो, क्योकि काम करने का यही समय है सबसे अधिक ताजे, बिना स्पर्श किये हुए और बिना सूघे फूल ही भगवान के चरणो पर चढाये जाते हैं और वे उसे ही ग्रहण करते हैं. जीवन की अवधि अल्प है, पर आत्मा अमर और अनत है, मृत्यु अनिवार्य है इसलिए आओ, हम अपने आगे एक महान् आदर्श खडा करें और उसके लिए अपना जीवन उत्सर्ग करें'

मद्रास मे स्वामी विवेकानन्द नौ दिन रुके. वहां उनके पांच प्रमुख भाषण

हुए. इनके विषय थे—मेरी क्रान्तिकारी योजना, भारतीय जीवन मे वेदान्त का प्रयोग, भारत के महापुरुष, हमारा वर्तमान कार्य, तथा, भारत का भविष्य. उनकी जोशीली और उत्साहवर्द्धक वाणी ने चिरकाल से शान्त भारतीय जनसमूह मे आँधी की तरह उथल-पुथल मचा दी और तन, मन से दुर्बल लोगो मे अपरिमित शक्ति का सचार किया भारत का भविष्य शीर्षक व्याख्यान मे सर्वप्रथम उन्होने लोगो को भारत की गरिमा का भान कराया 'यह वही प्राचीन भूमि है, जहाँ दूसरे देशो को जाने से पहले तत्वज्ञान ने आकर अपनी वासभूमि बनायी थी; यह वही भारत है, जहाँ के आध्यात्मिक प्रवाह का स्थूल प्रतिरूप उसके बहने वाले समुद्राकार नद हैं, जहाँ चिरतन हिमालय श्रेणीबद्ध उठा हुआ अपने हिमशिखरो द्वारा मानो स्वर्ग राज्य के रहस्यो की ओर निहार रहा है. यह वही भारत है, जिसकी भूमि पर ससार के सर्वश्रेष्ठ ऋषियो की चरणधूलि पड चुकी है. यही सबसे पहले मनुष्य प्रकृति तथा अन्तर्जगत के रहस्योद्घाटन की जिज्ञासाओ के अंकुर उगे थे. आत्मा का अमरत्व, अन्तर्यामी ईश्वर एव जगत्प्रपच तथा मनुष्य के भीतर सर्वव्यापी परमात्मा विषयक मतवादो का पहले-पहल यही उद्‌भव हुआ था और यही धर्म दर्शन के आदर्शों ने अपनी चरम उन्नति प्राप्त की थी. यह वही भूमि है, जहाँ से उमडती हुई बाढ की तरह धर्म तथा दार्शनिक तत्वो ने समग्र संसार को बार-बार परिप्लावित किया. यह वही भूमि है, जहा से पुन: ऐसी ही तरगें उठ कर निस्तेज जातियो में शक्ति और जीवन का सचार कर देंगी. यह वही भारत है जो शताब्दियो के आघात, विदेशियो के शतशत आक्रमण और सैकडो आचार-व्यवहारो के विपर्यय सह कर भी अक्षय वना हुआ है यह वही भारत है जो अपने अविनाशी वीर्य और जीवन के साथ अब तक पर्वत से भी दृढतर भाव से खडा है आत्मा जैसे अनादि, अनत और अमृत-स्वरूप है, वैसे ही हमारी भारतभूमि का जीवन है, और हम इसी देश की सन्तान हैं.'

अपने पूर्व गौरव की स्मृति ही स्वाभिमान की नीव है. इसी नीव पर स्वामी विवेकानन्द को देश के भविष्य का निर्माण करना था. बहुत से लोगो की ऐसी धारणा है कि अतीत की ओर दृष्टि डालने से मन की सिर्फ अवनति होती है, इससे मानव की या देश की कोई उन्नति नही हो सकती अत॰ अतीत को भुला कर, समय की गति के साथ कधे से कंधा मिला कर, नये सिरे से भविष्य का निर्माण करना चाहिए परन्तु स्वामी को इस पर विश्वास नही था. उन्होने इस धारणा की आलोचना करते हुए कहा ॰ 'अतीत से ही भविष्य का निर्माण होता है अत. जहाँ तक हो सके, अतीत की ओर देखो, पीछे जो चिरन्तन निर्झर वह रहा है, आकठ उसका जल पियो और उसके बाद सामने देखो और भारत को उज्ज्वलतर, महत्तर, और पहले से भी ऊँचा उठाओ हमारे पूर्वज महान थे. पहले यह बात हमे याद करनी होगी. हमे समझना होगा कि हम किन उपादानो से बने हैं ; कौन सा खून हमारी नसो मे बह रहा है ? उस खून पर हमे विश्वास करना होगा और अतीत के कृतित्व पर भी. इस विश्वास

और अतीत गौरव के ज्ञान से हम अवश्य एक ऐसे भारत की नीव डालेगे, जो पहले से श्रेष्ठ होगा. अवश्य ही यहां बीच-बीच मे दुर्दशा और अवनति के युग भी रहे हैं, पर उनको मैं अधिक महत्व नहीं देता. हम सभी उनके विषय मे जानते हैं. ऐसे युगो का होना आवश्यक था. किसी विशाल वृक्ष से एक सुन्दर पका हुआ फल पैदा हुआ, फल जमीन पर गिरा, मुरझाया और सडा इस विनाश से जो अकुर उगा, समव है वह पहले के वृक्ष से बडा हो जाये. अवनति के जिस युग के भीतर से हमे गुजरना पडा, वे सभी आवश्यक थे. इसी अवनति के भीतर से भविष्य का भारत आ रहा है, वह अकुरित हो चुका है, उसके नये पल्लव निकल चुके हैं और उस शक्ति पर विशालकाय ऊर्ध्वमूल वृक्ष का निकलना शुरू हो चुका है'

तत्कालीन भारत की आवश्यकताओ को ध्यान मे रखते हुए उन्होने धर्म, देवी-देवता, पूजा-आराधना आदि के विषय मे एक और नयी बात कही 'आगामी पचास वर्षों के लिए यह जननी जन्मभूमि भारतमाता ही मानो आराध्य देवी बन जाये. तब तक के लिए हमारे मस्तिष्क से व्यर्थ के देवी-देवताओ के हट जाने मे कुछ भी हानि नही है. अपना सारा ध्यान इसी एक ईश्वर पर लगाओ हमारा देश ही हमारा जगत देवता है. सर्वत्र उसके हाथ हैं, सर्वत्र उसके पैर है और सर्वत्र उसके कान हैं. समझ लो, दूसरे देवी-देवता सो रहे हैं जिन व्यर्थ के देवी-देवताओ को हम देख नही पाते, उनके पीछे हम बेकार दौडे और जिस विराट् देवता को हम अपने चारो ओर देख रहे है, उसकी पूजा ही न करें जब हम इस प्रत्यक्ष देवता की पूजा कर लेगे, तभी हम दूसरे देव-देवियो की पूजा करने योग्य होगे, अन्यथा नही'

जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी—जननी और जन्मभूमि स्वर्ग से भी महान् हैं,—ऐसा तो बहुत लोगो ने कहा है और जन्मभूमि का माता के समान आदर-सम्मान भी किया. किन्तु ऐसा अभी तक किसी ने कहने का साहस नही किया था कि जन्मभूमि भारतवर्ष ही हमारा एकमात्र देवता है, जिसकी तन-मन-धन से पूजा करना हमारा प्रथम कर्तव्य होना चाहिए. इस देवता के सामने किसी और देवता का कोई महत्व नही है यहा स्वामी विवेकानन्द न सन्यासी हैं, न योगी, न धर्म प्रचारक, न समाज सुधारक. यहा पूर्ण रूप से एव सच्चे अर्थ मे वे देशभक्त हैं. सैकडो वर्षों से पददलित, पराधीन, निरीह, दुर्बल और दरिद्र भारतमाता की सेवा और पूजा को ही उन्होने अपना धर्म माना.

स्वामी विवेकानन्द की यह मान्यता थी कि प्रत्येक राष्ट्र का एक हृदय होता है, उसके सहस्र-सहस्र बाहुओ मे एक सी ताकत होनी है उन्होने अमरीका मे अपने एक भक्त मित्र के पास पत्र मे इस विषय पर लिखा था—'पूर्व एव पश्चिम मे सारा अन्तर यह है कि वे एक राष्ट्र हैं, हम नहीं अर्थात् सभ्यता एव शिक्षा का प्रसार वहाँ व्यापक है, सर्वसाधारण मे व्याप्त है. उच्च वर्ग के लोग भारत और अमरीका मे समान हैं, लेकिन दोनो देशो के निम्न वर्गों मे जमीन आसमान का अन्तर है.

अंग्रेजो के लिए भारत को जीतना इतना आसान क्यो सिद्ध हुआ ? इसलिए कि वे एक राष्ट्र थे और हम नही ' स्वामी विवेकानन्द भारतवर्ष को एक राष्ट्र के रूप में देखना चाहते थे. वे चाहते थे कि हम सभी अपने को भारतीय कहे, न कि बगाली, बिहारी, पजाबी, मराठी, गुजराती या मद्रासी. हम लोग सोचें तो सम्पूर्ण भारतवर्ष के लिए, हम लोग देखें तो पूरे भारतवर्ष को, हम लोग कार्य करें तो सारे देश के लिए मेरे और तेरे की भावना सदा विनाशकारी सिद्ध हुई है स्वामी ने अमरीका से अपने मित्र के पास यह भी लिखा था—'जीवन मे मेरी सर्वोच्च अभिलाषा यही है कि एक ऐसा चक्र परिवर्तन कर दूं, जो उच्च एव श्रेष्ठ विचारो को सबके द्वार-द्वार पहुचा दे और फिर स्त्री-पुरुष अपने भाग्य का निर्णय स्वय कर ले. रासायनिक द्रव्य इकट्ठे करके और प्रकृति के नियमानुसार वे कोई विशेष आकार धारण कर लेंगे.' कहना न होगा कि इस रासायनिक द्रव्य का अभिप्राय शिक्षा से है देश की दरिद्रता, देश का सकट दूर करने का उपाय उनकी दृष्टि मे शिक्षा ही थी. एक शिक्षित व्यक्ति अपना भला-बुरा, अपने समाज का भला-बुरा, अपने देश का भला-बुरा स्वयं सोच सकता है और उसके अनुरूप कार्य कर सकता है.

मद्रास के नवयुवको ने स्वामी के कार्य मे सहयोग देने मे बडा उत्साह दिखलाया वहां के कुछ प्रतिष्ठित व्यक्तियो ने उन्हे एक प्रार्थना पत्र भी दिया और उनसे अनुरोध किया कि वे मद्रास मे एक प्रचार केन्द्र की स्थापना के लिए कुछ दिन और यहां ठहरें. स्वामी ने इस प्रस्ताव की सराहना की, किन्तु अब वे यहां और अधिक दिनो तक ठहरना नही चाहते थे. अत. उन्होने इस कार्य के लिए शीघ्र ही अपने एक सुयोग्य गुरुभाई को कलकत्ते से बुलवाने का वचन दिया कुछ ही दिनो बाद स्वामी रामकृष्णानन्द ने मद्रास के प्रचार केन्द्र का भार अपने कधो पर ले लिया. मद्रास मे नौ दिनो की अवधि मे कलकत्ते से स्वामी के पास जाने कितने निमत्रण पत्र आते रहे गुरुदेव श्री रामकृष्ण का जन्मदिवस भी समीप आ चुका था बहुत दिनो के उपरान्त गुरुदेव के जन्मदिवस के उत्सव समारोह मे सम्मिलित होने का सुअवसर छोडना उनके लिए असम्भव था. आखिर दुखी हृदय और सजल नयनो से मद्रास के लोगो ने 15 फरवरी को स्वामी को कलकत्ते के लिए विदा किया

स्वामी विवेकानन्द यात्रा, स्वागत-सत्कार, व्याख्यान और वार्तालाप से काफी थक गये थे अत. मद्रास से कलकत्ता उन्होंने जहाज से ही जाना उचित समझा. इसी बीच लोकमान्य बाल गगाधर तिलक ने उन्हे पूना आने के लिए निमत्रित किया स्वामी जी की उनसे मिलने की बडी इच्छा थी, किन्तु अपनी शारीरिक स्थिति के कारण विवश, वे पूना नही जा सके.

स्वामी विवेकानन्द के स्वागत के लिए कलकत्ते मे शानदार तैयारी हो रही थी मद्रास की ही तरह यहां की सडकें पत्र-पुष्प, पल्लव, ध्वजा, पताका आदि से पूरी तरह सुसज्जित थी. स्थान-स्थान पर स्वागत द्वार बने हुए थे. स्वामी जहाज से

खिदिरपुर मे उतरे. वहाँ एक स्पेशल ट्रेन उन्हे स्यालदह से जाने के लिए खड़ी थी. साढे सात बजे सवेरे उनकी गाडी स्यालदह स्टेशन पर धीरे-धीरे आकर रुकी. वहाँ सैकडो लोग उनके स्वागत के लिए आँखें बिछाये खडे थे. ट्रेन रुकते ही 'स्वामी विवेकानन्द की जय' के नारे से स्टेशन गूज उठा स्वामी दोनो हाथ जोडे नमस्कार करने की मुद्रा मे अपने डब्बे के द्वार पर खडे थे. उनकी चरणधूलि लेने के लिए जनता की भीड उनकी ओर टूट पड रही थी. स्वागत समिति के सदस्यो ने नरेन्द्रनाथ सेन (इण्डियन मिरर अखबार के सम्पादक) के नेतृत्व मे, स्वामी तथा श्री और श्रीमती सेवियर को बड़ी कठिनाई से किसी तरह भीड से बाहर निकाला. उनके लिए चार घोडो वाली गाडी, विशेष साज-सज्जा के साथ स्टेशन के बाहर खडी थी. स्वामी तथा सेवियर दम्पति को उसमे बिठाया गया गाडी रिपन कालेज की ओर चल पडी इसके साथ साथ लोगो का एक लम्बा जुलूस चलने लगा. गाडी अभी आठ-दस पग ही आगे बढी होगी कि जुलूस के कुछ नवयुवको ने गाड़ी से घोडो को अलग कर दिया और स्वय उसे खीचने लगे. जुलूस के आगे-आगे भारतीय वाद्य संगीत की एक टोली चल रही थी. बाजे की मधुर धुन और जोशीले नारो के साथ जुलूस रिपन कालेज के प्रागण मे पहुचा. स्वागत समिति के लोगो ने स्वामी तथा उनके यूरोपीय शिष्यो को यहा जलपान करवाया तथा थोडी देर विश्राम का समय भी दिया किन्तु स्वामी को भला विश्राम से कब मतलब ! यहाँ कुछ विद्वानो से वे बातचीत करते रहे न जाने कितने लोग उन्हे श्रद्धा के साथ निकट से देखने आये इसके बाद राय पशुपतिनाथ के निवासस्थान पर बाग बाजार मे स्वामी अपने कुछ गुरुभाइयो के साथ स्वागत समारोह मे भाग लेने के लिए आमन्त्रित किये गये. अब सध्या हो चली थी. स्वागत समिति के अधिकारियो ने स्वामी तथा उनके पाश्चात्य शिष्यो के लिए कासीपुर के श्री गोपाललाल शील के बगीचे वाले भवन मे अस्थायी निवासस्थान ठीक कर दिया यहाँ प्रतिदिन सुबह-शाम दर्शनार्थियो की भीड लगी रहती. इनमे से कुछ विद्वान लोग, स्वामी से वेदान्त दर्शन पर वार्तालाप भी करते थे रात मे करीब-करीब रोज ही स्वामी आलम बाजार के मठ मे जाते और भविष्य की कार्यप्रणाली के सम्बन्ध मे अपने गुरुभाइयो के साथ बातचीत करते भारत के विभिन्न भागो से इनके पास न जाने कितने निमन्त्रण पत्र आये कि वे वहाँ आयें और लोगो को अपने दर्शन तथा शिक्षा से कृतार्थ करें

एक सप्ताह के विश्राम के बाद २८ फरवरी को श्री राजा राधाकान्त देव के शोभा बाजार स्थित भव्य भवन के प्रागण मे विशाल स्वागत समारोह का आयोजन किया गया. यह सार्वजनिक सभा थी. लगभग पाँच हजार व्यक्ति उपस्थित थे इनमे कलकत्ते के महाविद्वान पंडित, कुशल राजनीतिज्ञ, ख्यातिप्राप्त वकील, डाक्टर, साहित्यकार, विद्याविद्, सन्यासी, योगी, राजे-महाराजे तथा उच्च यूरोपीय अधिकारीगण भी थे सभापति का आसन राजा विनयकृष्ण देव ने ग्रहण किया मच

पर स्वामी के पधारते ही कानो को वधिर वना देने वाली जयध्वनि की गयी. सभापति ने अभिनन्दन पत्र पढा और वड़े आदर से उसे चाँदी के पात्र मे रख कर स्वामी को अर्पित किया. उसमे हिन्दू धर्म तथा भारतीय सभ्यता और सस्कृति का विदेशो मे प्रचार करने वाले इस सन्यासी की भूरि-भूरि प्रशंसा की गयी थी. इस कलकत्ता नगरी मे स्वामी का जन्म हुआ था और यही की मिट्टी मे खेल-कूद कर वे बडे हुए थे. इस जगह पुन॰ वापस आकर और इस तरह का स्वागत अभिनन्दन पा कर उनका भावुक हृदय गद्‌गद हो उठा और उनके होठो से भावभीने शब्दो की धारा फूट निकली: 'मनुष्य अपनी व्यक्ति-चेतना को सार्वभौम चेतना मे लीन कर देना चाहता है, यह जगत प्रपच का कुल सम्वन्ध छोड देना चाहता है. वह अपने समस्त सम्वन्वो की माया काट कर ससार से दूर भाग जाना चाहता है वह सम्पूर्ण, दैहिक, पुराने सस्कारो को छोडने की चेष्टा करता है यहाँ तक कि यह देहधारी मनुष्य है, इसे भी भूलने का भरसक प्रयत्न करता है. परन्तु अपने अंतर मे सदा ही एक मृदु-स्फुट ध्वनि उसे सुनाई पड़ती है. उसके कानो मे सदा ही एक स्वर बजता है. न जाने कौन उसके कानो मे दिन-रात मधुर स्वर मे कहता रहता है, पूर्व मे हो या पश्चिम मे, जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी भारत साम्राज्य की राजधानी के अधिवासियो, तुम्हारे पास मैं सन्यासी के रूप मे नही, धर्मप्रचारक की हैसियत से भी नही, वल्कि पहले की तरह कलकत्ते के उसी वालक के रूप मे वातचीत करने आया हूँ हा, मेरी इच्छा होती है कि आज इस नगर के रास्ते की धूल पर वैठ कर वालक की तरह सरल अंत करण से तुमसे अपने मन की वातें खोल कर कहूँ तुम लोगो ने मुझे अनुपम भाई शव्द से सम्वोधित किया है, इसके लिए तुम्हे हृदय से धन्यवाद देता हूं. हा, तुम्हारा भाई हूँ, तुम भी मेरे भाई हो.'

स्वामी अपने वगाल के भाइयो के सामने जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी की व्याख्या करते हुए थक नहीं रहे थे. अपनी जननी के भरण-पोषण तथा सुख-सुविधा का ध्यान तो सभी माई के लाल रखते है, किन्तु मातृभूमि की सेवा का ध्यान विरले को ही होता है स्वामी इसी सेवा के लिए युवको का आह्वान कर रहे थे उन्हे जनशक्ति की आवश्यकता थी यह जनशक्ति तभी मिल सकती थी जव जनता को आत्मवल पर विश्वास हो. इसीलिए सभी जगह स्वामी वेदान्त दर्शन की चर्चा चलाते हैं. जैसा कि अपने कलकत्ते के भाषण मे उन्होने कहा. 'प्रत्येक जाति के लिए उद्देश्य साधन की अलग-अलग कार्य प्रणालिया हैं. कोई राजनीति, कोई समाज सुधार और कोई किसी दूसरे विषय को अपना प्रधान आधार वना कर कार्य करती हैं. हमारे लिए धर्म की पृष्ठभूमि लेकर कार्य करने के सिवा दूसरा उपाय नही है. अग्रेज राजनीति के माध्यम से धर्म समझ सकते हैं. अमरीकी शायद समाज-सुधार के माध्यम से भी धर्म समझ सकते हैं परन्तु हिन्दू राजनीति, समाज विज्ञान और दूसरा जो कुछ है, सवको धर्म के माध्यम से ही समझ सकते हैं.......यहाँ दूसरे दर्शनो और

भारत के दर्शनो मे महान् अन्तर पाया जाता है द्वैतवादी हो, चाहे विशिष्टाद्वैतवादी या अद्वैतवादी हो, सभी को यह दृढ विश्वास है कि आत्मा मे सम्पूर्ण शक्ति निहित है. केवल उसे व्याप्त करना होता है.······यह आत्मा अनन्त शक्ति का आधार है, कोई उसका नाश नही कर सकता. उसकी वह अनन्त शक्ति प्रकट होने के लिए, केवल आह्वान की प्रतीक्षा कर रही है. और इस आह्वान को मुखरित करने वाली श्रद्धा है श्रद्धा ही हृदय के तारो को झंकृत कर आह्वान की ध्वनि निकालती है. जिस मनुष्य के हृदय मे अपने वर्ग के प्रति, अपने वेदान्त दर्शन के प्रति श्रद्धा है, वह सभी असम्भव को सम्भव कर सकता है.'

बगाल के युवको को अपने कर्म के प्रति सजग करते हुए स्वामी ने पुन: सबको ललकारा : 'हमे सम्पूर्ण ससार जीतना है. हाँ, यह हमे करना ही होगा. भारत को अवश्य ही ससार पर विजय प्राप्त करनी है. इसकी अपेक्षा किसी छोटे आदर्श से मुझे कभी भी सतोष न होगा.······या तो हम सम्पूर्ण ससार पर विजय प्राप्त करेंगे या मिट जायेंगे. इसके सिवा कोई दूसरा विकल्प नही है. जीवन का चिह्न विस्तार है. हमे सकीर्ण सीमा के बाहर जाना होगा, हृदय का प्रसार करना होगा, यह दिखाना होगा कि हम जीवित हैं. अन्यथा हमे इसी पतन की दशा मे सड़ कर मर जाना पड़ेगा.'

यहाँ विजय का तात्पर्य भूमि विजय से नही, बल्कि नैतिक विजय से है. विवेकानन्द का कहना था कि हमारे पूर्वज धर्म के रूप मे जो अमूल्य रत्न हमारे पास छोड गये हैं, उन्हे पाने के लिए, उनसे लाभान्वित होने के लिए पश्चिम के देश लालायित हैं. उन्होने अपने भाषणो मे बार-बार इस पर जोर दिया है कि हमे कूप-मडूक बन कर अपने आप मे सीमित नही रहना है, बल्कि पश्चिम के देशो मे जा कर अपने आध्यात्मिक ज्ञान, अपने वेदान्त दर्शन से लोगो को अवगत कराना है और इसके बदले मे उनसे विज्ञान की बातें सीखनी हैं दोनो ओर के आदान-प्रदान मे ही आत्मसम्मान की भावना निहित रहती है अन्यथा जैसे आज हम दूसरे उन्नत देशो के सामने हीन भावना से दबे हुए हैं, वैसे ही सर्वदा दबे रहेंगे. स्वामी के ही शब्दो मे : 'क्या हम दूसरो से सदा लेते ही रहेगे ? क्या हम लोग सदा पश्चिमवासियो के पद-प्रान्त मे बैठ कर ही सब बातें, यहा तक कि धर्म भी सीखेंगे ? हाँ, हम उन लोगो से कल-कारखाने के काम सीख सकते हैं, और भी बहुत सी बातें उनसे सीख सकते हैं, परन्तु हमे भी उन्हे कुछ सिखाना होगा. और वह है हमारा धर्म, हमारी आध्यात्मिकता. · ·· इसी भारत मे हमारे पूर्वज जो संजीवन अमृत रख गये हैं, उस का एक बिन्दु मात्र पाने के लिए भी भारत के बाहर आज भी लाखो मनुष्य कितने आग्रह के साथ हाथ फैलाये हुए हैं, यह हमारी समझ मे भला कैसे आ सकता है ? इसलिए हमे भारत के बाहर जाना ही होगा. हमारी आध्यात्मिकता के बदले चैतन्य-राज्य के अपूर्व तत्व समूहो के बदले, हम जडराज्य के अद्भुत तत्वो को प्राप्त करें.

चिरकाल तक शिष्य रहने से हमारा काम न होगा, हमे आचार्य भी होना होगा. समभाव के न रहने पर मित्रता सम्भव नही है.

बंगाल के लोग अन्य प्रान्तो के लोगो की अपेक्षा अधिक भावुक, कल्पनाप्रिय और कलापुजारी समझे जाते रहे हैं एक ओर इसके लिए उन्हे काफी प्रसिद्धि मिली तो दूसरी ओर कुछ लोगो ने उन्हें कमजोर जाति की उपाधि दे कर उनका उपहास भी किया इस बात की चर्चा के साथ भावुक बगाली भाइयो को सम्बोधित करते हुए स्वामी ने अपने भाषण मे कहा · 'उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत.—उठो जागो, जब तक अभीप्सित वस्तु को प्राप्त नही कर लेते, तब तक बराबर उसकी ओर बढते जाओ कलकत्ता निवासी युवको ! उठो जागो, शुभ मुहूर्त आ गया है. सब चीजें अपने आप तुम्हारे सामने खुलती जा रही हैं. हिम्मत करो, डरो मत.··· ·· उठो जागो तुम्हारी मातृभूमि को इस महावलि की आवश्यकता है. इस कार्य की सिद्धि युवको द्वारा ही होगी युवा, आशिलष्ठ, दृढिष्ठ, बलिष्ठ, मेधावी, उन्ही के लिए यह कार्य है ·····भारत के अन्य भागो मे बुद्धि है, धन भी है, परन्तु उत्साह की आग केवल हमारी ही जन्मभूमि मे है, उसे बाहर आना ही होगा. इसलिए कलकत्ते के युवको, अपने रक्त मे उत्साह भर कर जागो. मत सोचो कि तुम गरीब हो, मत सोचो कि तुम्हारे मित्र नही हैं अरे, क्या कभी तुमने देखा है कि रुपया मनुष्य का निर्माण करता है ? नही, मनुष्य ही सदा रुपये का निर्माण करता है. यह सम्पूर्ण ससार मनुष्य की शक्ति से, उत्साह की शक्ति से, विश्वास की शक्ति से निर्मित हुआ है.'

जिन लोगो ने इन शब्दो को सुना, उन पर इनका क्या प्रभाव पड़ा होगा, इसकी कल्पना आसानी मे की जा सकती है निश्चय ही उन लोगो को भारत मे एक नये प्रभात के आगमन की सूचना मिली होगी उनकी भोली-भाली निश्छल निगाहो मे निगाह डाल कर स्वामी ने फिर कहा . 'डरना नही, क्योकि मनुष्य जाति के इतिहास मे देखा जाता है कि जितनी शक्तियो का विकास हुआ है, साधारण मनुष्यो के भीतर से ही हुआ है. ससार मे बड़े-बडे जितने प्रभावशाली मनुष्य हुए है, सभी साधारण मनुष्यो के भीतर से ही हुए हैं, और इतिहास की घटनाओ की पुनरावृत्ति होगी ही. किसी बात से डरो मत तुम अद्भुत कार्य करोगे जिस क्षण तुम डर जाओगे उसी क्षण तुम बिल्कुल शक्तिहीन हो जाओगे. संसार मे दु ख का मुख्य कारण भय ही है यही सबसे बडा कुसस्कार है. यह भय हमारे दु खो का कारण है, और यह निर्भीकता है जिससे क्षण भर मे स्वर्ग प्राप्त होता है'

कलकत्ते का विद्यार्थी समाज स्वामी विवेकानन्द के व्याख्यान से विशेष प्रभावित था. विद्यार्थियो को वश मे करने की कला उन्हें अच्छी तरह मालूम थी. उन के साथ वे सिर्फ अध्यात्म की ही नही बल्कि शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य की, खेलकूद की, पढाई की तथा विभिन्न प्रकार के विषयो की चर्चा भी करते थे. इस

के साथ-साथ वे वडी कुशलता से उनमे अपनी प्राचीन सभ्यता और सस्कृति के आदर्शों के प्रति प्रेम तथा आत्मविश्वास की भावना जगाते वे नवयुवको की शारीरिक और मानसिक दुर्बलता का प्रत्यक्ष कारण बाल विवाह वताते थे. बाल विवाह से मानव शक्ति का ह्रास होता है ऐसा उनका विश्वास था. वे कुछ ऐसे अविवाहित युवको को संगठित करना चाहते थे जो नि स्वार्थ भाव से लोक हितैषी कार्यों के लिए अपना तन-मन-घन अर्पित करने के लिए तैयार हो मगर इस कार्य मे उन्हे बहुत अधिक सफलता नही मिली. उनके समाज सेवा के कार्य के लिए कुछ ही लोग उनके विश्वासपात्र वन सके परन्तु जो उनके पास आये वे सदा के लिए उनके वन गये.

एक वार थियोसोफिकल सोसाइटी से सवन्धित एक नवयुवक उनके पास आया. उसका चित्त वहुत ही अशात था. उसने दु खी हो कर कहा कि वह सत्य की खोज मे बहुत दिनो से व्यस्त है. देवमूर्ति के सामने वह घटो आँखें मूंदे बैठा रहा—पूजा-अर्चना की, योग-जाप किया. किन्तु उसके मन को शाति नही मिली. वह एकाग्रचित्त नही हो सका. खिन्नमन हो कर उसने नितान्त सूनेपन मे अपने कमरे का द्वार वन्द कर ध्यान लगाया, परन्तु वहाँ भी वह असफल रहा. उसे समझ नही आ रहा था कि सत्य की उपलब्धि आखिर वह किस प्रकार कर सकेगा स्वामी बडी शाति से उस युवक की वातें सुन रहे थे. अपनी वाणी मे स्नेह और सहानुभूति भर कर उन्होने कहा : 'मेरे वत्स, यदि तुम मेरी वात मानो तो सवसे पहले तुम्हे अपने कमरे का द्वार खोलना होगा और आँखें वन्द करने की अपेक्षा अपने चारो ओर देखना होगा. तुम्हारे घर के आसपास सैंकडो असहाय और दरिद्र लोग हैं अपनी समझशक्ति से तुम्हे उनकी सेवा करनी है जो वीमार है और जिनकी देखरेख करने वाला कोई नही है, उनके लिए तुम्हे दवा लानी होगी, पथ्य का प्रवन्ध करना होगा, उनकी सेवा-सुश्रूषा करनी होगी. जिनके पास भोजन नही है, उन्हें तुम्हे खिलाना होगा. जो अज्ञानी हैं, तुम्हें उन्हें शिक्षित करना होगा, वहुत अच्छी तरह बिल्कुल अपने समान मेरे विचार से यदि तुम मानसिक शक्ति चाहते हो तो तुम्हें दूसरो की सेवा करनी होगी, जितनी तुममे सामर्थ्य है उतनी.' जन सेवा को स्वामी मनुष्य का सवसे महत्वपूर्ण कर्तव्य समझते थे. यह कार्य योग-जाप, पूजा-पाठ, दान-पुण्य, सवसे अधिक मूल्यवान था. अपने गुरुभाइयो से भी वे वरावर कहा करते थे कि आज के सन्यासियो के लिए यह उचित नही कि प्राचीन काल की तरह वे कदराओ मे या कुटियो मे वैठ कर आत्मसाक्षात्कार की चेष्टा मे लगे रहें. आज का सन्यासी समाज सेवक है. ससार के कर्मक्षेत्र मे खडे होकर उसे सम्पूर्ण मानव जाति की सेवा करनी होगी. करोड़ो दीन-दुखियो का सकट दूर करना होगा. भूखे को भोजन, निर्धसन को वस्त्र और रोगी को दवा दे देने से ही उनका काम शेष नही हो जाता. उन्हें तो भारत के दरिद्रता और अज्ञानता के इस भीषण रोग से तव तक लड़ते रहना

है जव तक कि वह समूल नष्ट न हो जाये. इस रोग की सवसे वडी दवा है : शिक्षा. स्वामी अपने गुरुभाइयो और शिष्यो से यह अक्सर कहा करते थे कि इस सत्कार्य के लिए यदि संन्यासी सम्प्रदाय को मुक्ति की अपेक्षा नरक मे भी जाना पडे तो उसके लिए उन्हें सहर्ष तैयार रहना चाहिए. वहुजन हिताय, सुखाय ही श्रीरामकृष्ण परमहस का आविर्भाव हुआ था. उनके शिष्य होकर यदि ये सन्यासी लोग जनहित के लिए अपने जीवन का वलिदान नही कर सके तो उनमे और किसी साधारण व्यक्ति मे भला क्या अतर है? स्वामी के इस वक्तव्य का उनके शिष्यो और गुरु भाइयो पर वहुत प्रभाव पडा. स्वामी रामकृष्णानन्द जो आलम वाजार मठ मे पिछले वारह वर्षों से श्री रामकृष्ण परमहंस की पूजा-अर्चना, कथा, योग-जाप मे लीन थे, स्वामी के अनुरोध पर वेदान्त के प्रचार तथा सेवाकार्य के लिए दक्षिण चले गये. स्वामी के दो और गुरुभाई, श्री अभेदानन्द जी और शारदानन्द जी पाश्चात्य देशो मे प्रचारकार्य वहुत दिनो से कर रहे थे अव स्वामी अखण्डानन्द मुर्शिदावाद मे दुर्भिक्ष से पीडित लोगो की सेवा करने चले गये.

स्वामी विवेकानन्द की ख्याति इस समय चरम सीमा पर थी किन्तु झूठा अभिमान उन्हें छू नही सका था. अपने विनीत स्वभाव से वे सवका हृदय जीत रहे थे. एक वार वे नगर के कुछ गिने-माने प्रतिष्ठित व्यक्तियो से वार्तालाप कर रहे थे, तभी गुरुदेव श्री रामकृष्ण के भतीजे श्री रामलाल चट्टोपाध्याय उनसे मिलने आये स्वामी तथा उनके गुरुभाई उन्हें रामलाल दादा कहा करते थे. स्वामी की दृष्टि जैसे ही रामलाल दादा पर पडी, वे कुर्सी से उठ गये, अपने अतिथि को नमस्कार किया और वडी विनम्रता से उनसे कुर्सी पर वैठने का अनुरोध किया. स्वय कमरे मे टहलते हुए स्वामी ने कहा : 'गुरुवत् गुरुपुत्रेषु.' अर्थात् गुरु के पुत्र या अन्य सम्वधी गुरु के ही समान आदरणीय हैं

स्वामी विवेकानन्द का विश्वास था कि विना अपनी प्राचीन सस्कृति पर श्रद्धा रखे कोई भी राष्ट्र उन्नतिशील नही हो सकता फिर भी अपनी परम्परा और सस्कृति की हर चीज को वे आख मूंद कर स्वीकार नही कर लेते थे. चाहे विचार-धारा प्राचीन हो या अर्वाचीन, अपनी विवेकशील वुद्धि से वे समझ लेते थे कि उन्हें किसको अगीकार करना है.

एक वार गो सुरक्षा समिति के कुछ लोग उनसे चन्दा मागने आये. उन्होने स्वामी से कहा कि वे लोग कसाइयो से गायो को खरीद लेते हैं. इस प्रकार की खरीदी हुई गायो के अतिरिक्त वृद्धा तथा रोगग्रस्त गायो की भी वे लोग रक्षा करते हैं स्वामी ने उनसे जानना चाहा कि मध्य भारत मे जो हजारो-हजार दुर्भिक्ष पीडित व्यक्ति मृत्यु की गोद मे मिमटते जा रहे हैं उनके लिए यह गोरक्षा समिति क्या कर रही है? समिति की तरफ से उत्तर मिला कि वे लोग अपने पूर्व जन्म के कर्म का फल भोग रहे हैं, उनके लिए यह समिति कुछ नही कर सकती. इसका

काम सिर्फ गोमाता की रक्षा करना है यह सुनते ही स्वामी का मुख लाल हो गया. आंखो से अगारे वरसने लगे. अपने क्रोध को सयमित करते हुए किन्तु स्पष्ट शब्दो मे स्वामी ने कहा कि उन्हे इस प्रकार की सस्था से कोई सहानुभूति नही है जो भूख से तडपते हुए लोगो को दो रोटी न दे सके और पशु-पक्षियो पर हजारो रुपये खर्च करे. भूखो को अन्न, नगो को वस्त्र और रोगियो को औषधि देने के वाद यदि पैसे बचेंगे तव वे उन्हे पशु-पक्षियो के लिए देंगे. स्वामी की वातें सुन कर गोरक्षा समिति के प्रतिनिधि अपना-सा मुह लेकर चले गये.

कलकत्ता पहुँचने के कुछ ही दिन वाद गुरुदेव श्री रामकृष्ण का जन्म दिवस बडी धूमधाम से दक्षिणेश्वर के काली मदिर मे मनाया गया. उस दिन वड़े सवेरे स्वामी अपने पाश्चात्य शिष्यो और शिष्याओ के साथ दक्षिणेश्वर आये वहा दक्षिणेश्वर मे अतीत की मधुर स्मृतियां हृदय मे उभरने लगी गुरुदेव और गुरुभाइयो के सग बिताये हुए दिनो की यादें सजीव होने लगी. उनके दर्शनार्थ आये हुए लोगो ने उनसे भाषण देने का आग्रह किया. उन्हे भी व्याख्यान देने की इच्छा थी. परन्तु वहाँ के शोरगुल मे यह सभव नही हो सका.

जन्मोत्सव के वाद स्वामी ने कलकत्ते के स्टार थिएटर मे एक सशक्त भाषण दिया. विषय था—सर्वांग वेदान्त. इस भाषण मे उन्होने वेदान्त दर्शन के उद्भव तथा विकास का वर्णन करते हुए यह दिखाने का प्रयत्न किया कि वर्णाश्रमी ब्राह्मण पडितो ने वेद के कर्मकाण्ड को अपने कुतर्कों से कितना प्रभावित किया है और साथ ही साथ उन कुतर्कों और कुयुक्तियो का वडे जोरदार शब्दो मे खण्डन भी किया. सबसे पहले उन्होने यह वताया कि वेदान्त शास्त्र की विभिन्न आचार्यों ने समय-समय पर भिन्न भिन्न रूप से व्याख्या की थी. इसी के फलस्वरूप अनेक विरोधी मतवाद उत्पन्न हो गये और धीरे-धीरे अध्यात्म साधना, जो वेदान्त शास्त्र की कठिनतम और उच्चतम चीज थी उससे लोग दूर होने लगे लोगो ने पुराण तथा कुछ स्मृति ग्रथो के लोकाचार को ही अपना लिया, क्योकि वर्णाश्रमी ब्राह्मण पडितो के अनुसार जनता को हर प्रकार के पापो से मुक्ति दिला कर स्वर्ग का अधिकारी वनवाने के लिए यह लोकाचार का मार्ग वडा आसान था. स्वामी ने कहा 'आज रसोईघर हमारा मदिर है, भोजन बनाने वाला वर्तन हमारा देवता है और धर्म है कि मुझे मत छुओ, मैं पवित्र हूँ. वेदान्त के प्रकाश मे स्वामी ने तत्कालीन धार्मिक आचार-विचार की शोचनीय स्थिति का परिचय दिया. आगे चल कर उन्होने वगाल की कुलगुरु प्रथा की खिल्ली उडायी—कुलगुरु चाहे वे शास्त्र का ज्ञान विहीन महामूर्ख ही क्यो न हो, उनसे धार्मिक शिक्षा ग्रहण करना भला कहाँ तक उचित है ? 'कुलगुरु' की प्रथा एक धार्मिक व्यवसाय के सिवा और कुछ नही है. स्वामी ने हजारो लोगो के सामने यह घोषणा की कि अद्वैत वेदान्तदर्शन के शस्त्र से वर्तमान प्रचलित सभी धार्मिक और सामाजिक कुसस्कारो को काट डालना उनका प्रथम कर्तव्य है इसके बाद उन्होंने कलकत्ते मे

कोई दूसरा सार्वजनिक भाषण नही दिया अनवरत भाषण और भीड-भाड से उनकी तबियत ऊब गयी थी. वे अब कुछ दिनो के लिए शान्ति चाहते थे, जिससे वे अपने भावी कार्यक्रम की स्पष्ट रूपरेखा तैयार कर सकें.

मगर कलकत्ते मे उन्हे शान्ति कहाँ मिल सकती थी ? जब तक वे वहाँ रुके, लोग बराबर उनके पास वेदान्तदर्शन पर बातचीत करने आते रहे. एक बार कुछ गुजराती जो वेद और दर्शनशास्त्र के प्रकाण्ड पडित थे, स्वामी के पास शास्त्रार्थ के लिए आये. आते ही उन लोगो ने स्वामी को चारो ओर से घेर लिया और संस्कृत भाषा में एक पर एक प्रश्नो की झडी लगा दी वे लोग धाराप्रवाह रूप से बोल रहे थे स्वामी बड़े शान्त भाव से एक के बाद एक उनके सभी प्रश्नो के उत्तर देते गये. बातचीत करते समय एक स्थान पर स्वति की जगह अस्ति कह कर स्वामी ने व्याकरण की छोटी-सी अशुद्धि कर दी इस पर पंडित मण्डली व्यग्यात्मक रूप से हँस पडी स्वामी उस हसी का भेद समझ गये. उन्होने तुरन्त अपने को सुधार लिया और कहा मैं पंडितो का दास हूँ, मेरी व्याकरण की इस अशुद्धि के लिए आप सब क्षमा करें पडितगण स्वामी के इस विनयी स्वभाव से बडे खुश हुए. वादविवाद काफी समय तक चलता रहा. अन्त मे उन लोगो ने स्वामी की मीमासा को बडा ही महत्वपूर्ण बताया. वाद-विवाद के बाद कुछ देर मधुर सम्भाषण कर जब वे लोग जाने लगे तो कुछ अन्य आगन्तुको ने आगे बढ कर उन पडितो से पूछा कि स्वामी के साथ शास्त्रार्थ कैसा रहा ? पडित मंडली के प्रमुख एक वृद्ध ने उत्तर दिया कि सस्कृत व्याकरण का गहन ज्ञान नही होने पर भी स्वामी नि.सदेह शास्त्रो के गूढ तत्व के ज्ञाता हैं, उस पर उनका असाधारण अधिकार है.

अत्यधिक परिश्रम के कारण स्वामी का शरीर अस्वस्थ रहने लगा. डाक्टरो ने उन्हे पूर्ण विश्राम की सलाह दी किन्तु इस समय भी शारीरिक अस्वस्थता की परवाह न करते हुए स्वामी न जाने कितनी योजनाओ को कार्यान्वित करने की बातें सोच रहे थे उनकी पहली योजना तो थी हिमालय की गोद मे एक मठ स्थापित करने की इसी आश्रम मे धार्मिक तथा लोकहितैपी कार्यों के लिए एक संघ की नीव भी वे डालना चाहते थे, रामकृष्ण मिशन के नाम से. किन्तु चिकित्सको ने उनके शारीरिक और मानसिक परिश्रम पर कडा प्रतिबन्ध लगा दिया. फलस्वरूप उन्हे कलकत्ता तो शीघ्र ही छोडना पडा, भारत के अन्य भागो का भ्रमण भी स्थगित कर दिया गया सेवियर दम्पति के साथ स्वामी दार्जिलिग चले गये. बर्दवान नगर के महाराजा ने बडी श्रद्धा से दार्जिलिग मे निर्मित अपने रोज बैंक नामक भवन के एक भाग को उनके निवास के लिए दे दिया स्वामी के वहाँ पहुँचने के बाद स्वामी ब्रह्मानन्द, गुडविन, डा० टर्नबुल, गिरीशचन्द्र घोप, स्वामी तुरीयानन्द, स्वामी ज्ञानानन्द तथा उनके तीन मद्रासी शिष्य भी दार्जिलिग पहुच गये. स्वामी को यहाँ पूर्णरूपेण शारीरिक और मानसिक विश्राम मिला. सवेरे और शाम को ये हिमालय

की पहाडियो मे घूमते, पास-पडोस के बौद्ध मठो मे जाते तथा अपने प्रिय लोगो मे वार्तालाप करते. स्वामी ने लगभग दो माह तक दार्जिलिंग मे आराम किया किन्तु उनको कोई विशेष स्वास्थ्य लाभ नही हुआ. इस प्रकार समय बिताना स्वामी के लिए बडा दुष्कर था. अत दो माह बीतते-न बीतते वे कलकत्ता लौट आये शीघ्र कलकत्ता लौट आने का उन्हे एक बहाना भी मिल गया था खेतरी नरेश अजीत सिंह विदेश से लौटने के बाद पहले अपनी रियासत गये. जब उन्हे मालूम हुआ कि स्वामी का शरीर अस्वस्थ है तब वे स्वामी से मिलने कलकत्ता आये हुए थे. ऐसे अवसर पर स्वामी को कलकत्ता लौट जाना ही उचित जान पडा खेतरी नरेश अपने अन्य प्रमुख दरबारियो के साथ आलम बाजार मठ मे ठहरे. मठ के निवासी, स्वामी के गुरुभाइयो ने उनका भव्य स्वागत किया. स्वामी के दर्शन और वार्तालाप से खेतरी नरेश का जी नही भरा, वे स्वामी को खेतरी ले जाना चाहते थे पर चिकित्सको की स्वामी पर कडी निगरानी थी. वे उन्हे पूर्ण विश्राम की ही स्थिति मे रखना चाहते थे अत· स्वामी ने उनसे निकट भविष्य मे मिलने का वचन देकर उन्हे विदा किया

स्वामी फिर लौट कर दार्जिलिंग नही गये अपने सभी गुरुभाइयो के बीच आलम बाजार मठ का जीवन उनके लिए विशेष आकर्षक था. स्मृति की डोर खीचते ही वर्तमान की यवनिका हट जाती और अतीत की न जाने कितनी भूली-बिसरी घटनाएँ वहा उपस्थित हो जाती थी कल्पनाप्रिय विवेकानन्द इन्ही दृश्यो मे प्राय: खो जाते दक्षिणेश्वर का काली मदिर यहाँ से पास ही था यहा गुरुदेव के सान्निध्य का उन्हे भास होता इससे उन्हें नयी शक्ति और नयी प्रेरणा प्राप्त होती थी. यहा स्वामी के पास कई पढे-लिखे शिक्षित युवक सन्यासाश्रम की दीक्षा लेने आये स्वामी ने बहुतो को दीक्षित भी किया प्रतिदिन कुछ समय के लिए वे वेदान्त तथा भगवत्-गीता की कक्षा लिया करते परन्तु उनमे से एक व्यक्ति के सम्बन्ध मे उनके गुरु-भाइयो ने कुछ अडचने उत्पन्न कर दी कारण उस व्यक्ति का विगत जीवन पवित्र नही था. अत: उस व्यक्ति को सन्यास की दीक्षा लेकर आश्रम मे रहने देना वे लोग नही चाहते थे उन लोगो का कथन था कि इससे अन्य गुरुभाइयो पर बुरा असर पडेगा स्वामी गुरुभाइयों के इस विचार से सहमत नही हुए उन्होने कहा · 'यह क्या ? यदि हम पापियो से दूर रहेगे तो भला उनकी रक्षा कौन करेगा ? इसके अतिरिक्त जबकि यहा आश्रम मे सन्यास ग्रहण कर यह हमारी शरण मे आया है तब इससे प्रत्यक्ष मालूम होता है कि उसके विचार पवित्र हैं ऐसी हालत मे हमे उसकी अवश्य ही सहायता करनी चाहिए यदि कोई बुरा और पतित है भी तो तुम लोगो को उनके चरित्र का सशोधन करना चाहिए. अगर ऐसा नही कर सकते तो फिर यह गेरुआ वस्त्र पहनने से क्या लाभ ? फिर तुमने शिक्षक का रूप क्यो धारण किया है ?'

इस तरह का प्रसंग एक बार पहले भी आ चुका था. सन् १८९६ मे जब स्वामी स्विट्ज़रलैंड मे थे, उन्ही दिनो दक्षिणेश्वर मे गुरुदेव श्रीरामकृष्ण परमहस का वार्षिकोत्सव मनाया जा रहा था उस महोत्सव के दिन मंदिर में बहुत सी वेश्याएँ भगवत् दर्शन-पूजन के लिए आयी थी. कई लोगो ने इस पर आपत्ति प्रकट की और इसके विरुद्ध स्वामी के पास चिट्ठी लिखी स्वामी अपने एक गुरुभाई रामकृष्णानन्द के पास इस विषय मे लिखते हैं : (१) यदि वेश्याओ को दक्षिणेश्वर जैसे महान् तीर्थ मे जाने की अनुमति नही है तो वे और कहाँ जायें ? ईश्वर विशेष-पापियो के लिए प्रकट होते है, पुण्यवानो के लिए कम. (२) जो लोग मदिर मे भी यह सोचते हैं कि यह वेश्या है, यह मनुष्य नीच जाति का है, दरिद्र है या मामूली आदमी है—ऐसे लोगो की सख्या (जिन्हे तुम सज्जन कहते हो) जितनी कम हो, उतना अच्छा क्या वे लोग जो भक्तो की जाति, लिंग या व्यवसाय देखते हैं, हमारे प्रभु को समझ सकते हैं ? मैं प्रभु से प्रार्थना करता हूँ कि सैकडो वेश्याएँ आयें और उनके चरणो मे अपना सिर नवायें और यदि एक भी सज्जन न आये तो भी कोई हानि नहीं वेश्याएँ आयें, शराबी आयें, चोर-डाकू आयें, सभी आयें, श्रीप्रभु का द्वार सबके लिए खुला है.'

लगातार अथक परिश्रम से उनका बदन टूट चुका था, किन्तु अपरिमित आत्मबल से वे अपने को खीच रहे थे. उनकी शारीरिक स्थिति देख कर उनके गुरु भाई एव शिष्यगण भयभीत हो गये चिकित्सको ने उन्हे किसी ठडे स्थान पर जाकर विश्राम करने का परामर्श दिया इसी बीच अलमोड़ा के कई ख्यातिप्राप्त एवं सम्पन्न निवासियो के निमत्रण पत्र स्वामी के पास पहुँच चुके थे. अपने लिए नहीं—भारत के लिए अभी उनकी आवश्यकता थी. अत: उन्हें हिमालय की गोद मे विश्राम कर शीघ्र स्वास्थ्य-लाभ करना होगा—ऐसी बातें उनके मस्तिष्क मे चक्कर काटने लगी थी. इच्छा नही होने पर भी उन्होने स्थिति को गम्भीर समझ कर, अलमोड़ा मे जलवायु परिवर्तन के लिए चले जाने का निश्चय किया.

यह निश्चय ६ मई १८९४ को कार्यान्वित हुआ. कुछ गुरुभाइयो और शिष्यो के साथ स्वामी ने कलकत्ते से अलमोडा के लिए प्रस्थान किया. उनके स्वागत के लिए अलमोड़ा के हिन्दू निवासी पहले से तैयार थे. अलमोडा से कुछ दूर पहले ही लोदिया नामक स्थान मे पहुच कर उन लोगो ने उनकी अगवानी की. स्वामी को लोगो ने सुसज्जित घोड़े पर बैठाया, उसके साथ-साथ एक लम्बा जुलूस चल पडा. छतो और खिड़कियों मे स्त्रियां पुष्पो और अक्षतो की वर्षा करने लगी. स्वामी विवेकानन्द की जय-जयकार के साथ जुलूस सभा मडप मे पहुचा. बीमारी, यात्रा और भीड मे श्रान्त, स्वामी की मन स्थिति का ज्ञान भला वहाँ के उत्सुक दर्शकों का क्या होता ? उनका अदम्य उत्साह दर्शनीय था. सभा मडप मे दो अभिनन्दन-पत्र पढे गये बहुत दिनो से स्वामी के हृदय मे यह विचार पल रहा था कि वे

हिमालय की गोद मे अपना जीवन विताते. वहाँ सनातन धर्म की शिक्षा और प्रचार के लिए एक आश्रम की स्थापना करते. अपने भाषण मे उन्होने हिमालय की, जो त्याग के प्रतीक के रूप मे युगो से खडा है, जिसकी बाहुओ मे वडे-वडे प्राचीन ऋषियो ने शरण पायी है, वडी भावभीनी अभ्यर्थना की. उन्होने कहा 'यह स्थान हमारे पूर्वजो के स्वप्न का देश है, जिसमे भारत जननी श्री पार्वती जी ने जन्म लिया था. यह वही पवित्र स्थान है जहाँ भारतवर्ष का प्रत्येक यथार्थ सत्यपिपासु व्यक्ति अपने जीवन काल के अन्तिम दिन व्यतीत करना चाहता है इसी दिव्य स्थान के पहाडो की चोटियो पर, इसकी गुफाओ के भीतर तथा इसके कल-कल वहने वाले झरनो के तट पर महर्षियो ने अनेकानेक गूढ भावो तथा विचारो को सोच निकाला है, उनका मनन किया है और आज हम देखते हैं कि उन विचारो का केवल एक अंश ही इतना महान् है कि उस पर विदेशी तक मुग्ध है तथा ससार के धुरधर विद्वानो एवं मनीषियो ने उसे अतुलनीय कहा है. हिमालय को वैराग्य और त्याग का प्रतीक बताते हुए उन्होने यह आशा व्यक्त की कि भविष्य मे जव भिन्न-भिन्न धर्मों के आपसी झगडो का अन्त हो जायेगा तो विश्व के कोने-कोने से लोग शान्ति की खोज मे हिमालय की शरण मे आयेंगे उनके शब्दो मे, 'जिस प्रकार हमारे पूर्वज अपने जीवन के अन्तकाल मे इस हिमालय पर खिंचे हुए चले आते थे, उसी प्रकार भविष्य मे पृथ्वी भर की शक्तिशाली आत्माएँ इस गिरिराज की ओर आकर्षित हो कर चली आयेंगी. यह उस समय होगा जब कि भिन्न भिन्न सम्प्रदायो के आपसी झगडे आगे याद नही किये जायेंगे, जव धार्मिक रूढियो के सम्बन्ध का वैमनस्य नष्ट हो जायेगा, जब हमारे और तुम्हारे धर्म सम्बधी झगडे विल्कुल दूर हो जायेंगे तथा जव मनुष्यमात्र यह समझ लेगा कि केवल एक ही चिरन्तन धर्म है और वह है स्वयं मे परमेश्वर की अनुभूति. शेष जो कुछ है वह सब व्यर्थ है.' अन्त मे हिमालय मे एक आश्रम की स्थापना के अपने निर्णय का कारण बताते हुए उन्होंने कहा . 'इन पर्वत श्रेणियो के साथ हमारी हिन्दू जाति की सर्वोत्तम स्मृतियाँ सम्बद्ध हैं यदि यह हिमालय धार्मिक भारत के इतिहास से पृथक कर दिया जाय तो शेप बहुत कम रह जायेगा. अतएव यही पर एक केन्द्र होना चाहिए—जो कर्म-प्रधान न हो, वरन् शान्ति का हो, ध्यान धारण का हो और मुझे पूर्ण आशा है कि एक न एक दिन ऐसा अवश्य होगा.'

वार-वार स्वामी का ध्यान शान्ति की ओर, ध्यान-धारण की ओर जाता था, लेकिन उनका जीवन तो कर्मप्रधान होने के लिए ही बना था. कुछ दिन वे अवश्य बडी शान्ति से रहे अलमोडा नगर के एक प्रसिद्ध व्यवसायी लाला बद्रीसहाय ने वडे आग्रह से स्वामी तथा उनके गुरुभाइयो और शिष्यो को अपना अतिथि बनाया. अलमोड़े से करीब २० मील दूर अपने एक बगीचे वाले मकान मे इन लोगो को ठहराया तथा हर तरह की सुविधा का ध्यान रखा. वैराग्य उत्पन्न करने वाली

हिमालय की गरिमापूर्ण शोभा के बीच स्वामी का स्वास्थ्य धीरे-धीरे सुधरने लगा. सुबह-शाम टहलना, अपने थोड़े से शिष्यो और गुरुभाइयो के साथ धर्म वार्ता तथा अधिकाश समय भगवत्-ध्यान, यही स्वामी जी की दिनचर्या थी. लेकिन यह दिनचर्या कुछ ही दिनो तक शान्तिपूर्ण ढग से चल पायी हिमालय के निर्जन जगलो मे छिपे रहने पर भी स्वामी बाह्य जगत की गतिविधियो से अपने को अछूता नही रख सके. विदेश यात्रा के बाद भारत की भूमि पर पाँव रखते ही जो इनके भव्य स्वागत् सत्कार का सिलसिला चला सो अब तक चलता रहा था. सम्पूर्ण भारत मे स्वामी की बढती हुई ख्याति, लोगो मे अपनी धार्मिक भावना की सजगता, हिन्दुओ का सगठन, इन सबने भारत मे आये हुए अमरीकी मिशनरियो के हृदय मे ईर्ष्या की अग्नि जला दी शिकागो धर्म सम्मेलन मे स्वामी के द्वारा सनातन धर्म की विजय-पताका लहराने के बाद, भारत मे धार्मिक जागृति की लहर शीघ्रता से फैल रही थी. इस लहर के प्रबल वेग को रोकने मे मिशनरी लोग सर्वथा असमर्थ हो रहे थे. वे स्वामी के विरुद्ध झूठी निन्दा का प्रचार करने लगे. परन्तु यहाँ उनके कपोल-कल्पित वाग्जाल मे फँसने वाले बहुत कम लोग थे. अतः इन मिशनरियो ने अमरीका मे स्वामी के विरुद्ध झूठी निन्दा के प्रचार मे अपनी पूर्ण शक्ति लगा दी ताकि स्वामी की अनुपस्थिति मे अमरीका मे हो रहा वेदान्त प्रचार का कार्य जड-मूल सहित नष्ट हो जाये.

इस काम मे उन्हे शिकागो धर्म-सभा के अध्यक्ष, डाक्टर बैरोज से भी बहुत सहायता मिली बैरोज स्वामी के भारत लौटने के पहले ही भ्रमण के उद्देश्य से भारत आये हुए थे उनके यथोचित स्वागत के लिए स्वामी ने लदन से अपने गुरुभाइयो को लिखा था. अत' कलकत्ते मे उनका पूर्ण स्वागत समारोह हुआ. परन्तु वे अपने भाषणो और व्यवहार से लोगो के हृदय नही जीत सके इस सम्बन्ध मे स्वामी ने अपने एक शिकागो के मित्र के पास लिखा था . 'डा० बैरोज के स्वागत के लिए मैंने लन्दन से अपने देशवासियो को पत्र लिखा उन लोगो ने अत्यन्त आव-भगत के साथ उनकी अभ्यर्थना की थी. किन्तु वे यहाँ के लोगो मे प्रेरणा-संचार नही कर सके इसके लिए मैं दोषी नही हूँ' स्वामी विवेकानन्द के यश और कीर्ति की लहर मे बैरोज का व्यक्तित्व खो सा गया. यह उन्हें भाया नही जिस हृदय ने शिकागो मे कभी विवेकानन्द के लिए अथाह प्रेम और सहानुभूति दर्शायी थी, वही हृदय अब ईर्ष्या की ज्वाला मे दहकता हुआ स्वामी के चरित्र पर, उनके कार्यों पर अगारे उगलने लगा बैरोज अपने देश लौट कर स्वामी के विरुद्ध मिशनरियो के कार्य मे सहयोग देने लगे अमरीका मे उन्होने पत्रकारो के बीच स्वामी की बुरी तरह आलोचना की, झूठ आरोप लगाये उन्होने यहाँ तक कह डाला कि स्वामी ने भारत जा कर अमरीकी स्त्रियो के आचार-विचार की घोर निन्दा की है फलस्वरूप अमरीका मे स्वामी के विरुद्ध एक आन्दोलन की चेष्टा चल पड़ी. कई पत्र-पत्रिकाएँ

स्वामी की कटु-आलोचना से चटपटी बनायी जाने लगी भारत मे भी एक-दो पत्रो मे स्वामीकी आलोचना छपी, जिसमे मिशनरियो का हाथ था इन सभी देशी-विदेशी पत्र-पत्रिकाओ की कतरनें स्वामी के पास पहुँचने लगी.

इस तरह की खबरो से हिमालय का वह शान्त-स्निग्ध और आध्यात्मिक वातावरण, क्षुद्र सासारिकता की गध से दूषित होने लगा परन्तु स्वामी गम्भीर और अडिग बने रहे, बिल्कुल हिमालय की तरह अलमोड़े के सुन्दर पहाडी उद्यानो, क्षितिज तक विस्तृत हिमालय के हिमाच्छादित शिखरो मे उन्होने अपने भावुक मन को उलझा लिया, और स्वदेश और विदेश मे उत्पन्न सारी निन्दाओ के गरल को उपेक्षा के साथ अविचलित रूप से पी गये वे इस सत्य से परिचित थे कि नूतन नीति के प्रचारको को विघ्न-विपत्ति और निन्दा-अपवाद का सामना करना तथा आगे जान तक से भी हाथ धोना पडा है स्वामी के साथ यह कोई नयी बात नही हो रही थी. वे यह भी समझ रहे थे कि बैरोज एव ईसाई मिशनरियो की स्पर्धा और ईर्ष्या ने ही अमरीका मे इतना बडा तूफान खडा कर दिया था

स्वामी ने अपनी एक मित्र तुल्य अमरीकी शिष्या को बैरोज की भारत मे असफलता के विषय मे २८ अप्रैल, १८९७ को लिखा 'मुझे आशा है कि डा० बैरोज इस समय अमरीका पहुच गये होगे बेचारे, वे यहाँ अति कट्टर ईसाई धर्म का प्रचार करने आये थे, और ऐसा हुआ कि किसी ने उनकी नही सुनी. इतना अवश्य है कि उन्होने प्रेमपूर्वक उनका स्वागत किया, परन्तु वह भी मेरे पत्र के कारण ही हुआ था. मैं उनको बुद्धि तो नही दे सकता था. इसके अतिरिक्त वे कुछ विचित्र स्वभाव के व्यक्ति थे मैंने सुना कि मेरे भारत आने पर राष्ट्र ने जो खुशी मनायी, उससे जलन के मारे वे पागल से हो गये थे. कुछ भी हो, तुम लोगो को उनसे बुद्धिमान व्यक्ति भेजना उचित था, क्योकि डा० बैरोज के कारण हिन्दुओ के मन मे धर्म प्रतिनिधि सभा एक स्वाँग सी बन गयी है अध्यात्म-विद्या के सम्बन्ध मे पृथ्वी का कोई भी राष्ट्र हिन्दुओ का मार्ग-दर्शन नही कर सका और विचित्र बात तो यह है कि ईसाई देशो से कितने लोग यहा आते है वे सब एक ही प्राचीन मूर्खतापूर्ण तर्क देते है कि ईसाई धनवान और शक्तिमान हैं और हिन्दू नही—इसलिए ईसाई धर्म हिन्दू धर्म की अपेक्षा श्रेष्ठ है ·· ऐसा लगता है कि पश्चिमी राष्ट्र वैज्ञानिक संस्कृति मे चाहे कितने ही उन्नत क्यो न हो, तत्वज्ञान और आध्यात्मिक शिक्षा मे वे निरे बालक ही है. भौतिक ज्ञान केवल लौकिक समृद्धि दे सकता है परन्तु अध्यात्म विज्ञान शाश्वत जीवन के लिए है'

९ जुलाई को अलमोडे मे स्वामी ने मेरी हेल को, अमरीका मे अपने प्रचार के विरुद्ध प्रचार के सम्बध मे, फिर लिखा और यह स्वीकार किया कि उन्होने एक बार कुछ अमरीकी स्त्रियो की अफवाह फैलाने की आदत की चर्चा की थी. उनका अन्दाज था कि मिशनरी लोग इसी का इस्तेमाल उनके विरुद्ध [illegible] रहे थे [illegible]

शब्दो मे 'बात यह हुई कि अपनी एक वक्तृता मे मैंने इगलिश चर्च वाले सज्जनो को छोड बाकी कुल पादरियो तथा उनकी उत्पत्ति के बारे मे कुछ कहा था. प्रसगवश मुझे अमरीका की अत्यत धार्मिक स्त्रियो और उनकी बुरी अफवाह फैलाने की शक्ति का भी उल्लेख करना पड़ा था मेरे अमरीका के कार्य को बिगाडने के लिए, इसी को पादरी लोग सारी अमरीकी जाति पर लाछन कह कर शोर मचा रहे हैं, क्योकि वे जानते है कि मेरे विरुद्ध जो भी कुछ कहा जाये, वह अमरीकावासियो को पसन्द ही होगा.' स्वामी यह अपनी सफाई मे बिलकुल नही कह रहे थे; उनका तो कहना था कि अमरीकियो को अपनी आलोचना से घबड़ाना नही चाहिए, विशेषकर तब जब वे दूसरो की आलोचना करने मे कभी नहीं हिचकते थे. जैसा कि उन्होने लिखा. 'प्रिय मेरी, अगर मान भी लिया जाये कि मैंने अमरीकियो के विरुद्ध सब तरह की कडी बातें कही हैं तो भी क्या वे हमारी माताओ और बहनो के बारे मे कही गयी दूषित बातो के लक्षाश को भी चुका सकेगी ? ईसाई अमरीकी नर-नारी हमे भारतीय बर्बर कह कर जो घृणा का भाव रखते हैं, क्या सात समुद्रो का जल भी उसे बहा देने मे समर्थ होगा ? और हमने उनका बिगाडा ही क्या है ? अमरीकावासी पहले अपनी समालोचना सुन कर धैर्य रखना सीखें, तब कही दूसरो की समालोचना करें '

विवेकानन्द ने यह स्पष्ट करने मे कोई कोर-कसर नही छोडी कि उन्हें इसकी तनिक भी परवाह नही थी कि अमरीकावासी उनके सम्बन्ध मे क्या सोचेंगे. उन्होने लिखा: 'फिर उनका मैं कर्जदार थोडे ही हूँ तुम्हारे परिवार, श्रीमती बुल, लेगेट परिवार और दो-चार सहृदय जनो को छोड कौन मुझ पर मेहरबान रहा है ? अपने विचारो को व्यावहारिक रूप देने मे किसने मेरा हाथ बटाया ? मुझे परिश्रम करते-करते प्राय मौत का सामना करना पडा है. मुझे अपनी सारी शक्तियाँ अमरीका मे खर्च करनी पडी, केवल इसीलिए कि वहाँ वाले अधिक उदार और आध्यात्मिक होना सीखें. इगलैंड मे मैंने केवल छः महीने ही काम किया. वहाँ किसी ने मेरी निन्दा नही की, सिवा एक के और वह भी एक अमरीकी स्त्री की करतूत थी, जिसे जानकर मेरे अग्रेज मित्रो को तसल्ली मिली.' मेरी हेल को अपने सम्बन्ध में आश्वस्त करते हुए उन्होने लिखा : 'प्रिय मेरी, मेरे लिए तुम्हे भय की कोई बात नहीं. अमरीका के लोग बडे हैं, केवल यूरोप के होटलवालो, करोड़पतियो तथा अपनी दृष्टि मे ससार बहुत बडा है, और अमरीका वालो के रुष्ट हो जाने पर भी मेरे लिए कोई न कोई जगह जरूर रहेगी कुछ भी हो, मुझे अपने कार्य से बडी प्रसन्नता है.······ लोग क्या कहते हैं इसकी मुझे क्या परवाह ! वे तो अबोध बालक हैं, वे उससे अधिक क्या जानेंगे ? क्या ? मैं जो कि आत्मा का साक्षात्कार कर चुका हूँ और सारे सासारिक प्रपचो की असारता जान चुका हूँ, क्या बच्चो की तोतली बोलियो से अपने मार्ग से हट जाऊँ ?—मुझे देखने से ऐसा क्या लगता है ?'

विवेकानन्द को पूरा विश्वास था कि मिशनरी चाहे जो भी करें, भारत मे

जागरण की जो लहर चल पडी थी उसे अब कोई रोक नही सकता. उसी पत्र मे उन्होने आगे लिखा : 'मैं जानता हूँ मेरा काम समाप्त हो चुका—अधिक से अधिक तीन या चार वर्ष आयु के और बचे है मुझे अपनी मुक्ति की इच्छा अब बिल्कुल नही, सासारिक भोग तो मैंने कभी चाहा ही नही. मुझे सिर्फ अपने यत्र को कार्योपयोगी और मजबूत देखना है. निश्चित रूप से यह जान कर कि कम से कम भारत मे मैंने मानव जाति के कल्याण का एक ऐसा यत्र स्थापित कर दिया है, जिसे कोई शक्ति नष्ट नही कर सकती, मैं सो जाऊँगा और आगे क्या होने वाला है इसकी परवाह नही करूँगा. मेरी अभिलाषा है कि मैं बार-बार जन्म लूं और हजारो दु.ख भोगता रहूँ ताकि मैं उस एकमात्र सम्पूर्ण आत्माओ के समष्टि रूप ईश्वर की पूजा कर सकूं जिसकी सचमुच सत्ता है और जिस पर मुझे विश्वास है.'

स्वामी विवेकानन्द को सचमुच अब ऐसा लगने लगा था कि उनके जीवन के तीन-चार ही साल शेष रह गये है. अतः उनकी मनोदशा अक्सर ही विरागपूर्ण रहने लगी थी. उन्हे लगता था कि उनका काम समाप्त हो गया है. नीद मे सोये हुए स्वदेशवासियो को जाग्रत कर देना ही उनका मुख्य काम था. उन्हे विश्वास था कि यह काम नियत गति से चलता रहेगा, अब उनकी जरूरत नही है अपनी परम प्रिय शिष्या बहन निवेदिता (कुमारी नोबल) के पास उन्होने अलमोडे से लिखा. 'यही सत्य है हम एक फदे मे फस गये हैं और जितनी जल्दी उससे निकल सकेंगे, उतना ही हमारे लिए अच्छा होगा. मैंने सत्य का दर्शन कर लिया है, अब यदि यह शरीर ज्वार-भाटे के समान बहता है तो मुझे क्या चिन्ता ?'

इधर इसी समय बंगाल के मुर्शिदाबाद मे दुर्भिक्ष का प्रकोप शुरु हुआ. स्वामी अखण्डानन्द दुर्भिक्ष पीडित व्यक्तियो के दु ख दर्द दूर करने मे तन-मन से लगे हुए थे. उन्होने अपने दो और शिष्यो को अलमोडा से सहायता कार्य के लिए मुर्शिदाबाद भेजा. प्रोत्साहन के पत्र लिखे. उनका मन वहां जाकर दुखी-जनो की सेवा करने के लिए अधीर हो उठा. किन्तु चिकित्सको ने उन्हे वहां नही जाने दिया. कलकत्ता और मद्रास मे वेदान्त-प्रचार का काम भी पूरे उत्साह से चल रहा था इससे स्वामी को शान्ति मिलती थी अभेदानन्द द्वारा इगलैड मे, और मिशनरियो की सारी बाधाओ के बावजूद शारदानन्द द्वारा अमरीका मे वेदान्तप्रचार का कार्य भली भांति चलते हुए देख कर भी स्वामी को बहुत प्रसन्नता होती थी ऐसा लगता था मानो उनके व्याधिग्रस्त शरीर मे एक नूतन शक्ति प्रस्फुरित हो रही हो. उन्हें लगता था जैसे कोई अदृश्य का कार्य करने के लिए उन्हें सहारा दे रहा हो फिर भी मृत्यु की छाया कही आस-पास ही खडी है, इसका आभास उन्हें मिल चुका था. अब दिन थोड़े हैं और कार्य बहुत है, यह सोचते-सोचते वे व्यग्र हो उठते. उन्होने अपने शिष्यो से कहा कि शरीर पूरी तरह स्वस्थ नही होने पर भी वे अब अलमोडा मे अकर्मण्य की तरह बैठे नहीं रह सकते. उन्हें उत्तर भारत का भ्रमण करना है, लोगो को वेदान्त

दर्शन से अवगत कराना है उन्हें शरीर और मस्तिष्क से शक्तिमान बनाना है, जिससे स्वय वे अपने जीवन मे सुख-शान्ति ला सकें. उनके चिकित्सक चाहते थे कि वे अलमोडे मे थोडे दिन और आराम कर लें, लेकिन उनके निर्णय पर वहां के चिकित्सको के परामर्श का कोई असर नही पडा. उनके इस अकस्मात् भ्रमण के निश्चय ने शिष्यो और गुरुभाइयो को चिंतित बना डाला. लेकिन स्वामी का निश्चय, निश्चय था. उसमे थोडा भी परिवर्तन लाने का साहस किसी मे नही था.

स्वामी के अलमोडा छोडने की बात पल भर मे चारो ओर फैल गयी. अलमोडा निवासी बहुत दिनो से स्वामी का भाषण सुनने के लिए लालायित थे, किन्तु उनके अस्वस्थ रहने के कारण, अधिक जोर नही दे रहे थे. जब लोगो ने स्वामी के जाने की बात सुनी तो उनसे भाषण देने के लिए आग्रह करने लगे स्वामी ने स्वीकृति दे दी और स्थानीय जिला स्कूल मे वेदान्त दर्शन पर सुललित हिन्दी मे भाषण दिया. इस वक्तव्य से स्वामी की ख्याति चारो ओर फैल गयी. वहां के अग्रेज निवासियो ने स्वामी के विषय मे सुना और वे भी इनका भाषण सुनने के लिए उत्सुक हुए फलस्वरूप गुरखा सैनिक दल के कर्नल पुली के सभापतित्व मे वहां के 'इगलिश क्लब' मे एक सभा हुई. सभास्थल स्थानीय अंग्रेजो एव उच्च श्रेणी के भारतीयो से भरा था. स्वामी के भाषण का विषय था—'वैदिक उपदेश . तात्विक और व्यावहारिक' स्वामी ने उपासना पद्धति के उद्गम से अपना भाषण आरम्भ किया, फिर वेदो के रूप, विशेषताओ तथा उसकी शिक्षाओ का सक्षेप मे वर्णन किया, तथा अन्त मे आत्मा-परमात्मा के सम्बन्धो पर प्रकाश डाला भाषण समाप्त करते हुए वे इतने भावविभोर हो गये कि वहां का सारा वातावरण आध्यात्मिकता से भर उठा. उनकी शिष्या, कुमारी मुलर, जो उस सभा मे उपस्थित थी, लिखती हैं : 'थोडी देर के लिए ऐसा लगा मानो व्याख्याता, व्याख्यान तथा श्रोतागण सब एक हो गये है. मानो मैं, तुम, वह कुछ भी नही है जो सब विभिन्न व्यक्ति यहां आये थे, मानो वे थोडी देर के लिए उस स्वामी के शरीर से महाशक्ति के साथ निकलने वाली आध्यात्मिक ज्योति मे मिल कर अपने को भूल, मन्त्रमुग्ध हो गये हो.'

अलमोडा मे ढाई माह का समय व्यतीत करने के बाद ७ अगस्त १८९७ को अस्वस्थता की स्थिति मे ही स्वामी की यात्रा फिर आरम्भ हो गयी. पजाब और कश्मीर मे उनके पास कई निमत्रण पत्र आ चुके थे अपने कुछ गुरुभाइयो और शिष्यो के साथ ९ अगस्त को वे बरेली पहुँचे बरेली पहुचते ही वे तेज ज्वर के शिकार हो गये. वहां की स्वागत समिति ने बरेली के क्लब हाउस मे उनके निवास और भोजन का अच्छा प्रबन्ध कर रखा था स्वामी वहां चार दिन ठहरे ज्वर पूरी तरह भागा नही शारीरिक दुर्बलता के रहते हुए भी वे अपने कार्य मे पूरी लगन के साथ जुटे रहे प्रात सध्या धार्मिक वार्ता के साथ-साथ उन्होने आर्य समाज के अनुयायियो को अपने आदर्शो को कार्यरूप मे परिणत करने का उत्साह दिलाया और

एक छात्र समिति की कल्पना की १२ अगस्त को उन्होने बरेली छोडने की योजना बनायी परन्तु मध्याह्न मे भोजन के उपरान्त फिर उन पर तेज ज्वर का आक्रमण हो आया. लेकिन उनकी यात्रा रुकी नही उसी रात उन्होने अंबाला की ओर प्रस्थान किया. वहाँ वे एक सप्ताह ठहरे स्टेशन पर उनकी श्री और श्रीमती सेवियर से भेंट हो गयी अंबालावासियो ने स्वामी की समुचित आवभगत की यहाँ पहुँचकर स्वामी का ज्वर पूरी तरह उतर गया अब वे अपने काम मे और तेजी से जुट गये और प्रतिदिन मुसलमान, ब्राह्म, आर्यसमाजी आदि विभिन्न सम्प्रदायो के प्रमुख कार्यकर्ताओ के साथ धार्मिक तथा सामाजिक विषयो पर विचार-विमर्श करते रहे

अंबाला से अमृतसर और अमृतसर मे रावलपिंडी, सर्वत्र उनका यथोचित आदर मान होता रहा शारीरिक अस्वस्थता के कारण इच्छा रहते हुए भी वे वृहत् भाषण की योजना नही बना सके. रावलपिंडी से अपने साथियो के साथ मरी के लिए प्रस्थान किया. मरी और बारामूला होते हुए उन्हे कश्मीर जाना था सेवियर साथ चल रहे थे मरी मे श्री सेवियर की तबियत खराब हो गई उस यात्रा का श्रम उनकी सहन शक्ति के बाहर था अत वे अपनी पत्नी के साथ वही ठहर गये स्वामी की कश्मीर यात्रा के एक दिन पहले उन्होने स्वामी के नाम एक लिफाफे मे आठ सौ रुपये काश्मीर यात्रा के खर्च के लिए भेजे और अपनी शारीरिक अस्वस्थता की विवशता के कारण कश्मीर जाने से क्षमा मागी. स्वामी एक साथ इतने रुपयो को देखकर चकित रह गये. उन्होने मन मे हिसाब लगाया कि यात्रा के लिए इतने रुपये आवश्यकता से अधिक हैं अत. वे स्वय सेवियर के पास गये और उनमे से आधे रुपये आग्रह के साथ लौटा दिये. दूसरे दिन स्वामी और उनकी पार्टी ने तागे के द्वारा बारामूला की ओर प्रस्थान किया; फिर बारामूला से नौका द्वारा श्रीनगर श्रीनगर के प्रधान जज ऋषिवर मुखोपाध्याय ने स्वामी को अपने घर ठहराया. यहाँ पहुँचने के तीसरे दिन वे कश्मीर के महाराजा अमरसिंह के राजभवन मे सम्मानित किये गये. वहाँ महाराजा के एक प्रमुख कर्मचारी ने स्वामी से आग्रह किया कि वे महाराज के छोटे भाई, राजा रामसिंह, के दरबार मे अवश्य उपस्थित हो, क्योंकि राजा साहब को उनके दर्शन की बहुत लालसा है दूसरे दिन स्वामी अपने दल के साथ राजा रामसिंह के राजभवन मे उपस्थित हुए राजा ने स्वामी का यथोचित आदर-सत्कार किया, स्वय अपनी कुर्सी छोड कर उठा और वहाँ स्वामी को आग्रह के साथ बैठा कर और अन्य दरबारियो के साथ भूमि पर बैठ गया करीब दो घटे तक धर्म चर्चा चलती रही भारतीय जनता के कल्याण के लिए किस प्रकार के कदम उठाये जायें, इसके विषय मे भी विचार-विमर्श हुआ महाराज अमरसिंह के मत्री ने महाराजा की आज्ञा के अनुसार स्वामी के यथोचित स्वास्थ्य लाभ के लिए नौकागृह का प्रबध कर दिया. यहाँ से वे नौका भ्रमण के द्वारा कश्मीर के अनुपमेय प्राकृतिक सौंदर्य का निरीक्षण करने लगे साथ-साथ उन्होंने कश्मीर के इतिहास प्रसिद्ध स्थानो को भी देखा. श्रीनगर

के पढे-लिखे लोगो ने बडे समारोह के साथ अपना अभिनन्दन पत्र इन्हें समर्पित किया उत्तर मे स्वामी ने छोटा सा भाषण दिया किन्तु लोगो को इससे संतोष कहाँ ? उनके अनुरोध पर स्वामी ने दो घंटे तक हिन्दू धर्म पर धाराप्रवाह रूप मे अंग्रेजी मे भाषण दिया कश्मीर के महाराज जम्मू चले गये थे. उन्होने स्वामी को जम्मू आमंत्रित किया. अब करीब २० दिन का समय कश्मीर मे बिताने के उपरान्त स्वामी जम्मू की ओर चल पडे

जम्मू स्टेशन पर राजकर्मचारी स्वामी के स्वागत के लिए उपस्थित थे. राज्य के मेहमान के रूप मे उनकी उचित अभ्यर्थना हुई, फिर उन्हें एक निर्दिष्ट निवास स्थान पर ले जाया गया दोपहर मे भोजनोपरान्त वे राजभवन मे पधारे यहाँ काफी समय तक धर्म चर्चा के बाद समाज की गिरी हुई स्थिति पर बातचीत होती रही स्वामी ने इस पर बहुत जोर दिया कि समाज के निरर्थक वाह्याचार, अंधविश्वासो तथा कुसंस्कारो मे चिपके रहने पर राष्ट्र की उन्नति नही हो सकती, ये सब समाज को अज्ञानता और उससे भी गहरे पाप के गड्ढे मे गिराते हैं महाराज ने समुद्र यात्रा पर बात उठायी. स्वामी ने विदेश यात्रा की सार्थकता पर बल दिया और कहा कि बिना विदेश गये वास्तविक शिक्षा प्राप्त नही हो सकती. विदेश जाने के बाद ही आदमी समझ सकता है कि हम कितने पानी मे है विदेशो की अच्छाइयो को हम अपने ढग से अपना सकते हैं तथा उनकी बुराइयो मे हम अपने को सचेत कर सकते हैं महाराज के आग्रह पर स्वामी ने एक सार्वजनिक सभा मे भी भाषण दिया २६ अक्टूबर को यहाँ आठ दिन रहने के बाद उन्होने महाराजा से विदा ली

सियालकोट होते हुए ५ नवम्बर को स्वामी अपने साथियो के साथ लाहौर आये. यहाँ स्टेशन पर सनातन धर्म सभा के सदस्यो तथा विशाल जनता ने उनका स्वागत किया. सनातन धर्म सभा के सदस्यो के कधो पर स्वामी की देखभाल का उत्तरदायित्व था स्टेशन से वे लोग स्वामी को राजा ध्यानसिंह के महल मे ले गये. कुछ देर के बाद लाहौर ट्रिब्यून के सम्पादक नरेन्द्रनाथ गुप्त के साथ स्वामी का साक्षात्कार हुआ दूसरे दिन राजा ध्यानसिंह के महल के विशाल प्रागण मे सभा का आयोजन हुआ. चारो ओर से घिरा हुआ यह स्थान चार हजार व्यक्तियो से ठसाठस भर गया था परन्तु सिंहद्वार पर अभी अपार जनसमूह भीतर आने के लिए व्यग्र था. वे लोग भीतर घुस नही पाये और निराश होकर उन्हें लौटना पडा भाषण का विषय था—'हमारी समस्याए' इसके अतिरिक्त लाहौर के अपने अल्पकालिक प्रवास में स्वामी ने और भी तीन अति महत्वपूर्ण भाषण दिये जिनके विषय थे हिन्दू धर्म का सामान्य आधार, भक्ति, और वेदान्त. भाषणो के विषय चाहे जो हो, स्वामी हर बार उसी विषय पर पहुच जाते थे कि भारत फिर किस तरह विश्व मे अपना पुराना स्थान प्राप्त कर सकेगा वे चाहते थे कि सारे देशवासी साम्प्रदायिकता के मतभेद को भूलकर तन-मन-धन से भारतमाता की सेवा मे जुट जायें

उन्होंने बार-बार लोगों को यह याद दिलायी कि भारत की विभिन्न जातियों और मतों के लोग अपनी जातीय या साम्प्रदायिक विशिष्टता को बनाये रखते हुए भी साथ मिल कर भारत को फिर से ऊंचा उठाने का कार्य कर सकते हैं. उन्होंने कहा— 'मैं यहां यह देखने नहीं आया कि हमारे बीच क्या-क्या मतभेद हैं, वरन् मैं तो यह खोजने आया हूं कि हम सबों की मिलन भूमि कौन सी है. यहां मैं यह जानने का प्रयत्न कर रहा हूं कि वह कौन सा आधार है, जिस पर हम लोग आपस में सदा भाई-भाई बने रह सकते हैं, किस नींव पर प्रतिष्ठित होने से वह वाणी, जो अनन्त काल से सुनाई दे रही है, उत्तरोत्तर अधिक प्रबल होती रहेगी मैं यहां तुम्हारे सामने रचनात्मक कार्यक्रम रखने आया हूं—ध्वंसात्मक नहीं. क्योंकि आलोचना के दिन अब चले गये, आज हम रचनात्मक कार्य के लिए उत्सुक हैं · अब तो पुनर्निर्माण का, फिर से संगठन का समय आ गया है. अपनी समस्त बिखरी हुई शक्तियों को एकत्र करने का और उस सम्मिलित शक्ति के द्वारा देश को प्राय सदियों से रुकी हुई उन्नति के मार्ग में अग्रसर करने का समय आ गया है.···आर्य सन्तानो, अब आगे बढ़ो'

लाहौर में स्वामी को आर्यसमाजी नेताओं से निकट का सम्बन्ध स्थापित करने का तथा उन्हें समझने का अच्छा अवसर मिला उन लोगों ने भी स्वामी की बातों में विशेष रुचि दिखाई. मूर्तिपूजा के विरोधी आर्यसमाजियों के साथ स्वामी विवेकानन्द का वाद-विवाद बड़ा प्रेमपूर्वक चलता था वे आर्यसमाजी नेताओं के चरित्र, त्याग तथा समाज कल्याण व्रत के विषय में श्रद्धा से नतमस्तक हो जाते किन्तु उनके साम्प्रदायिक कट्टरपन का प्रतिवाद वे खुले शब्दों में करते थे. स्वामी अपने विरोधी पक्ष के मतों का निर्मम भाव से खंडन करते थे. परन्तु उन के मत खंडन की रीति, उनकी बातचीत की कला इतनी मधुर तथा असाम्प्रदायिकता के भाव में रंजित रहती कि विरोधी पक्ष के हृदय में उनके प्रति सद्भावना के सिवा और कुछ नहीं रहता था. विचार में मतभेद होने पर भी आर्यसमाजी स्वामी को श्रद्धा की दृष्टि से देखते थे और उन के भाषणों को सुनने के लिए बड़ी संख्या में उपस्थित होते थे स्वामी की उदारता और असाम्प्रदायिकता को देख कर सनातन धर्म में विश्वास रखने वाले हिन्दू और आर्यसमाजी दोनों ही दल उन की ओर सहज ही आकृष्ट हो गये आर्यसमाजियों के सेवा-धर्म ने उन्हें स्वामी के निकट खींच लिया वे किसी गुणवान व्यक्ति विशेष की प्रशंसा करते नहीं थकते थे चाहे वह किसी भी जाति या किसी भी सम्प्रदाय का क्यों न हो. आर्यसमाज के भूतपूर्व प्रचारक और साथ ही स्वामी विवेकानन्द के विशेष भक्त स्वामी अच्युतानन्द ने अपनी डायरी में लिख रखा है 'एक दिन स्वामी किसी व्यक्ति की बहुत प्रशंसा कर रहे थे. तभी उन के भक्तों में से किसी ने कहा · स्वामी जी, वह व्यक्ति तो आप को नहीं मानता ? स्वामी ने तत्क्षण उत्तर दिया—भला आदमी बनने के लिए

मुझे मानना ही होगा, ऐसा थोडे ही है ?

लाहौर मे स्वामी से मिलने वालो मे वहाँ के एक गणित के प्रोफेसर श्री तीर्थराम गोस्वामी भी थे स्वामी के व्यक्तित्व और वक्तव्य से वे बडे प्रभावित थे. इन्होने प्रोफेसर का पद त्याग कर वेदान्त प्रचार मे अपना शेप जीवन लगा दिया. यही आगे चल कर स्वामी रामतीर्थ के नाम से प्रसिद्ध हुए भारत के अतिरिक्त इगलैंड और अमरीका जाकर भी इन्होने वेदान्त प्रचार का कार्य किया. स्वामी जब लाहौर से विदा लेने लगे तो श्री रामतीर्थ ने अपनी सोने की घडी उन्हे भेंट कर दी स्वामी ने सहर्ष उसे स्वीकार कर लिया. फिर तुरन्त बाद ही उसे श्री रामतीर्थ की जेब मे डालते हुए कहा—इस घडी का व्यवहार मैं इसी जेब से करूँगा श्री रामतीर्थ उन की अर्थपूर्ण दृष्टि का भेद समझ गये.

लाहौर के दस दिन स्वास्थ्य की दृष्टि से स्वामी के लिए अत्यत कठिन सिद्ध हुए—रात-दिन लोगो की भीड, भाषण और शास्त्रार्थ. हिमालय की गोद मे स्वच्छन्द जीवन बिता कर जो कुछ भी उन्होने शक्ति सचय की थी, उसका तीव्र गति से ह्रास हो रहा था लेकिन काम की दृष्टि से उनकी लाहौर यात्रा बहुत सफल रही पजाब मे आर्यसमाजियो का हृदय जीतना कोई आसान काम नही था, परन्तु इस मे भी स्वामी को आशातीत सफलता मिली. फिर भी उन्हे पजाब के अपने काम मे सन्तोष नही था उन्हें लगता था कि वहाँ के लोगो मे आध्यात्मिकता की ओर झुकाव बहुत कम है एक बार उन्होने कहा भी कि पच नदियो के जल से प्लावित वह मगल भूमि आध्यात्मिकता की दृष्टि से शुष्क है. वे चाहते थे कि पजाब के जन-मानस मे भक्ति का स्रोत प्रवाहित कर दें. ईश्वर की भक्तिपूर्ण आराधना मे वह शक्ति छिपी हुई है जो मानव को अधिक संवेदनशील बनाती है. जब तक हृदय मे सवेदना नही, तब तक भला समाज कल्याण कैसे हो सकता है. किन्तु शारीरिक अस्वस्थता के कारण स्वामी लाहौर मे और अधिक समय नही टिक सके. विश्राम के लिए उन्हें शीघ्र ही देहरादून जाना पडा. पर उन के जीवन मे भला विश्राम कहाँ था देहरादून मे खेतरी राज्य से निमत्रण पत्र आने शुरू हो गये. खेतरी नरेश की लालसा थी कि खेतरी राज्य की जनता भी स्वामी के सान्निध्य मे लाभान्वित हो

स्वामी खेतरी नरेश के आमत्रण को बहुत दिनो तक टाल नही सके. वे देहरादून से दिल्ली आये. यहाँ श्री और श्रीमती सेवियर तथा अपने गुरुभाइयो के साथ पाँच दिनो तक रुक कर सम्पूर्ण दिल्ली का भ्रमण किया. दिल्ली की प्राचीन इमारतें, लाल किला, पुराना किला, कुतुबमीनार तथा अनेक भग्नावशेष और धराशायी खडहर मूक भाषा मे स्वामी को अपने अतीत की कहानी सुनाने लगे, वह अतीत जिसकी यवनिका रामायण और महाभारत काल से ही उठ जाती है. स्वामी की आँखो के सामने यह दिल्ली कभी सजी सॅवरी खुशहाल सधवा के रूप मे, कभी

उजड़ी हुई, सिसकती विधवा के रूप में न जाने कितनी बार अपना वेष बदलती रहती थी. उत्कर्ष और अपकर्ष प्रकृति का शाश्वत नियम है, यह दिल्ली का रूप देखने पर प्रत्यक्ष लक्षित होने लगा. स्वामी का भाव-भीना हृदय वर्तमान से हट कर अतीत में विचरण करने लगा. वे जहाँ भी जाते, अपनी टोली का वहाँ के इतिहास से परिचय कराते जाते. उनके वर्णन इतने सजीव होते थे कि उन की टोली को मालूम पड़ता था जैसे वे भी अतीत के ही अंग बन गये हों इस प्रकार दिल्ली में पाँच दिनों में सिर्फ घूमना ही घूमना हुआ. वहाँ भाषण और प्रवचन से उनकी जान बची रही.

दिल्ली के बाद स्वामी अलवर पधारे. अलवर स्टेशन पर काफी बड़ी संख्या में लोग जुटे हुए थे. स्थानीय धनी मानी एवं शिक्षित व्यक्तियों ने उन का खूब स्वागत किया. अपने परिव्राजक काल में भी स्वामी एक बार अलवर आये थे. उस दिन और आज की दशा में कितना अन्तर था अलवर राज्य की ओर से स्वामी और उनके साथियों को राजभवन में ठहराने की व्यवस्था की गयी थी. स्वामी उन लोगों के साथ अपने निवास स्थान की ओर जाने ही वाले थे कि भीड़ को चीरती हुई उन की दृष्टि दूर खड़े एक व्यक्ति पर जा टिकी उस स्वागत समारोह के आचार विचार का बिना ख्याल किये वे उस अकिंचन व्यक्ति को पुकारने लगे—रामसनेही ! रामसनेही !' अति साधारण और धूमिल वस्त्रों में लिपटे उस व्यक्ति की बुझी-बुझी आँखें चमक उठीं मानो उसे कुबेर का धन मिल गया हो. पहली बार जब नितांत अपरिचित व्यक्ति के रूप में स्वामी अलवर पधारे थे तब रामसनेही ने उन्हें अपना अतिथि बनाया था और फिर स्वामी का शिष्य भी बन गया था राम-सनेही स्वामी के पास भावविह्वल बन कर आया स्वामी बड़े प्यार के साथ काफी देर तक उन से बातें करते रहे. रामसनेही के साथ बिताये हुए पुराने दिनों को याद कर स्वामी एक विचित्र प्रकार का आनन्द लूटने लगे

उस दिन स्वामी राजभवन में ठहरने चले गये किन्तु अलवर की अति संक्षिप्त यात्रा में भी वे अपने निर्धन शिष्यों और भक्तों के घर जाकर सरल भाव से भिक्षा ग्रहण करना नहीं भूले. अपनी पहली यात्रा के दौरान उन्होंने एक दरिद्र वृद्धा विधवा के घर भोजन ग्रहण किया था, यह बात वे भूले नहीं थे उन्होंने इस बार उस वृद्धा को कहला भेजा कि वे उस के हाथ की बनी मोटी रोटियां फिर खाना चाहते हैं वृद्धा ने जब भोजन की थाली स्वामी के सामने रखी तो उसकी आँखें डबडबा गयीं उस ने रुंधे हुए कंठ से कहा—मैं गरीब हूँ, इच्छा होते हुए भी तुम्हें देने लायक पकवान कहाँ से लाऊँ, मेरे बेटे ! उसकी परोसी हुई सामग्री को आनन्द से खाते हुए स्वामी ने कहा—माँ तुम्हारी इन रोटियों जैसा मधुर भोजन मुझे कभी खाने को नहीं मिला !" महिला के घर की दरिद्रता छिपाये नहीं छिपती थी. भोजन के उपरान्त जब स्वामी चलने लगे तो उन्होंने उस घर के परिचारक के हाथ में सौ रुपये का एक नोट हठपूर्वक पकड़ा दिया.

अलवर के बाद जयपुर और जयपुर के बाद खेतरी. जयपुर से खेतरी की दूरी करीब ६० मील है. खेतरी नरेश ने जयपुर से ही स्वामी तथा उनकी टोली के लिए रथ, घोडे तथा ऊट की व्यवस्था कर दी थी स्वय महाराजा ने खेतरी से बारह मील आगे बढ कर स्वामी का यथोचित स्वागत किया. खेतरी नगर फूल-माला, झण्डी-पताका, स्वागत-द्वार तथा दीपको से सजाया गया था लोग अति प्रसन्न और उत्तेजित थे रात्रि मे आतिशबाजी का खेल हुआ दरिद्रनारायणो को भोजन से परितृप्त किया गया स्वागत सभा मे जब स्वामी पधारे तब वहाँ की प्रथा के अनुसार सभी व्यक्तियो ने उनकी चरण-धूलि माथे से लगायी और दो-दो रुपये भेंट मे दिये महाराजा ने स्वय एक थाल मे तीन हजार रुपये उन्हें उपहार में दिये स्वामी को भेंट देने का कार्यक्रम समाप्त होने के बाद अभिनन्दन-पत्र पढा गया. फिर अभिनन्दन-पत्र का उत्तर देते हुए स्वामी ने बाल शिक्षा पर एक छोटा-सा व्याख्यान दिया.

स्वामी अपने शिष्यो के साथ राजभवन मे ठहरे हुए थे २० दिसम्बर को वहाँ उन्हो ने वेदान्त के सम्बन्ध मे करीब डेढ घण्टे तक भाषण दिया सभा मे स्थानीय शिक्षित भद्र व्यक्ति तथा कई यूरोपीय महिलाएँ भी उपस्थित थी महाराज स्वय सभापति थे. उन्होने उपस्थित श्रोताओ से स्वामी का परिचय कराया वेदात पर भाषण देते हुए स्वामी ने सर्वप्रथम यूनानी और आर्य जाति की प्राचीन सभ्यता और सस्कृति का चित्र खीचा, फिर पाश्चात्य जगत पर विभिन्न युगो मे किस प्रकार भारतीय विचारो का प्रभाव पडता रहा—इस का वर्णन भी उन्होने विस्तृत रूप से किया इसके पश्चात आदिग्रन्थ वेद की चर्चा चली. उन्होने कहा—वेद किसी व्यक्ति विशेष के वाक्य नही हैं. पहले कतिपय विचारो का शनै -शनै विकास हुआ, अत उन्हें ग्रन्थ का रूप दिया गया और वह ग्रन्थ प्रमाण बन गया. अनेक धर्म इसी प्रकार ग्रन्थबद्ध हुए है इन ग्रन्थो का प्रभाव भी असीम प्रतीत होता है हिन्दुओ के ग्रथ वेद है जिन पर अभी हजारो वर्षों तक हिन्दुओ को निर्भर रहना होगा लेकिन उन वेदो के सम्बन्ध मे अपने विचार बदलने होंगे और उन्हे नये सिरे से दृढ चट्टान की नीव पर स्थापित करना होगा ··इस के बाद क्रम से आगे बढते हुए उन्हो ने वेद के दो भागो—कर्मकाण्ड और ज्ञानकाण्ड की विस्तृत समीक्षा करते हुए अद्वैतवाद का महत्व समझाया

खेतरी मे बिताये हुए दिन स्वामी के लिए बहुत ही आनन्ददायक सिद्ध हुए. स्वागत-सम्मान, पुष्प-माला, भाषण-प्रवचन, थकान से टूटते हुए उनके शरीर के आधार-स्तम्भ थे इस बाहरी शोरगुल मे वे अपने शरीर की पुकार को सुन कर भी अनसुनी कर देते थे. एक का आतिथ्य समाप्त हुआ नही कि अन्य स्थानो से आतुर एव साग्रह निमत्रण पत्र आने लगते. आखिर वे किसकी-किसकी उपेक्षा करते ? उपेक्षा करना तो उन्होने जाना ही नही, चाहे वह व्यक्ति की हो या निमत्रण पत्र

की खेतरी से किशनगढ, अजमेर, जोधपुर और इन्दौर होते हुए वे खण्डवा पहुँचे. खण्डवा से बडौदा, गुजरात आदि से उनके पास निमन्त्रण के अनेक पत्र और तार मिले. परन्तु अब तक उन का शरीर बुरी तरह हार चुका था. चिकित्सकों ने उन्हें अति शीघ्र पूर्ण विश्राम करने का परामर्श दिया. अतः वे अपने शिष्यो के साथ १८९८ की जनवरी के मध्य मे कलकत्ता लौट आये.

इस तरह भारत के एक भाग से दूसरे भाग मे भ्रमण करते-करते करीब एक साल पूरा हो चला था स्वामी जहाँ-जहाँ गये, हर जगह भारतीय जागरण का शखनाद फूंकते रहे और कर्मक्षेत्र की ओर युवकों को ललकारते रहे जब अत्यधिक अस्वस्थता के कारण भ्रमण कुछ समय के लिए बन्द हो जाता और कभी दार्जिलिंग तो कभी अलमोडे या श्रीनगर मे रुकना पडता तो स्वामी भाषणो की जगह पत्रो द्वारा वही काम करते रहते. चुपचाप विश्राम करना उनके लिए असम्भव था. वे समझते थे कि जो (मधुमेह की) बीमारी उन्हें लग चुकी थी वह छूटने वाली नही थी, इसलिए जो कुछ जरूरी है उसे जल्दी-जल्दी कर लेना है, पता नही शरीर कब साथ छोड दे अलमोडे से २० मई १८९७ को स्वामी ब्रह्मानन्द को उन्होने लिखा— तुम डरते क्यो हो? क्या मानव की मृत्यु इतनी शीघ्र हो सकती है? अभी तो केवल साध्य दीप ही जलाया गया है, और अभी तो सारी रात गायन-वादन करना है. साहस के साथ कार्य मे जुट जाओ, हमे एक बार तूफान पैदा कर देना है.

स्वामी के मन मे बराबर बस यही, काम की धुन सवार रही वे न खुद आराम करना चाहते थे न अपने गुरुभाइयो या शिष्यो को आराम लेने देते थे जब कभी किसी को वे पत्र लिखते, उसे काम मे पिल पडने का आह्वान करते उन के एक शिष्य स्वामी अखण्डानन्द मुर्शिदाबाद मे उसी समय अकाल पीडितो की सहायता मे लगे हुए थे. उन के कामो का विवरण सुन कर स्वामी ने उन के पास अलमोडे से १५ जून १८९७ को लिखा तुम्हारे समाचार मुझे विस्तारपूर्वक मिलते जा रहे हैं, और मेरा आनन्द अधिकाधिक बढता जा रहा है इसी प्रकार के कार्य द्वारा जगत पर विजय प्राप्त की जा सकती है. सम्प्रदाय और मत का अन्तर क्या अर्थ रखते हैं? शाबाश! मेरे लाखो आलिंगन और आशीर्वाद स्वीकार करो. कर्म, कर्म, कर्म—मुझे और किसी चीज की परवाह नही है. मृत्युपर्यंत कर्म, कर्म, कर्म जो दुर्बल हैं, उन्हें अपने आप को महान् कार्यकर्ता बनाना है, महान् नेता बनाना है. धन की चिन्ता न करो, वह आसमान से बरसेगा.

स्वामी की दृष्टि मे सब से बडा काम दलितो की, गरीबो की सहायता करना था. अकाल-पीडित क्षेत्रो मे उन के शिष्य यही काम कर रहे थे इसलिए उन का अत्यधिक प्रसन्न एव गौरवान्वित होना स्वाभाविक था. चार जुलाई १८९७ को भगिनी निवेदिता के पास उन्होने लिखा—बुद्धदेव के बाद से यह पहली बार पुन देखने को मिल रहा है कि ब्राह्मण सन्तानें हैजाग्रस्त अत्यजो की शय्या के

निकट उन की सेवा-शुश्रुषा मे सलग्न हैं. भारत मे वक्तृता तथा शिक्षा से कोई विशेष कार्य नही होगा. इस समय सक्रिय धर्म की आवश्यकता है. ९ जुलाई को उन्होने स्वामी ब्रह्मानन्द को फिर लिखा—वरहामपुर मे जैसा काम हो रहा है वह बहुत ही अच्छा है इसी प्रकार के कामो की विजय होगी क्या मात्र मतवाद और सिद्धान्त हृदय को स्पर्श कर सकते हैं ? कर्म, कर्म, कर्म. आदर्श जीवनयापन करो. सिद्धान्तो और मतो का क्या मूल्य ? दर्शन, योग और तपस्या—पूजागृह अक्षत, चावल या शाक का भोग—यह सब व्यक्तिगत अथवा देशगत धर्म हैं किन्तु दूसरो की भलाई और सेवा करना एक महान् सार्वलौकिक धर्म है आबालवृद्धवनिता, चाडाल, यहां तक कि पशु भी इस धर्म को ग्रहण कर सकते हैं क्या मात्र किसी निषेधात्मक धर्म मे काम चल सकता है ? पत्थर कभी अनैतिक कर्म नही करता. गाय कभी झूठ नही बोलती, वृक्ष कभी चोरी या डकैती नहीं करते, परन्तु इससे होता क्या है ? माना कि तुम चोरी नहीं करने, न झूठ बोलते हो, न अनैतिक जीवन व्यतीत करते हो, वल्कि चार घण्टे प्रतिदिन ध्यान करते हो, और उसके दुगुने घटे तक भक्तिपूर्वक घटी बजाते हो, परन्तु अत मे इसका उपयोग क्या है ?

समाज सेवा का महत्त्व वताते हुए विवेकानन्द ने आगे लिखा: काम के विना केवल व्याख्यान क्या कर सकता है ? क्या मीठे शब्दो से रोटी चुपडी जा सकती है ? यदि तुम दस जिलो मे ऐसा कर सको तो वे दसो तुम्हारी मुट्ठी मे आ जायेंगे. इसलिए समझदार लडके की तरह इस समय अपने कर्म विभाग पर ही सबसे ज्यादा जोर दो, और उसकी उपयोगिता को वढाने की प्राणपण से चेष्टा करो कुछ लडको को द्वार-द्वार जाने के लिए सगठित करो और अलखिया साधुओ के समान उन्हें जो मिले वह लाने दो—धन, पुराने वस्त्र, चावल, खाद्य पदार्थ या और जो कुछ भी मिले फिर उसे बांट दो वास्तव मे यही सच्चा कार्य है इस के वाद लोगो को श्रद्धा होगी, और फिर तुम जो कहोगे, वे करेंगे विवेकानन्द यह कहना नही भूले कि दुर्भिक्ष के समय पूजा का खर्च भी घटा कर न्यूनतम स्तर पर लाना चाहिए ताकि बचे हुए पैसे का उचित उपयोग किया जा सके पूजा का खर्च घटा कर एक या दो रुपये महीने पर ले आओ प्रभु की सन्तानें भूख से मर रही है केवल जल और तुलसी-पत्र से पूजा करो और उस के भोग के निमित्त धन को उस जीवित प्रभु के भोजन मे खर्च करो, जो दरिद्रो मे वास करता है तभी प्रभु की सब पर कृपा होगी

इस मे यह समझना गलत होगा कि विवेकानन्द की दृष्टि मे गरीबो की सबसे बडी सेवा यही थी कि उन के बीच भोजन बाटा जाये. अपने पत्रो मे वे बार-बार इस बात पर जोर देते थे कि सबसे बडा काम शिक्षा का प्रचार है. ऐसी शिक्षा का प्रचार जिसमे लोग स्वावलम्बी बनें और उनमे आत्मगौरव का विकास हो. दुर्भिक्ष के समय भोजन बाटना महत्त्वपूर्ण काम हो सकता है, लेकिन इसके साथ

अगर स्वावलम्बन की शिक्षा न दी जाय, तो समाज सेवा सही अर्थों मे नही हो सकती. ११ जुलाई १८९७ को अलमोडे से उन्होने एक पत्र मे लिखा अखण्डानन्द महुला मे अद्भुत कार्य कर रहा है, किन्तु उसकी कार्यप्रणाली ठीक प्रतीत नहीं होती ऐसा मालूम हो रहा है कि वे लोग एक छोटे से गांव मे ही अपनी शक्ति क्षय कर रहे हैं, और वह भी एकमात्र चावल वितरण के कार्य मे. इसके साथ-साथ किसी प्रकार का प्रचार-कार्य भी हो रहा है, यह बात मेरे सुनने मे नही आ रही है. लोगो को यदि आत्मनिर्भर बनने की शिक्षा न दी जाये तो सारे ससार की दौलत से भी भारत के एक छोटे से गांव की सहायता नही की जा सकती है शिक्षा प्रदान करना हमारा पहला कार्य होना चाहिए, नैतिक तथा बौद्धिक दोनो ही प्रकार की मुझे इस बारे मे तो कुछ भी समाचार नही मिल रहा है. केवल इतना ही सुन रहा हूं कि इतने भिखमगो को सहायता दी गयी है दया से लोगो के हृदय-द्वार खुल जाते हैं, किन्तु उस द्वार से उन के सामूहिक हित-साधन के लिए हमे प्रयास करना होगा.

१८९७ मे ही विवेकानन्द को यह स्पष्ट कर देने का भी अवसर मिला कि समाज सेवा के काम मे धर्म या सम्प्रदाय के आधार पर किसी तरह का भेद-भाव अनुचित है, हालांकि वस्तुस्थिति को ध्यान मे रखते हुए कोई ऐसा रास्ता भी नही अपनाना चाहिए जो बिलकुल अव्यावहारिक हो जब अखण्डानन्द ने अपने दुर्भिक्ष-पीडित क्षेत्र मे एक अनाथालय खोलने की योजना बनायी और यह प्रश्न उठाया कि उसमे मुसलमान लडको को रखना चाहिए या नही, तब विवेकानन्द ने मरी से १० अक्तूबर को उन्हें लिखा—तुम्हे मुसलमान लडको को भी ले लेना चाहिए, परन्तु उनके धर्म को कभी दूषित न करना तुम्हे केवल यही करना होगा कि उनके भोजन आदि का प्रबन्ध अलग कर दो और उन्हे शुद्धाचरण, पुरुषार्थ और परहित मे श्रद्धा-पूर्वक तत्परता की शिक्षा दो यह निश्चय ही धर्म है. आगे उन्हो ने फिर लिखा—वेद, कुरान, पुराण और सब शास्त्रो को कुछ समय के लिए विश्राम करने दो. मूर्तिमान् ईश्वर जो प्रेम और दयास्वरूप है, उसकी उपासना देश मे होने दो. भेद के सब भाव बन्धन हैं, और अभेद के मुक्ति. विषयो के भेद से मतवाले संसारी जीवों के शब्दो से मत डरो सब धर्मों के लडको को लेना—हिन्दू, मुसलमान, ईसाई या कुछ भी हो, परन्तु धीरे-धीरे आरम्भ करना, अर्थात् यह ध्यान रखना कि उनका खान-पान अलग हो, तथा धर्म की सार्वभौमिकता का ही केवल उन्हें उपदेश देना.

विवेकानन्द यह अच्छी तरह समझते थे कि जो काम उन्होने शुरू किया था उसे बराबर चलाते रहने के लिए एक सगठन की आवश्यकता है वास्तव मे वे इसे इतना महत्व देते थे कि विदेश से लौटने के तुरन्त बाद ही उन्होने इस ओर ध्यान दिया और १८९७ मे अस्वस्थता एव भ्रमण-भाषण के बीच एक सगठन की भी नीव रखी. इस के लिए उन्हो ने सबसे पहले एक मई को कलकत्ते मे बलराम

बाबू के मकान पर श्रीरामकृष्ण के गृहस्थ शिष्यो और संन्यासियो को निमंत्रित कर एक सभा की. सभी लोगो को लक्ष्य कर स्वामी ने कहा—अनेक देशो मे भ्रमण करके मेरा यह विचार हो गया है कि बिना सघ के कोई वृहत् और स्थायी कार्य नही हो सकता. किन्तु भारत जैसे देश मे पहले से ही लोकतत्र के अनुसार, सघ बनाना अथवा जनसाधारण की सम्मति ले कर कार्य करना, उतना सुविधाजनक नही जान पडता. पश्चिम की बात दूसरी है. इस देश मे शिक्षा के विस्तार के द्वारा जब हम समाज की भलाई के लिए या देश की भलाई के लिए अपने को बलिदान करना सीखेगे, जब हम अपने स्वार्थ से ऊपर उठेगे, तब लोकतन्त्र के अनुसार कार्य चल सकता है. इन सभी विचारो को ध्यान मे रखते हुए हम लोगो को अपने सघ के लिए एक प्रधान परिचालक आवश्यक है, जिसका आदेश सभी को मानना होगा. तब समय आने पर सघ के अन्य सभी सदस्यो की सहमति से काम किया जायेगा.

इस के काम के प्रश्न की चर्चा करते हुए स्वामी ने कहा—यह सघ उन्ही का नाम ग्रहण करेगा, जिनके नाम पर हम लोग सन्यासी बने हैं, जिनके जीवन का आदर्श बता कर आप लोग गार्हस्थ्य जीवन के कार्यक्षेत्र मे लगे हुए हैं और जिन का पवित्र नाम तथा अद्‌भुत जीवन और शिक्षा का प्रभाव, उनकी मृत्यु के बारह साल बाद पूर्व और पाश्चात्य जगत मे बहुत ही आश्चर्यजनक रूप से फैला है इस-लिए इस सघ या समिति का नाम हम लोग 'रामकृष्ण मिशन' रख दें हम लोग प्रभु के दास हैं. इस कार्य मे आप सभी सहायक बनें

इस प्रस्ताव का सभी लोगो ने अनुमोदन किया. इसके बाद इस 'रामकृष्ण मिशन' के उद्देश्य और कार्य प्रणाली के विषय मे चर्चा होने लगी यह निश्चित हुआ कि मानवता की भलाई के लिए श्री रामकृष्ण ने जो भी उपदेश दिया या अपने जीवन के कार्यों से जो भी आदर्श स्थापित किया, उसका प्रचार करना इस सघ का प्रधान उद्देश्य होगा श्री रामकृष्ण के विचार से ससार के सभी धर्म, अखड सनातन धर्म के ही रूपान्तरमात्र हैं अत इस नाते जगत के विभिन्न धर्मावलम्बियो के बीच आत्मीयता की स्थापना करना इस सघ का व्रत था.

इस सघ ने अपने कार्य सम्पन्न करने के लिए एक योजना बनायी उसमे निम्नलिखित बातें थी

(क) मनुष्य की सासारिक और आध्यात्मिक उन्नति के लिए विद्यादान देने योग्य व्यक्तियों को शिक्षित करना.

(ख) शिल्प और उद्योग धन्धों को प्रोत्साहित करना.

(ग) वेदान्त और दूसरे धर्मों के भावो को, जैसे वे श्री रामकृष्ण के जीवन मे गुथे हुए थे, समाज मे प्रचारित करना

इस कार्य को सम्पन्न करने के लिए दो विभाग बनाये गये. एक के सरक्षण मे भारतीय और दूसरे के सरक्षण मे विदेशी कार्यों की रूपरेखा तैयार की गयी.

इस सघ का भारतीय कार्य था, भारत के विभिन्न नगरो मे मठ या आश्रमो की स्थापना. इन आश्रमो या मठो मे सन्यासियो के साथ-साथ उन गृहस्थो का भी शिक्षण-प्रशिक्षण होना था, जो भविष्य मे दूसरो को शिक्षित करने का व्रत लेत. उन्हे ऐसे उपायो को ढूंढ निकालना था, जिनके द्वारा वे प्रत्येक प्रान्त की जनता को विभिन्न प्रकार से शिक्षित करते. विदेशी कार्य-विभाग का काम भारत मे प्रशिक्षित प्रबुद्ध सन्यासियो को विदेशो मे भेजना था इन सन्यासियो का व्रत या विदेशो मे जा कर रामकृष्ण मठ की स्थापना करना और वहाँ के लोगो को वेदान्त की शिक्षा देना इस कार्य से भारत की अन्य देशो के साथ घनिठता तथा सहानुभूति की भावना बढने की सम्भावना की

इस सघ का राजनीति से कोई सम्बन्ध नही था स्वामी ने सभा मे उपस्थित सभी गुरुभाइयो, भक्तो एव गृहस्थाश्रमवासी लोगो को इस बात मे भलीभांति अवगत करा दिया कि जिसे इस सघ के विचारो पर आशा हो, और जो तनमन मे इसके उद्देश्य प्राप्ति मे सहयोग दे सकता हो, वही इस सघ का सदस्य हो सकता है. वहाँ के लोगो ने अपनी सम्मति दी जब सघ के प्रस्ताव का सभी लोगो ने स्वीकार कर लिया तब अध्यक्ष का चुनाव हुआ और स्वामी विवेकानन्द सघ के प्रधान अध्यक्ष बने साथ ही साथ यह भी निश्चित हुआ कि प्रति रविवार को तीसरे पहर स्वर्गीय बलराम बाबू के मकान पर इस सघ की बैठक होगी इन बैठक मे गीता, उपनिषद तथा वेदान्तिक ग्रथो का पाठ होगा तथा कुछ बौद्धिक पत्र पढे जायेगे प्रत्येक बैठक के कार्यों की रूपरेखा अध्यक्ष ही तैयार करेगे, ऐसा निश्चित हुआ प्रथम बैठक के बाद तीन वर्षों तक 'रामकृष्ण मिशन' के सदस्यो की बैठक प्रति रविवार को बलराम बाबू के मकान पर होती रही. अगर विवेकानन्द कलकत्ते मे होते तो वे अवश्य ही इन बैठको मे भाग लेते और किसी न किसी विषय पर बोला करते, वेद ऋचाओ का सुमधुर पाठ करते या भाव-विह्वल होकर भजन गाते

यह किसी से छिपा नही था कि विवेकानन्द रामकृष्ण मिशन का मुख्य कार्य समाज सेवा ही मानते थे उनके कुछ गुरु भाइयो को यह देख कर आश्चर्य होता कि वे पूजा-पाठ, भजन-कीर्तन से कही अधिक समाज सेवा को महत्व देते है रामकृष्ण मिशन की स्थापना के उपरान्त स्वामी के अनेक गुरुभाई और शिष्यगणो के हृदय मे यह धारणा बनने लगी कि वे मिशन के द्वारा जो भी कार्य करवा रहे है, उन पर विदेशी आदर्शों का प्रभाव है और वे श्रीरामकृष्ण द्वारा प्रचारित आदर्शों से सर्वथा भिन्न है उनके मतानुसार रामकृष्ण बराबर एकान्त भक्ति, चिन्तन-मनन तथा ईश्वर के साक्षात्कार पर बल देते थे, किन्तु विवेकानन्द विदेशी प्रभाव के कारण वैरागी सन्यासियो को ईश्वर के एकाग्र चिंतन के मार्ग मे हटा कर उन्हे ससार के कर्मक्षेत्र की ओर अग्रसर कर रहे थे, दीन दुखियो की सेवा, शिक्षा का विस्तार, वेदान्त का प्रचार आदि कार्यों को वे इसी दृष्टि से देखते थे. गुरुभाइयो और शिष्यो का विचार

था कि ये सब सांसारिक कार्य साधना-उपासना मे विघ्न उपस्थित करते है.

एक शाम विवेकानन्द बलराम बाबू के मकान पर अपने गुरुभाइयो और शिष्यो से बातें कर रहे थे, तभी एक गुरुभाई ने उनके सम्मुख अपने सदेहो को खुले शब्दो मे खोल कर रखा और रामकृष्ण मिशन के लोकहितकारी कार्यों का घोर विरोध किया हास्यप्रिय स्वामी का मुखमडल सहसा गम्भीर हो गया, उनकी आखें भावावेग से चमकने लगी और उन्होने उसी क्षण कहा . 'तुम कैसे कहते हो कि ये काम उनके (रामकृष्ण के) विचारो के अनुसार नही हो रहे हैं ? क्या तुम श्री रामकृष्ण को, जो अनन्त विचारो के प्रतीक हैं, अपनी सीमा मे बाँध सकते हो ? मैं इन सीमाओ को तोड कर उनके विचारो को बिखेर दूगा, सारे ससार मे फैला दूगा. उन्होने जिस रीति से आध्यात्मिक अभ्यास, ध्यान और मनन या धर्म के अन्य महान् विचारो की शिक्षा दी, हम लोगो को उन्हे अवश्य याद रखना चाहिए और मानवता को उसकी शिक्षा देनी चाहिए. उनके विचार अपरिमित हैं और वैसे ही नि सीम मार्ग है जो हमे उद्देश्य की ओर ले जाते हैं इस ससार मे एक नया सम्प्रदाय कायम करने के लिए मैंने जन्म नही लिया है—यह तो पहले से ही मत-वादो से भरा पडा है. हम लोग धन्य हैं कि हमे गुरुदेव के चरणो मे स्थान मिला और यह हम लोगो का प्रधान कर्तव्य है कि जो विचार उन्होने हम लोगो को सौंपे हैं उन्हे सारे ससार मे निर्बन्ध रूप से फैला दें.'

स्वामी ने बार-बार कहा कि वे जो कुछ भी कार्य करते हैं सब गुरुदेव की इच्छा के कारण करते हैं उन्हें लगता है कि गुरुदेव पग-पग पर उनके साथ हैं और वे ही उनके द्वारा काम करवा रहे हैं स्वामी ने अपने गुरुभाई की ओर देखा और हँस कर कहा 'क्या तुम्हारे कहने का उद्देश्य यह है कि लिखना-पढना, जन-साधारण मे धर्म का प्रचार, आर्त, रोगी, अनाथ आदि की सेवा या जनता का दुख दूर करने की चेष्टा से ही माया मे आबद्ध हो जाना पडेगा हाँ, एक बार श्रीरामकृष्ण ने किसी व्यक्ति विशेष से अवश्य कहा था 'ईश्वर की खोज करो, जगत का उपकार करने जाना अनधिकार चर्चा है ' अगर केवल इसी से उन कामो को बुरा समझो, तो तुमने श्री रामकृष्ण का उद्देश्य जरा भी नही समझा है '

यह कहते-कहते उनकी मुखमुद्रा पुन. कठोर हो गयी और वे गरज उठे—'तुम समझते हो कि श्री रामकृष्ण को मुझसे अधिक तुमने समझा है. तुम समझते हो कि ज्ञान शुष्क पाडित्य मात्र से, हृदय की कोमल वृत्तियो का विनाश कर दगर पथ पर प्राप्त किया जा सकता है. तुम्हारी भक्ति मूर्खो की भावुकता मात्र है, जो मनुष्य को कापुरुष बना देती ह. तुम श्रीरामकृष्ण के प्रचार की बात करते हो, जैसे कि तुम उन्हे समझ चुके हो, और यह तुम्हारा समझना बहुत ही थोडा है. छोडो इन बातो को. तुम्हारे श्री रामकृष्ण की कौन परवाह करता है ? कौन तुम्हारी भक्ति और मुक्ति को देखकर माथापच्ची करता है ? शास्त्र क्या कह रहा है

या नही, कौन सुनता है ? यदि मैं तमोगुण मे डूबे हुए अपने देशवासियो को कर्म-योग के द्वारा वास्तव मे मनुष्य की तरह अपने पैरो पर खडा कर देने मे समर्थ हूँ— तो मैं आनन्द के साथ लाख बार नरक जाऊँगा मैं तुम्हारे रामकृष्ण या अन्य किसी का अनुसरण करने वाला नही हूँ. मैं सिर्फ उसका अनुसरण करता हूँ जो मेरी योजनाओ को पूरा करवाता है. जो लोग अपनी मुक्ति को कामना छोड, दूसरो की सेवा करते हैं,. मैं उन्ही का चेला हूँ'

बोलते-बोलते भावाधिक्य से विवेकानन्द का गला रुध गया मुखमडल लाल हो उठा. आंखो मे अश्रु छलछला आये. सारा शरीर कांपने लगा ऐसा लगता था कि जैसे वे अपने को किसी भी तरह समाल नही पा रहे हैं. मानो मानवता का दुख-दर्द उनके हृदय को टुकडे-टुकडे कर रहा हो. सहसा वे उठ खडे हुए, शीघ्रता से अपने शयन कक्ष मे चले गये और अन्दर से द्वार बन्द कर लिया. उनके गुरुभाई, जिन्होने श्री रामकृष्ण के विचारो और आदर्शों के सम्बन्ध मे उनकी आलोचना की थी, हतप्रभ होकर पश्चात्ताप करने लगे. वहाँ उपस्थित अन्य लोग विस्मय और मय से एक दूसरे का मुंह देखने लगे. दो गुरुभाई सहमे-सहमे दबे चरण से उनके शयन कक्ष के पास गये. खिडकी खुली थी. उन्होने देखा, स्वामी भूमि पर बैठे ध्यानावस्थित थे—मुखमुद्रा गभीर, शरीर जडवत् और अधखुली स्थिर आंखो मे अविरल जलधार. दोनो व्यक्ति जैसे वहाँ गये थे, वैसे ही लौट आये. सभी चुप. किसी की जबान नही हिली.

लगभग एक घण्टा बीता होगा. लोगो ने देखा, स्वामी के कक्ष का द्वार खुला. वे बाहर आये ठढे पानी से अपना मुखमडल प्रक्षालित किया और बैठक मे पधारे. बैठक का वातावरण पूर्ववत् गभीर था क्षण भर मौन रह कर उन्होने कहा— जिसका हृदय भक्ति से पूर्ण हो गया है, उसके स्नायु इतने कोमल हो जाते है कि साधारण पुष्पाघात भी सहन नही कर सकते. तुम जानते हो, मैं इन दिनो प्रेम भक्तिपूर्ण कोई विषय नही पढ सकता मैं श्री रामकृष्ण के सम्बन्ध मे बिना भावाभिभूत हुए न अधिक देर तक सोच सकता हूँ, न बातें कर सकता हूँ मैं बराबर हृदय के इस भक्ति-प्रवाह की गति को रोकने की चेष्टा कर रहा हूँ. मैंने अपने को ज्ञान की कठिन शृखला मे बांध रखा है क्योकि अभी भी अपनी मातृभूमि का सेवा-कार्य समाप्त नही हुआ है और जो सदेश मुझे जगत को देने थे, अभी शेष हैं इस-लिए जब भी भक्ति की भावनाएँ मुझे अपनी धारा मे समेटना चाहती हैं, तभी मैं प्रखर ज्ञान के द्वारा उन्हें पूर्ण शक्ति से दमित करता हूँ. ओह ! अभी मुझे काम करने हैं. मैं रामकृष्ण का क्रीतदास हूँ. वे अपने कर्मो का भार मेरे कधो पर छोड गये है जब तक मैं उन्हें पूरा न कर लूगा, वे मुझे चैन न लेने देंगे

स्वामी गुरुदेव की बातें करते-करते फिर भावावेश मे आने लगे. उनके गुरु-भाइयो और शिष्यो ने बडी कुशलता से स्थिति सभाली सध्या जाने कब की

खिसक चुकी थी. रात की कालिमा कमरे को धुंधला बनाने लगी थी. हवा का नाम नहीं. उमस भरी गर्मी मे सभी परेशान थे. स्वामी का ध्यान हटाने के लिए कुछ गुरुभाइयो ने छत पर टहलने का प्रस्ताव रखा स्वामी छत पर उन लोगो के साथ घूमने लगे. तरह-तरह की दूसरी बातो मे स्वामी का मन उलझाया गया. रात में खाना खाने के समय तक उनका मनोवेग पूर्ण रूप से नियन्त्रित हो चुका था

इस तरह के अन्य कई अवसर आये, लेकिन विवेकानन्द अपने विचारो पर दृढता से डटे रहे. उनके गुरुभाइयो को यह समझते देर नही लगी कि वे जो काम कर रहे थे, वह रामकृष्ण का ही काम था. इस तरह रामकृष्ण मिशन की दिशा स्पष्ट हुई और समाज सेवा का काम उत्साह से चलाया जाने लगा. इससे उनको कितना सन्तोष था इसका जिक्र ऊपर आ चुका है. उन्हें अब केवल एक ही चिन्ता थी : कलकत्ते मे एक ऐसा मठ स्थापित हो जाय जो देश भर मे फैले हुए रामकृष्ण मिशन के कार्यकर्ताओ के लिए केन्द्रीय कार्यालय का काम करे और उन को उचित निर्देश देता रहे. जैसे जैसे उन का स्वास्थ बिगडता गया उनकी यह चिन्ता बढती गयी. लाहौर मे १५ नवम्बर १८९७ को उन्होने श्रीमती इन्दुमती मित्र को सिंध जाने और उनसे मिलने मे अपनी असमर्थता व्यक्त करते हुए लिखा : 'मूत्राशय मे गडबडी हो जाने के कारण मुझे अपने जीवन पर भरोसा नही है. मैं अभी भी यह चाहता हूँ कि कलकत्ते मे एक मठ स्थापित हो, किन्तु उसकी कुछ भी व्यवस्था मैं नही कर पाया हूँ कलकत्ते मे एक मठ स्थापित हो जाने पर मैं निश्चित हो जाऊँगा तभी मुझे यह भरोसा हो सकता है कि जीवन भर दुख-कष्ट उठा कर मैंने जो कुछ कार्य किया है, मेरे शरीरात के बाद वह समाप्त नही हो जायेगा.' विवेकानन्द की यह इच्छा पूरी हो कर रही.

११
संगठन एवं प्रशिक्षण

कलकत्ते से सटा, भागीरथी के पश्चिमी तट पर बसा हुआ बेलूर गाव. गाव की मुख्य आबादी गगा के रेतीले किनारे से हट कर चार मील दूर पर बसी है. बीच की धरा मुक्त और स्वच्छन्द है—दिशाएँ शात. साझ-सवेरे पक्षियो का कलरव मौन दिशाओ मे हर्ष ध्वनि लहरा देता है तट के ऊँचे-नीचे, टेढे-मेढे विषम कगारो से अनेक छोटी-बडी नयी-पुरानी नौकाएँ बधी हुई हैं. लगता है यहा माझियो का एकाधिकार है. किनारे से थोडा हट के उनकी भग्न होती हुई सी झुग्गिया हैं, जो उनकी विपन्नता को छिपाने का असफल प्रयास कर रही है. गगा का पावन तट, कलकलाती छलछलाती निर्मल जल धारा, दूर तक फैली निस्तब्धता, उन्मुक्त गगन, सम्पूर्ण परिवेश मानव को आध्यात्मिक चितन की ओर प्रेरित करने मे सहायक था

सन् १८९८ ई के जनवरी माह मे विवेकानन्द की आग्ल शिष्या कुमारी हेनरीएटा मुलर के आर्थिक सहयोग से यही करीब सात एकड भूमि मठ-निर्माण के लिए उपलब्ध हो गयी. इस भूभाग पर स्थित एक प्राचीन अर्द्ध जर्जर मकान भी स्वत. अपना बन गया उत्तर भारत की यात्रा समाप्त कर कलकत्ता लौटने के बाद स्वामी मठ निर्माण के कार्य मे जुट गये बेलूर ग्राम के नीलाम्बर मुखोपाध्याय के बगीचे वाला मकान भी गुरुभाइयो एव शिष्यो के रहने के लिए अस्थायी रूप से किराये पर ले लिया गया स्वामी अपने शिष्यो और गुरुभाइयो सहित आलम बाजार मठ से इस उद्यान परिवेष्ठित मकान मे चले आये. स्वामी की एक वैभवशालिनी किन्तु श्रद्धालु अमरीकी शिष्या श्रीमती ओलीबुल ने बेलूर मठ एव श्रीरामकृष्ण मदिर के निर्माण तथा सन्यासियो के मकान के भाड़े आदि का व्यय-भार अपने कधो पर ले लिया इस प्रकार स्वामी के मन का भार हलका हुआ और मठ-निर्माण का कार्य द्रुत गति से चलने लगा

एक प्रसिद्ध सगीतज्ञ की पत्नी, श्रीमती ओलीबुल बोस्टन की एक सभ्रात एव विदुषी महिला थी, समाज मे उनका बडा मान-सम्मान था जनकल्याण के कार्यो मे उनकी आर्थिक सहायता सर्वोपरि थी बोस्टन मे स्वामी इनके अतिथि भी रह

चुके थे उन्होने स्वामी के अनेक भाषण-समारोहो का आयोजन किया था

स्वामी की कल्पना को रूप देने मे श्रीमती ओलीबुल के साथ कुमारी हेनरीएटा मुलर ने भी साथ दिया इस सहृदया कुमारी से स्वामी की अमरीका और इगलैंड, दोनो देशो मे भेट हुई थी उन्होने ही स्वामी को इगलैंड मे सेवियर दम्पति तथा ई टी स्टर्डी से परिचित कराया. वे बडी ही धार्मिक प्रवृत्ति की महिला थी उन्होने स्वामी के व्यक्तित्व और वक्तव्य मे आध्यात्मिकता का सम्पूर्ण रूप देखा. ससार से विरक्त होकर उन्होने भिक्षुणी का जीवन बिताना चाहा था. परन्तु स्वामी ने उन्हे ऐसा करने से रोका और उन्हे बताया कि ससार मे रह कर भी मनुष्य नि स्वार्थपूर्ण जीवन जी सकता है तथा निराशाओ और विषमताओ से घिरे, जीवन सघर्ष के विवादो को झेलते, दिग्भ्रमित मानव का करुण गीत सुन सकता है उनकी सेवा कर उनका कल्याण कर एक नवीन समाज का सृजन करना मनुष्य का परम धर्म है. कुमारी मुलर के हृदय मे आध्यात्मिक झुकाव होने के साथ-साथ कुछ ऐसी विरोधी प्रवृत्तियाँ थी, जो उन्हे पूर्णरूप से ससारत्यागी भिक्षुणी बनने देने मे बाधक थी उनमे धन का अहकार था उनका विश्वास था कि ससार को वश मे करने के लिए या ख्यातिप्राप्त नेता बनने के लिए धन के अतिरिक्त किसी और गुण की आवश्यकता नही कुछ ही दिनो के सम्पर्क से स्वामी उनकी प्रकृति से भली भाति परिचित हो गये थे. अत· व्यावहारिकता की दृष्टि से कुमारी मुलर को ससारत्यागी सन्यासिनी नही बना कर, कार्य की दूसरी दिशा दिखायी कुमारी मुलर ने भी स्वामी को अपना पथ-प्रदर्शक समझा और उनकी आज्ञा को शिरोधार्य किया.

बेलूर मठ तथा रामकृष्ण मदिर के निर्माण-काल मे बहुत-सी घटनाएँ घटी. सयोग ऐसा हुआ कि बेलूर गाव के श्री नीलाम्बर मुखर्जी के भवन मे स्वामी के पहुँचते ही, उनके जितने गुरुभाई जनसेवा या वेदान्त प्रचार कार्य के लिए देश-विदेश मे काम कर रहे थे, सब के सब वही पहुँच गये स्वामी शारदानन्द अमरीका के और स्वामी शिवानन्द श्रीलका के वेदान्त प्रचार कार्य मे यथेष्ट सफलता प्राप्त कर लौट आये थे स्वामी त्रिगुणानन्द दिनाजपुर मे दुर्भिक्ष-पीडित लोगो की सेवा मे लीन थे. किन्तु उनका कार्य भी अब समाप्त हो चुका था और वे भी वापस आ गये थे स्वामी विवेकानन्द की अनुपस्थिति मे श्री रामकृष्ण मिशन का कार्य स्वामी ब्रह्मानन्द के निरीक्षण मे चल रहा था. नये सन्यासियो और ब्रह्मचारियो के शिक्षण-प्रशिक्षण का कार्य स्वामी तुरीयानन्द मठ मे ही रह कर बडे उत्साह के साथ निभा रहे थे स्वामी के ये दोनो ही गुरुभाई अब उनके पास नये आदेश की आकाक्षा लेकर आ गये थे. नीलाम्बर मुखर्जी के मकान का वातावरण आध्यात्मिकता से रग गया था. काषाय को धारण किये हुए सन्यासियो के द्वारा उच्चरित वैदिक ऋचाओ और मत्रो के सुमधुर स्वर से सारा भवन गूजने लगा. गुरुभाइयो के नि स्वार्थपूर्ण कठिन तपोरत जीवन ने स्वामी के मर्म को छू लिया था. उनकी आँखें नयी आशा से चमक

उठी हा ये साथी, ये सहयोगी उनके स्वप्नो को अवश्य ही पूरा करेंगे. उन्हें विश्वास था कि जीवन के अग्नि स्फुलिंगो को ये अब हृदय से लगा सकते है उनके शरीर फौलाद से भी कठोर धातु से निर्मित हैं. वे किसी भी प्रकार का संघर्ष सहज रूप से झेल सकते है. स्वामी को अपने सहयोगियो को उनकी जनसेवा के लिए धन्यवाद देना अनिवार्य सा लगा शिवरात्रि के दिन तीसरे पहर उन्होने अपने गुरुभाइयो और शिष्यों की एक छोटी-सी सभा बुलायी और उनकी कर्मठता की सराहना की साथ ही साथ उनके भावी कार्यक्रम के विषय मे बातचीत भी हुई

ठीक इसी समय मठभूमि के साथ पाये गये पुराने मकान को नवागता पाश्चात्य भक्त महिलाओ का निवास स्थान बनाया गया सर्वप्रथम कुमारी मुलर, जिनके उदारतापूर्ण आर्थिक सहयोग से बेलूर मठ एव मदिर के लिए सात एकड भूमि खरीदी गयी थी, बेलूर आयी. इसके पश्चात् अमरीका मे श्रीमती बुल, कुमारी मैकलिउड और इगलैड से कुमारी मार्गरेट नोबल आयी ये सब की सब महिलाएँ स्वामी के देश-विदेश के कार्यों मे सर्वदा हर प्रकार का सहयोग देती रही इन्हे स्वामी पर बहुत श्रद्धा थी. स्वामी की जन्मभूमि देखने और यहाँ के लोगो से मिलने, उन्हे समझने और उनकी सेवा करने की आन्तरिक अभिलाषा थी. वे प्रत्यक्ष रूप से यहाँ की परिस्थितियो से परिचित होने के लिए उत्सुक थी स्वामी ने उन्हे बता दिया था कि यहाँ की जलवायु उनके लिए कष्टप्रद होगी तथा यहाँ के सामाजिक रीति-रिवाज उनको असह्य लगेंगे फिर भी वे अपनी उत्कट आकाक्षा को दबा नही सकी और भारत चली आयी कुमारी नोबल तो सदा के लिए अपनी जन्मभूमि छोड रही थी तथा तन-मन से भारतीय सन्यासिनी के रूप मे भारत की सेवा करने का सकल्प कर चुकी थी. उन्हे भी स्वामी ने बहुत प्रकार से समझाया कि वे यहां आने के पूर्व अच्छी तरह सोच-विचार लें वैसे स्वामी इगलैड की प्रथम भेंट मे ही अपनी अन्यतम शिष्या कुमारी नोबल को पूरी तरह पहचान गये थे कि उनके बार बार मना करने पर भी वे अपना हठ नही छोडेंगी.

फिर भी अल्मोडा से २६ जुलाई १८९७ को उन्हे एक पत्र मे लिखा ·

मैं तुम से स्पष्ट रूप से कहना चाहता हूँ कि मुझे विश्वास है कि भारत के काम मे तुम्हारा भविष्य उज्ज्वल है. आवश्यकता है स्त्री की, पुरुष की नही—सच्ची सिंहिनी की जो भारतीयों के लिए, विशेष कर स्त्रियो के लिए, काम करे.

भारत जब तक महान् महिलाएँ नही पैदा कर सकता, उसे दूसरे राष्ट्रों से उधार लेना पडेगा तुम्हारी शिक्षा, सच्चा भाव, पवित्रता, महान प्रेम, दृढ निश्चय और सबसे अधिक तुम्हारे केल्टिक रक्त ने तुमको वैसी ही नारी बनाया है, जिसकी आवश्यकता है.

परन्तु कठिनाइयां भी बहुत हैं यहां जो दुःख, कुसस्कार और

दासत्व है, उसकी तुम कल्पना नही कर सकती तुम्हें अर्द्धनग्न स्त्री-पुरुषों के समूह मे रहना होगा जिनके जाति और पृथकता के विचार विचित्र हैं, जो भय और द्वेष से सफेद चमडी से दूर रहना चाहते हैं और जिनसे सफेद चमडी वाले स्वय अत्यत घृणा करते हैं. दूसरी ओर श्वेत जाति के लोग तुम्हें सनकी समझेंगे और तुम्हारे आचार-व्यवहार को सशकित दृष्टि से देखते रहेंगे

फिर यहा भयंकर गर्मी पडती है. अधिकाश स्थानो मे हमारा शीतकाल तुम्हारी गर्मी के समान होता है और दक्षिण मे हमेशा आग बरसती है नगरो के बाहर विलायती आराम की कोई सामग्री नही मिल सकती ये सब बातें होते हुए भी यदि तुम काम करने का साहस करोगी तो हम तुम्हारा स्वागत करेंगे, सौ बार स्वागत करेंगे. मेरे विषय मे यह बात है कि जैसे अन्य स्थानों मे वैसे ही मैं यहा भी कुछ नही हूँ, फिर भी जो कुछ मेरी सामर्थ्य होगी, वह तुम्हारी सेवा मे लगा दूगा.

इस कार्य मे प्रवेश करने से पहले तुमको अच्छी तरह विचार कर लेना चाहिए और यदि काम करने के बाद तुम असफल हो जाओगी अथवा अप्रसन्न हो जाओगी तो मैं अपनी ओर से तुमसे प्रतिज्ञा करता हूँ कि चाहे तुम भारत के लिए काम करो या न करो, तुम वेदात को त्याग दो या उसमे स्थित रहो, मैं आमरण तुम्हारे साथ हूँ 'हाथी के दात बाहर निकलते हैं, परन्तु अन्दर नही जाते' इसी तरह मर्द के वचन वापस नही फिर सकते यह मैं तुमसे प्रतिज्ञा करता हूँ और फिर से मैं तुमको सावधान करता हूँ

स्वामी के इस पत्र ने कुमारी नोबल के सकल्प को हिलाने के विपरीत उसे और सुदृढ कर दिया. भारत का कण-कण यदि उनसे घृणा करने लगे, उन्हें अस्वीकार कर दे, तो क्या हुआ ? एक व्यक्ति का सम्बल तो रहेगा. उसी की प्रेरणा से वे जीवन के इस कठिन व्रत का पालन करेंगी. स्वामी के एक और पत्र की कुछ पक्तिया उनकी आखों के सामने झिलमिलाने लगी—'आपत्ति पडने पर मैं तुम्हारे समीप रहूँगा भारत मे यदि मुझे एक रोटी का टुकड़ा भी मिले, तो तुम्हें उसका समग्र अन्न प्राप्त होगा—यह तुम निश्चित जानना'

कुमारी नोबल अपने विचार पर अटल रही. वह २८ जनवरी को पश्चिमी समाज के सारे बन्धनों को तोड कर भारत आ गयी. बेलूर गाव मे पहुँचने पर उन्हें अन्य पाश्चात्य शिष्याओं के साथ मठभूमि के साथ खरीदे गये मकान मे ठहराया गया. एक छोटे मकान मे एक साथ कई व्यक्तियो के रहने मे कठिनाई होने लगी. अत. उस मकान के पास ही शिष्याओं के लिए कुछ कुटियो का भी निर्माण किया गया. स्वामी की इच्छा से स्वामी स्वरूपानन्द ने कुमारी नोबल की शिक्षा का भार ग्रहण किया. परन्तु कुमारी नोबल तन-मन से संघ की सदस्य बनना चाहती थी. वे जानती

थी कि स्वामी विवेकानन्द के पदचिन्हो पर चलने के लिए पूर्ण रूप से आत्मसमर्पण करना होगा अपने व्रत के उत्तरदायित्व से वे भली भाति परिचित थी अपनी शिष्य की हार्दिक इच्छा देख कर स्वामी ने उन्हें ब्रह्मचर्य व्रत के लिए दीक्षित करने की अनुमति दे दी. यहा आने के चार दिन पश्चात शुक्रवार को स्वामी ने उन्हे ब्रह्मचर्य व्रत की दीक्षा दी और इसके साथ ही उनका नवीन नामकरण भी हुआ. कुमारी मार्गरेट नोबल अपनी पाश्चात्य वेशभूषा और आचार-व्यवहार के साथ जाने कहाँ लुप्त हो गयी. उनके स्थान पर प्रकट हुईं एक नयी भिक्षुणी, आग्ल व्यक्तित्व का भारतीय सस्करण, काषाय वस्त्र मे लिपटी हुई, शात, सौम्य एव गरिमापूर्ण, नाम बहन निवेदिता. नवदीक्षिता शिष्या को आशीर्वाद देकर स्वामी ने कहा—'जाओ, वत्से, तुम उन्ही का अनुसरण करो जिन्होने बुद्धत्व प्राप्त करने से पूर्व पाच सौ बार जन्म लिया और जन सेवा मे अपने प्राणो का उत्सर्ग किया. मठ-जीवन के इतिहास मे इस घटना का महत्वपूर्ण स्थान है क्योकि बहन निवेदिता के पहले किसी भी महिला को ब्रह्मचर्य की दीक्षा देकर सन्यासिनी नही बनाया गया था.

इस घटना के कुछ ही दिन बाद बडी साज-सज्जा के साथ श्रीरामकृष्ण परमहस का जन्म दिवस मनाया गया. स्वामी ने महोत्सव की व्यवस्था का भार अपने आप सभाला. यह शुभ दिन बहुतो के लिए चिरस्मरणीय बन गया, क्योकि करीब पचास अब्राह्मण व्यक्तियो को यज्ञोपवीत प्रदान किया गया इनमे से कुछ श्रीरामकृष्ण के तथा कुछ स्वामी के भक्त थे. स्वामी ने अपने प्रिय शिष्य श्री शरत्चद्र चक्रवर्ती को उपनयन प्रदान करने तथा गायत्री मत्र की दीक्षा देने का भार सौपा. इस शुभ अवसर पर बडे सवेरे स्वामी ने अपने शिष्यो और उपनयन के लिए आये हुए व्यक्तियो के समक्ष एक छोटा ओजस्वी भाषण दिया :

> हमारे गुरुदेव के सभी भक्त वस्तुत. ब्राह्मण हैं वेदो ने कहा है कि ब्राह्मण के अतिरिक्त दो और जातियो, क्षत्रियो और वैश्यो को भी उपनयन सस्कार का अधिकार है. इसमे कोई सदेह नही कि इस सस्कार के अभाव मे वे लोग व्रात्य (उपनयन सस्कार रहित) बन गये हैं. परन्तु आज वे लोग पुन. अपने अधिकारानुसार वैश्यत्व और क्षत्रियत्व को प्राप्त करेंगे. आज श्री रामकृष्ण की जन्म तिथि है उनका नाम लेकर आज प्रत्येक व्यक्ति पवित्र बन सकता है. इसलिए आज का दिन यज्ञोपवीत के लिए सर्वोत्तम है क्षत्रियो और वैश्यो के समान इन सभी को आज गायत्री मत्र की दीक्षा दो. समय आने पर इन्हे ब्राह्मण बनाना होगा. सभी हिन्दू आपस मे भाई हैं. हम हिन्दू ही अपने कुछ भाइयो को सदियो से यह कह कर नीचा समझते आये हैं कि 'हम लोग तुम्हे स्पर्श नही कर सकते, हम लोग तुम्हें स्पर्श नही कर सकते.' यही कारण है कि हमारा देश आज दैन्य, कायरता, जड़ता एव मूर्खता की सीमा पर आकर गिर गया है. तुम्हें उन्हें आशा और

उत्साह की सीख देकर उन्हे ऊपर उठाना है. उन लोगो से कहो, तुम हमारी तरह मनुष्य हो, तुम्हे हमारी तरह ही सब अधिकार प्राप्त हैं.

इन्ही दिनो स्वामी की शिष्य मंडली की परिधि दो नये सदस्यो से कुछ और वृहत् बन गयी ये दो नये व्यक्ति थे स्वामी स्वरूपानन्द और स्वामी सुरेश्वरानन्द. दोनो ने ही मार्च महीने मे स्वामी से सन्यास की दीक्षा ली. ये दोनो स्वामी से इसके पहले भी दो तीन बार मिल चुके थे तथा उनके व्यक्तित्व एव ज्ञान से बड़े प्रभावित हुए थे. फिर अचानक एक दिन ये दोनो व्यक्ति अपने मित्रो के साथ स्वामी से मिलने आये और फिर नहीं लौटे मित्रो ने जब उनके परिवारो मे जाकर उनके कठिन सन्यास व्रत लेने की बात कही तो बेचारे परिवार वाले बड़े हत्प्रभ हो गये किन्तु उन्होने किसी भी प्रकार उन्हे सासारिक बधन मे बाधने की चेष्टा नही की. स्वामी स्वरूपानन्द तो बहुत ही विनम्र, विद्वान तथा समाज के आदरणीय व्यक्ति थे. इन्हें दीक्षा देने के बाद स्वामी ने कहा था : 'स्वरूपानन्द के समान दक्ष कार्यकर्ता मिलना, हजारो स्वर्णमुद्राए पाने से अधिक मूल्यवान है' स्वामी का इन पर बहुत विश्वास था दीक्षा लेने के कुछ ही दिन बाद ये रामकृष्ण मिशन के मुखपत्र, प्रबुद्ध भारत, के सम्पादक बन गये. अगले वर्ष जब स्वामी ने अल्मोडा मे अद्वैत आश्रम की स्थापना की, उस समय स्वामी स्वरूपानन्द को ही उन्होने आश्रम का अध्यक्ष नियुक्त किया

स्वामी विवेकानन्द का कार्यभार दिनोदिन बढता ही गया. बेलूर गाव मे विदेशी शिष्याओ के आ जाने के बाद उन्हें भारतीय वातावरण के अनुसार शिक्षित प्रशिक्षित करने का उत्तरदायित्व स्वामी के ही कधो पर था. विदेश मे स्वामी विवेकानन्द एक धार्मिक नेता के रूप मे प्रकट हुए थे; वहा वे विश्व एकता एव विश्व शाति के लिए वेदात का प्रचार कर रहे थे परंतु स्वदेश मे उनकी विदेशी शिष्याओं ने उनका दूसरा रूप भी देखा. यहा वे धार्मिक नेता से अधिक देशभक्त थे. वे देव-भक्ति से अधिक देशभक्ति को आवश्यक समझते थे. भारतवर्ष की यथोचित सेवा के लिए उन विदेशी शिष्याओ के हृदय मे इस देश के प्रति भक्ति की भावना को स्फुरित करना स्वामी का प्रधान लक्ष्य था. इसके लिए शिष्याओ को यहा के जन-जीवन से एकरूप कर देना था इसके बाद ही वे लोग यहा के लोगो के रहन-सहन और आचार विचार को समझ सकती थी तथा अपने को उनकी सेवा के योग्य बना सकती थी.

स्वामी के इस ध्येय की प्राप्ति की राह बड़ी बीहड थी जन्म के पूर्व से ही स्नायुओ मे पिरोये गये सस्कारो और जन्म के पश्चात् से विकसित देश और काल की मान्यताओ को तोड डालना, किसी पूर्ण विकसित व्यक्तित्व को एक झटके मे बदल डालना, सिलवाट नही था. लेकिन स्वामी मे असीम धैर्य था नीलाम्बर मुखर्जी वाले भवन से वे प्रात रोज ही गगा के किनारे वाले पुराने मकान की ओर

चल देते, जहा उनकी विदेशी शिष्याए निवास करती थी. वहा किसी वट वृक्ष की छाया मे वे अपनी शिष्याओ के सामने भारतीय सस्कार के गूढतम रहस्यो का उद्-घाटन करते भारतीय इतिहास के, पौराणिक एव दंत कथाओ के, विभिन्न रीति-रिवाजो, वस्त्राभूपण तथा बहुजातियो के सजीव चित्र वे बडे सहज भाव से प्रस्तुत करते. चाहे वे किसी भी विपय की चर्चा कर रहे होते, विपय का अत अनादि-अनत परमात्मा से ही सम्बधित होता था. भारतवर्ष की सभ्यता और सस्कृति को लेकर विदेशियो के हृदय मे यदि कोई गलत धारणा जमी दिखाई पडती तो उसे मिटाने के लिए स्वामी कोई कोर कसर नही छोडते हिन्दू धर्म के अनेक विवादास्पद विपयो को वे उनके सामने पूर्णरूप से खोल कर रख देते थे और उनके मस्तिष्क को जागरूक बनाने के लिए उनके विपक्ष मे बोलने लगते थे इस प्रकार शिष्याओ के मस्तिष्क की शकाओ का वे अच्छी तरह बाहर खीच निकालते थे फिर उसके बाद एक एक कर अपनी ही कही हुई बातो को तर्क द्वारा खडित करते थे और भारतीय सास्कृतिक परम्परा का मत प्रकट करते थे इस प्रकार उन्होने हिन्दू धर्म के आदर्श, विभिन्न देवताओ की आराधना-अर्चना की विधियो एव जन्म मृत्यु पर आधारित हिन्दुओ के दृष्टिकोणो को स्पष्ट किया.

शिष्याओ मे बहन निवेदिता ब्रह्मचारिणी बन कर भारतवर्ष के लिए अपना जीवन अर्पित कर चुकी थी अत. स्वामी का इन पर विशेप स्नेह था उनके देहाव-सान के बाद ये उनके निर्देशित पथ पर आजीवन चलती रहेगी, यह वे जानते थे. उन्होने बहन निवेदिता के सामने एक धर्मपरायण हिन्दू विधवा के जीवन का आदर्श रखा बहन निवेदिता ने भी इसी आदर्श को अपनाया—सात्विक आहार, सात्विक वसन और सात्विक वृत्ति एक विधवा ब्राह्मणी से नि स्वार्थ भाव से परिवार की सेवा की अपेक्षा रहती है. किन्तु बहन निवेदिता के परिवार की परिधि बहुत बडी थी. इस बृहत् वृत्त मे सम्पूर्ण भारत समा जाने वाला था स्वामी इन्हे तन मन से हिन्दू बना डालना चाहते थे. आचार-विचार, रीति-रिवाज, आवश्यकताओ और मान्यताओ, दूसरे शब्दो मे उनके बाह्य और अतर को पूर्ण रूप से बदल डालना चाहते थे उन्होने निवेदिता से कहा ''तुम्हें अपने अतीत को भूल जाना होगा तुम्हे उसकी याद को भी भुला देना होगा.'

स्वामी सन् १८९८ मे कलकत्ता की जनता के सामने भापण आदि के लिए बहुत कम दिखाई पडे इस वर्ष ज्यादा समय उन्होने शिष्यो के शिक्षण-प्रशिक्षण मे ही व्यतीत किया. अपने देशी-विदेशी शिष्यो-शिष्याओ को एक सूत्र मे बाधने के लिए उन्होने जानबूझकर एक निर्भीक कदम उठाया. पश्चिमी शिष्यो-शिष्याओ को भारतीय वातावरण मे सहजभाव से पूरी तरह मिला देने के लिए उन्होने उन्हें, उनके कार्य के अनुरूप, सच्चा ब्राह्मण और सच्चा क्षत्रिय कहकर सबोधित किया, उनके साथ उनके हाथो बनाया हुआ भोजन किया तथा अपने अन्य गुरुभाइयो और

शिष्यों में भी वही करवाया. उन्होंने कभी भी अपने शिष्यों-शिष्याओं या गुरुभाइयों से, चाहे वे आंग्ल-अमरीकी हों या भारतीय, उनकी इच्छा के विरुद्ध कार्य नहीं करवाया या उनकी स्वतंत्रता में हस्तक्षेप नहीं किया कार्य और कारण का स्पष्टीकरण करके वे अलग हट जाते थे शिष्यगण स्वयं ही अपनी इच्छा से मनोनुकूल कार्य करते थे विदेशी शिष्याओं के साथ उनका बनाया भोजन करने के लिए स्वामी ने किसी को कभी बाध्य नहीं किया. उन लोगों ने परिस्थिति के औचित्य को समझा और उसके अनुसार काम किया. इतना ही नहीं, एक बार गुरुदेव श्री रामकृष्ण की धर्मपत्नी मां शारदा ने भरी सभा में उन विदेशी शिष्याओं का मुक्त हृदय से 'मेरे बच्चे' कह कर स्वागत किया. उनके द्वारा सम्बोधित इन शब्दों को सुन कर उपस्थित जन-समुदाय का हृदय द्रवित हो गया कुछ देर बाद जब ये लोग अपनी कुटिया में लौटने लगीं तो 'गोपाल की मां कह कर पुकारी जाने वाली एक प्राचीनपंथी वृद्ध ब्राह्मण विधवा को भी अपने साथ लेती आयीं गोपाल की माँ भद्र परिवार की आदरणीय महिला थीं गुरुदेव श्री रामकृष्ण इन्हें श्रद्धा से माँ कहा करते थे इन्होंने उस दिन उन लोगों के साथ भोजन किया तथा एक सप्ताह बाद फिर मिलने आयीं तो तीन दिनों तक उन शिष्याओं की कुटिया में ही निवास किया उस युग की धार्मिक कट्टरता की पृष्ठभूमि में यह घटना बहुत आश्चर्यजनक थी

बहुत दिनों बाद मार्च महीने में कलकत्ता की जनता ने स्वामी को स्टार थियेटर में देखा यहां बहन निवेदिता के भाषण के लिए एक सभा आयोजित हुई थी. विषय था—भारतीय आध्यात्मिक विचार का इंग्लैंड में प्रभाव-स्वामी ने सभापति के आसन से बहन निवेदिता का परिचय देते हुए उन्हें इंग्लैंड द्वारा भारत को दिया गया उपहार बताया. बहन निवेदिता के भाषण के उपरान्त श्रीमती ओलीबुल तथा कुमारी हेनरीएटा मुलर ने भी अपने कुछ शब्दों से जनता को मुग्ध किया. इस भाषण का जनता पर अच्छा प्रभाव पड़ा लोग बहन निवेदिता तथा स्वामी की अन्य शिष्याओं से परिचित हो गये और उन्हें सम्मान की दृष्टि से देखने लगे.

अपनी पाश्चात्य शिष्याओं के लिए कलकत्ता की जनता के हृदय में स्थान बनाने का स्वामी का यह प्रथम प्रयास था जब तक जनता उन्हें अपना नहीं लेती तब तक मला उनकी सेवा निःसंकोच कैसे ग्रहण कर सकती थी इन दिनों स्वामी अपने शिष्यों और शिष्याओं के साथ मठ संगठन में जी जान से जुटे हुए थे किन्तु उनकी शारीरिक अस्वस्थता कभी-कभी बाधक सिद्ध होती थी चिकित्सकों ने उन्हें किसी ठंडी जगह पर जाने का परामर्श दिया. स्वामी ३० मार्च को दारजिलिंग चले गये और अपने पुराने मित्र के यहां, जहां वे पहले ठहर चुके थे, अतिथि बने यहां पूर्ण विश्राम से उनका स्वास्थ्य धीरे-धीरे सुधरने लगा परन्तु बहुत दिनों तक आराम की अवस्था में रहना उनके भाग्य में नहीं था. उनके कलकत्ता छोड़ने के कुछ ही दिन बाद कलकत्ता में प्लेग के संक्रामक रोग ने अति विकराल रूप धारण कर लिया.

निर्दोष बाल-वृद्ध, स्त्री पुरुष रात-दिन काल का कलेवा बन रहे थे, जो लोग मृत्यु के चंगुल से बच रहे थे, वे भयाकुल अपने प्राण लेकर कलकत्ता से भाग रहे थे ऐसे दुर्दिन मे सरकार ने जनता को प्लेग रेग्युलेशन के बंधन मे बांध कर रखना चाहा किन्तु यह प्लेग रेग्युलेशन प्लेग जैसा ही था नगर मे दंगा फैलने लगा दंगा रोकने तथा प्लेग रेग्युलेशन मानने को जनता को मजबूर करने के लिए सरकार को सेना बुलानी पडी उसके मनमाने कार्य से जनता और भी क्षुब्ध हो उठी जब स्वामी को दारजिलिंग मे इसकी सूचना मिली तो भला वे कैसे विश्राम कर सकते थे ? वह ३ मई को कलकत्ता पहुच गये. और आते ही रोग से सावधानी बरतने के लिए लोगो को उपदेश देना आरम्भ कर दिया इसके साथ ही उन्होने रोग के प्रति आवश्यक प्रतिरोधक व्यवस्था बनाये रखने के लिए बंगला और हिन्दी मे प्रचार पत्र बॅटवाये इसके बाद स्वामी अपने देशी-विदेशी शिष्य-शिष्याओ को लेकर सहायता कार्य मे पिल पडे उस समय उन्होने स्पष्ट कर दिया कि कलकत्ता की प्लेग-पीडित जनता की सेवा से बढ कर उस समय उनके लिए कोई दूसरा काम नही था जब शिष्यगण रुपयो की कमी से चिन्तित दिखाई पडने लगे और स्वामी से पूछा गया कि रुपये कहाँ से आयेगे, तो उन्होने तत्क्षण उत्तर दिया 'क्यो ? यदि आवश्यकता हो तो मठ के लिए खरीदी गयी नयी जमीन बेच डालेगे हजारो स्त्री-पुरुष हम लोगो की आँखो के सामने असहनीय दु ख झेलेंगे और हम मठ मे रहेगे ? हम सन्यासी हैं आवश्यकता होगी तो फिर वृक्षो के नीचे रहेंगे, भिक्षा द्वारा प्राप्त अन्न-वस्त्र हमारे लिए पर्याप्त होगा.'

ईश्वर की कृपा से जमीन नही बेचनी पडी स्वामी विवेकानन्द तथा उनकी टोली की निर्भय एव अथक सेवा देख कर चारो ओर से आर्थिक सहायता आने लगी कलकत्ते की घनी आबादी से हट कर एक बडा सा मैदान किराये पर लिया गया वहा छोटी-छोटी कुटिया तैयार की गयी जाति और वर्णभेद को त्याग कर वहा ऊच-नीच सभी तरह के लोगो को लाया गया तथा उनकी चिकित्सा एव सेवासुश्रूषा की जाने लगी. जिन मुहल्लो मे रोग का आक्रमण था वहा ये लोग कीटाणु नाशक औषधियो का प्रयोग कर उनकी अच्छी तरह सफाई के लिए गये समाज मे अछूत समझी जाने वाली जातियो और दीन-दुखियो की सेवा स्वामी के निरीक्षण मे बड़े उत्साह के साथ होने लगी. समाज जिन नीच जातियो को घृणा की दृष्टि से देखता था तथा जिन्हे बराबर अपने से दूर हटाता आ रहा था, उन्हे स्वामी तथा उनके और गुरुभाइयो ने हृदय से लगा लिया स्वामी ने उन्ही को 'मेरे भाई, मेरे रक्त' कह कर सम्बोधित किया. इस तरह उन्होने 'यत्र जीव तत्र शिव' मत्र को अपने जीवन मे चरितार्थ किया. लोगो ने देखा कि स्वामी सिर्फ सिद्धात मे ही वेदान्तिक नही है, वरन् कार्य मे भी है. उनके तथा उनकी टोली के नि स्वार्थ आत्मत्याग को देख कर वे लोग जो कभी स्वामी के विरोधी थे अपने बन गये कुछ ही दिनो बाद रोग

का प्रकोप शान्त हो गया और सरकारी प्लेग रेग्युलेशन भी हटा लिया गया.

कलकत्ते की हालत सुधर जाने के बाद स्वामी श्री और श्रीमती सेवियर के निमत्रण पर अपने कुछ शिष्य-शिष्याओ के साथ अलमोडा की ओर चल पडे स्वामी के शिष्यो मे स्वामी तुरीयानन्द, स्वामी निरजनानन्द, स्वामी सदानन्द तथा स्वामी स्वरूपानन्द थे. उनके साथ कलकत्ते के अमरीकी कौसल जनरल की पत्नी, श्रीमती पैटर्सन, भी थी जिनसे स्वामी का परिचय अमरीका मे ही हुआ था स्वामी वहाँ उनके अतिथि रह चुके थे उन दिनो के कलकत्ते के यूरोपीय-अमरीकी समाज की क्या प्रतिक्रिया होगी इसका उन्होने ख्याल नही किया और स्वामी के साथ हिमालय-यात्रा मे शामिल हो गयी उनके अतिरिक्त श्रीमती बुल, कुमारी जोसेफीन मैक्लिउड तथा बहन निवेदिता भी साथ गयी कलकत्ते से नैनीताल होते हुए अलमोडा जाने का कार्यक्रम बना भ्रमण बहुत ही आनन्ददायक सिद्ध हुआ. जैसे-जैसे रेलगाडी विभिन्न नगरो को पार करती हुई आगे बढती, वैसे-वैसे स्वामी अपनी शिष्य-शिष्याओ को उन नगरो से सम्बन्धित पौराणिक और ऐतिहासिक कथाओ से परिचित कराते जाते थे चलती हुई गाडी के दोनो ओर कही बजर भूमि दिखाई पडती तो कही हरे-भरे खेत. इन्हे देख कर स्वामी कभी कृषि की चर्चा करते तो कभी कृषको के जीवन की. मार्ग मे अनेक तरह की चीजें दिखाई देती जैसे कही हाथी, कही ऊँटो का झुड प्राचीन युग की युद्ध-कला या व्यवसाय मे इनका क्या उपयोग था तथा किस प्रकार ये हिन्दू राजाओ और मुगल दरबारो की शान-शौकत या मान-सम्मान बढाते थे, इसका वे जीता-जागता मनोरजक चित्र उपस्थित करते थे. नदी निर्झर, वन-प्रातर, पठार-पर्वत, उर्वर धरा और वंध्या धरित्री सभी मानो स्वामी के लिए पुस्तक के खुले पृष्ठ थे वे इनसे सम्बन्धित भारतीय सभ्यता और सस्कृति की व्याख्या बडे सहज भाव से करते जाते थे

इस प्रकार अप्रत्यक्ष रूप से अपने शिष्यो को शिक्षित करते हुए ये १३ मई को नैनीताल पहुचे खेतरी के महाराजा वहाँ पहले से ही विद्यमान थे अत स्वामी सबके साथ उन्हीं के यहाँ ठहरे स्वामी के शिष्य और विशेषकर पाश्चात्य शिष्याओ से परिचित होकर खेतरी महाराजा बडे प्रसन्न हुए नैनीताल मे और भी बहुत लोगो से स्वामी का परिचय हुआ यही स्वामी के बचपन के एक मित्र योगेशचन्द्र दत्त एक दिन उनसे मिलने आये. इनसे वे एक बार मरी मे भी मिल चुके थे. इन्होने स्वामी के सम्मुख एक प्रस्ताव रखा कि भारतीय शिक्षित युवको को सिविल-सर्विस पढने के लिए इगलैड भेजा जाये इससे वे युवक भविष्य मे मातृभूमि की सेवा तथा इसके उत्थान के लिए सहयोग दे सकेंगे परन्तु उन्हें इगलैड भेजने और पढने के लिए आर्थिक सहायता की आवश्यकता होगी अत योगेश बाबू ने इसके लिए चदा इकट्ठा करने की बात चलायी परन्तु स्वामी को यह प्रस्ताव रुचा नही उन्होने गम्भीरता से कहा—इस प्रकार नही होगा. वे सब युवक स्वदेश लौट कर यूरोपियो के समाज मे ही सम्मि-

लित होने की चेष्टा करेंगे, इतना तुम निश्चित जानो वे पग-पग पर उन्ही के खान-पान, आचार-व्यवहार की नकल करेंगे, स्वदेश और स्वजाति के आदर्शों की बातें भूल से भी न सोचेंगे इसके बाद भारतवर्ष की सेवा के प्रति भारतीय युवको की उदासीनता एव शिथिलता का वर्णन करते-करते स्वामी के नेत्र छलछला उठे, कठ रुंध गया

इस घटना का वर्णन करते हुए योगेश बाबू ने बडे ही मार्मिक ढग से लिखा है, 'उस दृश्य को मैं जीवन मे कभी नही भूलूगा वे (स्वामी जी) एक त्यागी थे, उन्होने ससार को त्याग दिया था फिर भी सम्पूर्ण भारतवर्ष उनके हृदय मे व्याप्त था उनका सारा प्रेम भारतवर्ष के प्रति था भारत का दुख-सुख वे हृदय से अनुभव करते थे भारत के लिए वे आसू बहाते थे और भारत की सेवा में ही उन्होने अपना शरीर त्यागा. भारतवर्ष उनके हृदय की धडकन था, भारतवर्ष उनकी नस-नस मे स्पदित था तात्पर्य यह है कि भारतवर्ष उनके जीवन के साथ मिल कर एकरूप हो गया था'

नैनीताल से स्वामी अपनी टोली के साथ सीधे अलमोडा चले गये वहा ये अपने शिष्यो के साथ श्री और श्रीमती सेवियर के अतिथि बने थोडी दूर पर शिष्याओ के ठहरने के लिए एक मकान किराये पर लिया गया प्रात काल स्वामी अपने शिष्यो के साथ दूर तक टहलने जाते लौटते समय शिष्याओ के घर जाते. सब लोग साथ नाश्ता करते, फिर ज्ञान-चर्चा छिड जाती. बहन निवेदिता की, जिन्हें लोग अब स्वामी विवेकानन्द की धर्मपुत्री मानने लगे थे, शिक्षा दीक्षा मुख्यत यही हुई दृढ हृदया निवेदिता अभी तक अपने निजी स्वातत्र्य को कुचल कर स्वामी के साथ एकमत नही हो सकी थी स्वामी का ज्ञान, उनका व्यक्तित्व, उनका उद्देश्य, बहन निवेदिता की दृष्टि मे उनका सब कुछ महान था वे उनके द्वारा प्रदर्शित पथ का ही अनुसरण करने के लिए ही भारत आयी थी और भारत की सेवा के लिए अपना जीवनदान कर चुकी थी परन्तु भला अपने देश को, अपने सस्कार को, अपने अतीत को कैसे भुला देती ! प्रयत्न करने पर भी वे अपने को इसमे असफल पाती थी. स्वामी के हृदय मे भारतवर्ष के प्रति जितना तीव्र प्रेम था, उसे वे ठीक उसी तरह बहन निवेदिता के मन प्राण मे डाल देना चाहते थे. इसमे बहन निवेदिता की ओर से किसी प्रकार की अन्यमनस्कता, शिथिलता या विभक्त ध्यान उनके लिए असह्य था दो सशक्त व्यक्तियो का एकरूप होना अति कठिन कार्य था. बहन निवेदिता भारत आने के बाद जितना ही इस पर सोचती, उतना ही दुखी होती थी. यह समय उनके लिए कठिन परीक्षा का समय था उन्हें लगता था जैसे बचपन का स्कूली जीवन पुन' प्रारम्भ हो गया है उसी तरह कभी-कभी बिना मन के स्कूल जाना, शिक्षक की बतायी हुई बातो पर अधे के समान विश्वास कर लेना, यह सब बालपन की ही तो कहानी है. अलमोडा मे बहन निवेदिता की भावनात्मक विषमता एव सघर्ष

बहुत ही मार्मिक हो उठा एक दिन किसी शिष्या ने विनम्र भाव से स्वामी को बहन निवेदिता की मानसिक दशा के विषय मे बताया. उसे भय था कि कही स्वामी को इससे क्लेश न पहुचे. मगर उन्होंने बडे धैर्य से उक्त शिष्या की बाते सुनी, फिर बिना कुछ उत्तर दिये चले गये.

सध्या समय सभी शिष्याए घर के बाहर बरामदे मे बैठी हुई बाते कर रही थी. नीले आकाश पर दूज का चाद चमक रहा था शिष्याओ ने देखा कि स्वामी उनके पास चले आ रहे हैं · जब वे बरामदे पर पहुचे तो उक्त शिष्या की ओर मुड़कर बालक के से सरल भाव से कहा. 'तुमने ठीक कहा था इस स्थिति को बदलना ही पडेगा मैं कुछ देर एकातवास के लिए वन मे जा रहा हू. जब वहा से लौटूगा तो अपने साथ शाति लेता आऊंगा ' इसके पश्चात क्षण भर के लिए उन्होंने क्षीण चद्र-रेखा की ओर देखा और फिर बहन निवेदिता से कहा—'मुसलमान लोग नवीन चद्रमा का बडा आदर करते हैं. आओ हम भी आज नवीन चद्रमा के साथ नवजीवन आरभ करें ' अपने चरणो के पास घुटनो के बल बैठी हुई बहन निवेदिता के मस्तक पर स्वामी ने आशीर्वाद का वरद हस्त रखा स्वामी के इस क्षणिक दिव्य स्पर्श ने बहन निवेदिता के हृदय मे महान परिवर्तन ला दिया उनके जन्मगत और जातिगत सस्कार न जाने कहा लुप्त हो गये इस अवसर का उल्लेख करते हुए बहन निवेदिता ने लिखा है—बहुत दिनो पूर्व श्रीरामकृष्ण ने अपने शिष्यो से कहा था कि ऐसा एक दिन आयेगा जब नरेन्द्र स्पर्श मात्र से दूसरो मे ज्ञान का सचार करेगा. अलमोडा की उस सध्याकालीन घडी मे गुरुदेव की वह भविष्यवाणी सफल हो गयी.

अलमोडा निवास के पूर्वार्ध मे स्वामी वहा के अनेक लोगो से मिलते रहे और उन्हें धर्मोपदेश देते रहे इसी अवधि मे वे दो बार श्रीमती ऐनी बेसेंट से भी मिले. श्रीमती बेसेंट उन दिनो जी० एन० चक्रवर्ती की अतिथि थी श्री चक्रवर्ती ने स्वामी को दोनो बार अपने घर श्रीमती बेसेंट से मिलने के लिए आमत्रित किया था वहा जलपान आदि के बाद बहुत देर तक श्रीमती बेसेंट और स्वामी की बातें होती रही अलमोडा का जीवन स्वामी के लिए बहुत विश्रामदायी नही था. उनके पास हर समय लोगो की भीड जुटी रहती थी. कुछ दिनो बाद स्वामी अपने गुरुभाइयो, शिष्यो शिष्याओ, मित्रो तथा परिचितो से एकदम उदासीन हो गये निर्जनता उन्हें अत्यत प्यारी हो गयी. प्राय प्रतिदिन सुबह से सध्या तक दस बारह घटे वे ध्यान और चितन मे बिताने लगे. किन्तु जब वे सध्या समय घर लौटते तो वहा अनेक लोग उनकी प्रतीक्षा मे आखें बिछाये रहते स्वामी कुछ समय के लिए इससे भी बचना चाहते थे. इसलिए वे श्री और श्रीमती सेवियर के साथ एक सप्ताह के लिए अलमोड़े से बाहर चले गये लोकसेवक और धर्मप्रचारक स्वामी विवेकानन्द अब तक जिस प्रकार का जीवन व्यतीत करते थे, वह मानो अब उनके लिए असह्य हो उठा कम से कम कुछ समय के लिए वे ससार से उदासीन योगी की तरह एकातसेवी बन जाने

के लिए व्यग्र हो उठे.

करीब एक सप्ताह बाद, ५ जून को स्वामी पुन अलमोडा लौट आये वहा आते ही उन्हे दो दुखद समाचार मिले पवहारी बाबा ने जिन्हें वे श्रीरामकृष्ण के बाद श्रद्धा का स्थान देते थे, अपने को आहुति के रूप मे अग्नि को समर्पित कर दिया था. इसके अतिरिक्त सकेत लिपि लेखक, स्वामी के भक्त, गुडविन भी तेज ज्वर के आक्रमण के कारण मृत्यु की गोद मे सो गये थे इन दोनो सूचनाओ ने स्वामी को मर्माहत कर दिया. वे अपने शिष्यो और शिष्याओ के बीच बैठ कर भक्ति सम्बधी बातें करते हुए कीर्तन करने लगे स्वामी का कोमल हृदय अपने प्रिय शिष्य गुडविन के निधन से बहुत ही दुखी हो उठा था किसी भी प्रकार वे उनकी भक्ति और सेवा को भूल नही पाते थे. उनकी दशा कभी-कभी हृदय विदारक हो जाती थी लगता था जैसे वे साधारण लोगो के समान ही सासारिक मायाजाल मे बधे मानव है उनका ज्ञान, उनका दर्शन सब खो गया था. अपने को सभालने मे उन्हें बहुत समय लगा. कारुणिक भावावेश का ज्वार जब शात हुआ तब उन्होने गुडविन की वृद्धा माता को पुत्र के सस्मरण मे एक सुन्दर कविता 'उसे शाति मे विश्राम मिले' लिख कर भेज दी अलमोडा का वह घर जिसके कोने-कोने मे गुडविन की स्मृति चिपकी हुई थी, स्वामी को जरा भी रुचिकर नही प्रतीत होता था. गुडविन कुछ दिनो के पश्चात अलमोडा से मद्रास चले गये थे वहाँ से स्वामी के साथ उनका पत्रव्यवहार बराबर चलता रहा था इन सबकी याद ने स्वामी के हृदय के घाव को भरने नही दिया ठीक इसी समय उनके कोमल हृदय पर एक और प्रहार पडा प्रबुद्ध भारत पत्रिका के, जिसे वे मद्रास से प्रकाशित करवाते थे, सपादक श्री अय्यर की अकाल मृत्यु हो गयी युवक अय्यर बडे प्रतिभाशाली व्यक्ति थे वह वेदात के प्रचारक तथा स्वामी के भक्त थे. इस पत्रिका से स्वामी की बडी ममता थी अब इस पत्रिका को अलमोडा से ही प्रकाशित करने का प्रबध किया गया और रामकृष्ण मिशन के हाथो मे उसके प्रकाशन का उत्तरदायित्व सौंपा गया स्वामी स्वरूपानन्द को उसका सम्पादक तथा श्री सेवियर को उसका परिचालक नियुक्त कर स्वामी आश्वस्त हुए. इस अवसर पर उन्होने भावावेश मे 'प्रबुद्ध भारत के प्रति' शीर्षक कविता भी लिखी

जागो फिर एक बार !
यह तो केवल निद्रा थी, मृत्यु नहीं थी,
नवजीवन पाने के लिए,
कमलनयनो के विराम के लिए
उन्मुक्त साक्षात्कार के लिए
एक बार फिर जागो !
आकुल विश्व तुम्हे निहार रहा है

हे सत्य तुम अमर हो !

. . .

तेरा घर छूट गया,
जहां प्यार भरे हृदयो ने तुम्हारा पोषण किया
और सुख से तुम्हारा विकास देखा,
किंतु, भाग्य प्रबल है—यही नियम है—
सभी वस्तुएं उद्गम को लौटती है, जहां से
निकली थीं और नवशक्ति लेकर फिर निकल पड़ती हैं

.. .

इधर कई तरह के आघात सहते-सहते स्वामी खिन्नमन हो गये थे सेवियर दम्पति ने स्वामी के मन-परिवर्तन के लिए उन्हे कश्मीर की यात्रा का सुझाव दिया श्रीमती बुल इन दिनो कश्मीर मे ही थी अतः श्री और श्रीमती सेवियर तथा पश्चिमी शिष्याओ के साथ स्वामी ने कश्मीर मे श्रीमती बुल का अतिथि बनने का निश्चय कर लिया इन्ही दिनो बगाल के एक देशभक्त श्री अश्विनीकुमार दत्त किसी काम मे अलमोडा आये हुए थे. वे श्रीरामकृष्ण परमहस के शिष्य भी थे. अल्मोडा मे उन्होने अपने रसोइये सुना कि यहाँ शहर मे एक ऐसा अजीब बगाली साधु आया है जो घोडे पर चढता है, अग्रेजी बोलता है और बडी शान के साथ एक अग्रेज के बगले मे ठहरा हुआ है श्री अश्विनीकुमार को यह समझते देर नही लगी कि यह साधु, 'हिन्दू योद्धा साधु' स्वामी विवेकानन्द हैं क्योकि उन्हें समाचार पत्रों से ज्ञात था कि इन दिनो स्वामी अलमोडा मे है स्वामी से मिले एक युग बीत गया था उनके दर्शन की लालसा को वे किसी प्रकार रोक नही सके और चल पडे मार्ग मे उन्होने किसी व्यक्ति से उस बगाली साधु के निवासस्थान पर पहुंचने की ठीक दिशा पूछी तो उसने कहा—आप घोडे पर चढने वाले साधु के विषय मे पूछते है ?' उसने अगुली से दिशा-संकेत करते हुए कहा वह रहा उनका मकान और वहाँ देखिए वे घोडे पर चढे हुए आ भी रहे हैं

अश्विनी बाबू ने दूर से ही देखा काषाय वस्त्रधारी सन्यासी का घोडा जैसे ही गेट पर पहुंचा उसकी गति मद पड गयी अधेड आयु का एक व्यक्ति वहाँ आकर घोडे को थामते हुए उसे बगले के द्वार तक ले गया सन्यासी घोड़े से उतरे और भीतर चले गये. यह सब दृश्य देखते हुए थोडी देर बाद अश्विनी बाबू उस मकान पर पहुंचे और एक अन्य युवक सन्यासी से पूछा—क्या नरेन्द्र दत्त यहाँ हैं ? सन्यासी ने उत्तर दिया—'नही महाशय, यहाँ कोई नरेन्द्र दत्त नही हैं बहुत पहले ही उनका अन्त हो गया. यहाँ सिर्फ स्वामी विवेकानन्द हैं.' किन्तु अश्विनी बाबू ने आग्रह किया कि वे स्वामी विवेकानन्द को नहीं, बल्कि श्रीरामकृष्ण परमहस के नरेन्द्र से मिलना चाहते है अन्दर बरामदे मे बैठे हुए स्वामी का ध्यान इस वार्ता-

लाप पर था जैसे ही अश्विनी बाबू की अन्तिम पक्ति समाप्त हुई स्वामी ने अपने शिष्य को आवाज दी. शिष्य के उपस्थित होने पर उन्होने कहा—'ओह, तुमने यह क्या कह दिया ? उन्हे शीघ्र अन्दर ले आओ '

अश्विनी बाबू अन्दर आये स्वामी ने खडे होकर विनम्रता से उनका अभिवादन किया. दोनो गुरुभाई चौदह साल बाद मिले थे. दोनो के मस्तिष्क पर अतीत के अनेक खट्टे-मीठे चित्र उभरने लगे थे. अश्विनी बाबू ने कहा—'गुरुदेव ने एक बार मुझसे कहा कहा था कि प्रिय नरेन्द्र से बातें करो. परन्तु उस समय मुझसे नही बोले आज चौदह साल पश्चात मैं फिर उनसे मिल रहा हूँ गुरुदेव की वाणी व्यर्थ नही हो सकती ' उस घटना को याद कर स्वामी को निश्चय ही पश्चात्ताप हुआ और उन्होने अपने उक्त व्यवहार के लिए क्षमा मागी.

इसके बाद बहुत देर तक इन दोनो व्यक्तियो मे वर्तमान और भविष्य के कार्यक्रमो के विषय मे बातें होती रही. अन्त मे वार्तालाप ने राजनीति के क्षेत्र की ओर पाव बढाया. अश्विनी बाबू ने भारतीय राष्ट्रीय काग्रेस के विषय मे जिसकी स्थापना १८८५ ई० मे भारत के राजनीतिक उत्थान के लिए हुई थी, स्वामी के विचार जानने चाहे उन्होने पूछा—'काग्रेस जो काम कर रही है क्या आप की उस पर आस्था नही है ?' स्वामी देख रहे थे कि उन दिनो की काग्रेस मुट्ठी भर पढे-लिखे तथा समाज के सम्पन्न लोगो तक ही सीमित थी. समाज के आम लोगो से उसका कोई सम्बन्ध नही था. बडी गम्भीरता से उन्होने उत्तर दिया—'नही, मुझे उस पर विश्वास नही है. किन्तु निस्संदेह, जहाँ कुछ भी नही हो, वहाँ थोडे की मान्यता है. निद्राग्रस्त राष्ट्र को सभी ओर से ठेल कर जगाना अच्छा है. अच्छा, क्या तुम बता सकते हो कि साधारण जनता के लिए यह काग्रेस क्या कर रही है ? क्या तुम समझते हो कि इन थोडे से प्रस्तावो को लागू कर देने से तुम स्वतत्रता प्राप्त कर सकते हो ? मुझे इस पर विश्वास नही है सर्वप्रथम साधारण जनता को जगाना होगा. उन्हे भरपेट भोजन दो, फिर वे अपनी मुक्ति के लिए काम करेगे. यदि काग्रेस इनके लिए कुछ करती है तो उसके साथ मैं सहानुभूति रखता हूँ अग्रेजो के गुणो को भी अपने मे मिलाते चलना चाहिए '

अश्विनी बाबू ने धर्म की चर्चा चलायी और इस पर स्वामी के विचार जानने की इच्छा प्रकट की. स्वामी ने कहा—'मेरे धर्म का सार शक्ति है धर्म जो हृदय मे शक्ति का सचार नहीं करता, मेरे लिए धर्म नही है. उपनिषद् और गीता मे तुम यही पाओगे. शक्ति ही धर्म है और शक्ति से बढ कर दूसरी कोई चीज नही है.' अश्विनी बाबू ने अनुभव किया कि स्वामी के हृदय मे नये भारत के न जाने कितने सुन्दर सपने भरे पडे हैं. धर्म के क्षेत्र मे, राजनीति के क्षेत्र मे, समाज सुधार के क्षेत्र मे, सेवा के क्षेत्र मे और शिक्षा के क्षेत्र मे, सर्वत्र उनके विचारो के रूप मे अनमोल रत्न बिखरे पडे हैं. इनके प्रकाश मे यदि कोई लगन से काम करे तो भारत क्या,

दुनिया के सारे पराधीन देश जो दुख और अपमान के गर्त मे पडे हुए सिसकियाँ ले रहे हैं, एक न एक दिन अवश्य नवयुग का प्रभात देखेंगे. बातें करने मे समय का भी ध्यान नही रहा कई घण्टे बीतने पर अश्विनी बाबू उठ खड़े हुए और प्रेमाविक्य से स्वामी को अपने बाहुपाश मे बाँध लिया. फिर कहा—'मेरे हृदय मे आज तुम्हारा स्थान सब दिनो से अधिक ऊँचा उठ गया है अब मैं समझता हूँ कि तुम विश्व-विजयी कैसे बने और गुरुदेव तुम्हे सबमे अधिक प्यार क्यो करते थे ?'

पूर्वनिश्चित कार्यक्रम के अनुसार जून के दूसरे सप्ताह मे स्वामी अपनी छोटी सी टोली के साथ कश्मीर भ्रमण की ओर चल पडे अलमोडा से कश्मीर तक की यात्रा बहुत आनन्ददायक एव शिक्षाप्रद रही. सर्वप्रथम रावलपिंडी से तागे से ये लोग मरी पहुचे वहां तीन दिन आराम करने के पश्चात नाव से झेलम नदी के सुहावने दृश्य को देखते हुए बारामूला और फिर इसके बाद २२ जून को श्रीनगर पहुच गये मार्ग मे स्वामी अपने सन्यास जीवन की भ्रमण कहानियो तथा श्रीनगर के अतीत इतिहास आदि के विषय मे अपने साथियो को बताते जाते थे यात्रा मे स्वामी ने बराबर अपने शिष्यो के खाने-पीने एव अन्य सुविधाओ का ध्यान रखा. इस कार्य मे उन्हे आतरिक आनन्द प्राप्त होता था कश्मीर मे एक सप्ताह तक खूब भ्रमण तथा भगवत्चर्चा होती रही

इसके बाद अचानक एक दिन स्वामी को इस जीवन से विरक्ति हो गयी हास्य विनोद मे भरपूर स्वामी एकदम गम्भीर बन गये. अपनी टोली को बिना कुछ बताये वे कोई नौका लेकर दूर निर्जन स्थान मे चले जाते अन्न-जल रहित सारा दिन भगवत्चिंतन मे बीत जाता. पश्चिम के क्षितिज पर सध्या की लाली फैल जाती. पहाडी की ओट मे छिपता हुआ श्रात पथिक अपने क्षीण किरण-करो से सहला कर उन्हें समय का ज्ञान कराता तब कही उनकी सुधि लौटती और वे घर की ओर चल पडते कभी उनके लौटने-लौटते रात ढल जाती ऊपर रत्नजटित नीलाम्बर और नीचे कमलो से ढके जलाशय के बीच तैरती हुई एक छोटी-सी नौका. इस निर्जन मे एक अलौकिक आनन्द था असीम शाति थी यदि स्वामी का वश चलता तो वे रात-दिन यही एकाकी पडे रहते. किन्तु उन्हें शिष्यो की चिंता थी. स्वामी के वहां नही पहुचने से वे लोग चिंतित हो जाते.

एक अपूर्व योजना को सफल बनाने के लिए स्वामी ने अपना यह कार्यक्रम स्थगित कर दिया चौथी जुलाई, अमरीका की आजादी का राष्ट्रीय पर्व आने वाला था. उन्होंने अपनी अमरीकी शिष्याओ को उक्त दिवस के उपलक्ष मे विशेष रूप से आमन्त्रित करने के लिए एक गुप्त योजना बनायी. तीन जुलाई को उन्होंने एक अमरीकी शिष्या की सहायता से दर्जी के यहा जाकर अमरीकी राष्ट्रीय ध्वज तैयार करवाया. फिर एक नाव को फूल पत्तो से सुशोभित किया गया ४ जुलाई को प्रात काल अमरीकी शिष्यो के साथ और सभी लोग उस नौका गृह पर आमन्त्रित हुए.

उसकी छत पर अमरीकी झडा फहराया गया अमरीकी शिष्याए यह सब देख कर बहुत चकित हुई इस आयोजन को और आकर्षक बनाने के लिए स्वामी ने 'चौथी जुलाई के प्रति' शीर्षक की अपनी अग्रेजी कविता शिष्याओ को सुनायी उन्होने इसी अवसर के लिए इसकी रचना की थी —

काले बादल फट गये आकाश से
रात को बाधे हुए थे जो समा
पृथ्वी पर तानी थी चादर, इस तरह
आंख खोली, जादू की लकडी फिरी
चिड़ियां चहकीं, साथ फूलो के उठे
सर, सितारे जैसे चमके ताज के
ओस के मोती लगे, स्वागत किया
क्या तुम्हारा झुक कर झूम कर
खुली और फैली दूर तक झीलें, खुश
जैसे, आंखें कमल के फाडे हुए
दर्श करती है तुम्हारा हृदय से
कुछ निछावर, ज्योति के जीवन, क्या
आज अभिनदन तुम्हारा, धन्य है !
आज, रवि, स्वाधीनता की फूटी कली,
राह देखी विश्व ने, जैसे खिली,
देशकालिक खोज की, तुमसे मिले,
छोड़ा है घर, मित्र, छोड़ी मित्रता
खोजा तुमको, आवारा मारा फिरा,
गुजरा वहशत के समदर से, कभी
सघन पेडो के गहन वन से, लड़ा
हर कदम पर प्राणो की बाजी लिये
वक्त वह, हासिल निकाला काम का,
प्यार का, पूजा का, जीवन-दान का,
हाथ उठाया, सवार कर पूरा किया,
फिर तुम्हीं ने स्वस्ति की बांधी कमर
जन गणो पर मुक्ति की लाली किरण
देव चलते ही चलो बेरोके-टोक,
विश्व को दुपहर न जब तक घेर ले,
कर तुम्हारा रहजमी जब तक न दे,
स्त्री-पुरुष जब तक न देखें चाव से,

वेड़ियां उनकी कटीं, उल्लास की
जो नयी जब तक समझें आ गयी

इस उत्सव के बाद स्वामी के मन मे एकान्तवास का आकर्पण फिर बढने लगा. ६ जुलाई को श्रीमती बुल, कुमारी मैक्लिउड को लेकर किसी विशेप कार्यवश गुलमर्ग चली गयी. इसी बीच स्वामी भी किसी से बिना कुछ कहे अमरनाथ की यात्रा के लिए निकल पडे. १० जुलाई को जब श्रीमती बुल और कुमारी मैक्लिउड श्रीनगर लौटी तो स्वामी की अचानक अनुपस्थिति का पता चला ऐसा पहले कभी नहीं हुआ था कि कई दिनो तक स्वामी का कुछ पता-ठिकाना नही चले शिष्याए बहुत चिंतित हुईं वे स्वामी के विपय मे यथासंभव पता लगाती रही १५ जुलाई को उन्होंने देखा कि स्वामी उनके सामने उपस्थित हैं पूछने पर ज्ञात हुआ कि सोनमर्ग के रास्ते वे अमरनाथ की ओर जा रहे थे किन्तु अत्यधिक गर्मी के कारण मार्ग के हिम कण पिघल कर रास्ते को अवरुद्ध कर रहे थे. इसलिए वे अपना मनोरथ पूर्ण नही कर सके और वापस लौट आये.

१८ जुलाई को शिष्याओ के साथ कश्मीर दर्शन की यात्रा शुरू हुई इस्लामाबाद के कुछ प्राचीन मदिरो तथा ऐतिहासिक भग्नावशेपो को देखते हुए स्वामी तत्कालीन संस्कृति और इतिहास आदि के विषय मे शिष्याओ को बताते जाते थे. इसके पश्चात् इच्छाबल की ओर भी गये, वहा झेलम नदी के तट पर उनका काफी समय बीता शिष्याओ के साथ हिन्दू, बौद्ध, इस्लाम तथा ईसाई धर्मों के विभिन्न ऐतिहासिक तत्वो की तुलनात्मक चर्चा चलती रही इस नदी के तट पर अक्सर ये लोग प्रात काल मे घूमने निकलते और धर्म-चर्चा मे सब लोग इतने तल्लीन हो जाते कि खाने-पीने की सुधि नही रहती सध्या समय ये लोग अपने नौका-गृहो मे वापस लौटते बौद्ध धर्म, या बुद्धदेव के विषय मे उनके विचार सबसे भिन्न थे. उन्होंने उक्त वार्तालाप मे शिष्याओ से कहा था —बुद्धदेव अपने लिए एक क्षण भी नहीं जिये. इसके अतिरिक्त उन्होने पूजा-अर्चना को मान्यता कभी नही दी. वे एक मनुष्य नहीं, बल्कि एक राज्य थे मैंने इस राज्य का द्वार देख लिया है. अब तुम सभी इसके अदर आ जाओ. कहते कहते वे भाव-विभोर हो उठे. धर्म-चर्चा करते-करते वे भारतवर्ष के जगमगाते भविष्य की कल्पना करने लगते उनका मस्तिष्क कभी भी निष्क्रिय नही रहा बराबर नये विचार और नयी कल्पनाओ की दुनिया मे वे अपने साथ-साथ सबको घुमाते रहे.

इच्छाबल मे ही उन्होने पुन अमरनाथ जाने की योजना बनायी और बहन निवेदिता को साथ चलने की अनुमति दी यह निश्चित हुआ कि जब तक वे अमरनाथ की यात्रा से लौट नही आते, तब तक उनकी अन्य शिष्याएँ पहलगाम मे निवास करेंगी. इसके बाद बाद यात्रा की तैयारी होने लगी. यात्रा मे रात बिताने के लिए तम्बू आदि खरीदे गये अमरनाथ की यात्रा के लिए उनके साथ साधुओ की

एक वडी टोली भी सम्मिलित हो गयी सत्सग मे यात्रा की थकान मालूम नही पडती थी जव चलते-चलते शाम हो गयी तो सभी लोग एक समतल स्थान पर अपने-अपने तम्वू गाडने लगे.

साधुओ के समुदाय मे स्वामी और वहन निवेदिता ने भी अपने-अपने तम्वू लगाये साधुओ की टोली मे अग्रेज महिला का तम्वू लगते देख कर सभी साधुओ ने इस पर क्रुद्ध भाव से आपत्ति उठायी स्वामी ने उन्हे भाति-भाति से समझाया, पर वे नही माने स्वामी की क्रोधाग्नि भडक उठी. इतने मे ही एक नागा साधु वड़े धीर-गम्भीर भाव से स्वामी के पास आया और बोला: 'स्वामी जी, यह सत्य है कि आप मे शक्ति है, परन्तु उसे इस प्रकार प्रकट करना उचित नही है.' स्वामी ने अपनी गलती समझ ली. वे शान्त हो गये. वहन निवेदिता का तम्वू उस समुदाय से अलग लगाया गया स्वामी ने भी अपना तम्वू पूर्वनिश्चित स्थान से हटा लिया. किन्तु दूसरे दिन प्रात.काल साधुओ के व्यवहार-भाव मे महान अन्तर दिखाई पडा जान पड़ता है कि स्वामी के प्रतिवाद पर उन्होने गहराई से विचार किया और समझा कि स्वामी ने जो कुछ भी कहा था, सही कहा था अव वे वहन निवेदिता की, जिससे वे शुरू मे दूर-दूर रहा करते थे, हर प्रकार से मदद करने को तैयार रहते. सध्या समय साधुओ के साथ स्वामी भी धूनी रमाते और प्रज्वलित अग्नि के चारो ओर घिरे साधुओ के साथ वैठ कर धर्म चर्चा करते दो-चार दिनो मे ही सारे साधु स्वामी के चरित्र, व्यक्तित्व एव ज्ञानवल से परिचित ही नही, प्रभावित भी हुए. अगले पडाव के समय साधुओ ने वहन निवेदिता तथा स्वामी के तम्वू अपने सभी तम्वुओ से आगे पथ-प्रदर्शक के रूप मे गाडे स्वामी ने भी साधुओ के कार्यक्रम के अनुसार अपना कार्यक्रम वना लिया चौवीस घटे मे एक वार सध्या समय भोजन करना, झील के वर्फीले जल मे स्नान करना, धूनी रमाना और धर्म चर्चा करना. समतल भूमि से दस हजार फीट ऊपर हिमाच्छादित पर्वत शिखर को पार करने के वाद पचतरणी नामक स्थान पर इस वार पडाव पड़ा. यहां गिरिशृगो से पांच नदियां थोड़ी-थोडी दूर पर निकलती हैं. नियम यह है कि सभी यात्री एक ही गीले वस्त्र पहने हुए वारी-वारी से इन पांचो नदियो मे स्नान कर अमरनाथ की यात्रा के लिए आगे वढते हैं स्वामी का शरीर इधर वहुत दिनो से अस्वस्थ रह रहा था इस लम्वी पद यात्रा से वे और टूट गये, वहन निवेदिता तथा अन्य साधुगण उनके नियमित कठिन कार्यक्रम मे वाधा वन कर उपस्थित न हो, इस भय से वे कुछ समय के लिए इन लोगो से पृथक हो गये. पंचतरणी के पांच निर्झरो के पिघले हुए हिमजल मे उन्होंने अक्षरशः नियम का पालन करते हुए स्नान किया, फिर अपने साथियो से जा मिले.

दो अगस्त की रात मे यात्रा पुनः आरम्भ हुई. चांदनी रात मे हिमालय की शोभा देखते ही वनती थी. तुषारमडित गिरि-शिखरो से आती हुई हड्डियो को जमा देने वाली हवा, आज स्वामी जी के शिथिल शरीर मे नयी शक्ति, नयी उमग का

सचार कर रही थी. हिमालय की दुर्गम चढाई शुरू हुई. काफी ऊँचाई पर जाकर एक छोटी सी घाटी मे उतरना था. पर्वत की ढलान इतनी सीधी थी कि तनिक भी पैर की गति असतुलित होने पर प्राण से हाथ धोना पडता किन्तु हँसी-खुशी मे मार्ग सुगम होता गया. सभी लोग सकुशल घाटी मे उतर आये. सारी रात चलने के वाद सूर्योदय हो चुका था किन्तु ये लोग रुके नही, चलते ही गये. काफी दूर जाने के वाद फिर चढाई आरम्भ हुई. धीरे-धीरे कठिन मार्ग समाप्त हुआ और अमरनाथ की पवित्र गुफा की दूर से झलक मिलने लगी. झलक मिलते ही सभी यात्रियो के द्वारा उच्चरित 'जय महादेव' की ध्वनि से सारा वायुमडल गूज उठा. थकान के कारण स्वामी अन्य यात्रियो से पीछे पड़ गये. मार्ग की एक नदी मे उन्होने जी भर स्नान किया, फिर अपने विचारो मे लीन धीरे-धीरे आगे वढे साथी इनकी प्रतीक्षा कर रहे थे. जब इन्होने उन लोगो को देखा तो उन्हे आगे वढने के लिए सकेत कर दिया और आप शिव के ध्यान मे खोये-खोये धीरे-धीरे चलने लगे.

अमरनाथ की गुफा के पास पहुँचने पर भावावेश मे स्वामी का सारा शरीर कापने लगा. स्वामी की दशा देख कर वहन निवेदिता चिन्तित हो उठी उन्हें भय था कि कही स्वामी कठिन श्रम से विलकुल ही टूट गये तो क्या होगा ! स्वामी ने अपनी शिष्या को देखा तो कहा मैं स्नान करने जा रहा हूँ, तुम पीछे-पीछे आना. स्नान के पश्चात् उन्होने नागा तथा अन्य साधुओ के साथ पूरे शरीर मे भस्म लगाया और एक मात्र कौपीन धारण कर भक्ति-विह्वल हृदय से अमरनाथ की गुफा मे प्रवेश किया सामने चिर अभिलाषित, तुषार-निर्मित, विशाल शिवलिंग अपनी धवल काति विखेर रहा था शतश कठो से भगवान शकर का गुणगान होने लगा. स्वामी पूर्ण रूप से भाव-विभोर हो गये थे. पहले तो घुटने टेक कर शिव स्तुति की. फिर भूमि पर लेट कर उन्होने शिवलिंग का स्पर्श किया उन्हे इस समय एक विचित्र अनुभव हुआ इसके विषय मे उन्होने वाद मे वताया. उन्हें ऐसा लगा कि उनकी आंखो के समक्ष साक्षात् शिव खडे थे और उन्हें इच्छा-मृत्यु का वर दे रहे थे. गुफा मे थोडी देर तक ध्यानावस्थित रह कर स्वामी वाहर आये. गुफा मे वाहर आने पर सौभाग्यवश उनकी दृष्टि सफेद कवूतरो पर पडी. अमरनाथ के दर्शन के वाद सफेद कवूतरो का दर्शन शुभ माना जाता है वहुत कम लोगो को यह सौभाग्य मिलता है.

वहन निवेदिता ने भी गुफा मे प्रवेश कर शिव की आराधना की किसी ने उनके इस कार्य पर आपत्ति प्रकट नही की. अमरनाथ की पूजा अर्चना के वाद स्वामी वहन निवेदिता तथा अन्य साधुओ के साथ नदी तट के शिलाखड पर जलपान के लिए बैठे उन्होने कहा 'उस प्रतिमा मे साक्षात् शिव खडे थे. यहाँ सिर्फ आराधना ही आराधना है. धर्म का व्यापार नही है मैंने आज तक के जीवन मे इतना सौन्दर्य, इतनी उत्तेजना और इतनी प्रेरणा कही भी नही देखी.'

अमरनाथ की अपूर्व अनुभूति और कष्टसाध्य जीवन ने उनके शरीर को

पूर्ण रूप से झकझोर दिया. अत्यधिक ठंढ के कारण उनकी बायी आंख मे एक स्थान पर रक्त जम गया था. पूर्व निश्चित कार्यक्रम के अनुसार स्वामी और सभी लोगो के साथ लौट कर पहले पहलगाम आये. अन्य शिष्याएँ पहलगाम मे उनकी प्रतीक्षा कर रही थी सब लोग आठ अगस्त को श्रीनगर लौटे रास्ते मे स्वामी अपनी शिष्याओ से अमरनाथ की यात्रा तथा शिव दर्शन की अनुभूतियो का वर्णन करते रहे वे तन-मन से शिवमय हो गये थे कुछ समय के लिए शिव-चर्चा के सिवा अन्य किसी भी बात से उनकी रुचि जाती रही थी.

श्रीनगर मे ८ अगस्त से ३० अगस्त तक पुन: नौकागृह का जीवन पूर्ववत् प्रारभ हो गया श्रीनगर आने के बाद मुखर स्वामी फिर अंतर्मुखी हो गये. निर्जनता उनकी प्रिय सहचरी बन गयी. अक्सर वह अपनी छोटी सी नौका को लोगो की नावो से दूर नितात सूने मे ले जाते और प्राकृतिक दृश्यो का आनन्द लेते-लेते न जाने किस चितन मे खो जाते कभी-कभी प्रात: वेला मे जब उनकी मन:स्थिति बहिर्मुखी होती तो वे सभी लोगो से वार्तालाप करते वार्तालाप के समय शिष्याओ के अतिरिक्त कश्मीर दरबार के उच्च पदाधिकारी तथा राज्य के अन्य साधारण लोग भी उपस्थित रहते. इन बैठको मे अधिकतर धार्मिक एव सामाजिक विषयों की चर्चा होती थी. स्वामी राष्ट्र की दुर्बलता का कारण तथा उसके प्रतिकार पर अपने विचार रखते. हिन्दू धर्म से छुआछूत, ऊच-नीच की भावना को शीघ्रातिशीघ्र निकाल फेंकने की उनकी इच्छा बडी बलवती थी वे कहा करते थे कि गुरुदेव श्री रामकृष्ण के जीवन का आदर्श ही राष्ट्र को उन्नति के शिखर पर खीच सकता है

एक व्यक्ति ने स्वामी से पूछा कि जब हम देखें कि शक्तिशाली दुर्बल पर अत्याचार कर रहा है तो हमे क्या करना चाहिए? स्वामी ने तत्क्षण उत्तर दिया—तुम्हे नि संदेह ही शक्तिशाली को अपने बाहुबल से परास्त करना चाहिए इसी प्रकार के किसी अवसर पर प्रश्नो के उत्तर देते हुए स्वामी ने कहा था—'जहा दुर्बलता और जडता है, वहा क्षमा का कोई मूल्य नही, वहा युद्ध ही श्रेयस्कर है. जब तुम यह समझो कि सरलता से तुम विजय प्राप्त कर सकते हो, तभी क्षमा करना ससार युद्धक्षेत्र है युद्ध करके ही अपना मार्ग साफ करो.'

इसी समय किसी दूसरे व्यक्ति ने एक प्रश्न उनके सामने रखा—अपने अधिकार की रक्षा के लिए किसी किसी व्यक्ति को प्राण तक विसर्जित कर देना चाहिए या उसका प्रतिकार ही नही करना चाहिए? स्वामी ने क्षण भर मौन रह कर कहा—'मेरे विचार से सन्यासियो को प्रतिरोध नही करना चाहिए. किन्तु आत्म-रक्षा गृहस्थ का कर्तव्य है.'

बौद्ध और जैन धर्म के अहिंसा तथा अप्रतिरोध की भावना का सम्मान करते हुए भी स्वामी ने कहा कि यह सब ससारत्यागी सन्यासियो के लिए श्रेयस्कर है. गृहस्थो के लिए इस प्रकार का आदर्श उचित नही अहिंसा अच्छी चीज है. किन्तु

शास्त्रो का विचार है कि गृहस्थ के मुह पर यदि कोई एक थप्पड मारे तो उसके प्रतिरोध मे गृहस्थ को उसके मुँह पर दस थप्पड मारने चाहिए ऐसा नही करना ही पाप है. मार और अपमान सह कर जीवन व्यतीत करने से सर्वदा नरक मिलता है. वीरता और निर्भयता से अन्याय और अत्याचार का दमन करना गृहस्थ का कर्तव्य है स्वामी ने शास्त्र मे वर्णित मनु का विचार भी अपनी पुष्टि के लिए रखा कि हत्या के लिए आये हुए ब्राह्मण का भी वध करने मे कोई पाप नही वीर भोग्या वसुधरा वीर ही पृथ्वी का सुख भोग सकते है. किन्तु इन वीरो को नि'सदेह अन्याय, अत्याचार आदि से अपने को पृथक रखना होगा.

स्वामी की अमृतवाणी का स्वाद लेने कश्मीर के महाराजा भी आया करते थे उन्होने स्वामी के कश्मीर निवास मे हर तरह की सुविधा प्रदान की स्वामी की इच्छा थी कि कश्मीर मे एक सस्कृत कालेज और एक आश्रम की स्थापना करें. इसके विषय मे उन्होने महाराजा से बातचीत की. झेलम नदी के तट की जमीन स्वामी ने पसद की और महाराजा ने वह भूमि स्वामी को देने का वचन दे दिया. स्वामी की शिष्याए झेलम तट की भूमि पर तम्बू लगा कर वही रहने लगी. स्वामी अक्सर प्रात काल टहलते हुए अपने नौकागृह से शिष्याओ के तम्बू के पास आते और कुछ देर वार्तालप कर लौट जाते वे उस भूमि को देख कर, मठ और सस्कृत कालेज के सम्बध मे शिष्याओ के साथ तरह-तरह की योजनाए बनाते और प्रफुल्ल होते थे सितम्बर के मध्य मे उन्हें भारत सरकार की ओर से सूचना मिली कि कश्मीर के महाराजा ने जो भूमि देने का वचन दिया था, वह उन्हें नही मिलेगी.

अपनी योजना के छिन्न भिन्न होने से स्वामी के हृदय को गहरी ठेस लगी. वैसे भी जबसे वे अमरनाथ की यात्रा से वापस आये थे, बहुत कम ही ऐसे अवसर आये होंगे जब वे अपने विनोदी प्रकृति के वार्तालाप मे डूबे हो. अधिकाश समय वे भगवत्चिंतन मे ही लीन रहते थे यदि कोई उनसे इतने अतर्मुखी होने का कारण पूछता तो वे कहा करते कि इन दिनो भीतर-बाहर चारो ओर 'काली मा' ही दिखाई देती हैं. उन्हें न भूख है न प्यास. यह शरीर भी मानो उनका नही, मा काली का है. नेता, समाजसेवक, धर्म शिक्षक आदि रूप उनके व्यक्तित्व से ओझल हो गये थे. जान पडता था जैसे अरण्य मे एक ससारत्यागी योगी तपस्यारत है. आधी-आधी रात तक वे कश्मीर के घने वन मे अकेले विचारमग्न घूमते रहते. नौकागृह मे लोग उन्हे घटो समाधि मे लीन पाते. इसी मन स्थिति मे उन्होने एक दिन 'मा काली' शीर्षक यह कविता लिखी —

मां काली

छिप गये तारे गगन के
बादलों पर चढ़े बादल
काप कर ठहरा अंधेरा

गरजते तूफान मे, शत
लक्ष पागल प्राण छूटे
जल्द कारागार से—द्रुम
जड समेत उखाड़ कर, हर
चला पथ की साफ करके
तट से आ मिला सागर,
शिखर लहरो के पलटते
उठ रहे हैं कृष्ण नभ का
स्पर्श करने के लिए द्रुत.
किरण जैसे अमंगल की
हर तरफ से खोलती है
मृत्यु-छायाएं सहस्रो,
देह वाली घनी काली
आधि-व्याधि बिखेरती,
नाचती पागल हुलस कर
आ जननि, आ जननि, आ, आ!
नाम है आतक तेरा,
मृत्यु तेरे श्वांस मे है,
चरण उठ कर सर्वदा को
विश्व एक मिटा रहा है
समय, तू हे सर्वनाशिनि
आ जननि, आ जननि, आ आ!
साहसी, जो चाहता है
दुख, मिल जाना मरण से,
नाश को गति नाचता है,
मां उसी के पास आयी.

कविता गुनगुनाते हुए वे विह्वलता से 'मा-मा' चिल्लाने लगते. लगता जैसे किसी अपरिचित स्थान पर अबोध शिशु से उसकी मा बिछुड गयी है और वह शिशु विकल होकर मा को पुकार रहा है. इसी दशा मे सहसा ३० अगस्त को स्वामी श्रीनगर से क्षीरभवानी की ओर चल पडे. उन्होंने सभी लोगो को सख्ती से मना कर दिया कि कोई उनका पीछा न करे. क्षीरभवानी के पावन नदी तट पर बैठ कर स्वामी समाधिमग्न हो गये. सामने देवी के अति प्राचीन मदिर का भग्नावशेष था देवी की आराधना प्रतिदिन एक मन दूध के खीर से की जाती थी स्वामी इनके आयोजन मे व्यस्त हो गये एक विशेष प्रकार की साधना के लिए एक स्थानीय

ब्राह्मण की छोटी सी कन्या को देवी की प्रतिमूर्ति मान कर वे प्रतिदिन प्रातःकाल शास्त्रानुसार उसकी पूजा-अर्चना करने लगे वर्षों पूर्व गुरुदेव श्रीरामकृष्ण ने भी एक बार षोडशी पूजा की थी. सभव है उस समय स्वामी की मनोदशा भी श्रीरामकृष्ण जैसी हो गयी हो, और उन्होने क्षीरभवानी की ब्राह्मण कन्या मे देवी का सजीव रूप देखा हो.

क्षीरभवानी का मदिर एक विदेशी आक्रमण के कारण ध्वस्त हो गया था मदिर के भग्नावशेष को देख कर स्वामी के हृदय मे पीडा हुई उन्होने सोचा यदि उस आक्रमण के समय वे यहा उपस्थित रहते तो अपने प्राणो की बाजी लगा कर मदिर की रक्षा करते. जैसे ही उनके हृदय मे इस तरह की बात उठी, उन्हे जान पडा कि जैसे साक्षात् देवी की आवाज उनके कर्ण-कुहरो मे प्रवेश कर रही है यदि आक्रमणकारियो ने मेरा मदिर ध्वस्त कर प्रतिमा को अपवित्र कर दिया तो इससे तेरा क्या ? तू मेरी रक्षा करता है या मैं तेरी रक्षा करती हू ?

इस आवाज ने स्वामी को विस्मय मे डाल दिया क्या सत्य ही उन्होने देवी की आवाज सुनी या यह सब उनके ही मस्तिष्क का भ्रमजाल है. सोचते-सोचते उन्हे चक्कर-सा आने लगा. फिर भी दृढ हृदय स्वामी को अपनी स्थिति का पूरा ज्ञान था दूसरे दिन मदिर के सामने बैठे हुए वे सोचने लगे मदिर की जो भी दुर्दशा होनी थी वह हो चुकी. अब उनका कर्तव्य है कि भिक्षाटन करके धन एकत्र करें और मदिर को पूर्ववत् रूप प्रदान करें. हृदय मे इस प्रकार की भावना के जन्मते ही उन्हे फिर वही देववाणी सुनाई पडी—'यदि मेरी इच्छा हो तो क्या मैं सात मजिल वाला सोने का मदिर यही इसी समय नही तैयार कर सकती हूँ ? मेरी इच्छा से ही यह मदिर भग्न होकर पडा हुआ है'

इसे सुन कर स्वामी किंकर्तव्यविमूढ़ हो गये. इस देवी, इस महामाया के सामने भला एक योगी की क्या हस्ती. मानव के अपने बल का, अपनी विद्या का, अपने ज्ञान का सारा अहकार क्षण भर मे धूल मे मिल सकता है स्वामी का अह उन्हे धिक्कारने लगा, तुम कुछ भी नही हो, कुछ भी नही तुम सिर्फ मां काली के हाथों द्वारा परिचालित यत्र हो. जो कुछ भी हो रहा है, सब उन्ही की इच्छा का परिणाम है स्वामी वहाँ ६ दिन ठहरे. इन ६ दिनो तक नदी तट पर बैठ कर देवी की साधना और तपस्या में उन्होने अपने को डुबाये रखा

जब वे ६ अक्टूबर को श्रीनगर पहुँचे तो बिलकुल परिवर्तित रूप मे—मुण्डित सिर, खुले पांव और हाथ मे दड वे बराबर 'मा काली' के ध्यान मे लीन रहते जब कभी कुछ बोलते तो बस मा काली के अद्भुत रूप और गुण की चर्चा करते, 'मां काली' पर रचित अपनी कविता गुनगुनाया करते. कर्मयोगी स्वामी विवेकानन्द की इस दशा को देख कर उनकी शिष्याएँ चिंतित हुई और उन्हें कलकत्ता ले जाने की इच्छा प्रकट करने लगी उनकी चिता के निराकरण के लिए

स्वामी ने कहा 'मेरी कर्म की इच्छा, स्वदेश प्रीति सब कुछ लुप्त हो गयी है. हरि ओम्. मैंने भूल की थी, मैं यंत्र हूँ, वे यंत्री हैं माँ-माँ, वे ही सब कुछ है, वे ही कर्ता हैं, मैं कौन हूँ ? उनकी अज्ञानी संतान मात्र हूँ.'

पहाड़ से मैदान पर जाने का प्रबन्ध होने लगा. पूर्व कार्यक्रम के अनुसार अब स्वामी किसी भी योजना मे, किसी भी प्रबन्ध मे रुचि नही लेते थे. शिष्याओं या अन्य लोगों से उनकी बातचीत भी बहुत कम होती थी. ११ अक्टूबर को सभी लोग बारामूला आये और वहाँ से दूसरे दिन लाहौर के लिए प्रस्थान किया. शिष्याएँ भारत के कुछ मुख्य स्थानों को देखना चाहती थी अत उन्होंने स्वामी शारदानन्द तथा स्वामी सदानन्द को अलमोडा से लाहौर बुला लिया. स्वामी शारदानन्द, दिल्ली और आगरा आदि स्थानों के भ्रमण मे शिष्याओं के साथ रहे और विवेकानन्द स्वामी सदानन्द के साथ बेलूर वापस आ गये.

अकस्मात् बिना किसी पूर्व सूचना के स्वामी को मठ मे पाकर वहाँ के लोग बडे प्रसन्न हुए. परन्तु यह क्या ? कुछ ही समय के अंतर ने उनके रूप को इतना परिवर्तित कर दिया था—पीला मुखमण्डल, बायी आँख मे जमा हुआ रक्त बिंदु, सूजे हुए पाँव और क्लांत-शिथिल शरीर. मन भी कुछ उखडा-उखडा-सा. किसी से कोई बातचीत नही कभी मौन, स्तब्ध बैठे रहते, कभी पूर्व की ओर मुँह किये, पद्मासन लगाये ध्यान मे मग्न रहते. खुली आँखों की स्थिर दृष्टि बाहर की ओर नही, मानों भीतर की कोई चीज देख रही होती.

उनकी यह दशा देख कर मठ निवासियों को चिंता होने लगी उन्हें भय था कि इस तरह की कठिन समाधि अवस्था मे वे किसी दिन अपना शरीर त्याग न कर बैठे उन्हें उस अलौकिक भाव राज्य से साधारण जगत मे खीच लाने के लिए सन्यासियों ने बहुत प्रयत्न किये कुछ लोग उन्हें चित्ताकर्षक कहानिया सुनाते. कुछ लोग मठ के प्रबन्ध तथा श्रीरामकृष्ण मंदिर के निर्माण की समस्याओं को लेकर उनके पास जाते. परन्तु वे गम्भीर और उदासीन भाव से कहते—'मैं क्या जानूँ, मा काली की जो इच्छा होगी, वही होगा '

एक बार एक शिष्य ने बड़ी विनम्रता से स्वामी के चरणस्पर्श कर कहा—आप की आँख मे यह लाल रक्त कैसे इकट्ठा हो गया ? वह कुछ नही है, उत्तर देकर स्वामी मौन हो गये शिष्य ने बडे साहस से फिर पूछा कि श्री अमरनाथ मे आप ने जो कुछ अनुभव किया, क्या वह सब मुझे नहीं बताइएगा ?

इस बार स्वामी कुछ चौंके. दृष्टि भी कुछ बाहर की ओर खुली. वे कहने लगे—'जबसे अमरनाथ जी का दर्शन किया है, तबसे चौबीसों घण्टे मेरे मस्तिष्क मे मानो शिव समाये रहते हैं. किसी प्रकार भी नहीं हटते. धीरे-धीरे स्वामी ने अमरनाथ और क्षीर भवानी की कष्टसाध्य यात्रा और अद्भुत अनुभूतियों के विषय मे अपने शिष्य को अवगत कराया. इसके बाद से वे कुछ यथार्थ जगत मे उतर आये.

कभी शास्त्रादि की चर्चा, कभी मठ या मंदिर के निर्माण एव प्रवन्ध की चर्चा अपने शिष्यो के साथ किया करते.

इस बीच स्वामी का शरीर दिन प्रतिदिन अस्वस्थ होता जा रहा था. मठ मे आने के बाद खासी और दमा की बीमारी भी उन्हें सताने लगी थी समुचित चिकित्सा के लिए स्वामी को मठ से कलकत्ता, श्री बलराम बाबू के मकान मे, लाया गया. यहां प्रसिद्ध डाक्टरो ने उनकी शारीरिक परीक्षा की और फिर नियमपूर्वक चिकित्सा एव परिचर्या होने लगी कलकत्ते के बागबाजार मुहल्ले के इस मकान मे सवेरे से रात तक स्वामी के दर्शनार्थियो की भीड जुटी रहती. उससे उनकी परिचर्या के नियमित कार्य मे बाधा उपस्थित हो जाती. प्रायः भोजन के निर्धारित समय मे काफी विलम्ब हो जाता. डाक्टरो के परामर्श से उनके शिष्यो ने लोगो के मिलने का समय निश्चित कर दिया. परन्तु प्रेम के प्रतीक स्वामी ने कभी किसी के हृदय को नही तोडा. जो भी जब आया, सदा उनसे मिल कर गया चाहे कोई गृहस्थ हो या वैरागी, पापी हो या पुण्यात्मा, सबको उन्होने एक दृष्टि से देखा, सबके साथ एक सा व्यवहार किया

स्वामी के इस समभाव ने कुछ शिष्यो के हृदय मे सशय के बीज बो दिये. वे सोचने लगे कि स्वामी को मनुष्य की पहचान नही है तभी वे अवाछित लोगो को मठ मे प्रश्रय देते हैं एक बार जब वे टहल रहे थे तो एक शिष्य ने उत्तेजित होकर उनसे इस विषय पर चर्चा चलायी. स्वामी ने स्थिति समझ ली और भावातिरेक मे कहा—'वत्स, क्या तुम यह कहते हो कि मैं मनुष्य को नही पहचानता ? यह तुमने कैसे कहा ? जब मैं किसी मनुष्य को देखता हूँ तो मैं सिर्फ उसके अतर्जगत के क्रिया-कलाप को ही नही देखता बल्कि उसके अतीत जीवन की झलक भी मुझे मिल जाती है, उसके अवचेतन मन मे क्या हो रहा है, यह भी मुझे ज्ञात हो जाता है जिसे वह भी नही जान पाता किन्तु इसके बाद भी मैं ऐसे लोगो को क्यो आशीर्वाद देता हूँ, क्या तुम जानते हो ? इन बिचारी दुखी आत्माओ ने हृदय की शान्ति के लिए कितने द्वार खटखटाये पर सर्वत्र उन्हें दुत्कार ही मिली. अत मे वे मेरे पास आये यदि मैं भी उन्हें नकार दू तो उन्हें जीने का क्या सहारा है ? इसीलिए मैं कोई भेदभाव नही रखता. वे कितने पीडित है इस ससार मे कितना कष्ट है.'

इस प्रकार बातचीत, चिकित्सा और परिचर्या से स्वामी का स्वास्थ्य सुधरने लगा. यदा कदा वे भ्रमण के लिए बेलूर मठ की ओर भी जाया करते थे. उस समय मठ और मदिर का निर्माण कार्य करीब करीब समाप्त होने को था. जो कुछ कार्य शेप रह गया था उसे उनके परामर्श से स्वामी विज्ञानानन्द सम्पन्न करवाने मे जुटे हुए थे. स्वामी के हृदय मे बेलूर मठ के प्रति अपार ममता थी. उसके नक्शे के विषय मे, उसकी कार्य प्रणाली के सम्बन्ध मे उनकी बडी-बडी कल्पनाएँ थी मठ-प्रागण मे घूमते हुए अपने गुरुभाइयो और शिष्यो के सामने वे अपनी कल्पना को शब्द चित्रो

मे उतारा करते—'यहाँ पर साधुओ के रहने का स्थान होगा. यह मठ साधन-भजन एव ज्ञान चर्चा का प्रधान केन्द्र होगा, यही मेरी इच्छा है यहाँ से जिस शक्ति की उत्पत्ति होगी वह पृथ्वी भर मे फैल जायेगी और वह मनुष्य के जीवन की गति को परिवर्तित कर देगी ज्ञान, भक्ति, योग, कर्म के समन्वयस्वरूप मानव के लिए हितकर उच्च आदर्श यहा मे प्रसूत होगे '

दक्षिण दिशा की ओर हाथ उठा कर उन्होने फिर कहा—'वह जो मठ के दक्षिण भाग की जमीन दीख रही है, वहाँ पर विद्या का केन्द्र बनेगा व्याकरण, दर्शन, विज्ञान, काव्य, अलंकार, स्मृति, भक्तिशास्त्र और राजयोग की शिक्षा उसी स्थान मे दी जायेगी प्राचीन काल की पाठशालाओ के अनुकरण पर यह विद्या मदिर स्थापित होगा. बाल ब्रह्मचारी उस स्थान पर रह कर शास्त्रो का अध्ययन करेंगे. उनके भोजन और वस्त्र का प्रबन्ध मठ की ओर से होगा ये सब बाल ब्रह्मचारी पाँच वर्ष तक शिक्षा प्राप्त करने के बाद अपनी इच्छानुसार घर लौट कर गृहस्थी करेंगे या मठ के वरिष्ठ अधिकारियो की अनुमति लेकर संन्यास ग्रहण करेंगे. इन ब्रह्मचारियो मे जो उच्छृखल या दुश्चरित्र पाये जायेंगे उन्हें मठाधिपति बाहर निकाल देंगे यहाँ पर हर जाति और वर्ण के शिक्षार्थियो को शिक्षा दी जायेगी '

इस प्रकार स्वामी अक्सर ही मठ निवासियो के अधिकार और कर्तव्य की चर्चा किया करते थे. इसके साथ-साथ ब्रह्मचारियो के निवास-स्थान, उनके जीवन तथा उनके क्रिया-कलाप की रूपरेखा भी स्वामी ने तैयार कर दिया. मठ भूमि मे ही एक ओर सेवाश्रम बनाने का भी उनका विचार था जहाँ दीन-दुखी, आर्त्त-रोगी व्यक्तियो की सेवा-सुश्रूषा की जा सके एक बार उन्होने अपने एक शिष्य से कहा—'मठ का दक्षिण भाग मैं अभी छोड देता हूँ और उस बेल के पेड के नीचे एक झोपडी खडा कर देता हूँ. तू एक या दो अवे-लूले खोज कर ले आ और कल से उनकी सेवा मे लग जा स्वय उनके लिए भिक्षा माग कर ला स्वय पका कर उन्हें खिला. इस प्रकार कुछ दिन करने के बाद देखेगा कि तेरे इस कार्य मे सहायता के लिए कितने ही लोग अग्रसर होगे, कितने ही लोग धन देंगे '

नवम्बर के प्रथम सप्ताह मे सभी पाश्चात्य शिष्याएँ दिल्ली और आगरा के ऐतिहासिक स्थानो का भ्रमण कर बेलूर लौट आयी बेलूर पहुँचते ही बहन निवेदिता स्त्रीशिक्षा के काम मे व्यस्त हो गयी. हिन्दू स्त्रियो के जीवन से परिचित होने के लिए वह बाग बाजार मे मां शारदा तथा अन्य ब्रह्मचारिणी महिलाओ के निवासस्थान पर रहने लगी मां शारदा तथा अन्य स्त्री भक्तो ने उन्हें बडे आदरपूर्वक अपने साथ रखा. बहन निवेदिता से स्वामी बराबर ही भारतीय स्त्रियो की अवस्था तथा उनकी समस्याओ के विषय मे बातें करते थे नये समाज के निर्माण के लिए हिन्दु बालिकाओ की शिक्षा प्रणाली क्या हो, इस पर अक्सर विचार विमर्श होता था बहन निवेदिता इगलैंड मे स्त्री शिक्षा की ख्यातिप्राप्त विशेषज्ञ थी इस विषय मे उनके ज्ञान और

रुचि को देख कर ही स्वामी ने उनके कंधो पर हिन्दू बालिकाओ की शिक्षा का भार सौंपा कलकत्ता के बाग बाजार मे बहन निवेदिता की अध्यक्षता मे एक बालिका विद्यालय की स्थापना की व्यवस्था की गयी.

१२ नवम्बर को काली पूजा का शुभ दिन आ गया माँ शारदा अन्य स्त्री भक्तों के साथ बेलूर मठ आयी और उन्होंने बडे उत्साह के साथ श्रीरामकृष्ण की पूजा का आयोजन किया. माँ शारदा ने पूजा समाप्त कर सभी भक्तो को आशीर्वाद दिया. लोगो के हृदय मे विश्वास जम गया कि माँ की शुभ कामना से मठ का पावन उद्देश्य अवश्य पूर्ण होगा. यहाँ की पूजा समाप्त करने के पश्चात् संध्या समय माँ शारदा, स्वामी विवेकानन्द, ब्रह्मानन्द तथा शारदानन्द के साथ बहन निवेदिता द्वारा स्थापित बालिका विद्यालय गयी वहाँ स्थापना की पूजा सम्पन्न करते समय उन्होने आराध्य देवी से इस आदर्श विद्यालय की मगल कामना की. देवी को श्रद्धाजलि अर्पित करते हुए उन्होने वर मागा कि इस विद्यालय मे बालिकाएं शिक्षित होकर समाज के लिए आदर्श और कल्याणकारी बनें. मा शारदा के इस श्रद्धापूर्ण कार्य से बहन निवेदिता को बडी शाति मिली पीछे इस घटना का वर्णन करते हुए उन्होने लिखा—'उस क्षण भविष्य की शिक्षिता हिन्दू नारियो के सम्बन्ध मे उन्होने जो आशीर्वचन दिया, उससे अधिक महत्वपूर्ण किसी और शुभ शकुन की मैं कल्पना नही कर सकती '

बहन निवेदिता का यह कन्या विद्यालय स्वामी विवेकानन्द के लिए बराबर आकर्षण का केन्द्र बना रहा और इसके नियमो, पाठ्यक्रम तथा पाठ्यपुस्तको आदि के विषय मे वे सदा अपना परामर्श देते रहे. बहन निवेदिता ने विद्यालय के कार्य मे अपने को पूर्ण रूप से डुबो रखा था, दम मारने का भी अवकाश नही, और साथ-साथ भिक्षुणी जीवन का एक कठिन मार्ग, अल्पाहार और कठोर तख्त की शय्या स्वामी इन सबसे अवगत थे वे इस जीवन को सहज बनाने के लिए भरसक प्रयत्न करते रहे कभी वे निवेदिता को अपने साथ ही खाना खिलाते, कभी उनकी पसन्द का कोई व्यजन अपने हाथो पकाते और उन्हें अपने सामने खाने को बाध्य करते. जब वे किसी कार्यवश स्वामी से मिलने आती तो वे उनसे कुछ भोजन बनवाते और सभी गुरुभाइयो और शिष्यो का अपने सामने खिलाते इस प्रकार वे अपने रूढिग्रस्त गुरुभाइयों एव शिष्यो की जातिभेद की कट्टरता की बेडी भी तोडते.

६ दिसम्बर बेलूर मठ के इतिहास मे अति शुभ चिरस्मरणीय दिन है. आज ब्रह्मबेला मे स्वामी ने अपने गुरुभाइयो के साथ बिस्तर छोडा प्रात क्रिया से निवृत्त होकर शिष्यो और गुरुभाइयो के साथ वे गंगास्नान के लिए चल पडे पौष का जाडा. गगातट की ठडी हवा शरीर मे चुभती, कपकपी पैदा कर रही थी पूर्व मे सूर्योदय का कोई चिह्न दृष्टिगत नहीं हो रहा था तभी स्वामी ने गगा मे स्नान किया और नूतन गेरुआ वस्त्र धारण किया. फिर मठ मे लौट कर देवगृह में श्री रामकृष्ण के

देहावशेष वाले ताम्रकलश को पुष्प और वेलपत्रो से आच्छादित कर उन्होंने यथा-विधि पूजा की और ध्यानमग्न हो गये. आज ही गुरुदेव के अस्थि कलश को वेलूर के नवनिर्मित देवालय मे प्रतिष्ठित करना था मठ के सभी सन्यासी श्री रामकृष्ण के मदिरद्वार पर खडे होकर विवेकानन्द की समाधि टूटने की प्रतीक्षा करने लगे. कई घटे पश्चात् उन्होंने अपनी आखें खोली.

मदिर को स्थानान्तरित करने का सारा प्रवन्ध गुरुभाइयो और शिष्यो ने पहले ही कर रखा था सन्यासियो की टोली के आगे-आगे विवेकानन्द चल रहे थे. उनके दायें कधे पर फूल मालाओ से सुशोभित गुरुदेव का अस्थिकलश था. जिसे उन्होंने अपने हाथ का सहारा दे रखा था. शखनाद तथा श्री रामकृष्ण की जय जयकार से चारो दिशाएं गूज रही थी सफलता और सतोप की भावना से स्वामी का मुखमण्डल खिला हुआ था हर्षातिरेक से नयन थिरक रहे थे. उन्होंने अपने गुरुभाइयो और शिष्यो से कहा—'गुरुदेव ने एक बार मुझसे कहा था 'तू मुझे कधे पर चढा कर जहा भी खुशी से ले जायेगा, चाहे किसी वृक्ष के नीचे या किसी झोपडी मे, मैं वही रहूँगा उनके इस आशीर्वाद पर आस्था रख कर ही मैं उन्हे अपने भावी मठ मे ले जा रहा हूँ वत्स, यह निश्चय जानो, जितने दिन उनके नाम पर उनके अनुगामी भक्त पवित्रता, आध्यात्मिकता एव समस्त मानव जाति से समान प्रेम के आदर्श की रक्षा कर सकेंगे, उतने दिन श्री रामकृष्ण इस मठ को अपनी दिव्य उपस्थिति द्वारा धन्य बनाये रहेंगे'

नये मठ प्रागण मे सुरुचिपूर्ण वेदी बनायी गयी थी विवेकानन्द तथा अन्य सन्यासियो ने मिल कर उस ताम्रकलश को वेदी पर रखा. फिर सभी लोगो ने गुरुदेव को बार-बार साष्टाग प्रणाम किया स्वामी ने यथाविधि पूजा अर्चना के बाद होमाग्नि प्रज्वलित की एव सुमधुर कठ से वेद मन्त्रो का उच्चारण करते हुए हवन समाप्त किया दूध और चावल की बनी खीर का भोग लगा कर प्रसाद वितरण किया गया. मठ को देखते हुए विवेकानन्द ने सन्यासियो से कहा—'तुम लोग तन, मन और वचन द्वारा गुरुदेव से प्रार्थना करो जिससे महायुगावतार श्रीरामकृष्ण 'बहुजन हिताय बहुजन सुखाय' इस पुण्य क्षेत्र मे अधिष्ठित रहें और इसे सब धर्मो का समन्वय केन्द्र बनाये रखें.' हाथ जोड कर सबने प्रार्थना की

आज श्री रामकृष्ण के भक्तो की दुनिया मे आध्यात्मिकता का साम्राज्य छाया हुआ था सबके होठो पर अध्यात्म की चर्चा थी स्वामी कहने लगे—'श्री गुरुदेव की इच्छा से आज उनके धर्मक्षेत्र की प्रतिष्ठा हो गयी बारह वर्ष तक जिस चिता का बोझ मेरे सिर पर सवार था, वह आज उतर गया' स्वामी की कल्पना बडी अद्भुत थी उन्होंने अपने गुरुभाइयो, शिष्यो और वहा उपस्थित अन्य गृहस्थ भक्तो से कहा. 'यह मठ विद्या एव साधना का केन्द्र होगा तुम्हारे समान नव धार्मिक गृहस्थ इस भूमि के चारो ओर अपने घर-बार बना कर बसेंगे और बीच मे

सन्यासी लोग रहेगे मठ के दक्षिण की ओर इगलैंड और अमरीका के भक्तो के लिए आवास बनाये जायेंगे.' कुछ देर रुक कर उन्होने फिर कहना आरभ किया— 'समय आने पर सब होगा. मैं तो इसकी नीव डाल रहा हूँ बाद मे न जाने और क्या क्या होगा. कुछ तो मैं कर जाऊँगा. कुछ विचार तुम सबको दे जाऊँगा तुम उन्हें कार्यरूप मे परिणत करोगे बडे बड़े सिद्धातो को सुन कर रखने से क्या होगा? प्रति दिन उनको व्यावहारिक जीवन मे परिणत करना चाहिए. शास्त्रो की लम्बी-लम्बी बातो को पढने से क्या होगा ? उन्हे पहले समझना चाहिए फिर अपने जीवन मे उनको परिणत करना चाहिए. समझे ? इसी को कहते हैं व्यावहारिक धर्म !' उन्होंने मठ भूमि मे एक ओर अन्नशाला खोलने का विचार सन्यासियो के सम्मुख रखा यहा से दीन दुखियो को अन्नदान देने का कार्य होता अन्नदान, फिर विद्यादान और इसके बाद ज्ञानदान श्री रामकृष्ण मठ का प्रधान और प्रथम कर्तव्य था. कुछ देर मौन रहने के बाद स्वप्निल आखो से गगा की ओर देखते हुए वे सस्नेह कहने लगे, 'तुममे से कब किसके भीतर का सोया हुआ सिह जाग उठेगा, यह कौन जानता है ? यदि तुममे से किसी एक की आत्मा मे भी काली अपनी दैवी शक्ति की एक चिनगारी जला दे, तो ऐसी शतश· अन्नशालाएं इस देश मे चारो ओर खुल जायेंगी. क्या तुम लोग जानते हो—ज्ञान, भक्ति और शक्ति सभी मनुष्यो मे पूर्णभाव से स्थित है परतु उनकी अभिव्यक्ति की मात्रा मे असमानता है इसी कारण हम किसी को बडा-छोटा समझते हैं. जान पडता है कि हमारे और उस पूर्णता के बीच एक पर्दा पडा हुआ है जब यह पर्दा हटा लिया जायेगा तब मनुष्य का सच्चा रूप (पूर्ण विकसित मानव) प्रकट होगा. तब जो हम चाहेगे, जिसकी इच्छा करेगे, वही होगा'

गुरुदेव श्री रामकृष्ण के विचारो के प्रचार के लिए बगला भाषा मे एक दैनिक पत्र निकालने की बात स्वामी के हृदय मे बहुत दिनो से उठ रही थी किन्तु अर्थाभाव की समस्या थी. श्री रामकृष्ण के किसी भक्त गृहस्थ ने इस समय स्वामी के हाथ मे एक हजार रुपये ऋण के रूप मे देने की उदारता दिखाई इसकी सहायता से एक प्रेस तथा छपाई के लिए आवश्यक वस्तुएँ खरीदी गयीं. पैसो की कमी के कारण दैनिक पत्र के स्थान पर पाक्षिक पत्र निकालना तय हुआ स्वामी ने इस पत्र का नाम 'उद्बोधन' रखा और स्वामी त्रिगुणातीतानन्द पर इसके सचालन का भार सौपा

उद्बोधन का प्रथम संस्करण माघ माह के प्रथम दिवस, १४ जनवरी १८६६ को प्रकाशित हुआ इस पत्र की प्रस्तावना स्वय विवेकानन्द ने लिखी थी. यह निश्चय किया गया कि श्री रामकृष्ण के सन्यासी तथा गृहस्थ भक्त इस पत्र मे लिख कर गुरुदेव के धर्म सम्बधी मतो का प्रचार जनसाधारण मे करेंगे. इस पत्र का उद्देश्य था कि गृहस्थो के कल्याण के लिए देश मे नवीन भावधारा प्रवाहित करना स्वामी ने कहा 'इस पत्र के द्वारा जन साधारण के शारीरिक, मानसिक और

आध्यात्मिक उन्नति के लिए उनकी गलतिया न बता कर, धीरे-धीरे उन्हें प्रगति के पथ पर अग्रसर करना होगी गलतियाँ दिखाने से लोगो की भावना को ठेस पहुँचती है तथा वे हतोत्साह हो जाते है. श्री रामकृष्ण को हमने देखा है, हम जिन्हे त्याज्य मानते थे, उन्हे भी वे प्रोत्साहित करके उनके जीवन की गति मोड देते थे शिक्षा देने का उनका ढग वडा अद्भुत था स्वामी ने इस वात पर भी जोर दिया कि इस पत्र मे कोई ऐसी वात नही होनी चाहिए, जिससे दूसरो के धर्म या विश्वास को किसी प्रकार की ठेस लगे वेद और वेदात के उच्चतम आदर्शों को वहुत स्पष्ट एव सरल रूप से अभिव्यक्त करना चाहिए

एक दिन स्वामी विवेकानन्द स्वामी योगानन्द तथा श्री शरतचन्द्र के साथ वहन निवेदिता को लेकर कलकत्ते का चिडियाघर देखने गये चिडियाघर के सुपरिंटेंडेण्ट रायवहादुर रामब्रह्म सान्याल स्वामी तथा उनके शिष्यो का यथोचित स्वागत सम्मान करने के बाद चिडियाघर घुमाने लगे. रामब्रह्म वावू स्वय वनस्पति शास्त्र के अच्छे पडित थे. बगीचे के विभिन्न प्रकार के वृक्षो को दिखाते हुए वनस्पति शास्त्र के मतानुसार कालक्रम मे वृक्षादि की किस प्रकार क्रमपरिणति हुई यह वताते हुए वे आगे वढने लगे विवेकानन्द डारविन के विकासवाद से सहमत होते हुए भी उसके निर्णय को क्रम-विकास का अतिम निर्णय नही मानते थे सुपरिंटेंडेण्ट और स्वामी मे वातचीत होने लगी स्वामी ने कहा कि साख्य दर्शन मे इस विषय पर पर्याप्त विचार किया गया है उनकी सम्मति मे क्रम विकास के कारण के वारे मे भारत के प्राचीन दार्शनिको का सिद्धात ही अतिम निर्णय है चिडियाघर देख कर वातें करते हुए सभी लोग सुपरिंटेंडेण्ट के घर पहुँचे वहाँ हल्का नाश्ता-चाय के वाद दर्शन शास्त्र पर वहुत देर तक वातें होती रही. काफी समय के वाद रामब्रह्म वावू ने स्वामी तथा उनके शिष्यो को विदा किया

कलकत्ते मे सन्यासियो, शिष्यो और भक्तो के समीप रह कर स्वामी कभी भी विश्राम का जीवन नही व्यतीत कर सकते थे उनके निरतर गिरते हुए स्वास्थ्य को देख कर उनके शुभचितक पुन. उन्हे कलकत्ते से वाहर भेजने का प्रयत्न करने लगे १६ दिसम्बर को स्वामी ने सन्यासी समाज को सूचित किया कि वे कुछ समय के लिए वैद्यनाथधाम जायेंगे और फिर गरमी प्रारभ होते ही यूरोप और अमरीका की यात्रा करेंगे अपनी योजना के अनुसार १९ दिसम्बर को एक शिष्य हरेन्द्रनाथ के साथ वे वैद्यनाथधाम चले गये और प्रियनाथ मुखर्जी के अतिथि बने. वहाँ का जीवन वहुत शात था. स्वामी अधिकतर स्वाध्याय, मनन, चितन एव प्रात साय भ्रमण मे अपने को व्यस्त रखते थे एक दिन शिष्य के साथ प्रातः भ्रमण करते हुए उन्होंने अतिसार से पीड़ित एक व्यक्ति को अत्यधिक ठड मे सडक के किनारे कराहते हुए पड़ा पाया समीप जाने पर जान पड़ा कि वह कोई निराश्रित भिखारी है. उसके तन के वस्त्र बीमारी के अतिरेक से दूषित हो गये थे. दुर्गंध के कारण उसके पास जाना कठिन था. उसकी

करुण दशा देख स्वामी चिंतित हो उठे और सोचने लगे कि किस प्रकार इसकी सहायता की जाये वे तो अभी स्वय किसी के अतिथि हैं फिर इस बीमार की सेवा-सुश्रूषा कहा करें ? यदि वे इसे प्रियनाथ मुखर्जी के यहां उठा कर ले जाते है तो पता नही वे क्या सोचें, उनके इस कार्य को वे पसद करें या नही ! इस तरह की अनेक शकाएँ उनके हृदय को आलोडित करती रही अत मे अतर से आवाज आयी कि उन्हे इसे घर पर ले ही जाना उचित है, चाहे इसके लिए कितनी भी विपत्ति क्यो न उठानी पडे. शिष्य की सहायता से स्वामी रोगी को घर उठा लाये. उसके दुर्गंधपूर्ण दूषित शरीर को स्वय जल से पोछ कर स्वच्छ कर स्वच्छ कपडे बदले. फिर गर्म पानी की बोतल से पेट को सेंका और औषधि आदि का प्रबध किया. स्वामी तथा शिष्य की देखभाल से रोगी शीघ्र स्वस्थ हो गया प्रियनाथ मुखर्जी ने यह सब देखा तो श्रद्धा से नतमस्तक हो गये उन्होने जितनी बुद्धि की विशालता देखी, उतनी ही हृदय की महानता भी

स्वामी की अनुपस्थिति मे बेलूर मठ का कार्य नियमित रूप से चलता रहा. २ जनवरी १८९९ को नीलाम्बर मुखर्जी के बगीचे वाले मकान से सभी सन्यासीगण नये मठ में आ गये बहन निवेदिता सन्यासियो के आग्रह पर शरीर विज्ञान, वनस्पति विज्ञान, अग्रेजी साहित्य तथा अन्य कलाओ के विषय मे समय समय पर बेलूर मठ मे व्याख्यान देती रही मठवासी मठ के कार्यक्रम से स्वामी को सर्वदा पत्रो से अवगत रखा करते थे तथा उनकी अनुमति एव आदेशो के अनुसार ही कार्य करते थे इतना सब होने पर भी वैद्यनाथ धाम की शाति स्वामी को अधिक दिनो तक बाध नही रख सकी. विश्राम से उनका मन ऊबने लगा उन्हें ज्ञात था कि उनके जीवन के अब चद दिन ही शेष हैं अनेकानेक कार्यो की पुकार उनके कानो मे गूजने लगी कोई महीने भर बाद ही ३ फरवरी को स्वामी फिर एक दिन अचानक बेलूर मठ मे उपस्थित हो गये इस बार उनके निवास का कोई नियत स्थान नही था जब चिंतन-मनन के लिए निर्जनता मे रहने की इच्छा होती तो बलराम बाबू के मकान मे रहने लगते जब हृदय मे सन्यासी भाइयो के साथ रहने की इच्छा जगती तो मठ मे आ जाते यद्यपि उनका स्वास्थ्य अभी भी गिरा हुआ था, फिर भी मन नयी-नयी योजनाओ से भरा हुआ था

वैद्यनाथ धाम से लौटते ही स्वामी ने अपने गुरुभाइयो और शिष्यो की एक छोटी-सी सभा बुलायी और उन लोगो से कहा कि जैसे गौतम बुद्ध के शिष्यो ने देश-विदेश मे घूम कर बौद्ध धर्म का प्रचार किया था वैसे ही श्रीरामकृष्ण के भक्तो को भी कलकत्ते से बाहर जाकर गुरुदेव की वाणी का प्रचार करना चाहिए स्वामी विरजानन्द और स्वामी प्रकाशानन्द को पूर्व बगाल मे ढाका जाकर प्रचार करने का आदेश दिया गया. स्वामी विरजानन्द को इस कार्य का उत्तरदायित्व लेने मे कुछ झिझक जान पड़ी. उन्होने विनीत भाव से कहा, 'स्वामी जी, मैं कुछ भी नही जानता,

लोगो से जाकर क्या कहूगा ?' विवेकानन्द गम्भीर भाव से बोले 'जाओ, जाकर यही कहो कि मैं कुछ नही जानता. यही एक महान सदेश है.'

विरजानन्द की दृष्टि मे यह प्रचार कार्य वास्तव में अत्यत कठिन था या वे और अधिक चिंतन और साधना मे मग्न रहना चाहते थे, कौन जाने. मगर उन्होंने बहुत प्रार्थना की कि उन्हें कुछ दिन और साधना करने के लिए छोड दिया जाय जिससे वे आत्मसाक्षात्कार कर सकें. विरजानन्द की बात सुन कर विवेकानन्द का मुखमडल क्रोध से लाल हो गया. वे गरज उठे—'स्वार्थी की तरह अपनी मुक्ति की कामना करते हुए तुम नरक मे जाओगे यदि तुम पूर्ण ब्रह्म की उपलब्धि चाहते हो तो पहले दूसरो की मुक्ति के लिए कार्य करो. अपनी मुक्ति की इच्छा को नष्ट कर दो यही सबसे बडी साधना है'

इसके बाद कुछ देर मौन रह कर फिर स्नेहसिक्त स्वर मे वह बहुत देर तक अपने शिष्यो को निर्भीक कर्मयोगी सन्यासियो का कर्तव्य समझाते रहे ससार के कल्याण के लिए फलाकाक्षा त्याग कर काम मे लीन हो जाना चाहिए. इसके लिए यदि नरक मे भी जाना पडे तो कोई हानि नही फिर उन दोनो शिष्यो को लेकर वे पूजागृह मे चले गये. वहाँ काफी देर तक वे ध्यानमग्न रहे. समाधि टूटने पर जब आख खुली तो विवेकानन्द ने कहा 'मैं अपनी शक्ति को तुम लोगो मे संचारित करूंगा. स्वय भगवान सदा तुम्हारे साथ रहेंगे, कोई चिंता न करो' उन दोनो शिष्यो को विवेकानन्द उस दिन प्रचार कार्य के सम्बध मे अनेक बातें समझाते रहे दूसरे ही दिन, ४ फरवरी १८९९ को स्वामी विरजानन्द और स्वामी प्रकाशानन्द ने स्वामी विवेकानन्द की चरण-धूलि माथे से लगायी और ढाका की ओर चल पडे. इनकी विदा के तीन चार दिन पश्चात स्वामी ने स्वामी शारदानन्द और स्वामी तुरीयानन्द को गुजरात की ओर प्रचार कार्य के लिए भेजा.

उनके जाने के बाद विवेकानन्द आश्रम मे अपने गुरुभाइयो और शिष्यो को अनजाने बराबर सन्यास और ब्रह्मचर्य की शिक्षा देते रहे. वे समझते थे कि नि स्वार्थ जन कल्याण के लिए यही दो अत्यत प्रमुख उपलब्धिया हैं. मनुष्य यदि इन्हें प्राप्त कर ले तो उसमे अदम्य शक्ति उत्पन्न हो जायेगी और वह कुछ भी कर सकता है. शिक्षा देने का उनका निराला ढग था. शिष्यो की सफलता या असफलता पर उनकी सम्यक् दृष्टि रहती थी किसी की तीक्ष्ण बुद्धि की चकाचौध से वे न कभी आवश्यकता से अधिक आकर्षित हुए और न किसी की मंद बुद्धि के सम्पर्क ने उनके हृदय मे उक्त व्यक्ति के प्रति अरुचि पैदा हुई कौन व्यक्ति कितने उत्साह, लगन और सच्चाई से अपना काम करता है, इस पर उनकी विशेष दृष्टि रहती थी शिष्यो के साथ उनका सम्बध बराबरी का था. उन्होंने कभी भी उन्हें हीन भावना के गर्त मे गिरने नही दिया; बराबर उत्साह, आशा और विश्वास का सहारा देते रहे

मठ के विस्तृत प्रागण मे एक आम्रवृक्ष है. विवेकानन्द उसी वृक्ष के नीचे

चारपाई बिछा कर बैठे हैं भूमि पर कुछ शिष्यगण बैठे हैं स्वामी उन्हें समझा रहे हैं कि ब्रह्मचर्य ही सभी शक्तियों का मूलयत्र है. मन के नियंत्रण से मनोवल प्राप्त होता है. अत. हमारी नसो मे ब्रह्मचर्य की दहकती हुई ज्वाला रहनी चाहिए. ब्रह्मचर्य प्रदत्त शक्ति के द्वारा ही संन्यासी जगत का कल्याण निःस्वार्थ भाव से कर सकता है. समदृष्टि के लिए व्यष्टि का वलिदान ही वास्तविक संन्यास है सन्यासियो के साथ बातें करते करते वे उत्तेजित हो गये और ऊँची आवाज मे फकडते हुए बोल उठे 'पहले अपने आप पर विश्वास करो, फिर ईश्वर मे. मुट्ठी भर शक्तिसम्पन्न मनुष्य समार को हिला सकते हैं. हमे आवश्यकता है एक हृदय की जो सवेदना अनुभव कर सके, एक मस्तिष्क की जो विचारो को पकड सके और एक दृढ भुजा की जो काम कर सके ·· 'विश्व का इतिहास उन चद लोगो का इतिहास है जिन्हे अपने आप पर विश्वास था. विश्वास से मनुष्य के अंदर की दैवी शक्ति जाग उठती है. तुम कुछ भी कर सकते हो तव.'

वैद्यनाथ धाम से आने के कुछ ही दिन वाद, एक रात उन्होने मठ के संन्यासियो की वैठक की. यहा सन्यासियो के खान-पान के विषय मे उन्होने अपना मत प्रकट किया. उचित या अनुचित भोजन का प्रभाव मस्तिष्क पर पडना अनिवार्य है मन्यासियो को किस प्रकार का भोजन कितनी मात्रा मे और कव ग्रहण करना चाहिए, इसके विषय मे उनके अपने विचार थे. उनके अनुसार संन्यासियो के लिए सात्विक भोजन वाछनीय था परन्तु प्रशिक्षण काल समाप्त होने पर, जव मन पूर्ण रूप मे नियन्त्रित हो जाये तो शारीरिक आवश्यकता हेतु आमिष भोजन भी करना पड़े तो कोई वात नहीं ऐसी स्थिति मे भोजन का उद्देश्य जिह्वा तुष्टि नही, वरन् शरीर को पुष्ट वना कर जन कल्याण मे लिप्त कर देना हो. उन्होने इस वात को वार-वार लोगो के सामने रखा कि सन्यासियो का शरीर और मन उनके लिए नहीं, बल्कि दूसरों के लिए वना है स्वामी ने कभी भी अपने शिष्यो पर शासन नही किया, अपने प्रभावकारी व्यक्तित्व से उन्हें दवाये हुए नही रखा. उन्होने यहा तक कि जिन सन्यासियो को ब्रह्मचर्य का नियन्त्रित जीवन दुस्सह जान पडता है या इसमे कही उनकी पूर्ण आस्था नहीं है, वे स्वतत्र हैं और सन्यासी जीवन का परित्याग कर गृहस्थ का जीवन अपना सकते हैं. गृहस्थ रह कर भी वे परोपकार कर सकते हैं

वाल ब्रह्मचारी सन्यासियो के खाने-पीने के सम्वध मे नियम वनाने के वाद स्वामी ने उनके रहने के ढंग मे भी कुछ परिवर्तन करने की कोशिश की आश्रम मे गृहस्थ-भक्त एव शिष्य स्वामी तथा अन्य सन्यासियों से मिलने आया करते थे. किंतु यह स्वामी को पसद नही था वे वाल ब्रह्मचारियो को प्रशिक्षण काल मे गृहस्थो से दूर रखना चाहते थे. उन्होने सन्यासियों को समझाते हुए कहा—'गृहस्थो के शरीर मे, वस्त्रो मे आज कल मैं एक प्रकार की संयमहीनता की गध पाता हू इसलिए नियम बना दिया है कि गृहस्थ साधुओं के विस्तर पर न वैठें, न सोवें पहले मैं शास्त्रो

मे पडा करता था और अब इस सत्य को प्रत्यक्ष देख रहा हू कि क्यो सन्यासी गृहस्थो की गंध या स्पर्श सहन नही कर सकते.' स्वामी ने इस विषय को और भी विस्तार से समझाया बाल ब्रह्मचारियो को सिर्फ स्त्रियो से दूर रहने की ही शिक्षा उन्होने नही दी, बल्कि यह भी कहा कि जिन व्यक्तियो का स्त्रियो से सम्बध है, उनसे भी ब्रह्मचारियो को दूर रहना चाहिए कठिन नियमो के पालन के बाद उचित समय आने पर बाल ब्रह्मचारियो को सन्यास की दीक्षा दी जानी चाहिए. फिर सन्यास मे निष्ठा दृढ हो जाने के बाद गृहस्थो के साथ मिल जुल कर काम करने से कोई हानि नही है

स्वामी के इस विचार का तात्पर्य यह नही था कि वे गृहस्थो और स्त्रियो को हेय दृष्टि से देखते थे. उपर्युक्त नियम सिर्फ इसलिए था कि वे प्रशिक्षण काल मे ब्रह्मचारियो और सन्यासियो के अपरिपक्व मस्तिष्क को किसी भी प्रकार के अनुचित आकर्पण या प्रलोभन से अलग रखना चाहते थे ब्रह्मचारियो और सन्यासियो का यह प्रशिक्षण काल उनके चरित्र निर्माण का काल था इसीलिए उनके खान-पान, वेश-भूपा, रहन-महन और बात-व्यवहार सब पर एक प्रकार का बधन था यह बधन बहुत ही सशक्त था एक बार मठ के कुछ नये सदस्यो ने कलकत्ता मे मा शारदा के पास रह कर उनकी सेवा करने की इच्छा प्रकट की मा शारदा स्वामी विवेकानन्द की दृष्टि मे गुरुदेव श्रीरामकृष्ण के समान ही पूज्य थी, फिर भी उन्होने नये सदस्यो को वहां जाने की अनुमति नही दी क्योकि वहां महिला सन्यासियो का आश्रम था और प्राय दूसरी भक्त महिलाएं भी मां शारदा से धर्म शिक्षा ग्रहण करने आती थी.

गृहस्थी या स्त्री समाज के सम्पर्क के प्रति अपने मठ मे इतना कठोर नियम और प्रतिबन्ध रखते हुए भी स्वामी ने बराबर ही उनके (गृहस्थो और स्त्रियो) आदर्शों और गुणो को अपने गुरुभाइयो और शिष्यो के सामने सराहा उन्होने कहा—गृहस्थो के आदर्श की महानता मैं समझता हूं, वे रक्षा और सेवा की लालसा से पूर्ण, सचाई से धन अर्जित करने और उदारता से व्यय करने को व्यग्र एव अपने जीवन मे किसी आध्यात्मिक आदर्श की प्राप्ति के लिए सतत् प्रयत्नशील होते हैं. स्त्रियो के सम्बन्ध मे उन्होने शिष्यो से कहा—'भारत का अध पतन उसी समय से हुआ जब ब्राह्मण पडितो ने ब्राह्मणेतर जातियो को वेदपाठ का अनधिकारी घोषित किया, साथ ही स्त्रियो के भी सभी अधिकार छीन लिये नही तो, वैदिक युग मे, तुम देखो कि मैत्रेयी, गार्गी आदि प्रात स्मरणीय स्त्रिया ब्रह्मविचार मे ऋषितुल्य हो गयी हजार वेदज्ञ ब्राह्मणो की सभा मे गार्गी ने गर्व के साथ याज्ञवल्क्य को ब्रह्म-ज्ञान पर शास्त्रार्थ के लिए चुनौती दी थी. • • एक बार जो हुआ, वह पुन. सम्भव है इतिहास की पुनरावृत्ति होती है. स्त्रियो को सम्मानित करके ही सभी जातिया बडी बनी हैं. जिस देश मे, जिस जाति मे स्त्रियो की पूजा नही, वह देश, वह जाति न कभी बडी बन सकी और न कभी बडी बनेगी. तुम्हारी जाति का जो इतना

अव पतन हुआ है उसका प्रधान कारण है इन सभी शक्ति मूर्तियो का अपमान. मनु ने कहा है—यत्र नार्यस्तु पूज्यते रमंते तत्र देवता. (जहाँ स्त्रियो का आदर होता है वहाँ देवता प्रसन्न होते हैं)

एक दिन स्वामी ने अविवाहित कुमारियो और ब्रह्मचारिणी विधवाओ के लिए एक आदर्श पाठशाला वनवाने की भी चर्चा की, आम पाठशालाओ से भिन्न एक आश्रम की तरह की, जहा आवास और आहार का भी प्रवध हो. स्वामी का विचार था कि इस आश्रम की शिक्षिता कन्याएँ विवाह कर गृहस्थी मे लग जाने पर भी अपने पतियो को उच्च प्रेरणा देंगी और आदर्श सन्तानो की जननी वनेंगी परतु वे प्रतिवध भी लगाना चाहते थे कि छात्राओ के अभिभावक १५ वर्ष की अवस्था के पूर्व उन्हें वैवाहिक वधन मे नही वाधें

इस प्रकार प्रतिदिन उठते-वैठते घूमते-फिरते स्वामी विवेकानन्द सन्यासियो को उनके अनेकानेक कर्तव्यो, जैसे दरिद्रनारायण को भोजन देना, दुर्भिक्ष या रोग सक्रमण आदि के समय सहायता कार्य करना, रोगी की सेवा-सुश्रूषा करना, अस्पताल और अनाथालय खोलना, गन्दी वस्तियो की सफाई करना, शिक्षा केन्द्र खोलना आदि की याद दिलाते रहते. एक वार संध्या समय स्वामी गगा तट पर टहल रहे थे उनके साथ कुछ संन्यासी भी थे स्वामी का मुखमडल अत्यन्त गम्भीर था, किन्तु कठ स्वर अत्यन्त मधुर और कोमल 'सुनो वत्स, श्रीरामकृष्ण आये थे और जनता के कल्याण की कामना से देह विसर्जन कर गये हैं मुझे, तुम्हें, हर एक को जगत के कल्याण के लिए देह विसर्जन करना होगा विश्वास करो, हमारे हृदय से जो रक्त निकलेगा उसकी प्रत्येक वूद से भविष्य मे वडे-वड़े कर्मवीर उत्पन्न होकर जगत को आन्दोलित कर देंगे'

इन दिनो स्वामी आम जनता के सामने भाषण नही देते थे लेकिन अनेक लोग, विशेपकर कालेजो के छात्र, और भी शिक्षित युवक उनके दर्शन और वार्तालाप की अभिलाषा से अक्सर आया करते थे स्वामी उनके साथ साहित्य, दर्शन इतिहास, विज्ञान आदि की भी चर्चा करते थे अधिकाश छात्रो की शारीरिक दुर्बलता, चरित्र-हीनता और नैतिक पतन देख कर उनका हृदय क्षुब्ध हो जाता था. वे उन्हे अपने शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य के विपय मे भाँति-भाँति से समझाते तथा उनका ध्यान समाज कल्याण की ओर आकर्षित करते थे

वे अक्सर छात्रो से कहा करते, मैं एक ऐसे धर्म का प्रचार करना चाहता हूँ जिनमे 'मनुष्य' तैयार हो. इसीलिए वे भाषण देना छोड कर मठ मे वैठे हुए कुछ सन्यासियो के प्रशिक्षण मे दत्तचित्त थे. किसी ने एक दिन प्रश्न कर ही दिया—स्वामीजी, आप अपनी वक्तृता के प्रभाव से यूरोप-अमरीका को मतवाला बना आये परन्तु भारत लौट कर आप का उसमे अनुराग क्यो घट गया, इसका कारण समझ मे नहीं आता।' उत्तर मे स्वामी ने कहा, 'इस देश मे पहले जमीन तैयार करनी होगी.

तव वीज वोने से वृक्ष उगेगा. पाश्चात्य भूमि ही इस वीज वोने के योग्य है. वहाँ के लोग अव भोग की अन्तिम सीमा तक पहुच चुके हैं. भोग से अघा कर अव उनका मन उसमे और अधिक शान्ति नही पा रहा है. तुम्हारे देश मे न भोग है और न योग है भोग की इच्छा तृप्त होने पर ही लोग योग की बात सुनते या समझते है. अन्न के अभाव से क्षीण देह, क्षीण मन, रोग-शोक की जन्मभूमि भारत मे भाषण देने से क्या होगा '

उन्होने वताया कि पहले वे कुछ ऐसे त्यागी पुरुषो को समाज से ढूंढ निकालना चाहते है जो अपने परिवार के विषय मे न सोच कर दूसरो के लिए जीवन उत्सर्ग करें, इसीलिए मठ के वाल ब्रह्मचारी संन्यासियो को सगठित करने मे व्यस्त हैं जो प्रशिक्षित होकर लोगो के द्वार-द्वार जाकर उनकी वर्तमान शोचनीय स्थिति के कारण समझायें तथा उनसे छुटकारा पाने के रास्ते वतायें.

प्यार से समझाते-समझाते भावावेश मे अधीर होकर वे वहीं टहलने लगे. कुछ क्षण वाद कड़कती आवाज मे वोले, 'देखता नही, पूर्वाकाश मे अरुणोदय हुआ है, सूर्य उदित होने मे अव विलम्ब नही है, तुम लोग इसी समय कमर कस कर तैयार हो जाओ गृहस्थी करके क्या होगा ? तुम लोगो का अव काम है प्रात-प्रात मे, गाँव-गाव मे जाकर देश के लोगो को समझाना कि अव आलस्य से वैठे रहने से काम न चलेगा शिक्षाविहीन, धर्मविहीन वर्तमान अवनति की वात उन्हें समझा कर कहो, भाई सव उठो, जागो और कितने दिन सोओगे ? और शास्त्र के महान् सत्यो को उन्हे सरल भाषा मे समझा दो इतने दिन इस देश का ब्राह्मण धर्म पर एकाधिकार किये वैठा था काल के प्रवाह मे अव वह नही टिका तुम जाकर उन्हें समझा दो कि ब्राह्मणो की तरह तुम्हारा भी धर्म पर एक सा अधिकार है चाण्डाल तक को इस अग्नि मन्त्र मे दीक्षित करो और सरल भाषा मे उन्हें व्यापार, वाणिज्य, कृषि आदि गृहस्थ जीवन के आवश्यक विषयो के उपदेश दो नही तो तुम्हारे पढनेलिखने को धिक्कार है तुम्हारे वेद-वेदान्त पढने का भी धिक्कार है । कितने दिनो के लिए यह जीवन है ? ससार मे जव आया है तो एक स्मृति छोड जा वरना पेड़पत्थर भी तो पैदा तथा नष्ट होते रहते हैं उसी प्रकार जन्म लेने और मरने की इच्छा क्या मनुष्य को भी कभी होती है ? मुझे काम करके दिखा दो कि तुम्हारा वेदान्त पढना सार्थक हुआ. जाकर सभी को यह वात सुना, तुम्हारे भीतर अनन्त शक्ति है, उसी शक्ति को जागृत करो केवल अपनी मुक्ति से क्या होगा ? मुक्ति की कामना भी तो महा स्वार्थपरता है. छोड दे ध्यान, छोड दे मुक्ति की आकांक्षा. मैं जिस काम मे लगा हूं उसी मे लग जा. देखता नही निवेदिता ने, अंग्रेज की लड़की होकर भी तुम लोगो की सेवा करना सीखा है । और तुम अपने ही देश के लोगो के लिए ऐसा नही कर सकते ? जहाँ पर महामारी हुई हो, जहाँ पर मानव जीवन दुखित हो, जहाँ दुर्भिक्ष हो, चला जा उसी ओर अधिक से अधिक क्या होगा—मर

ही जायेगा न ? मेरे तेरे जैसे सैकडो कीड़े पैदा होते रहते हैं और मरते रहते हैं इससे दुनिया को क्या हानि-लाभ ? एक महान् उद्देश्य लेकर मर जा तुम्ही लोग देश की आशा हो. तुम्हें कर्महीन देख कर मुझे बडा कष्ट होता है. लग जा, काम मे लग जा. देर न कर, मृत्यु तो दिनोदिन निकट आ रही है वाद मे करूँगा, यह विचार लेकर वठा न रह बैठा रहा तो फिर तुमसे कुछ न होगा.'

कलकत्ता के नागरिको और छात्रो के अतिरिक्त बंगाल तथा भारत के अन्य प्रान्तो के विद्वान भी स्वामी विवेकानन्द से वातचीत करने आया करते थे. एक वार 'हितवादी' पत्रिका के सम्पादक पडित गणेश देउस्कर अपने दो मित्रो के साथ उनसे मिलने वेलूर आये उन दिनो पजाव की स्थिति अच्छी नहीं थी पूरे प्रान्त मे अन्ना-भाव था यह जान कर कि इन तीनो व्यक्तियो मे से एक पजाव का है, स्वामीजी उस व्यक्ति के साथ पजाव के विपय मे वातचीत करने लगे. पचनदियो के जल से प्लावित भूमि मे अन्न का अभाव, यह वडे आश्चर्य की बात थी. खाद्य-स्थिति के साथ साथ पजाव की अन्य समस्याओ और आवश्यकताओ तथा उसके निदान पर काफी देर तक वातचीत हुई.

जव अतिथिगण जाने लगे तो देउस्कर ने स्वामी से कहा—'महाशय, हम लोग तो धर्म सम्वन्धी विभिन्न प्रकार के उपदेशो को सुनने की लालसा लेकर आप के पास आये थे परन्तु दुर्भाग्यवश हम लोगो की वातचीत साधारण वस्तुओ की ओर मुड गयी. आज का सारा दिन व्यर्थ ही वीत गया ' यह सुन कर स्वामी गम्भीरता से बोले—'सज्जनो, मेरे देश मे यदि एक कुत्ता भी बिना आहार का रहता है, तो उसे आहार देना और उसकी देखरेख करना ही मेरा धर्म है, इसके अतिरिक्त जो कुछ है वह धर्म नही है या झूठा धर्म है' स्वामी का उत्तर सुन कर तीनो व्यक्ति मूक बन गये.

इसी प्रकार की एक और घटना हुई उन्ही दिनो उत्तर प्रदेश के एक विख्यात पडित स्वामी से वेदान्त पर वाद-विवाद करने की इच्छा से उनके पास आये. उन दिनो वगाल मे दुर्भिक्ष का प्रकोप था. स्वामी रात दिन उसी मे व्यस्त थे भला पडित जी के साथ शास्त्रार्थ करने का उन्हें अवकाश कहाँ था। उन्होने अपनी असमर्थता प्रकट करते हुए पडित जी से कहा—'पडित जी, यह भयानक कष्ट जो चारो ओर फैला हुआ है, सबसे पहले उसे दूर करने का प्रयत्न करना चाहिए, जिससे आप के देशवासियो की एक ग्रास भोजन के लिए हृदय विदारक पुकार वद हो इसके बाद मेरे पास वेदान्त पर तर्क-वितर्क के लिए आइए भूख से मरते हुए हजारो लोगों की रक्षा के लिए जीवन और प्राण का वलिदान, यही वेदान्त धर्म का सार है.'

वार्तालाप के अतिरिक्त पहले की तरह १८९८-९९ मे भी स्वामी विवेकानन्द पत्राचार द्वारा नये भारत के निर्माण के सम्बन्ध मे अपने विचारो को जोरदार शब्दो मे प्रतिपादित करते रहे. उन्होने इस पर विशेष जोर दिया कि वही समाज प्रगति

कर सकता है जो बदलते हुए समय की ग्रावश्यकताग्रो के ग्रनुसार परिवर्तनो को ग्रगीकार करे, जिसमे व्यक्ति को ग्रपनी समझ-बूझ के मुताबिक ग्रपना रास्ता स्वय चुनने का ग्रधिकार हो. २३ दिसम्बर, १८९८ को उन्होने श्रीमती मृणालिनी वसु को लिखा—'यदि यह निश्चित है कि नियम से रहने से प्रतिष्ठा प्राप्त होती है, यदि परम्परा से चली ग्रायी हुई प्रथा का कठोरता से पालन करना पुण्य है, तब बताइए कि वृक्ष से बढ कर पुण्यात्मा कौन हो सकता है ग्रौर रेलगाडी से बढ कर भक्त ग्रौर महात्मा कौन है ? किसने पत्थर के टुकडे को प्रकृति का नियमोल्लघन करते हुए देखा ? किसने गाय भैंस को पाप करते हुए जाना ?'

ग्रागे उन्होने शिक्षा के उद्देश्य पर प्रकाश डालते हुए लिखा—'शिक्षा किसे कहते हैं ? क्या वह पठन-मात्र है ? नही क्या वह नाना प्रकार का ज्ञानार्जन है ? नहीं, यह भी नही. जिस सयम के द्वारा इच्छाशक्ति को बलपूर्वक पीढी दर पीढी रोक कर प्राय नष्ट कर दिया गया है, जिसके प्रभाव से नये विचारो की तो बात ही जाने दो, पुराने विचार भी एक-एक करके लोप होते चले जा रहे हैं, क्या वह शिक्षा है, जो मनुष्य को धीरे-धीरे यत्र बना रही है ? जो स्वयचालित यत्र के समान सुकर्म करता है, उसकी ग्रपेक्षा ग्रपनी स्वतत्र इच्छाशक्ति ग्रौर बुद्धि के बल से ग्रनुचित कर्म करने वाला मेरे विचार से श्रेयस्कर है जो मनुष्य मिट्टी के पुतले, निर्जीव यत्र या पत्थरो के ढेर के सदृश हो, क्या उनका समूह समाज कहला सकता है ? इस प्रकार का समाज कैसे उन्नत हो सकता है ? इस प्रकार कल्याण सम्भव होता, तो सैकडो वर्षों से दास होने के बदले हम पृथ्वी के सबसे बडे प्रतापी राष्ट्र होते, ग्रौर यह भारत मूर्खता की खान होने के बदले, विद्या के ग्रनन्त श्रोत का उत्पत्ति-स्थान होता.'

विवेकानन्द को यह पसन्द नही था कि ऊचे वर्गों के थोडे से लोग ग्रपनी मान्यताग्रो को पूरे समाज पर ग्रारोपित कर दें इसीलिए उन्होने समाज सुधार के नाम पर चलायी गयी कई बातो का समर्थन करने से इनकार कर दिया, क्योंकि उनका विचार था कि उन बातो के पीछे सिर्फ ऊंचे वर्गों की ग्रावश्यकताग्रो का ही ध्यान रखा गया था

समाज के लोग स्वय ही ग्रपने लिए जो श्रेयस्कर होगा उसे ग्रहण कर लेंगे. सिर्फ उन्हे सही ढग से शिक्षित कर देने की ग्रावश्यकता थी जिससे वे ग्रपना निर्णय स्वय ले सकें स्वामी यही उचित समझते थे. श्रीमती मृणालिनी वसु को ही ३ जनवरी १८९९ को उन्होने लिखा : 'समाज है कौन ? वे लोग जिनकी सख्या लाखो है ? या तुम ग्रौर मुझ जैसे दस-पांच उच्च श्रेणी वाले ? यदि यह सच भी हो, तो भी तुममे ग्रौर मुझमे ऐसा घमड किस बात का है कि हम ग्रौर सब लोगो को मार्ग बतायें ? क्या हम लोग सर्वज्ञ हैं ? उद्धरेदात्मनात्मानम्, ग्राप ही ग्रपना उद्धार करना होगा. हर कोई ग्रपने ग्राप को उबारे सभी विषयों में स्वाधीनता, यानी मुक्ति की ग्रोर ग्रग्रसर होना ही पुरुषार्थ है, ग्रौर ग्रधिक लोग शारीरिक, मानसिक ग्रौर ग्राध्यात्मिक

स्वाधीनता की ओर अग्रसर हो सकें, इस कार्य मे सहायता देना और स्वयं उसी तरफ बढना ही परम पुरुषार्थ है. जो सामाजिक नियम इस स्वाधीनता के स्फुरण मे बाधा डालते है, वे ही अहितकर हैं और ऐसा करना चाहिए जिससे वे शीघ्र नष्ट हो जायें जिन नियमों के द्वारा सब जीव स्वाधीनता की ओर बढ सकें, उन्ही की पुष्टि करनी चाहिए

इस तरह बार-बार विवेकानन्द ने यह स्पष्ट करने का प्रयत्न किया कि वे भारत मे जिस नये समाज के निर्माण का स्वप्न देख रहे थे उसका आधार होगा, व्यक्ति और व्यक्ति के बीच समानता, स्वाधीनता और भाईचारे की भावना साथ ही उन्होंने यह भी स्पष्ट किया कि यह भावना किसी एक सम्प्रदाय के सदस्यों तक ही सीमित नही रहनी चाहिए विवेकानन्द की विशेषकर यह मान्यता थी कि भारत मे हिन्दुओ, मुसलमानो की स्वस्थ परम्पराओ का समन्वय कर ही एक नये समाज की नीव दी जा सकती है. १० जून १८९८ को उन्होंने मुहम्मद सर्फराज हुसेन को लिखा—'चाहे हम उसे वेदान्त कहे या और किसी नाम से पुकारें, परन्तु सत्य तो यह है कि धर्म और विचार मे अद्वैत ही अन्तिम शब्द है और केवल उसी के दृष्टि-कोण से सब धर्मों और सम्प्रदायो को प्रेम से देखा जा सकता है हमे विश्वास है कि भविष्य के प्रबुद्ध मानवी समाज का यही धर्म है अन्य जातियो की अपेक्षा हिन्दुओ को यह श्रेय प्राप्त होगा कि उन्होंने इसकी सर्वप्रथम खोज की. इसका कारण यह है कि वे अरबी और हिब्रू दोनो जातियो से अधिक प्राचीन हैं परन्तु साथ ही व्यावहारिक अद्वैतवाद का जो समस्त मनुष्य जाति को अपनी ही आत्मा का स्वरूप समझता है तथा उसी के अनुरूप आचरण करता है, विकास हिन्दुओ मे सार्वभौम भाव से होना अभी भी शेष है

'इसके विपरीत हमारा अनुभव यह है कि यदि किसी धर्म के अनुयायी व्यावहारिक जगत के, दैनिक कार्यों के क्षेत्र मे, इस समानता को योग्य अश मे ला सके हैं तो वे इस्लाम और केवल इस्लाम के अनुयायी हैं, यद्यपि सामान्यत जिस सिद्धान्त के अनुसार ऐसा आचरण है उसके गम्भीर अर्थ से वे अनभिज्ञ हैं, जिसे कि हिन्दू साधारणत. स्पष्ट रूप से समझते हैं.

'इसलिए हमे दृढ विश्वास है कि वेदान्त के सिद्धात कितने ही उदार और विल-क्षण क्यो न हो, परन्तु व्यावहारिक इस्लाम की सहायता के बिना, मनुष्य जाति के महान जनसमूह के लिए वे मूल्यहीन हैं. हम मनुष्य जाति को उस स्थान पर पहुँचाना चाहते हैं जहां न वेद हैं, न बाइबिल है, न कुरान, परन्तु वेद, बाइबिल और कुरान के समन्वय से ही ऐसा हो सकता है. मनुष्य जाति को यह शिक्षा देनी चाहिए कि सब धर्म उस धर्म के, उस एकमेवाद्वितीयम् के भिन्न-भिन्न रूप हैं, इसलिए प्रत्येक व्यक्ति इन धर्मों मे से अपना मनोनुकूल मार्ग चुन सकता है.

'हमारी मातृभूमि के लिए हिन्दुत्व और इस्लाम, इन दोनो विशाल मतो का

समन्वय, वेदाती बुद्धि और इस्लामी शरीर, यही एक आशा है.

'मैं अपने मानस चक्षु से भावी भारत की उस पूर्णावस्था को देखता हूँ. जिसका इस विप्लव और सघर्ष से, तेजस्वी और अजेय रूप मे, वेदाती बुद्धि और इस्लामी शरीर के साथ उत्थान होगा '

वार्तालाप एव पत्राचार के अतिरिक्त निबधो के द्वारा भी विवेकानन्द ने अपने विचारो को फैलाने का प्रयत्न किया. इस दृष्टि से उनका 'वर्तमान भारत' नामक निबध जो मार्च १८९९ की उद्बोधन नामक बगला पत्रिका मे प्रकाशित हुआ, विशेष महत्त्व का है. इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि उन्होने इतिहास का गहरा अध्ययन किया था और उसके सम्बन्ध मे उनका अपना एक अलग दर्शन था ऐसा लगता है कि उन्होने सुप्रसिद्ध यूरोपीय विचारक कार्ल मार्क्स (१८१८-१८८३) की रचनाओ का भी अध्ययन किया हो. अगर ऐसा नही तो भी इसमे कोई संदेह नही कि समाज के क्रमिक विकास के सम्बन्ध मे दोनो के विचार बहुत कुछ मिलते जुलते थे. यह दूसरी बात है कि जहाँ कार्ल मार्क्स नास्तिक थे, वहाँ विवेकानन्द प्रत्येक व्यक्ति मे ईश्वर को देखते थे अगर इस महत्वपूर्ण भेद को हम छोड दें तो यह कहा जा सकता है कि विवेकानन्द के निबध मे वर्ग सघर्ष की एक विशेष व्याख्या मिलती है जिस पर भारतीय अनुभव की छाप है और जिसका निरूपण भारतीय शब्दावली मे किया गया है वे लिखते हैं 'सत्व, रज आदि तीन गुणो के तारतम्य से ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि चार वर्ण उत्पन्न होते हैं और ये चारो वर्ण अनादि काल से सभी सभ्य समाजो मे विद्यमान हैं. काल प्रभाव और देश भेद से किसी वर्ण की शक्ति या सख्या दूसरो की अपेक्षा बढ या घट सकती है, परन्तु ससार के इतिहास का अनुशीलन करने से प्रतीत होता है कि प्राकृतिक नियमो के वश ब्राह्मण आदि चारो वर्ण क्रम से पृथ्वी का भोग करेंगे विवेकानन्द जिसे वैश्य कहते हैं उसे मार्क्सवादी शब्दावली मे पूजीवादी वर्ग कहा जाता है वस्तुत वैश्यो के उदय का जो वर्णन उन्होने किया है उसे यूरोप मे पूजीवादी वर्ग के उदय का वर्णन माना जा सकता है

'जिस प्रकार पुराने युग मे राज शक्ति के सामने ब्राह्मण शक्ति को बहुत प्रयत्न करने पर भी हार माननी पडी, उसी प्रकार वर्तमान युग मे हुआ इस नयी वैश्य शक्ति के प्रबल आघात से कितने ही राजमुकुट धूल मे जा मिले और कितने ही राजदड सदा के लिए टूट गये जो कोई सिहासन किसी सभ्य देश मे बच गया, वह इसलिए कि उसने इन्ही नमक, तेल, चीनी या सुरा बेचने वालो को अपने कमाये प्रचुर धन से अमीर और सरदार बन कर अपना गौरव दिखाने का मौका मिला

'यह नयी महाशक्ति जिसका राजपथ पहाडो जैसी ऊँची तरगो वाला समुद्र है, जिसके प्रभाव से बिजली बात की बात मे एक मेरु से दूसरे मेरु तक खबर ले जाती है, जिसके प्रबध से एक देश का माल दूसरे देश मे अनायास पहुँच जाता है और जिसके आदेश से सम्राट तक थरथर कांपते हैं, ससार समुद्र की उसी नवजयी

वैश्य शक्ति के अभ्युत्थानरूपी महातरग की चोटी वाले सफेद भागो मे इगलैंड का सिंहासन विराजमान है.

'इसलिए भारत पर इगलैंड की विजय—जैसा हम लोग बचपन मे सुना करते थे—ईसा मसीह या बाइबिल की विजय नही है, और न पठान, मुगल आदि बादशाहो की विजय की भाति ही है. ईसा मसीह, बाइबिल, राजप्रासाद, अनेक प्रकार से सजी सजायी बडी सेनाओ का सगर्व कूच तथा सिंहासन का विशेष आडम्बर आदि इन सबके पीछे असली इगलैंड विद्यमान है. इस इगलैंड की ध्वजाएँ पुतलीघरो की चिमनिया हैं, इसकी सेना व्यापारी जहाज है, इसका लडाई का मैदान ससार का बाजार है और इसकी रानी स्वय स्वर्णांगी लक्ष्मी है.'

यह तो तत्कालीन अवस्था का वर्णन है. जहाँ तक भविष्य का प्रश्न था, विवेकानन्द को इसमे कोई सन्देह नही था कि वैश्यो के बाद शूद्रो, अर्थात् मेहनत-मजदूरी कर जीवन चलाने वालो का राज होगा. यूरोप मे उस समय जो आदोलन चल रहे थे वे इसी भविष्य के सूचक थे विवेकानन्द के ही शब्दो मे 'एक समय ऐसा आयेगा, जब शूद्रत्व सहित शूद्रो का प्राधान्य होगा, अर्थात् आजकल जिस प्रकार शूद्र जाति वैश्यत्व अथवा क्षत्रियत्व लाभ कर अपना बल दिखा रही है, उस प्रकार नही, वरन् अपने शूद्रोचित धर्म-कर्म सहित वह समाज मे आधिपत्य प्राप्त करेगी. पाश्चात्य जगत मे इसकी लालिमा भी आकाश मे दीखने लगी है और इसका फलाफल विचार कर सब लोग घबराये हुए हैं. सोशलिज्म, अनार्किज्म, निहिलिज्म आदि आदोलन इस विप्लव की आगे चलने वाली ध्वजाएँ हैं'

विश्व इतिहास की इस व्याख्या का मुख्य उद्देश्य भारत की तत्कालीन स्थिति को समझना था कहना नही होगा कि विवेकानन्द की दृष्टि मे यह स्थिति अत्यत ही शोचनीय थी. पूरे देश की तुलना अधिकार और शक्ति से हीन शूद्र या मजदूर वर्ग से की जा सकती थी. विवेकानन्द के शब्दो मे 'इस देश का हाल क्या कहा जाय? शूद्रो की बात तो अलग रही, भारत का ब्राह्मणत्व अभी गोरे अध्यापको मे है, और उसका क्षत्रियत्व चक्रवर्ती अग्रेजो मे, उसका वैश्यत्व भी अग्रेजो की नस नस मे है भारतवासियो के लिए तो केवल भारवाही पशुत्व अर्थात् शूद्रत्व ही रह गया घोर अधकार ने अभी सबको समान भाव से ढक लिया है. अभी चेष्टा मे दृढता नही है, उद्योग मे साहस नही है, मन मे बल नही है, अपमान से घृणा नही है, दासत्व से अरुचि नही है, हृदय मे प्रीति नही है और प्राण मे आशा नही है और है क्या, केवल प्रबल ईर्ष्या, स्वजाति-द्वेष, दुर्बलो का जैसे-तैसे करके नाश करने और कुत्तो की तरह बलवानो के चरण चाटने की विशेष इच्छा इस समय तृप्ति, धन और ऐश्वर्य दिखाने मे है, भक्ति स्वार्थ-साधना मे है, ज्ञान अनित्य वस्तुओ के सग्रह मे है, योग पैशाचिक आचार मे है, कर्म दूसरो के दासत्व मे है, सभ्यता विदेशियो की नकल करने मे है, वक्तृत्व कटु भाषण मे है और भाषा की उन्नति धनिको की बेढगी

खुशामद मे या जघन्य अश्लीलता के प्रचार मे है.'

विवेकानन्द के विचार मे भारत की अधोगति का सबसे वडा कारण यह था कि भारतीयो मे आत्मगौरव का लोप हो गया था और वे यूरोप की नकल करने मे ही गौरव का भान करने लगे थे उन्ही के शब्दो मे—'यही विकट भय का कारण है, हम लोगो मे पाश्चात्य जातियो की नकल करने की इच्छा ऐसी प्रवल होती जाती है कि भले-बुरे का निश्चय अब विचार-बुद्धि, शास्त्र या हिताहित ज्ञान से नही किया जाता गोरे लोग जिस भाव और आचार की प्रशसा करें, वही अच्छा है और वे जिसकी निन्दा करें, वही बुरा ! अफसोस ! इससे बढ़ कर मूर्खता का परिचय और क्या होगा ?' ऐसी स्थिति मे विवेकानन्द का यह दृढ विश्वास था कि भारत के पुनरुत्थान के लिए सर्वप्रथम यह आवश्यक है कि भारतीयो मे आत्मगौरव के भाव का उदय हो 'वर्तमान भारत' शीर्षक निवन्ध मे उन्होने अपने इस विचार को सशक्त शब्दो मे प्रकट किया

'ऐ भारत ! क्या दूसरो की ही हाँ मे हाँ मिला कर, दूसरो की ही नकल कर, परमुखापेक्षी होकर इस दासो की सी दुर्वलता, इस घृणित जघन्य निष्ठुरता से ही तुम वडे-वडे अधिकार प्राप्त करोगे ? क्या इसी लज्जास्पद कापुरुषता से तुम वीरभोग्या स्वाधीनता प्राप्त करोगे ? ऐ भारत ! तुम मत भूलना कि तुम्हारी स्त्रियो का आदर्श सीता, सावित्री, दमयन्ती हैं, मत भूलना कि तुम्हारे उपास्य सर्वत्यागी उमानाथ शकर है, मत भूलना कि तुम्हारा विवाह, धन और तुम्हारा जीवन इन्द्रिय सुख के लिए, अपने व्यक्तिगत सुख के लिए नही है मत भूलना कि तुम जन्म से ही 'माता' के लिए वलिदान स्वरूप रखे गये हो, मत भूलना कि तुम्हारा समाज उस विराट महामाया की छाया मात्र है, तुम मत भूलना कि नीच, अज्ञानी, दरिद्र, चमार और मेहतर तुम्हारा रक्त और तुम्हार भाई हैं ऐ वीर, साहस का आश्रय लो ! गर्व से वोलो कि मैं भारतवासी हूँ और प्रत्येक भारतवासी मेरा भाई है वोलो कि अज्ञानी भारतवासी, दरिद्र भारतवासी, व्राह्मण भारतवासी, चाडाल भारतवासी, सव मेरे भाई हैं. तुम भी कटिमात्र वस्त्रावृत होकर गर्व से पुकार कहो कि भारतवासी मेरा भाई है, भारतवासी मेरे प्राण हैं, भारत के देव-देविया मेरे ईश्वर हैं. भारत का समाज मेरी शिशुमज्जा, मेरे यौवन का उपवन और मेरे वृद्धावस्था की वाराणसी है भाई, वोलो कि भारत की मिट्टी मेरा स्वर्ग है, भारत के कल्याण मे मेरा कल्याण है, और दिन रात कहते रहो कि हे गौरीनाथ, हे जगदम्बे, मुझे मनुष्यत्व दो ! माँ मेरी दुर्वलता और कापुरुषता दूर कर दो, मुझे मनुष्य बनाओ !'

१२
पुनः विदेश में

२९ जून १८९९ की उमसभरी सध्या स्वामी विवेकानन्द अपने अनेक शुभेच्छुओ के साथ कलकत्ते के प्रिसेज घाट की ओर रवाना हुए. वहाँ गोलकुडा नामक भव्य जहाज खडा था कई सज्जन स्वामी को विदा देने के उद्देश्य से उपस्थित थे स्वामी सबके साथ प्रेम से मिले, उनकी कुशल क्षेम पूछी और फिर द्रुतगति से जहाज के भीतर चले गये. जहाज पर यात्रियो की चहल पहल थी. प्रथम चेतावनी भोपू की गम्भीर ध्वनि उस शोरगुल मे विलीन हो गयी लेकिन यात्रियो और कुलियो के आने जाने की गति तेज हो गयी विवेकानन्द अपने सहयोगी तुरीयानन्द एव शिष्या निवेदिता के साथ जहाज के डेक पर खडे हो गये जहाज का दूसरा भोपू बजा और वह धीरे-धीरे किनारा छोडने लगा विवेकानन्द अपना दाहिना हाथ ऊपर की ओर हिला-हिला कर तट पर खडे अपने मित्रो और शिष्यो से विदा लेने लगे यह उनकी दूसरी विदेश यात्रा थी इधर काफी दिनो से उनके मन मे यह बात आ गयी थी कि एक बार फिर ब्रिटेन और अमरीका जाकर, वहाँ वेदात प्रचार के कार्य की देख भाल कर लें और पुराने मित्रो से मिल लें लेकिन अस्वस्थता के कारण यह कार्यक्रम रुकता चला गया अब तबीयत कुछ सभली तो स्वामी ने इसे पूरा कर डालना ही ठीक समझा

देखते ही देखते कलकत्ते का घाट, वहा खड़े लोग, वहाँ का सारा परिवेश धूमिल होते-होते आंखो से अदृश्य हो गये. गधर्वलोक से भी प्यारी अपनी शश्यश्यामला मातृभूमि का वियोग क्षण भर के लिए स्वामी के योगी मन को भी साल गया. गगा का मुहाना छूट गया है. जहाज श्वेत जल से विलग होकर अब सागर के स्याह जल पर तैर रहा है जहाँ तक नजर जाती है एक ही दृश्य दिखाई पडता है उन्मत्त पवन के ताल पर नाचती हुई सागर की अनत लहरें धीरे-धीरे नृत्य की गति तीव्र हो रही है. तरग-भंगिमाएँ उदात्त रूप धारण कर रही हैं साथी पवन का सहारा लेकर ये तरगें सागर तल पर मानो समर ताडव का दृश्य उपस्थित करने की तैयारी कर रही हैं लहरो का महागर्जन और फेनिल अट्टहास तरगो के सहस्रो हाथो का खिलौना बेचारा अकेला एक जलपोत दायें-बायें खूब झूम रहा है. यात्रियो की हालत

बुरी हो रही है किसी को सरदर्द, किसी को चक्कर, किसी को वमन, कुछ लोग बिना खाये-पिये अपने-अपने केबिन मे पड़े है समुद्री रोग कुछ न कुछ सबको परेशान कर रहा है स्वामी की तबीयत भी कुछ अस्वस्थ है 'उद्बोधन' पत्रिका के लिए एक निबंध लिखने की सोच रहे हैं परन्तु जहाज की डगमग चाल के कारण लिखना नही हो पाता है केबिन मे बेहद गर्मी है सकरी सी जगह मे चार व्यक्तियो के रहने का प्रबंध, लगता है जैसे वहाँ दम घुट जायेगा सिर्फ वहाँ सामान रखने और रात के सोने के अतिरिक्त कोई दूसरा काम नही हो सकता स्वामी अपने गुरुभाई और शिष्या के साथ सारा दिन डेक के बरामदे मे ही बिताते है अन्य यात्रियो का भी यही कार्यक्रम है.

धीरे-धीरे समुद्र की लहरो की उत्तेजना शांत हो गयी समर नृत्य के बाद श्रांत पवन सो गया नियत समय पर २८ जून के प्रातःकाल 'गोलकुंडा' मद्रास बंदरगाह मे आ लगा स्वामी के कार्यक्रम के विषय मे मद्रास के गुरुभाइयो को तार द्वारा सूचना दे दी गयी थी अतः जहाज की जेटी पर स्वामी के दर्शनार्थ हजारो उत्सुक नयन उपस्थित थे रामकृष्ण मिशन के कार्यकर्ताओ ने कितनी भी कोशिश की कि स्वामी को मद्रास मे कुछ देर के लिए जहाज से उतारने का प्रबंध हो जाय, किन्तु वे सफल नही हो सके उन दिनो कलकत्ते मे प्लेग फैला हुआ था अतः प्लेग कानून के अनुसार कलकत्ते से आये हुए किसी भारतीय का मद्रास मे उतरना मना था किन्तु गोरे लोगो पर यह प्रतिबन्ध नही था अंग्रेजो का बनाया हुआ कानून उन्ही के लिए लागू नही था उनकी दृष्टि मे सभी काले लोग, गन्दे लोग थे, प्लेग के कीटाणु लिए सर्वत्र घूमते रहने की सम्भावना उन्ही से थी मद्रास के माननीय एवं ख्यातिप्राप्त लोगो ने, अंग्रेज अधिकारियो को प्रार्थना पत्र दिया कि कुछ घंटो के लिए स्वामी विवेकानन्द पर यह कानून नही लगाया जाये किन्तु अधिकारियो ने इस पर कोई ध्यान नही दिया

अंग्रेज शासको के इस व्यवहार से यह प्रकट था कि वे स्वामी विवेकानन्द से प्रसन्न नही थे इस प्रकार की एक घटना कश्मीर मे भी हुई थी कश्मीर के महाराजा ने झेलम के किनारे मठ निर्माण के लिए कुछ भूमि स्वामी को दानस्वरूप दे दी थी किन्तु मठ निर्माण के ठीक पहले वहा के अंग्रेज रेजिडेंट ने महाराजा के भूमिदान के प्रस्ताव को रद्द कर दिया था. इस घटना ने स्वामी के हृदय को काफी ठेस पहुँचायी थी आज मद्रास मे इस प्रकार की घटना की पुनरावृत्ति हुई थी

खैर, कई भक्तो ने किराये की छोटी-छोटी नौकाओ मे बैठकर स्वामी के जहाज के पास पहुंच कर निकट से उनका दर्शन प्राप्त किया स्वामी जिस डेक पर थे वहां के घेरे को पकड़े हुए प्रसन्नमुख सभी लोगो को आशीर्वाद देने लगे. स्त्रियो और बच्चो के द्वारा उपहारस्वरूप लाये हुए केले, आम, नारियल, मिठाइयो और फल-फूलो के ढेर लग गये स्वामी के पिताजी के मित्र, श्याम प्रसाद बैरिस्टर होकर

मद्रास आये हुए थे. वह भी अन्य मित्रो के साथ स्वामी के दर्शनार्थ जेटी पर उपस्थित थे मद्रास मे जून का महीना, चिलचिलाती धूप शरीर को जला रही थी. फिर भी जेटी पर और नौकाओ पर बाल, वृद्ध, वनिता, सभी दृढतापूर्वक डटे हुए थे. स्वामी उन्हें घर लौटने के लिए कह रहे हैं.

बहुत कहने सुनने पर स्त्रियो-बच्चो और वृद्धो की भीड छटी. सवेरे से शाम तक जहाज के डेक पर कडी धूप मे खडे-खडे स्वामी स्वयं भी बहुत थक गये. सारा शरीर लकडी के समान सीधा हो गया. हाथ-पाँव अवसन्न होने लगे. सर मे चक्कर आने लगा तब उन्होने मद्रासी मित्रो और भक्तो से विदा मागी और अपने केबिन मे विश्राम करने चले गये. अलासिगा पैरुमल को 'ब्रह्मवादिन' पत्रिका और मद्रास के अन्य लोगो के विषय मे परामर्श लेने का अवसर नही मिल सका था स्वामी की सगति मे सुख प्राप्त करने की लालसा भी हठ करने लगी अत अलासिगा कोलम्बो तक का टिकट लेकर जहाज पर आ गये सध्या समय जहाज छूटने का भोपू बजा. साथ ही घोर जनरव सुनाई पडने लगा. स्वामी ने झरोखे मे झाक कर देखा, सैकडो स्त्री-पुरुष, बालक-बालिकाए विदा सूचक ध्वनि कर रहे थे

मद्रास से श्रीलका की यात्रा चार दिन की है रात्रि तक जहाज मद्रास बंदरगाह छोड कर काफी दूर समुद्र के सीने को चीरता हुआ आगे बढ गया है वेग-पूर्ण बयारो का झकोरा, लहरो का नर्तन-गर्जन पूर्ववत् प्रारम्भ हो गया है क्षण-प्रतिक्षण यह सब बढता ही जाता है मानसून का समय है पश्चिम की ओर जाते हुए जहाज के साथ तूफान का बढना स्वाभाविक है भयानक हिलडोल और चरमर, ठकठक की आवाज हो रही है मानो लहरो के थपेडो ने जहाज के सारे कलपुर्जो और पेंचो को ढीला कर दिया हो यात्री जहाँ हैं वही सर थाम कर बैठ गये हैं किसी को खाने-पीने की सुध नही है अलासिगा पेरुमल मैसूरी रसम खाने वाले ब्राह्मण हैं, आगे की ओर घुटा सिर, पीछे लम्बी चोटी, खुले पैर, घुटने तक धोती, पूरा ललाट चदन तिलक से भरा हुआ. टिकिट के अतिरिक्त साथ लाये हैं दो गठरिया एक मे कुछ आवश्यक कागजात हैं और पहनने का एक वस्त्र दूसरे मे जाति बचा कर जीवित रहने के लिए भुना चूडा और लाई मटर. चार दिनो तक इसे ही चबाते हुए उन्हे श्रीलका पहुँचना है इस प्रकार अपने सम्पूर्ण व्यक्तित्व पर ब्राह्मणत्व की छाप लिये वे आनन्द से जहाज पर घूम-टहल रहे हैं उन्हे समुद्री बीमारी नही हुई उनकी गुरुभक्ति, कर्मनिष्ठा, आत्मविश्वास, नि स्वार्थ सेवा और जी तोड कर परिश्रम करने के गुणो ने स्वामी का हृदय जीत लिया था इन्होने पहली बार भी स्वामी के साथ श्रीलका तक की यात्रा की थी तब इनके बिरादरी वालो ने इनके विदेश जाने पर बहुत शोरगुल मचाया था और जातिच्युत कर देने की धमकी दी थी, पर उनकी कुछ चली नही पीछे सब शान्त हो गया था. स्वामी के साथ रहने से अलासिगा का पुराना आचार-विचार कुछ-कुछ दबा रहता है वे स्वामी से इस बात पर तर्क नही

करते कभी-कभी उन्हे अपनी रूढिवादिता पर झेंप भी आती है स्वामी यह सब समझते हैं, फिर भी अलासिगा उन्हे बहुत प्यारे है

जहाज चार दिनो बाद कोलम्बो पहुँचा. इन चार दिनो मे स्वामी का कोई विशेष कार्य नही हो सका. सिर्फ थोड़ा बहुत विचार-विमर्श होता रहा था. अब जहाज कोलम्बो पहुचने वाला था सामने कोलम्बो दिखाई दे रहा था और वहाँ का समुद्र तट स्वामी के स्वागतार्थ आये हुए सैकडो लोगो की हर्षध्वनि से गूज रहा था उस जन समुदाय मे स्वामी की तीक्ष्ण दृष्टि ने अपने प्रिय भक्तो को ढूढ निकाला ये रहे सर कुमारस्वामी और अरुणाचलम. कुमारस्वामी अपनी अग्रेज पत्नी और पुत्र के साथ उपस्थित थे पुत्र अति सुन्दर बालक है, नगे पैर व सिर पर विभूति. कुछ विदेशी शिष्याएँ और मित्र भी उपस्थित थे श्रीमती हिगिन्स और श्रीमती कोन्टेस, काषाय रग की साडी बगाली तरीके से पहने हुए. कोलम्बो के मित्रो और भक्तो ने स्वामी के जहाज से भूमि पर उतरने की अनुमति ले रखी थी. खुशी की बात यह थी कि वहाँ प्लेग कानून का कोई प्रतिबन्ध नही लगा. अत विवेकानन्द स्वतत्रता से वहाँ अपने बन्धु-बाधवो से मिल सके तथा कोलम्बो मे घूम सके उन्होने वहाँ के बौद्ध बालिका विद्यालय का छात्रावास तथा अन्य विद्यालयो, मठो और बौद्ध मदिरो का निरीक्षण किया अलासिगा को कोलम्बो से मद्रास लौट जाना था अत. उनके साथ आवश्यक वार्तालाप भी चलता रहता था

२८ जून को प्रातःकाल स्वामी के जहाज ने कोलम्बो छोड़ा अब वह बड़ी तेजी से पश्चिम की ओर बढ़ने लगा. मार्ग मे वास्तविक मानसून से सामना था जहाज जैसे-जैसे आगे बढ रहा है, तूफान अपना प्रलयकारी रूप दिखा रहा है दिन को रात बना देने वाला घुप अंधकार, सनसनाती हुई हवा, मूसलाधार वर्षा गरजती हुई बडी-बडी लहरें जहाज पर टूट रही हैं. आज कल जहाज का डेक सूना रहता है वहाँ किसी का ठहरना कठिन हो रहा है. कुछ लोग भोजन के लिए बैठे हैं मेज पर रखी खाने की चीजे उछल-उछल पडती हैं जहाज की चर्‌मर्, ठक ठक पुन: प्रारम्भ हो गयी है. जान पडता है जैसे जहाज अब टुकडे-टुकडे हो जायेगा जहाज का कप्तान बडी ही मनोरजक प्रकृति का है. समय निकाल कर कभी-कभी वह दिलचस्प कहानियाँ यात्रियो को सुनाता है. स्वामी भी इसमे सहयोग देते हैं इस प्रकार कठिन यात्रा का कष्ट बहुत कुछ घट जाता है. केबिन के भीतर बैठ कर मानसिक कार्य करना असभव है. फिर भी स्वामी कुछ न कुछ 'उद्‌बोधन' पत्रिका का काम कर ही लेते हैं

कोलम्बो मे दो पादरी भी जहाज पर चढे. उनमे से एक अमरीकी है, सपत्नीक, नाम है बोगेश. ये स्वभाव के बडे मधुर है. सात वर्ष के वैवाहिक जीवन मे इनके छ लडके-लड़कियाँ हैं ये लोग इसे ईश्वर की कृपा समझते हैं. जब मौसम कुछ साफ रहता है तो श्रीमती बोगेश अपने छ बच्चो को डेक पर छोड़ देती

हैं. कोई दौडता है, खेलता है, कोई घुटने के बल सरकता है, किलकता है; कोई यो ही फर्श पर पडे-पडे पाँव हाथ मारता है, पाँव का अगूठा चूसता है, मुस्कराता है और कभी चिल्लाहट, रुलाई से सारा आसमान सर पर उठा लेता है. बच्चो के कारण डेक पर चलना कठिन हो गया है, कही वे कुचल न जायें, इस डर से; किसी प्रकार के पढने-लिखने का काम का तो पूछना ही क्या ! पादरी जो अपनी पत्नी के साथ डेक के किसी कोने मे सट कर बैठे घटो प्रेमालाप करते रहते हैं, उन्हे अपने बच्चो की कोई चिंता नही है. बहन निवेदिता उन बच्चो की मा बन बैठी है उन्हे हसाना-खेलाना और समय-समय पर उन्हें दूध या अन्य खाद्य सामग्री देना अब बहन निवेदिता ने अपने कधो पर ले लिया है. 'टूटल' नामक एक छोटी-सी लडकी जिसकी माँ नही है और जो अपने पिता के साथ इगलैंड जा रही है, बहन निवेदिता की सातवी बच्ची बन गयी है. निवेदिता के मातृतुल्य स्नेह से सभी बच्चे विभोर हैं. निवेदिता ने पादरी और पादरिन का कार्य बहुत हल्का कर दिया है, इससे वे लोग भी इनसे बहुत खुश हैं. किन्तु श्री और श्रीमती बोगेश के क्रियाकलाप देख कर स्वामी का हृदय वितृष्णा और लज्जा से मर उठा. वे सोचने लगे कि यदि ये दस करोड अग्रेज सभी मर जायें और सिर्फ कुछ पुरोहित कुल बचे रहे तो बीस वर्षों मे फिर दस करोड की उपज हो जायेगी भीषण तूफान के कारण जहाज की गति मे शिथिलता आ गयी है अत. गोलकुडा छ दिनो के बदले दस दिनो मे किसी प्रकार अदन पहुच सका.

अदन के बदरगाह पर जहाज के पहुचते-पहुचते शाम हो गयी थी वहाँ काले-गोरे का भेदभाव नही रहने पर भी किसी को जहाज से उतरने नही दिया गया देखने योग्य वहाँ कोई विशेष चीज भी नही थी. स्वामी अपनी प्रथम यात्रा मे वहाँ की कुछ आकर्षक जगहे देख चुके थे. जहाज के डेक से अदन के तरुतृणहीन पहाड के लाल-भूरे पत्थर, बालुकामयी भूमि और ऊँचे-नीचे पहाडी मार्ग दिखाई देते थे तट पर स्थित अर्द्धचद्राकार होटल और कुछ छोटी-छोटी दूकानें भी दृष्टि-गोचर हो रही थी तट पर इस गोलकुडा के अतिरिक्त कई अन्य जहाज भी लगे है, कुछ माल के और कुछ यात्रियो के

कुछ घटे उपरात जहाज लाल सागर के भीतर से चलने लगा जिस देश या स्थान से होकर जहाज आगे बढता है स्वामी उस देश या स्थान के भूगोल और इतिहास से अपने शिष्यो को परिचित करवाते जाते हैं. मिश्र देश के पिरामिड और वहाँ के नृसिंह (स्फिनस) आदि से सम्बन्धित अनेक लोककथाओ का ज्ञान न जाने स्वामी को कब मे था लाल सागर मे असह्य गर्मी थी फिर भी समय बड़े आनन्द से बीता. लाल सागर के बाद स्वेज नहर. जान पडता है जहाज एक पतली-सी नदी से होकर गुजर रहा है. ऐसा प्रबध है कि एक जहाज के चले जाने पर दूसरा जहाज नहर में प्रवेश करे इससे दो जहाजो मे टक्कर होने की सभावना नही रह जाती.

नहर के दोनो तटो की भूमि तथा तट पर जलक्रीडा करते हुए लोग दिखाई पडते है काफी दिनो तक ऊपर नील नभ और नीचे स्याह जल देखते-देखते यात्रियो का जी ऊब गया था अभी स्वेज नहर के दोनो किनारो की हरी भरी धरती, आकाश के चहकते हुए पक्षी तट के लोगो का हसी-खेल, शोरगुल, सभी आनन्दप्रद लग रहे थे. कुछ समय बाद जहाज भूमध्य सागर मे प्रवेश कर गया. प्राचीन सभ्यता के अवशेष, एशिया और अफ्रीका के इलाके, अब पीछे छूट चुके थे.

बहन निवेदिता के लिए स्वामी के साथ यह यात्रा बहुत ही शिक्षाप्रद रही. भारतीय साहित्य, संस्कृति, धर्म, दर्शन, इतिहास आदि की चर्चा से स्वामी अपनी शिष्या को प्रशिक्षित करते रहे

बहन निवेदिता ने स्वामी पर अपनी पुस्तक 'आधी पृथ्वी' मे उनके साथ हुए इस सफर को अपने जीवन की बहुत महत्वपूर्ण एवं सर्वश्रेष्ठ घटना बताया है अपने गुरुदेव के साथ की बातो और अपने हृदय पर पडती हुई उसकी छाप को उन्होने बड़े ही रोचक ढग से व्यक्त किया है. 'इस समुद्र यात्रा के आरभ से अत तक अनेक प्रकार की भावनाओ और कहानियो का स्रोत निरतर प्रवाहित था क्या मालूम किस क्षण स्वामी के अवदान का द्वार सहसा खुल जाये और हम ज्वलत भाषा मे सत्य के नये नये सदेश सुन ले. समुद्र यात्रा के आरभ के प्रथम दिन तीसरे पहर हम भागीरथी पर जहाज बैठे बाते कर रहे थे इतने मे ही स्वामी सहसा बोल उठे, 'देखो जितने दिन बीत रहे हैं मैं उतना ही स्पष्ट समझ रहा हूँ कि मनुष्यत्व प्राप्ति ही जीवन की सर्वश्रेष्ठ साधना है, इस नवीन उपदेश का ही मैं जगत मे प्रचार कर रहा हूँ, यदि दुष्ट कर्म करना हो तो उसे भी मनुष्य की तरह करो, यदि दुष्ट ही बनना है तो महान् दुष्ट बनो'

इसके बाद तरह-तरह की बातचीत, तरह तरह की कहानियाँ! अक्सर वे गभीर मुद्रा मे चितनशील एव मौन ही रहा करते थे, परतु कभी-कभी लगता था कि बाहर निकलने के लिए कसमसाती हुई भावनाओ को वे किसी प्रकार दबा नही पाते थे और अत मे विवश होकर अपनी अनुभूतियो का द्वार खोल देते थे कभी उनकी बातें ऐसी भी होती थीं जो बहन निवेदिता की मानसिक पकड से बाहर की थी उनके वार्तालाप का विषय उनकी मन स्थिति के अनुसार क्षण-क्षण मे परिवर्तित हुआ करता था कभी शारीरिक प्रेम और सृष्टि को वे कई धर्मों की जड बताते थे उनका कथन था कि भारत का वैष्णव धर्म और पश्चिम का ईसाई धर्म दोनो ही मे शारीरिक प्रेम और सृष्टि की मान्यता है 'कितने कम लोग मृत्यु की या काली की पूजा करने का साहस रखते हैं हम लोगों ने ही मृत्यु की आराधना की, हम लोगों ने ही भयानक को, वीभत्स को गले से लगाया, क्योंकि वे विकराल है, हमें इनकी विकरालता को कम करने का वरदान नही मांगना है हमें कष्ट के ही लिए कष्ट को स्वीकार करना चाहिए.'

उन्होने बार बार इस बात पर जोर दिया कि महानता के सोपान पर चढने के लिए मनुष्य मे दुख झेलने की शक्ति होनी चाहिए. कितने लोग विविध प्रकार के इद्रिय सुख लूटते हुए राख मे मिल जाते हैं वे समार के लिए नगण्य हैं. इस प्रसग की व्याख्या मे उन्होने अनेक व्यक्तियो के दृष्टात दिये कितने ही भगवत्‌भक्तो के जीवन की विपदाओ का वर्णन करते हुए उनके नयन सजल हो उठते थे, कठ अवरुद्ध हो जाता था. अपने को ऐसे भावावेग की स्थिति मे पाकर या तो वे वार्तालाप का विषय परिवर्तित कर देते थे. या अचानक उठ कर थोडी देर के लिए किसी दूसरी जगह चले जाते थे

भूमध्य सागर मे आगे बढने पर इटली के समुद्र तट की धुधली पर्वत शृखलाएँ धीरे-धीरे स्पष्ट होने लगी जहाज जब सिसली के पास पहुँचा, सध्या हो चुकी थी हल्की-हल्की धूप की सुनहली किरणे सागर के जल पर तैरने लगी जहाज की गति मद हो गयी मेसिना के मुहाने से जब जहाज गुजर रहा था, आकाश से सध्या की लालिमा लुप्त हो गयी थी रात्रि का प्रथम प्रहर. दूर आसमान मे चाँद की क्षीण रेखा अभी पूरी तरह चाँदनी निखर नही पायी थी फिर भी इसके झिलमिल प्रकाश मे मेसिना की अपूर्व प्राकृतिक छटा यात्रियो की दृष्टि अपनी ओर बरबस खीच रही थी एटना ज्वालामुखी के शिखर से धीरे-धीरे निकलते हुए धुए की कापती हुई लहरें ऊपर की ओर शून्य मे विलीन हो रही थी स्वामी बहन निवेदिता के साथ डेक पर टहलते हुए मेसिना के सौंदर्य की दार्शनिक व्याख्या करने लगे 'मेसिना मुझे धन्यवाद देगी, क्योकि मैंने ही उसे यह अतुलनीय सौंदर्य प्रदान किया है.' स्वामी की प्रारम्भ से ही ऐसी धारणा थी कि मानव मस्तिष्क सभी प्रकार के ज्ञान की या सौंदर्यबोधिनी शक्ति की खान है. शिक्षा के द्वारा हम इन अद्‌भुत वस्तुओ को खान से बाहर लाते हैं, उन्हे चमकाते है, सजाते हैं, सवारते है और उन्हें उपयोगी बनाते हैं यह हमारे मस्तिष्क की ही विशेषता है कि हम अपनी कल्पना की तूलिका से किसी वस्तु मे सुन्दर, किसी वस्तु मे असुन्दर रग भरते है और उन्हें मनपसन्द साचे मे ढालते हैं

स्वामी दूसरे दिन प्रात फिर डेक पर थे सिसली द्वीप बहुत पीछे छूट चुका था चारो ओर जल ही जल. स्वामी कभी अचानक मौन मुद्रा धारण कर लेते. काफी समय तक सभी लोगो से तटस्थ वे न जाने किस विचार मे खोये रहते फिर भाव परिवर्तन होते ही वे अपने लोगो के बीच चले आते, बडे उत्साह से ऐतिहासिक पौराणिक कथाए सुनाने लगते तथा उसके विषयवस्तु की यथार्थता मे प्राण डाल देते. विभिन्न राष्ट्रो के उत्थान और पतन की कहानिया कहते कहते उनकी आंखो मे आशा की ज्योति चमक उठती जान पडता, जैसे क्षण भर मे वे भारत की काया पलट देंगे उस समय वे भूल जाते कि तत्कालीन भारत किन विकट परिस्थितियो मे जकडा हुआ पडा है वे भूल जाते कि भारत को अशिक्षा, दुख एव दारिद्रय के

गर्त से निकलने मे बहुत समय लगेगा. लगता जैसे उनके हाथ मे कोई जादू की छडी है, जिसे घुमाया कि भारत का चोला बदल गया.

स्वामी डेक पर टहलते-टहलते सहसा रुक जाते हैं. उनकी दृष्टि दूर क्षितिज को भेद कर उस पार की वस्तु को देख लेना चाहती हैं. चेहरे पर नवीन भारत का रगीन स्वप्न झिलमिला रहा है. अचानक यह क्या हो गया उन्हे ? पास पडी हुई कुर्सी की बाह थाम कर धम्म से वे अपने को कुर्सी मे छोड देते हैं. सारा शरीर शिथिल रक्तहीन मुखमंडल. सूनी-सूनी आखें. लगता है उन्हें वास्तविकता का, अपनी सीमा का, अपने बुझते हुए जीवन-दीप का ज्ञान हो आया है वे अपने को एक बच्चे के समान असहाय महसूस कर रहे हैं. उनके सगी उन्हें देखते है और भारत माता के प्रति उनके अटूट अदम्य प्रेम को भी समझते हैं. कुछ समय बाद आप ही आप स्वामी की मन'स्थिति मे परिवर्तन आ जाता है.

ऐसा अक्सर ही होता रहता था शिष्यगण उनकी झक्की प्रकृति से परिचित थे वास्तविकता की भूमि पर खडे होकर वह गुरुदेव श्रीरामकृष्ण की जीवन-गाथा, उनके भक्तो और सतो के जीवन की अमूल्य झलकियाँ अपने शिष्यो को सुनाते हुए कभी भी नही थकते थे. उनके शिष्य और भक्त उनके आश्रम थे वे प्रायः उनसे कहा करते कि उनके नही रहने पर भी शिष्यो और भक्तो के द्वारा रामकृष्ण मिशन का कार्य अक्षुण्ण रूप से चलता रहेगा इस प्रकार भाति-भाति के मनोभावो के उतार-चढाव के साथ स्वामी की समुद्री यात्रा के दिन कटे. उद्‌बोधन के लिए भी इस अवधि मे उन्होने अनेक निबन्ध लिखे.

३१ जुलाई १८९९ को स्वामी का जहाज लन्दन के टिलबरी डाक पर पहुचा स्वामी के स्वागतार्थ वहा उनके कई मित्र और भक्त उपस्थित थे. उन लोगो के बीच स्वामी की दो अमरीकी शिष्याएँ क्रिस्टीन और श्रीमती फकी भी उपस्थित थी स्वामी के लन्दन आने का समाचार उन्हें अमरीका मे ही मिल चुका था. वे अपने गुरुदेव के दर्शन की उत्कट आकाक्षा को वश मे नही कर सकी और डिट्राएट से लन्दन चली आयी स्वामी लदन से कुछ दूर विम्बलडन नामक स्थान मे ठहरे इस बार लदन मे इन्होने कोई सार्वजनिक भाषण नही दिया किन्तु उनके पुराने अग्रेज मित्र, भक्त और परिचितो ने उन्हे शाति की सास नही लेने दी. लन्दन के दो सप्ताह का समय प्राय' वार्ता और गोष्ठी मे लुप्त हो गया. लदन मे इनके लिए अमरीका से कई निमत्रण पत्र आये अमरीकी शिष्याओ ने भी स्वामी का शीघ्र अमरीका ले जाने के लिए काफी हठ किया ब्रिटेन मे स्वामी का स्वास्थ्य साथ नही दे रहा था मन के मुताबिक काम भी नही हो रहा था. इसलिए इन्होने जल्दी ही अमरीका के लिए प्रस्थान करने का निर्णय किया.

१६ अगस्त को गुरुभाई तुरीयानन्द और दोनो अमरीकी शिष्याओ के साथ स्वामी न्यूयार्क के लिए रवाना हुए. बहुत [illegible] हुए आवश्यक [illegible]

ठहर गयीं. इस समुद्र यात्रा के सम्बन्ध में स्वामी की अमरीकी शिष्या श्रीमती फकी ने लिखा है—'समुद्र पर व्यतीत किये हुए इन दस दिनो की स्मृति भूलने की नही. प्रातःकाल गीतापाठ और उसकी व्याख्या मे बिताया जाता था, और इसके साथ सस्कृत-कवितापाठ तथा संस्कृत कविताओ और कहानियो के अनुवाद तथा प्राचीन वैदिक प्रार्थनामत्रो के पाठ भी हम लोग सुना करते थे समुद्र शात था, रात्रि चादनी से सुशोभित थी. वे संध्याएँ कितनी अद्भुत थी गुरुदेव, एक राजसी आकृति, शुभ ज्योत्सना मे डेक पर टहलते हुए बीच-बीच मे कभी-कभी रुक कर हम सबो से प्राकृतिक सौन्दर्य के सम्बन्ध मे बातें करने लगते थे. एक बार अचानक खड़े होकर उन्होने कहा—जब इस माया के साम्राज्य मे इतना सौन्दर्य है तो फिर जरा सोचो इसके पीछे छिपे हुए सत्य मे कितनी विलक्षण छवि होगी' अत्यंत सुषमायुक्त सध्या, ऊपर आकाश मे पूनम का चाद, अत्यत मृदु-स्वर्णिम आभा लिये हुए, एक रहस्यमयी मोहकता वाली रात वे चुपचाप काफी देर तक तन्मय होकर प्रकृति का सौन्दर्य आंखो मे पीते रहे अचानक वे हम लोगो की ओर मुड़े और समुद्र तथा आकाश की ओर हाथ उठा कर सकेत करते हुए बोले—कविता पाठ से क्या लाभ जबकि उसका सार यहाँ चारो ओर फैला हुआ है.'

लदन से न्यूयार्क पहुँचने मे वैसे तो दस दिन लगे. किन्तु इन दस दिनो मे जैसे हवा के पख लग गये बातो ही बातो मे वे दिन कैसे उड गये, किसी ने नही जाना न्यूयार्क मे श्री और श्रीमती लिगेट ने उन्हे बडे आदर से अपना अतिथि बनाया. उसी दिन सध्या समय तुरीयानन्द के साथ स्वामी लिगेट दम्पति के अनुरोध पर न्यूयार्क से १५० मील दूर उनके गाँव के मकान रिजले मैनर, चल गये. इधर कई वर्षों से उनका स्वास्थ्य गिरता चला जा रहा था. स्वामी की हालत देख कर लिगेट दम्पति को बहुत ही दुख हुआ उन्होने स्वामी के सार्वजनिक कार्यक्रम बिलकुल ही रोक दिये, और हर तरह की परिचर्या के अतिरिक्त उनकी चिकित्सा की भी व्यवस्था कर दी एक माह पश्चात बहन निवेदिता भी लदन का कार्य समाप्त कर स्वामी के पास आ गयी.

स्वामी अभेदानन्द अमरीका मे वेदात प्रचार कर रहे थे स्वामी के अमरीका आने की खबर सुन कर उनसे मिलने चले आये. उनसे वेदात प्रचार कार्य का पूर्ण वृतान्त सुन कर स्वामी का मन फूला नहीं समाया विशेष कर यह जान कर उन्हें अत्यधिक प्रसन्नता हुई कि न्यूयार्क मे वेदान्त समिति के लिए स्थायी भवन की व्यवस्था हो रही है. अभेदानन्द ने १५ अक्तूबर १८९९ को इस भवन का उद्घाटन कार्य सम्पन्न किया तथा एक सप्ताह बाद वहाँ नियमित रूप से वेदान्त की कक्षाएँ चलने लगी. इन कक्षाओं मे व्याख्या के साथ-साथ प्रश्नोत्तर भी चलता था. स्वामी तुरीयानन्द ने माउण्ट क्लेयर मे बच्चो की कक्षाएँ लेनी आरम्भ कर दी. इस कक्षा मे हितोपदेश आदि की शिक्षामूलक कहानियाँ बच्चो को सुनायी जाती थी अभेदानन्द

के द्वारा स्थापित वेदान्त समिति के नाम मे भी इन्होने हाथ बटाना आरम्भ कर दिया

इस अवधि मे स्वामी को विश्राम और चिकित्सा से काफी लाभ पहुँचा. शरीर कुछ स्वस्थ होने पर उनका गांव के मकान मे टिकना असम्भव हो गया. लिगेट दम्पति के अनवरत अनुरोध की उपेक्षा कर वे उनसे विनम्रतापूर्वक विदा लेकर ५ नवम्बर को न्यूयार्क आ गये. दो दिन पश्चात समिति की एक प्रश्नोत्तर सभा मे स्वामी न्यूयार्क के जनसाधारण के बीच उपस्थित हुए समिति के नवीन सदस्यों से अभेदानन्द ने उनका परिचय करवाया. समिति के पुस्तकालय मे जन-साधारण तथा उनके अनेक प्रिय मित्रो और भक्तो द्वारा उन्हे अभिनन्दन पत्र भेंट किया गया उत्तर मे उन्हें धन्यवाद देते हुए स्वामी ने बहुत ही सुन्दर भाषण दिया.

अब यहाँ स्वामी का जीवन अत्यन्त व्यस्त बन गया. इस घोर व्यस्तता मे भी अपने लघु जीवन के शेष चन्द दिनो की याद यदाकदा आ ही जाती. मृत्यु की काली छाया उनके आस-पास कही मडरा रही है, इसे वे देख ही लेते एक दिन उन्होने अभेदानन्द से कहा--अरे भाई, मेरे तो दिन गिने हुए हैं, अधिक से अधिक मै तीन-चार साल और जीऊँगा. गुरुभाई अभेदानन्द ने तत्क्षण उत्तर दिया कि उन्हें इस तरह की बात नही सोचनी चाहिए क्योंकि उनके स्वास्थ्य मे उत्तरोत्तर प्रगति हो रही है यदि वे यहां कुछ दिन और ठहरे तो उनका खोया हुआ स्वास्थ्य, खोयी हुई शक्ति पुन लौट आयेगी. उन्होने यह भी कहा कि अभी तो काम का प्रारम्भ ही है, यह कार्य क्षेत्र बहुत विस्तृत है, पथ लम्बा है, अभी ही हिम्मत हारने से कैसे काम चलेगा. अभेदानन्द की बातो का कोई असर स्वामी पर नही दिखायी पडा उन्होने फिर कहना आरम्भ किया—'भाई, तुम मुझे समझ नही रहे हो. मुझे ऐसा अनुभव हो रहा है जैसे मैं अन्दर ही अन्दर वृहत् रूप धारण करता जा रहा हू मेरा अह इतना अधिक बढता जा रहा है कि कभी-कभी मुझे अनुभव होता है कि मेरा यह शरीर मुझे अपने मे बाध नही सकता. मैं अब फटने ही वाला हूँ सच, रक्त और मास का यह पिंजरा मुझे अब बहुत दिनो तक नही थाम सकता'

किन्तु स्वामी विवेकानन्द वैसे मनुष्यो मे नही थे जो मृत्यु को समीप आता देख कर जीवन से निराश हो जायें उनके सामने समय थोडा और कार्य अधिक था. जीवन के अंतिम क्षण तक निश्चित होकर साँस लेने की फुर्सत उन्हें नही मिली २२ नवम्बर को वे न्यूयार्क से कैलिफोनिया की लम्बी, कष्टसाध्य यात्रा पर चल पड़े. कैलिफोनिया मे स्वामी अपने शिष्यों सहित सत्तरवर्षीय वृद्धा श्रीमती ब्लाजेट्न के अतिथि बने. स्वामी की पुरानी अमरीकी शिष्या कुमारी जोसेफिन मैक्लीउड (श्रीमती लिगेट की बहन) इस वृद्धा के श्रद्धालु हृदय से परिचित थीं उनके आग्रह से ही उन्होने स्वामी को कैलिफोनिया आमंत्रित करने का प्रबन्ध किया था.

कुमारी मैक्लीउड ने जब पहली बार (स्वामी के वहाँ पहुँचने से पहले)

श्रीमती ब्लोजेट्स के गृह मे प्रवेश किया तो वहा स्वामी का एक बहुत बडा चित्र दीवार पर सुसज्जित देख कर वृद्धा की भावना से अवगत होने के लिए पूछा था कि यह किसका चित्र है. बुढापे की कांपती हुई वाणी को श्रद्धा मे भिगो कर उन्होंने कहा था—'यदि पृथ्वी पर कही कोई परमात्मा है तो वस यही मनुष्य. मैंने इसे सन् १८९३ मे शिकागो के धर्म महासम्मेलन मे देखा था' इसके बाद श्रीमती ब्लोजेट्स ने धर्म महासम्मेलन से सम्बन्धित स्वामी की सफलता की अनेक बातें उन्हे बतायी.

जब स्वामी श्रीमती ब्लोजेट्स के अतिथि बन कर आये तो उनकी खुशी का पारावार नही रहा. वहाँ स्वामी का समय अधिकतर प्रवचन और भाषण मे व्यतीत होता. किन्तु वृद्धा ने कभी उनके भाषण और प्रवचन मे भाग नही लिया वे स्वामी के मनपसन्द पकवान तैयार करने मे व्यस्त रहती. स्वामी तथा उनके भक्तो और शिष्यो को अपने हाथ का बना खाना खिला कर उन्हे बेहद तुष्टि होती.

कैलिफोर्निया मे स्वामी करीब सात माह ठहरे. इस समय सयोगवश यहाँ की जलवायु उनके स्वास्थ्य के लिए अनुकूल थी अत: वे कैलिफोर्निया के प्रथम नगर लास ऐंजल्स तथा अन्य भागो मे भ्रमण कर जी तोड परिश्रम करते रहे. कहीं भाषण, कही प्रश्नोत्तर सभा, कहीं गोष्ठी. वेदान्त दर्शन से सम्बन्धित सभाओ मे सैकड़ो श्रोताओ की भीड रहती थी इसके अतिरिक्त इच्छुक शिष्य एव छात्र-छात्राओ को वे राजयोग की शिक्षा भी देते थे.

इसी अवधि मे आकलैंड के यूनिटेरियन चर्च के प्रधान, डा० बेंजामिन मिल्स के निमत्रण पर स्वामी ने उक्त चर्च मे लगातार आठ भाषण दिये. स्थानीय समाचार पत्रो मे स्वामी के ज्ञान की चर्चा बडे पैमाने पर हुई डा० बेंजामिन ने इनके सम्मान मे एक धर्म सभा की कैलिफोर्निया के विभिन्न भागो मे अनेक मिशनरी एव धर्माचार्य लोग सभा मे उपस्थित हुए स्वामी की आध्यात्मिक अन्तर्दृष्टि की बडी प्रशसा हुई. डा० बेंजामिन मिल्स ने श्रोताओ के सम्मुख स्वामी की प्रशसा करते हुए कहा—'वास्तव मे स्वामी ऐसे विशाल बुद्धिसम्पन्न व्यक्ति हैं कि उनके सम्मुख हमारे विश्वविद्यालय के बडे से बडे अध्यापकगण शिशु जैसे लगते हैं'

आकलैंड के बाद कैलिफोर्निया की राजधानी सैनफ्रासिस्को मे स्वामी के कई भाषण हुए वहाँ एक वेदान्त समिति की स्थापना हुई. स्वामी ने तुरीयानन्द को वहाँ के वेदान्त प्रचार का कार्यभार सौंपा कैलिफोर्निया से चलने के कुछ ही समय पहले स्वामी की एक अमरीकी शिष्या कु० मिनी सी बुक ने एक स्थायी मठ निर्माण के लिए उनको १६० एकड भूमि दान मे दी कैलिफोर्निया के साता क्लैरा काउटी की सैन एटोन घाटी मे स्थित यह भूमिखड जनरव से बहुत दूर था. रेलवे स्टेशन यहाँ से पचास मील दूर और डाकघर तीन मील पर था

अगस्त के प्रारम्भ मे स्वामी अपने कुछ शिष्यो और भक्तो के साथ भूमि-दर्शन के लिए चल पड़े सौभाग्य से मौसम आकर्षक था. मार्ग की गहन निस्सीम

निर्जनता मे प्रकृति निस्संकोच होकर अपना सौन्दर्य निरावृत कर रही थी हरीतिमा मे लिपटी छोटी-छोटी पहाडियो का सामीप्य, ऊँचे-नीचे वृक्षो की शाखा प्रशाखाओ पर चहकते पक्षी, भूमि पर बनैले तृण पुष्पो की अनोखी बेलबूटाकारी स्वामी आँखें भर-भर कर इस अनुपम सौन्दर्य का रस पान करते रहे हवा मानो स्फूर्ति की फुहारें बरसा रही थी. इस अरण्य का बीहड, दुर्गम मार्ग न जाने कितना आनन्ददायक बन गया. स्थान की गहनशून्यता इसका विशेष आकर्षण थी इसीलिए यहा के भावी आश्रम का नाम स्वामी ने 'शाति आश्रम' (पीस रिट्रीट) रखा

आसपास की लहलहाती हरियाली भूमि की उर्वरता का मौन ढिंढोरा पीट रही थी किन्तु कोसो दूर तक पीने के पानी का कोई साधन नही था. फिर भी सन्यासियो के हृदय से उत्साह उफना पडता था त्रिपाल लगे. स्वामी ने सहयोगियो के कधो पर अलग-अलग कार्य के उत्तरदायित्व सौंपे. दूर से ही सही, मगर पीने का पानी भी आया फिर कुछ ही दिनो मे थोडी सी भूमि की झाडफूस साफ कर उसे लीप पोत कर एक कुटी बनायी गयी कुआ खोदा गया स्वामी तुरीयानन्द तथा उनके बारह विदेशी शिष्यो ने मिल कर इस सूनी नितात मौन वनस्थली को वेद मन्त्रो और ऋचाओ के पावन स्वर से मुखरित कर दिया गधरहित दिशाएँ अगरुधूम से सुवासित हो गयी स्वामी की बहुत बडी लालसा थी कि अमरीका मे भी भारतीय वनाश्रम के पर्याय हो उनका यह स्वप्न 'शाति आश्रम' के रूप मे साकार हो गया किन्तु दुख है कि इसका विकसित रूप, विशाल भवन, मनमोहक उद्यान, वाटिका तथा वृहत् छात्र सख्या वे अपने जीवन काल मे नही देख सके.

इस शाति आश्रम ने स्वामी के स्वास्थ्य के साथ समझौता नही किया. अमरीका आने के बाद उसमे जो कुछ भी सुधार हुआ था वह सब अब हाथ से निकल गया शाति आश्रम के निर्माण और स्थापना ने उन्हें बहुत ही श्रात-क्लात बना दिया था अत अब स्वामी प्रचार कार्य से अवकाश लेकर कैम्प टेलर नामक गाव मे विश्राम के लिए चले गये तीन सप्ताह के विश्राम के पश्चात् सैनफ्रासिस्को, फिर डिट्राएट और शिकागो आदि स्थानो मे अपने शिष्यो और मित्रो से मिलते हुए न्यूयार्क पहुचे इस अवधि मे स्वामी का कोई विशेष भाषण नही हुआ. वे वीतराग मन: स्थिति मे थे कैलिफोर्निया मे वेदान्त प्रचार का कार्यभार तुरीयानन्द पर छोड़ कर जब स्वामी सैनफ्रासिस्को से विदा लेने लगे तो सभी शिष्यो की आँखें भर आयी. रुँधे हुए कठ से तुरीयानन्द ने अपने नये उत्तरदायित्व से सम्बन्धित जानकारी पूछी विवेकानन्द ने तुरन्त उत्तर दिया—'जाओ और कैलिफोर्निया में आश्रम की स्थापना करो वहाँ वेदान्त की पताका फहराओ. इस क्षण से ही भारत की स्मृति अपने मस्तिष्क से मिटा दो सर्वत्र जाकर, सार्थक जीवन जीओ इसके बाद सब कुछ मा के अधीन है'

न्यूयार्क आने पर विवेकानन्द वेदान्त समिति के स्थायी भवन मे निवास

करने लगे भाषण, वक्तव्य या लोक शिक्षा से उन्हें अब अरुचि सी हो गयी थी. अधिकतर अपने आप मे मग्न रहते या यदा-कदा अपने मित्रो से कुछ देर के लिए मिल लेते लंदन से लिगेट दम्पत्ति का पत्र मिला कि वे जुलाई माह मे पेरिस जायेगे. उन लोगो ने स्वामी को वहा अपने यहा निमत्रित किया था इसी समय पेरिस प्रदर्शनी की धर्मसभा की स्वागत समिति की ओर से भी एक निमत्रण पत्र स्वामी को मिला इस धर्मसभा मे माध्यम फ्रासीसी भाषा थी. इसलिए इसके आरम्भ के दो माह पूर्व से ही स्वामी ने फ्रासीसी भाषा सीखना शुरू कर दिया और कुछ ही समय मे इस पर पूर्ण अधिकार प्राप्त कर लिया

स्वामी जुलाई के अतिम सप्ताह मे पेरिस पहुचे वहाँ श्री और श्रीमती लिगेट ने आग्रहपूर्वक उन्हे अपना अतिथि बनाया जोसेफाइन मैक्लीउड अपनी बहन श्रीमती लिगेट के पास पहले से ही पेरिस पहुच गयी थी लिगेट दम्पति ने यहा बहुत बडा, सुन्दर और आरामदेह मकान ले रखा था. स्वामी कुछ हफ्ते इन लोगो के साथ रहने के बाद एक अन्य मित्र, जेराल्ड नोबल के साथ रहने लगे परन्तु दोपहर का भोजन लिगेट परिवार के ही साथ करते. लिगेट दम्पति सभा मे आये हुए अनेक प्रतिनिधियो और सदस्यो को अपने यहा भोजन पर निमत्रित करते. अत: उनके यहा स्वामी को प्रतिदिन अनेक प्रतिभाशाली व्यक्तियो से मिलने का अवसर मिलता. इनमे से मुख्य व्यक्ति जिनके साथ स्वामी की घनिष्ठता बढी वे थे एडिनबरा विश्वविद्यालय के प्राध्यापक पैट्रिक गेडेस, सुप्रसिद्ध कैथलिक पादरी पेयर, यारे मात और मास्यो जुलबोआ, विख्यात तोप निर्माता हिरम मैक्सिम, यूरोप की सर्वश्रेष्ठ गायिका मदाम काल, सुप्रसिद्ध अभिनेत्री सारा बर्नहार्ट और भारतीय वैज्ञानिक जगदीश चद्र बसु

लिगेट दम्पति का गृह इन दिनो स्वामी के लिए विशेष आकर्षण का केन्द्र था. यहा दार्शनिक, वैज्ञानिक, राजनीतिज्ञ, समाज सेवक, गायक, गायिका, शिक्षक, चित्रकार, सभी तरह के प्रतिभाशाली व्यक्तियो से उनकी भेंट होती.

पेरिस की इस धर्म सभा मे अध्यात्म विषयक किसी सिद्धात या विचार की चर्चा नहीं होने वाली थी यहा केवल विभिन्न धर्मों के अगो के ऐतिहासिक विकास पर ही चर्चा होनी थी. इसलिए इस सभा मे ईसाई पादरियो का अभाव था, सभा के सदस्य अधिकतर ऐसे विद्वान थे जिन्होने विभिन्न धर्मों की उत्पत्ति, उसके विकास के अनुसधान मे अपना जीवन लगा रखा था अपनी अस्वस्थता से विवश होकर स्वामी सभा की सिर्फ दो बैठको मे ही बोल सके, किन्तु हर बैठक मे उपस्थित अवश्य रहा करते थे उनके शाही व्यक्तित्व, विद्वत्तापूर्ण वक्तव्यो तथा मधुर, विनम्र स्वभाव ने सबके मन जीत लिये सभा मे ईसाइयो का मत था कि भारतीय सभ्यता, साहित्य, दर्शन और ज्योतिष पर ग्रीक प्रभाव है किंतु स्वामी ने हिन्दू और बौद्ध धर्मों के ऐतिहासिक तत्वों की व्याख्या करते हुए उनके उस मत का खडन किया. उन्होने कहा

कि यदि कोई प्राचीन सस्कृत साहित्य के अथाह सागर मे डुवकी लगा कर देखे तो उसमे ग्रीक प्रभाव की छाया का अश भी दिखाई नही देगा, बल्कि इसके प्रतिकूल ग्रीक सभ्यता और साहित्य पर ही भारतवर्ष का प्रभाव है.

पेरिस निवास मे स्वामी अपनी प्रथम अमरीकी यात्रा के समय से ही परिचित पश्चिम की तत्कालीन सर्वश्रेष्ठ गायिका मादाम काल के एकदम समीप आ गये. उनका परिचय अब घनिष्ठ मित्रता मे परिवर्तित हो गया. काल गायिका ही नही, अपितु दार्शनिक साहित्य की विदुषी भी थी. धर्म और दर्शन पर अक्सर स्वामी के साथ उनका वाद-विवाद होता रहता था जीवन की पाठशाला मे दुख और दारिद्रय से बढ कर कोई दूसरा सच्चा शिक्षक नही है. मादाम काल का बाल और कैशोर जीवन बहुत ही कष्ट एव अभाव मे बीता था फिर भी सतत लगन और परिश्रम से उन्होने समाज मे बहुत ऊँचा और सम्मानपूर्ण स्थान प्राप्त किया था बाद मे स्वामी ने मादाम काल को 'सौन्दर्य, यौवन, प्रतिभा एव दिव्य कण्ठ का अपूर्व सगम' बताया.

मादाम काल स्वामी की अन्यतम भक्तो एव मित्रो मे थी शिकागो के धर्म महासम्मेलन के समय वह वहा उपस्थित थी उन दिनो वह कई प्रकार के मानसिक अवसादो से ग्रस्त थी ऐसी दुर्बल एव अस्थिर मन स्थिति मे उन्होने स्वामी से प्रथम बार मिलने का निश्चय किया उन्हे स्वामी के निवास स्थान पर ले जाने के पहले सचेत किया गया कि जब तक स्वामी उनसे कुछ पूछें नही तब तक वे मौन रहेंगी उन्होने स्वामी से इस प्रथम साक्षात्कार का चित्र बडे रोचक ढग से प्रस्तुत किया है

मैं कक्ष मे जाकर चुपचाप खडी हो गयी वे गरिमापूर्ण ध्यान की मुद्रा मे फर्श पर बैठ थे. उनका लम्बा काषाय वस्त्र भूमि पर प्रसारित हो रहा था. गैरिक पगडी से मडित मस्तक सामने की ओर थोडा नत था, और आखें धरती पर केन्द्रित थी थोडी देर बाद बिना मेरी ओर देखे ही उन्होने कहा, 'वत्से, तुम्हारा हृदय बहुत अस्थिर है. शात हो जा ! इसी की सबसे पहले आवश्यकता है' इसके बाद शात एव उदासीन स्वभाव का मनुष्य, जो मेरा नाम तक नहीं जानता था, गम्भीर स्वर मे मेरी गोपन समस्याओ और अशाति के कारणो के विषय मे बताने लगा. उनने ऐसी-ऐसी चीजो के विषय मे बातें की कि मेरी समझ से इन बातो से मेरे निकटतम मित्र भी परिचित नही थे. यह घटना जादुई एव अतिमानवीय थी. अत मे मैं उनसे पूछ ही बैठी, 'आप को इन बातो का कैसे पता चला ? मेरे विषय मे आप से किसने बातें की है ?' शात मुस्कान के साथ उन्होने मेरी ओर देखा, मैंने मे एक शिशु की तरह सरल प्रश्न कर बैठी हूँ- फिर उन्होने कहा—'मुझसे किसी ने कुछ नहीं कहा है. क्या तुम समझती हो कि इन बातो का सुनना आवश्यक है ? मैंने तुम्हारे हृदय को एक खुली पुस्तक की तरह पढ लिया है.' इसके बाद विदा लेने का समय

हो गया जैसे ही मैं जाने के लिए खड़ी हुई, वे बोले—'तुम पिछली बातें भूलने की चेष्टा करो. पुन चित्त को प्रसन्न रखो. स्वास्थ्य की रक्षा करो. नीरव रह कर अपने कष्टो को अपने आप मे छिपाये मत रखो. अपने भावावेगो को बाह्य अभिव्यक्ति के किसी रूप मे ढाल दो. तुम्हारे आध्यात्मिक स्वास्थ्य के लिए इसकी आवश्यकता सर्व-प्रथम है तुम्हारी कला इसे माग रही है'

मादाम काल स्वामी के इस साक्षात्कार के बाद उनके व्यक्तित्व, उनकी वाणी और उनकी अद्भुत आध्यात्मिक शक्ति से बहुत प्रभावित होकर लौटी उन्होंने अनुभव किया कि स्वामी के दर्शन के बाद उनकी वर्षों की जटिल समस्याए सुलझ गयी हैं, मानसिक क्लेश और अशाति अदृश्य हो गयी है. उन्होने इस स्थिति के विषय मे लिखा है—'बाद मे उनके साथ घनिष्ठ परिचय होने पर मैंने देख लिया कि वे सहज मे ही उत्तेजित तथा चिंताकुल भाव को दूर कर श्रोता का मन शात कर देते थे जिससे कि उनकी बातो को वह एकाग्रचित्त होकर सुन सके और हृदय मे धारण कर सके.' मादाम काल के आध्यात्मिक जीवन पर स्वामी का प्रचुर प्रभाव पडा वे उन्हें एक नवीन भावराज्य मे खीच ले गये थे और उनकी मृतप्राय धर्म सम्बधी धारणाओ और आदर्शों को नयी प्रेरणा की सजीवनी से जीवन दिया था.

मादाम काल पेरिस से मिस्र भ्रमण के लिए जाने वाली थी उन्होने स्वामी से भी साथ चलने का आग्रह किया स्वामी ने स्वीकृति दे दी. पेरिस निवास की अवधि मे कुमारी मैक्लीउड ने स्वामी को पेरिस के सभी दर्शनीय स्थानो का भ्रमण अपने साथ करा दिया था. अब वहा कोई नया आकर्षण नही बचा था अत स्वामी मादाम काल्म और कुमारी मैक्लीउड के साथ मिस्र की ओर चल पड़े. राह मे दो दिन वियेना, नौ दिन कुस्तुनतुनिया, चार दिन एथेंस रुकते हुए तथा विभिन्न लोगो से मिलते हुए ये लोग मिस्र की राजधानी काहिरा पहुचे वहा घूमते हुए एक बार ये लोग बातो के जाल मे उलझ कर अपना रास्ता भूल गये और फिर एक मैली दुर्गंधपूर्ण गली मे चले आये. यहा कुछ अर्धनग्न औरतें खिड़की से झाक रही थी और कुछ द्वार पर खडी थी गली मे नीचे बेंच पर भी कुछ उसी तरह की औरतें बैठी बातें कर रही रही थी स्वामी को देख कर वे खिलखिला कर हस पड़ी और इशारे से उन्हें अपने पास बुलाया. स्वामी के दल की एक महिला ने सबसे उस स्थान को शीघ्र छोड़ देने के लिए कहा. किन्तु स्वामी ने इस ओर कुछ ध्यान नही दिया और उठ कर बेंच पर बैठी हुई महिलाओ के पास चले गये और बोले—'अभागिनी संतानो, रूप की उपासना में ये लोग ईश्वर को भूल गयी हैं. जरा इनकी ओर देखो तो सही.' पतित नारियों के सम्मुख खड़े होकर उनका हृदय घोर दुख मे चीत्कार उठा. आंखो से आसू झरने लगे. स्त्रिया लज्जित और चकित भाव से एक दूसरे को देखने लगी. फिर इनमे से एक उठ कर स्वामी के सम्मुख आयी, थोड़ा झुक कर स्वामी के शरीर पर झूलते हुए काषाय वस्त्र के निचले भाग को चूमते हुए स्पेनी भाषा मे धीरे से कहा—

'ईश्वर को जानने वाला व्यक्ति' बेंच पर बैठी हुई एक दूसरी स्त्री ने लज्जा और भय के कारण अपने हाथो से अपना मुख छुपा लिया मानो उसकी कलुषित आत्मा स्वामी की अत्यत पावन प्रखर दृष्टि को सहन नही कर पा रही हो, मानो उसके हृदय का रहस्य खुला जा रहा हो.

काहिरा मे स्वामी भारत पहुचने के लिए उतावले हो उठे इसी बीच उन्हें भारत से अत्यंत दुखदायी समाचार मिला कि मायावती मठ के सस्थापक श्री सेवियर का देहावसान हो गया. इस शोक सवाद ने उनका हृदय और भी उखाड दिया अब उन्होंने शीघ्र भारत लौटने का निश्चय कर लिया मादाम काल ने भारत के लिए प्रथम श्रेणी के टिकट की व्यवस्था कर दी विदा का समय आ गया. मादाम काल और कुमारी मैक्लीउड ने भारी हृदय, भीगी पलको और अवरुद्ध कठ से स्वामी को भारत जाने वाले जहाज पर चढाया.

इसी जहाज पर एक युवा अमरीकी मिशनरी, रीम्स काल्किन्स भी भारत आ रहा था स्वामी के नाम से वह परिचित था, किन्तु साक्षात्कार का अवसर नही मिला था. जहाज पर ज्ञात हुआ कि सन्यासी रूपधारी सहयात्री स्वामी विवेकानन्द ही हैं भोजन कक्ष मे प्राय काल्किन्स और स्वामी मे अभिवादन का आदान प्रदान होता, पर किसी की ओर से वार्तालाप प्रारभ करने की प्रक्रिया नही अपनायी जाती. काल्किस कुठा से ग्रस्त था शिकागो के धर्म महासम्मेलन मे जब स्वामी ने संसार के सभी धर्मों के प्रतिनिधियो के समक्ष हिन्दू धर्म की श्रेष्ठता सिद्ध की तथा फिर भारत मे भेजे हुए विदेशी मिशनरियो के स्वार्थपूर्ण कार्यो की भर्त्सना की, तब से ही काल्किस के युवा हृदय मे स्वामी के प्रति एक रोष की भावना पनप गयी थी. वह स्वामी से तर्क-वितर्क करना चाहता था, किन्तु उनके सौम्य एव गाभीर्यपूर्ण व्यक्तित्व को देख कर वार्तालाप आरभ करने का साहस नही हुआ. मन की लालसा बराबर उसके नेत्रो के झरोखो से झाका करती.

स्वामी ने उसे देख लिया और एक दिन बोले—क्या तुम अमरीका के हो ? उसने उत्तर दिया—हा स्वामी ने पूछा—एक मिशनरी ? उसने कहा—हा ! मेरे देश मे धर्म प्रचार क्यो करते हो ?—स्वामी ने प्रश्न किया आप मेरे देश मे धर्म प्रचार क्यो करते हैं ?—काल्किस ने स्वामी के प्रश्न को उन्ही के सामने अपनी ओर से रखा. पलक झपकते ही दोनो की आखें मैत्री भाव से चमक उठी दोनो ही देर तक ठठा कर हसते रहे फिर दोनो ने मित्रता के हाथ मिलाये

स्वामी अवसर चितन-मनन से निवृत्त होने पर काल्किस से थोडी देर बात-चीत करते एक दिन बातो ही बातो मे वे उत्तेजित हो उठे और गरज पडे—'इगलैंड को हमे राजनीति की सूक्ष्म कला की शिक्षा देने दो, क्योकि इस कला मे ब्रिटेन राष्ट्रो का नेता है अमरीका को हमे कृषि और विज्ञान पढाने दो, क्योकि जिस अद्भुत रीति से तुम अपना कार्य कर लेते हो इस दृष्टि से हम तुम्हारे चरणो के

पास हैं. किन्तु कोई भी राष्ट्र भारत को धर्म की शिक्षा देने का दभ नही कर सकता है.' किन्तु के वाद अन्तिम वाक्य कहते-कहते स्वाभिमान के कारण स्वामी का मुखमडल लाल और वाणी कठोर हो गयी थी. जहाज के इस अल्पकालिक मिलन ने स्वामी और कालिकन्स के बीच की दूरी को मिटा दिया. दोनो एक दूसरे के बहुत समीप आ गये. कालिकन्स के मापदण्ड मे 'विवेकानन्द दार्शनिक से अधिक एक देश-भक्त थे.' वास्तव मे वे सभी पीडित मानवता का उद्धार चाहते थे. मन स्थिति अनुकूल होने पर वे कालिकन्स से ऐसी-ऐसी मार्मिक बातें करते जो न अमरीका की, न ब्रिटेन की, न भारत की या किसी विशेष राष्ट्र की होती वे बातें तो, भूखी, नगी शोषित मानवता की थी, जिनकी चर्चा करते-करते स्वामी की आँखो से अश्रु-धारा प्रवाहित होने लगती थी.

स्वामी यह कभी नही भूल पाते थे कि उनका देश ऐसी मानवता का मुख्य केन्द्र था भारत से बाहर भ्रमण करते हुए उन्हे यह बात और भी खलती रहती थी. उनके प्रवास के समय के पत्रों से उनके अन्तस्तल की भावनाओ का बडा ही मार्मिक चित्र उभरता हैं इसके साथ ही साथ उनमे उस समय के भारत की दशा का भी सजीव चित्रण मिलता हैं अमरीका पहुँचने के बाद ३० अक्टूबर १८९९ को मेरी हेल को लिखे गये अपने एक पत्र मे उन्होने कहा—'कुछ सौ आधुनीकृत, अर्धशिक्षित एवं राष्ट्रीय चेतनाशून्य पुरुष ही वर्तमान अग्रेजी भारत का दिखावा हैं. और कुछ नही.' भारत मे ब्रिटिश नीति का विवेचन करते हुए उन्होने आगे लिखा .

'यह आज की स्थिति है शिक्षा को भी अब अधिक नही फैलने दिया जायेगा, प्रेस की स्वतत्रता का गला पहले ही घोट दिया गया है, (निरस्त्र तो हम पहले से ही कर दिये गये हैं) और स्वशासन का जो थोडा अवसर हमको पहले दिया गया था, शीघ्रता से छीना जा रहा है हम इतजार कर रहे हैं कि अब आगे क्या होगा ! निर्दोष आलोचना मे लिखे गये कुछ शब्दो के लिए लोगो को कालापानी की सजा दी जा रही है, अन्य लोग बिना कोई मुकदमा चलाये जेलो मे ठूंसे जा रहे है, और किसी को कुछ पता नही कि कब उनका सर धड से अलग हो जायेगा.

'कुछ वर्षों से भारत मे आतकपूर्ण शासन का दौर है अग्रेज सिपाही हमारे देशवासियों का खून कर रहे हैं, हमारी बहनो को अपमानित कर रहे हैं, हमारे खर्च से ही यात्रा का किराया और पेंशन देकर स्वदेश भेजे जाने के लिए. हम लोग घोर अधकार मे हैं. ईश्वर कहा है ? मेरी, तुम आशावादिनी हो सकती हो, लेकिन क्या मेरे लिए यह सभव है ? मान लो तुम इस पत्र को केवल प्रकाशित भर कर दो, तो उस कानून का सहारा लेकर जो अभी-अभी भारत मे पारित हुआ है, अग्रेजी सरकार मुझे यहा से भारत घसीट ले जायेगी और बिना किसी कानूनी कार्रवाई के मुझे मार डालेगी. और मुझे यह मालूम है कि तुम्हारी सभी ईसाई सरकारें इस पर खुशिया मनायेंगी, क्योकि हम गैरईसाई हैं क्या मैं भी सोने चला जा सकता हू और

आशावादी हो सकता हूं ?'

विवेकानन्द द्वारा अंग्रेजी राज की इस तीव्र आलोचना से यह नही समझना चाहिए कि वे अंग्रेजो को ही भारत के सभी दोषो के लिए उत्तरदायी मानते थे वास्तव मे उनका विचार इसके ठीक विपरीत था और वे बार-बार इस पर जोर देते थे कि भारतीयो के अधः पतन की जड मे स्वय उनकी कमजोरिया थी और उनके लिए अंग्रेजो को दोष देना व्यर्थ था अपने शिष्यो द्वारा समाज सेवा के काम के प्रति अंग्रेज कर्मचारियो मे सहानुभूति की कमी की रिपोर्ट मिलने पर उन्होने स्वामी अखडानन्द के नाम एक पत्र मे २१ फरवरी १९०० को लिखा —'अंग्रेज कर्मचारियो का क्या दोष है ? क्या वे परिवार, जिनकी अस्वाभाविक निर्दयता के बारे मे तुमने लिखा है, भारत मे अनोखे है ? या ऐसो का बाहुल्य है ? पूरे देश मे यह एक ही कथा है ·· अंग्रेज कर्मचारी चारो ओर इसी को देखते हैं, इसलिए उन्हे आरभ से ही विश्वास कैसे हो सकता है ? परन्तु मुझे यह बताओ कि जब सच्चा कार्य वे प्रत्यक्ष देखते हैं, तो वे क्या सहानुभूति नही प्रकट करते ? देशी कर्मचारी क्या इस प्रकार कर सकेंगे ?'

विवेकानन्द का यह स्पष्ट विचार था कि भारतीयो को राजनीतिक अधिकार तभी मिलेंगे जब वे उनके लिए पूरी तरह योग्य हो जायेगे उनकी राय मे यह योग्यता प्रस्तावो द्वारा राजनीतिक अधिकारो की माग करके नही बल्कि समाज के पीडित वर्गों की सेवा द्वारा ही सिद्ध की जा सकती थी उस समय के काग्रेस की कार्यपद्धति की आलोचना करते हुए उन्होने अखडानन्द के नाम पत्र मे आगे लिखा — 'इस उग्र दुर्भिक्ष, बाढ, रोग और महामारी के दिनो मे कहो तुम्हारे काग्रेस वाले कहा है? क्या यह कहना पर्याप्त होगा कि 'राजशासन हमारे हाथ मे दे दो ?' और उनको सुनेगा भी कौन ? यदि मनुष्य काम करता है, तो क्या उसे अपना मुख खोल कर कुछ मागना पडता है ? यदि तुम्हारे जैसे दो हजार लोग कई जिलो मे काम करते हो, तो राजकाज के विषय मे अंग्रेज स्वय बुला कर तुमसे सलाह लेंगे.'

यह भी ध्यान देने की बात है कि उस समय जब काग्रेस मे मध्यमवर्ग के धनी मानी, पढे-लिखे लोगो का बोलबाला था, विवेकानन्द अपने शिष्यो को किसानो और मजदूरो के बीच काम करने का आवाहन कर रहे थे इसी पत्र मे उन्होने कहा — 'भागलपुर मे केन्द्र खोलने के लिए जो तुमने लिखा है, वह विचार, विद्यार्थियो को शिक्षा देना इत्यादि, निस्सदेह बहुत अच्छा है, परन्तु हमारा सघ दीन-हीन, दरिद्र, निरक्षर किसान तथा श्रमिक समाज के लिए है और उनके लिए सब कुछ करने के बाद जब समय बचेगा, केवल तब कुलीनो की बारी आयेगी.'

विवेकानन्द चाहते थे कि किसानो और मजदूरो को उनकी अवस्था का और साथ ही साथ उनकी शक्ति का ज्ञान करा दिया जाय और फिर उन्हे स्वय अपने उद्धार के लिए प्रयत्न करने के लिए छोड दिया जाय. धनिको द्वारा उनका उद्धार